श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीसूर्यसिद्धान्त ।

(पूर्वोत्तरखण्ड समग्र)

गूढार्थप्रकाशसंस्कृतटीका
और
भाषाटीकासमेत

———(॰)———

"यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्द्धनि स्थितम् ॥"

जिसको

मुरादाबादस्थ पं०—बलदेवप्रसादमिश्रजीसे भाषानुवाद
कराय, ज्योतिर्विदोंके लाभार्थ—

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
मालिक—"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
कल्याण - बंबई.

मुद्रक और प्रकाशक-
गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
मालिक-" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम्-प्रेस, कल्याण-बम्बई.

समर्पण ।

भारतवर्षके गौरवस्तम्भ वैश्यवंशावतंस परमोदार देवभाषा उद्धारक
श्रीमान् सेठ–खेमराज श्रीकृष्णदासजी गुप्त महोदयेषु ।

श्रीमान् !

श्रीमान्‌ने संस्कृत भाषाका उद्धार करके भारतवासियोंका परमोपकार किया है । आपके समान धर्मरक्षक, दानशील, व आर्य ऋषियोंके बनाये प्राचीन शास्त्रोंका विस्तार करनेवाला और कोई नहीं है ।

प्राचीन ऋषि मुनिजनोंके बनाये शास्त्रीय ग्रंथोंमें "सूर्यसिद्धान्त" नामक ज्योतिष ग्रन्थका आदर मान सब देशोंमें है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि, ज्योतिःशास्त्र प्रधान शास्त्र है । इस शास्त्रके रक्षित और विस्तारित होनेसे संसारका मंगल होना जानकर श्रीमान्‌के उत्साहसे उत्साहित हो अनेक यत्न और बहुत परिश्रम करके "सूर्यसिद्धान्त" ग्रंथका अनुवाद साधुभाषामें किया । श्रीमान् जानतेही हैं कि, गणित-शास्त्र सर्व साधारणके लिये कितना कठिन है । इस अनुवादको पायकर ज्योतिर्वित् पंडितोंका विशेष उपकार होगा । विशेषता यह है कि, जो उदाहरण मैंने दिये हैं उनका अवलम्बन करके इस जटिल शास्त्रके भीतर प्रवेश करना बहुत कठिन न होगा ।

सर्व शास्त्र रक्षाकर्त्ता श्रीमान्‌के करकमलमें यह अनुवादित ग्रन्थ अर्पण करके मैं आशा करताहूं कि इसको प्रकाशित करके आप सारे भारतवर्षमें प्रचारित करदेंगे । विना धनवान् लोगोंकी सहायताके भारत-वर्षमें कोई महान्‌कार्य नहीं होता । यह विचार कर इस ग्रंथको प्रचार होनेकी कामनासे भवदीय महायशस्वी नामके साथ इसको संयुक्त कराहूं ।

भवदीय अनुग्रही–

समर्पण।

भारतवर्षके गौरवस्तम्भ वैश्यवंशावतंस परमोदार देवभाषा उद्धारक
श्रीमान् सेठ–खेमराज श्रीकृष्णदासजी गुप्त महोदयेषु।

श्रीमान्!

श्रीमान्ने संस्कृत भाषाका उद्धार करके भारतवासियोंका परमोपकार किया है। आपके समान धर्मरक्षक, दानशील, व आर्य ऋषियोंके बनाये प्राचीन शास्त्रोंका विस्तार करनेवाला और कोई नहीं है।

प्राचीन ऋषि मुनिजनोंके बनाये शास्त्रीय ग्रंथोंमें "सूर्यसिद्धान्त" नामक ज्योतिष ग्रन्थका आदर मान सब देशोंमें है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि, ज्योतिःशास्त्र प्रधान शास्त्र है। इस शास्त्रके रक्षित और विस्तारित होनेसे संसारका मंगल होना जानकर श्रीमान्के उत्साहसे उत्साहित हो अनेक यत्न और बहुत परिश्रम करके "सूर्यसिद्धान्त" ग्रंथका अनुवाद साधुभाषामें किया। श्रीमान् जानतेही हैं कि, गणित-शास्त्र सर्व साधारणके लिये कितना कठिन है। इस अनुवादको पायकर ज्योतिर्वित् पंडितोंका विशेष उपकार होगा। विशेषता यह है कि, जो उदाहरण मैंने दिये हैं उनका अवलम्बन करके इस जटिल शास्त्रके भीतर प्रवेश करना बहुत कठिन न होगा।

सर्व शास्त्र रक्षाकर्त्ता श्रीमान्के करकमलमें यह अनुवादित ग्रन्थ अर्पण करके मैं आशा करताहूँ कि इसको प्रकाशित करके आप सारे भारतवर्षमें प्रचारित करदेंगे। विना धनवान् लोगोंकी सहायताके भारत-वर्षमें कोई महान्कार्य नहीं होता। यह विचार कर इस ग्रंथको प्रचार होनेकी कामनासे भवदीय महायशस्वी नामके साथ इसको संयुक्त कराहूं।

भूमिका।

अति प्राचीन समयसे सबही देशोंके रहनेवाले इस बातको जानते हैं कि, भारतवर्षके निवासी गण वैज्ञानिक विषयोंमें अत्यन्त पारदर्शी होते आये हैं। विलायतके पंडितगण इस भारतवर्षकोही गणितविद्याका मूल स्थान बतलाकर इसकी प्रतिष्ठा करते हैं। इङ्गलैण्डके तत्त्वदर्शीलोग जब भारतवर्षीय ग्रंथादिका विचार करनेको तैयार होते हैं तब वे गणितात्मक ज्योतिषशास्त्रकी अपार गवेषण निहार देशकालको विचार करके विस्मयसागरमें गोतेखाने लगते हैं। उस गणितशास्त्रके अत्यन्त प्राचीन सर्वमान्य अठारह सिद्धान्तोमेंसे "श्रीसूर्यसिद्धान्त" नामक ग्रंथको बहुतही कम भारतवासी जानते हैं। अनादर प्राप्त करते २ इस गणितशास्त्रके मुख्य २ ग्रन्थ रत्न कालकी सर्व संहारिणी शक्तिके नीचे दबते चलेजाते हैं। भारतवासियोंने अपने पूव पुरुषोंकी कीर्तिको रक्षित करनेमें महा उदासीनता प्रगट की है। मैं आशा नहीं करसक्ता कि, इस समय वह मुझ तुच्छके कहनेसे उदासीनताको छोडदेंगे। तथापि अपना कर्त्तव्य समय यह सानुवाद ग्रन्थ अत्यन्त परिश्रम करके वर्तमान ज्योतिष्क मण्डली और साधारणके निकट प्रकाशित कर आनन्द प्राप्त करता हूं।

आजकल जो लोग विद्वान् गिनेजाते और जिनके करने धरनेसे कुछ हो सकता है; उनमेंसे बहुतसे तो शास्त्रको देखतेतक नहीं। बहुतसे ऐसे हैं कि, स्वयं तो शास्त्रको जानते नहीं परन्तु अपनी पंडिताई बराबर छौंके चले जाते हैं। उपरोक्त ग्रंथ विमुखता और अभिमानताही तो सब काम बिगाड रही है, और बराबर ज्योतिषी लोगोंके ऊपर अपना अधिकार करती चलीजाती है। यहांतक कि, अब इस अदूरदर्शिताका फलभी कुछ २ फलने लगा है। आजकल ज्योतिषी लोग पेट–चिंतामें लगे रहकर भली भांतिसे उस विद्याको नहीं पढते पढाते। इसी कारण

कम परिश्रम करनेकी इच्छासे अनेक करण ग्रंथोंको विनाही देखे भाले, उन करण ग्रंथोंके मूल श्रीसूर्यसिद्धान्तका नाम लेकर और ग्रंथोंकी सारिणीकी सहायतासे तिन करण ग्रंथोंके फलको प्राप्त हो इस अपूर्व ग्रंथकी दुहाई दिया करते हैं । परन्तु इस विषयका सूचीपत्र बनाते हुए-कि उनमेंसे कितनोंने श्रीसूर्यसिद्धान्तका अवलोकन किया है एक साथ दुःखित होना पडता है ।

सूर्यसिद्धान्तानुगामी सम्प्रदायके सिवाय भारतवर्षमें एक नये प्रकारके सिद्धान्त पूजकोंकी सृष्टि हुई है। इस सिद्धान्तके उत्पन्न करनेवाले अर्द्ध कुक्कुटी जरती न्यायके समान ज्योतिषशास्त्रमें प्रवेश करनेके पहलेही अपनेको पंडित और ज्योतिषी कहलाना चाहते हैं । कोई नैयायिक, कोई थवईके कार्यमें महाबुद्धिमान्, कोई साधारण गणित तीर्थाभिमानी, कोई यश प्राप्त करनेके लिये नवीनमतके प्रचार करनेमें निपुण, कोई किसी ज्योतिषीका छात्र, या कोई साहित्य पारदर्शी; बस ! ऐसे लोगही इसमें प्रधान उद्योगी हैं। कोई भास्कराचार्यके बनाये सिद्धान्त शिरोमणीके गणिताध्यायका अनुवर्ती है । कोई अपने गुरुसे पायेहुए दो एक अंगरेजी " फर्मिडल " का भाषान्तर हस्तगत करकेही गुरुदास्याभिमान ज्योतिषीका पद पानेकी इच्छा करता है, कोई विनाही अयनांश तत्त्वके जाने हुए, इच्छानुसार चलनेवाले किसी पश्चिमदेशके ज्योतिषीका अनुकरण करता है। उपरोक्त समस्त महाशयगणही इस मूलग्रन्थको पढ़कर अपने २ गुरु और भास्करादिके परमगुरु श्रीसूर्यसिद्धान्तके लेखक ऋषिजीके चरणोंमें प्रतिष्ठा प्राप्त कर अन्तर्दाहको निवारण करें ।

The humble translator didicates his worthless attempt to the benefactor of the Sanskrit knowing population of India i. e. Khemaraj Shrikrishnadas Proprietor of the S. V. S. Press-Bombay.

P. B. PRASADA.

गणित–ज्योतिषमें सूर्यसिद्धान्तका नाम अत्यन्त विख्यात है । भारतवर्षके अधिक पंचांग इसी ग्रंथसे बनते हैं, और इसीके अनुसार हमारे सारे व्यवहार हुआ करते हैं । इस कारण प्रत्येक विद्वान्‌को ऐसे ग्रंथके देखनेकी इच्छाका होना कुछ असम्भव नहीं है ।

बहुतसे मनुष्य कहा करते हैं कि सूर्यसिद्धान्त यहांतक कठिन है कि, इसका पढना पढ़ाना अधिकारसे बाहर पाँव रखना है । गणितशास्त्रमें साधारण अधिकारके साथ २ क्रमशः प्रवेश करना कुछ कठिन बात नहीं है । निःसन्देह अंकपात बहुत करने पडते हैं सो वह भी दुरारोह नहीं है ।

नये पढनेवालोंके लिये तो संज्ञाज्ञानही वास्तवमें कठिन है । उदाहरणके साथ ग्रंथका पढना बहुतही लाभकारी है । जहां दो एक विषय आगये, बस फिर और विषयोंका समझमें आना कुछ कठिन नहीं रहता । पश्चात् कारण ग्रंथोंकी स्वयंही निर्देश करदी जा सकेगी और मूलमें पूर्णाधिकार होजायगा । अब यही निवेदन है कि जो पहली पहल कठिन समझपडें, तो आप इसका पढना छोडें नहीं, वरन् बराबर देखे जाँय । जहां कहीं कठिन ज्ञात हो वहीं पर दो चार बार दृष्टि डालजाओ, अवश्य सरलतापूर्वक जान जाइयेगा । यदि पहले करणग्रन्थ पढलिये जायँ तो सुभीता है ।

गणनाके समयमें साधारणता विकलाके नीचे सूक्ष्माङ्कका प्रयोजन नहीं है. और बहुतसे विषयोंमें तिसको छोडदेनेसे भी कुछ हानि लाभ नहीं ।

गवर्नमेंटके अनुग्रहसे, स्वदेश वासियोंके अनुरागसे, धनी व धर्मात्मा पुरुषोंकी आर्थिक सहायतासे प्रतिवर्ष सहस्रों विद्यार्थी लोग अंकशास्त्रमें प्रवीण होते हैं । आशा की जाती है कि इनमेंसे अनेक विद्यार्थी लोग निजदेशकी अंक विद्या और ज्योतिषविद्यापर ध्यान देंगे इस ग्रन्थमें १४ अध्याय हैं । इनके मध्य–

१ अध्यायमें–ग्रन्थारंभ, कालविभाग, युगमान, दिनसंख्या, अहर्गण, भगणादि ग्रहोंका मध्य, मन्दोच्च और शीघ्र, देशान्तर परमविक्षेपादि हैं ।

२ अध्यायमें–ग्रहगतिका कारण, गतिप्रकार, ज्यानिर्णय, क्रांति और केन्द्रसाधन भुज और कोटीसे परिधि करके फलादि निर्णय, ग्रहस्पष्ट, भुजांतर संस्कार, स्पष्ट गति, स्पष्टविक्षेप, अहोरात्रमान, चर, तिथि, नक्षत्र, योग, कारण हैं।

३ अध्यायमें–पूर्व पश्चिम रेखा निर्णय, अयनांश, विषुवद्भा, लम्बज्या, नत्यानयन, अग्राकोणशंकु, निरक्ष राशिमान, लग्न, दशम हैं।

४ अध्यायमें–स्पष्ट, चंद्र, छाया और सूर्यका मान, ग्रास, स्थित्यर्द्ध, कोटि, वलनांश है।

५ अध्यायमें–चन्द्रलम्बन, अवनति (सूर्यग्रहण) है।

६ अध्यायमें–परिलेखाधिकार है।

७ अध्यायमें–ग्रहयुत्यधिकार, अक्ष–दृक्कर्म अयन–दृक्कर्म, ग्रहबिम्ब। ग्रहदर्शन युद्ध हैं।

८ अध्यायमें–नक्षत्रग्रह युत्यधिकार, नक्षत्रोंके स्थान ह।

९ अध्यायमें–उदयास्ताधिकार, कालनिर्णय, कालांश हैं।

१० अध्यायमें–शृंगोन्नति, चन्द्रोदय।

११ अध्यायमें–पाताधिकार, व्यतिपात, कालनिर्णय, गण्डक, मसन्धिः।

१२ अध्यायमें–अध्यात्मविद्या, कक्षास्थिति, मेरु, भद्राश्व, यमकोटी, लंका, केतुमालध्रुवनक्षत्रकी पृथ्वीसे दूरी है।

१३ अध्यायमें–गोल और यंत्रादि बनाना हैं।

१४ अध्यायमें–कालनिर्णय ह।

त्रिज्या (Radus) धनु (Aae), ज्या (Sine), कोटी (Cosine) कर्ण (Hypotennse) आदि कई एक त्रिकोण मितिके शब्दोंका व्यवहार निरन्तर हुआ है इस कारण इनको पहलेहीसे जान रखना चाहिये। लम्ब विषुवच्छाया आदिअपने २ देशके अक्षांशसे निर्णीत होते हैं। विक्षेप (Latitude) क्रांति (Declination) स्फुट आदिग्रहोंके अवस्थिति करके हैं। मध्य, मन्दोच्च, शीघ्र, परिधि आदि स्पष्टादि लानेके प्रकरण हैं।

राशिचन्द्रका जो विन्दु मध्यरेखाके परे स्थित हो, सो दशम और उदयगत लग्न है, त्रिप्रश्नाध्यायमें किस प्रकारसे दिक् और कालका निर्णय करना चाहिये, और पश्चात् यंत्राध्यायमें यंत्रके बनानेकी रीतिको दिखाय मानमन्दिरके बनानेका उपदेश दिया है। भूमिकाको समाप्त करनेसे पहले सर्वोपमोपमेय, गुणिजनमंडलीमंडन पाखण्डगत खण्डन, श्रीमान् पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र व श्रीमान् श्रीविमलाप्रसाद सिद्धान्तसरस्वतीजीको वारम्वार धन्यवाद दिया जाता है, क्योंकि उपरोक्त महाशयोंके द्वारा इस ग्रन्थके अनुवादमें बडी सहायता मिली है, पाठार्थियोंके लाभार्थ इस पुस्तकमें योग्य व उचित उदाहरण भी दिये हैं। अलमतिविस्तरेण ।

संवत् १९५२ विक्रमी ।
चैत्रकृष्ण २ रविवार.

सुखानंदमिश्रात्मज-
बलदेवप्रसाद मिश्र,
मोहल्ला दीनदारपुरा मुरादाबाद.
पश्चिमोत्तर

॥ श्रीः ॥

अथ सूर्यसिद्धांतस्थविषयानुक्रमणिका ।



इत्यनुक्रमणिका समाप्ता ।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ

श्रीसूर्यसिद्धान्तः ।

गूढार्थप्रकाशटीका–भाषाटीकाभ्यां सहितः ।

प्रथमोऽध्यायः ।

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्द्धनि स्थितम् ॥

यत्स्मृत्याभीष्टकार्यस्य निर्विघ्नां सिद्धिमेष्यति । नरस्तं बुद्धिदं वंदे वक्रतुण्डं शिवोद्भवम् ॥ १ ॥ पितरौ गोजिबल्लालौ जयतोऽम्बाशिवात्मकौ । याभ्यां पञ्च सुता जाता ज्योतिःसंसारहेतवः ॥ २ ॥ सार्वभौमजहांगीरविश्वासास्पदभाषणम् । यस्य तं भ्रातरं कृष्णबुधं वंदे जगद्गुरुम् ॥ ३ ॥ नानाग्रन्थान्समालोच्य सूर्यसिद्धांतटिप्पणम् । करोमि रंगनाथोऽहं तद्गूढार्थप्रकाशकम् ॥ ४ ॥

अथ ग्रहादिचरितजिज्ञासून्मुनींस्तत्प्रश्नकारकान्प्रति स्वविदितं यथार्थतत्त्वं सूर्यांशपुरुषमयासुरसंवादं वक्तुकामः कश्चिदृषिः प्रथममारम्भणीयतत्कथननिर्विघ्नसमाप्त्यर्थं कृत ब्रह्मप्रणाममंगलं शिष्यशिक्षायै निबध्नाति–

अचिन्त्याव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥
समस्तजगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥

ब्रह्मणे बृहत्त्वादपरिच्छिन्नत्वाज्जगद्व्यापकायेश्वराय "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः" इत्यादिश्रुतिप्रतिपाद्यायेत्यर्थः।नमःकायवाक्चेष्टोपलक्षितेन मानसेन्द्रियबुद्धिविशेषेण मत्तस्त्वमुत्कृष्टस्त्वत्तोऽहमपकृष्ट इत्यादिरूपेण नतोऽस्मीत्यर्थः । ननु व्यापकत्वेनाकाशस्यैव सिद्धिरत आह–समस्तजगदाधारमूर्तय इति । समस्तस्य स्थावरजंगमात्मकस्य जगत उत्पत्तिस्थितिविनाशवत आधाराश्रयभूता ब्रह्मविष्णु शिवरूपा मूर्तयः स्वरूपाणि यस्य तस्मै ब्रह्मविष्णु शिवात्मकायेत्यर्थः । आकाशस्य तदात्मकत्वाभावान्न सिद्धिरिति भावः । नन्वेतादृशस्य स्वरूपध्यानं कर्तुं समुचितमित्यत आह । अचिन्त्याव्यक्तरूपायेति । अचिन्त्यश्चासावव्यक्तरूपस्तस्मै । अचिन्त्यो

ध्यानाविषयः । अत्र हेतुरव्यक्तरूपः । न व्यक्तं प्रकटं रूपं स्वरूपं यस्य तथा च स्वरूपध्यानासम्भवान्नमस्कार एव समुचित इति भावः । नन्वव्यक्तरूपः कथमित्यत आह । निर्गुणा इति । निर्गता गुणाः सत्त्वरजस्तमोरूपा यस्मात्तस्मै गुणातीतायेत्यर्थः । तथा च गुणात्मकस्य व्यक्तरूपत्वेनायं तदभावादव्यक्तरूप इति भावः । नन्वेवमस्यारूपित्वमेव फलितं नाव्यक्तरूपित्वमित्यत आह । गुणात्मन इति । गुणा नित्यज्ञानसुखादय आत्मगुणा आत्मस्वरूपं यस्य तस्मै नित्यज्ञानसुखाय । "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इति श्रुतेरित्यर्थः तथाचास्य रूपित्वमसिद्धमिति भावः । साक्षान्निर्गुणाय परम्परया गुणात्मने । कथमन्यथा जगत्कर्तृत्वं सम्भवति । "प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः । भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशः प्रकृतेर्वशात्॥" इति भगवदुक्तेरित्यन्ये ॥ १ ॥

भा० टी०—अचिन्त्य (विचारमें न आनेके योग्य), अव्यक्तरूपी, निर्गुण, गुणात्मा समस्तजगदाधारमूर्ति ब्रह्मको प्रणाम है ॥ १ ॥

अथ स्वोक्तस्य स्वकल्पितत्वशङ्कावारणाय तत्संवादोपक्रमं विवक्षुः प्रथमं मयासुरेण तपस्तप्तमिति श्लोकाभ्यामाह—

अल्पावशिष्टे तु कृते मयनामा महासुरः॥रहस्यं परमं पुण्यं जिज्ञासुर्ज्ञानमुत्तमम् ॥ २॥ वेदाङ्गमग्र्यमखिलं ज्योतिषां गतिकारणम् ॥ आराधयन्विवस्वन्तं तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥ ३ ॥

मयेति नाम यस्यासौ मयाख्यो महादैत्यः कश्चित् । तपोऽभिमतदेवताप्रीतिकरजपहोमध्यानादिना स्वशरीरादिक्लेशनियमरूपं तेपे कृतवान् । दैत्यानां तपश्चरणं पुराणेषु प्रति पदं सुप्रसिद्धम् । ननु तत्र तेषां तपश्चरणस्य देवताविशेषमभिमतमुद्दिश्य प्रसिद्धेरनेनकं देवमुद्दिश्य तपस्तप्तमित्यत आह । आराधयन्निति । विवस्वन्तं सवितृमंडलाधिष्ठातारं नारायणं सेवयन् । ननु दैत्यारिमेनं स्वशत्रुं ज्ञात्वाप्ययं कथं स्वाभिमतसिद्ध्यर्थमारराध । नहि स्वशत्रुतः स्वहितसिद्धिरन्यथा शत्रुत्वव्याघात इत्यतस्तपोविशेषणमाहसुदुश्चरमिति । सुतरां दुःखैरत्यन्तक्लेशैश्चरितुं कर्त्तुं शक्यमित्यर्थः । तथाच भक्त-

१. मयोनाम इति पाठान्तरम् ।

जनैकवत्सलतया तादृशतपश्चरणसुप्रसन्नो दैत्यानामप्यभिमतं पूरयतीति पुराणेषु शतशः प्रसिद्धम् । अतस्तत्प्रतीत्याराधयन्निति भावः । ननु पुराणेषु दैत्यानां तपश्चरणोक्तिप्रसंगे क्वचिदप्यस्यानुक्तेस्तत्तपश्चरणं कथं प्रमाणं ज्ञेयमित्यत आह–अल्पावशिष्ट इति । कृते कृताख्ये युगचरणे तुकारात्सन्ध्यासन्ध्यांशसहित इत्यर्थः । तेन सन्ध्यासंध्यांशसमेतकेवलकृतरूपाभिमतकृतचरणेन ग्रन्थान्तरोक्तकेवलकृत इति पर्यवसन्नम् । अल्पकालेन सन्ध्यांशान्तर्गतेन शेषिते । समाप्त्यासन्नाभिमतकृतयुगे मयासुरेण तपस्तप्त मित्यर्थः । तथाच साम्प्रतमेव मयासुरेण तपस्तप्तमिति सर्वजनावगतप्रत्यक्षप्रमाणसिद्धं नागमांतरप्रमाण्यमपेक्षत इति भावः । ननु मयासुरेण किमर्थं तपस्तप्तं नहि प्रयोजनमनुद्दिश्य मंदोऽपि प्रवर्तत इत्यतो मयासुरविशेषणमाह–जिज्ञासुरिति । ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानं शास्त्रं ज्ञातुमिच्छुः । तथाच शास्त्रज्ञाननिमित्तं तेन तपस्तप्तमिति भावः । किं तच्छास्त्रमित्यतो ज्ञानविशेषणमाह–ज्योतिषामिति । प्रवहवायुस्थानां ग्रहनक्षत्राणां गतिकारणम् । ये गत्यर्थास्ते ज्ञानार्था इति गतेः संस्थानचलनमानादिज्ञानस्य कारणं प्रतिपादकं ज्योतिःशास्त्रं जिज्ञासुरिति फलितम् । ननु ज्योतिःशास्त्रज्ञानार्थमयमायासो न युक्तस्तस्य सर्वविज्ञेयत्वेनादुरूहत्वादित्यत आह–अखिलमिति । समग्रं ज्योतिःशास्त्रमित्यर्थः । तथाचर्षीणां मानुषत्वेनैभ्यो मम ज्ञानमखिलं यथार्थं वा न भविष्यतीति दैत्यबुद्ध्या मत्वा निःशेषज्योतिःशास्त्रस्य दुरूहस्य विदिततत्त्वं भगवंतमवतारकं सर्वज्ञं महागुरुं सेवयामासेति भावः । ननु तस्यासुरस्य ज्योतिःशास्त्रप्रवृत्तिर्न युक्ता फलाभावादित्यत आह–वेदांगमिति । वेदस्यांगम् । तथाचांगिनो यत्फलं तदेवांगस्येति मोक्षरूपफलसद्भावादत्र प्रवृत्तिर्युक्तेति भावः । अतएव पुण्यजनकं पुराणन्यायेत्यादिचतुर्दशविद्यांतर्गतत्वात् । नन्विदं वेदांगं कुत इत्यत आह–परममिति । " कालोऽयं भगवान्विष्णुरनन्तः परमेश्वरः । तद्वेत्ता पूज्यते सम्यक्पूज्यः कोऽन्यस्ततो मतः ॥ " इत्युक्तेः कालप्रतिपादकत्वेनोत्कृष्टमतो वेदांगम् । एतेन पुराणादीनां निरास इति भावः । ननु व्याकरणादीना षण्णां वेदांगत्वादस्मिन्नेव प्रवृत्तिः कथमित्यत आह–अग्र्यमिति । षण्णां वेदाङ्गानां मध्ये श्रेष्ठम् । कुत इत्यत आह–उत्तममिति । मुख्यांगं नेत्र-

-मित्यर्थः । तथाच नेत्ररहितस्याकिञ्चित्करत्वादिदं ज्योतिःशास्त्रं वेदांगेषु श्रेष्ठमिति भावः । ननु तथाप्येतस्य ज्ञानार्थमेतावानायासो न युक्त इत्यत आह । रहस्यमिति । "विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि । असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम्" इति श्रुत्युक्तेर्गोप्यमित्यर्थः । तथाचास्य शास्त्रस्यादेयत्वेन निश्चितत्वादनेन तत्प्राप्त्यर्थमेतावानप्यायासः कृत इति भावः ॥ २ ॥ ३ ॥

भा. टी. सत्ययुग कुछेक (अंश) शेष रहते हुए, मयनामक महाअसुरने परमपुण्यरहस्य वेदांगोंमें श्रेष्ठ समस्त ज्योतिषों (ग्रहनक्षत्रों) की गतिका कारणरूप उत्तम ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये जिज्ञासु हो अतिकठोर तप करके सूर्यकी आराधना कीथी ॥ २ ॥ ३ ॥

ततस्तुष्टोऽर्को मयायेदं दत्तवानित्याह-

तोषितस्तपसा तेन प्रीतस्तस्मै वरार्थिने ॥
ग्रहाणां चरितं प्रादान्मयाय सविता स्वयम् ॥ ४ ॥

स्वयं स्वतःप्रीतःसुखरूपः । यद्वा शोभनोऽयं प्रत्यक्षःप्रीतःसन्तुष्टोऽपि सन् सविता सवितृमण्डलमध्यवर्ती तेन सुदुश्चरेण तपसाराधनेन तोषितः । अत्यन्तं सन्तुष्टः तस्मै असुराय मयनाम्ने वरार्थिने वरं स्वाभिमतं ज्योतिःशास्त्रमर्थयते ज्ञातुमिच्छति तस्मै ज्योतिः शास्त्रजिज्ञासवे ग्रहाणां प्रवहवायुस्थग्रहताराणां चरितं ज्ञानं प्रादात् । प्रकर्षेण साकल्येन यथार्थतत्त्वेनादाद्दत्तवान् ॥ ४ ॥

भा. टी.--उसके तपसे संतुष्ट हुए स्वयं सूर्यभगवान्ने प्रसन्न हो वरके चाहनेवाले मयअसुरको ग्रहोंका चरित्र दिया ॥ ४ ॥

नन्वयं सूर्यः स्वकार्यार्थं शरणागतमपि स्वशत्रुं प्रति कथमिदमुक्तवानित्यतो मयं प्रति साक्षात्सूर्येणोक्तस्य वचनस्यानुवादार्थमुद्यतः प्रथमं तत्संगतिप्रदर्शकमेतदाह-

श्रीसूर्य उवाच ।

विदितस्ते मया भावस्तोषितस्तपसा ह्यहम् ॥
दद्यां कालाश्रयं ज्ञानं ग्रहाणां चरितं महत् ॥ ५ ॥

श्रीसूर्य उवाचेति । तेजःसमूहैर्देदीप्यमानोऽर्को मयासुरं प्रत्यवददित्यर्थः । अन्यथा चतुर्थपञ्चमश्लोकयोः संगत्यनुपपत्तेः । किमुवाचेत्यतस्तद्वचनम्.

नुवदति। हे मयासुर ते तव भावो मनोरथो ज्योतिःशास्त्रजिज्ञासारूपः मया सूर्येण विदितस्त्वदकथितोऽपि स्वतो ज्ञातः । ततः किं न ह्येतावता मम तत्सिद्धिरत आह–अहमिति । ते इत्यस्यावृत्तस्ते तुभ्यं ज्ञानं शास्त्रं कालाश्रयं कालप्रधानम् । ग्रहाणां प्रवहवायुस्थानां महदपरिमेयं चरितं माहात्म्यम् ग्रहस्थितिचलनादिप्रतिपादकज्योतिःशास्त्रमिति फलितार्थः।अहं सूर्यमंडलस्थः दद्यां दास्यामि । ननु मां दैत्यं प्रतीदं वाक्यं प्रतारकं भविष्यतीत्यतः स्वविशेषणमप्रतारणपूर्वकतत्कथनहेतुभूतमाह–तोषित इति । हि यतस्तपसा त्वत्कृताराधनेनात्यन्तसन्तुष्टोऽतो दद्यामित्यर्थः । तथा च त्वत्कर्मवश्येन मया भक्तजनवत्सलतया जातिवैरमुपेक्ष्यानुकम्पितप्रह्लादवत्त्वमप्रतार्योऽनुकम्पित इति भावः ॥ ५ ॥

भा० टी–सूर्यभगवानने कहा,–मैंने तुम्हारे अभिप्रायको जाना, तपसे संतुष्ट भी हुआ हूं, काल (समय) के आश्रित हुए ग्रहोंके चरित्रका ज्ञान तुमको दूंगा ॥५॥

ननु सूर्यस्य सदा जाज्वल्यमानतया तत्सन्निधौ श्रवणकालपर्य्यन्तं मयः स्थातुं कथं शक्तः कथं वानवरतभ्रमस्य तस्य मयसंवादार्थं भ्रमणविच्छेदः सम्भवीत । अतो दानासम्भवात् कथं दद्यामित्युक्तस्तद्वचनान्तरमनुवदति–

न मे तेजः सहः कश्चिदाख्यातुं नास्ति मे क्षणः ॥
मदंशः पुरुषोऽयं ते निःशेषं कथयिष्यति ॥ ६ ॥

हे मय ते तुभ्यमयग्रस्थः पुरुषो निःशेषं सम्पूर्णं ज्योतिःशास्त्रं कथयिष्यति। नन्वयं तथ्यं न वदिष्यतीत्यत आह–मदंश इति । मम सूर्यस्यांशः सम्बन्धी मदुत्पन्न इत्यर्थः । तथा च मदनुकम्पितं त्वां प्रत्ययं तथ्यमेव वदिष्यतीति भावः।एतेनाहं स्वांशद्वारा दास्यामीत्यर्थो दद्यामिति पूर्वपद्योक्तस्य प्रकटीकृतः । ननु त्वयैव वक्तव्यमित्यत आह–नेति । कश्चिदपि जीवो मे सूर्यमण्डलस्थस्य तेजःसहस्तेजोधारको न । तथा च बहुकालं मत्समीपे स्थातुमशक्तस्त्वं कथं मत्तः श्रोष्यसीति भावः । ननु स्वतपःसामर्थ्येनाहं त्वत्समीपे बहुकालं स्थातुं शक्तस्त्वत्तः श्रोष्यामीत्यत आह–आख्यातुमिति । मे सूर्यमण्डलस्थस्य प्रवहवायुनानवरतं भ्रममाणस्य स्वशक्त्या कदाप्यस्थिरस्य कथयितुं क्षणः कालो नास्ति । भ्रमणावसानासम्भवेनैकत्र स्थित्यसंभवात् । तथा च स्थिरस्य

तव बहुकालं मत्संगासम्भवान्मत्तः श्रवणमसम्भावि । नहि त्वमपि मत्स्थानमधिष्ठातुं शक्तो येन मत्तः श्रवणं तव सम्भवति । ईश्वरनियोगाभावादिति भावः ॥ ६ ॥

भा० टी०-मेरे तेजको कोई नहीं सह सकता और हमको समयभी नहीं है ! हमारा अंशरूप यह पुरुष तुमसे विशेषतासहित कहेगा ॥ ६ ॥

अथ सूर्यवचनानुवादमुपसंहरन्सूर्यांशपुरुषमयासुरसंवादोपक्रममाह-

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः समादिश्यांशमात्मनः ॥
स पुमान्मयमाहेदं प्रणतं प्राञ्जलिस्थितम् ॥ ७ ॥

देवः सूर्यमण्डलस्थः इति पूर्वोक्तमुक्त्वा कथयित्वा आत्मनः स्वस्यांशमग्रस्थमंशपुरुषं समादिश्य त्वं मयं प्रति सकलं ग्रहमाहात्म्यं कथयेत्याज्ञाप्य विनाज्ञां स मयं प्रति कथं कथयेत् समुच्चयार्थश्चकारोऽनुसन्धेयः । अन्तर्दधे अन्तर्धानं सूर्यांशपुरुषमयनेत्रागोचरतां प्राप्तवान् । प्रकृतमाहा सइति। सूर्याज्ञप्तः सूर्यांशपुरुषो मयासुरं प्रतीदं वक्ष्यमाणमवदत् । ननु नापृष्टो वदेदित्युक्तेर्मया पृष्टोऽयं कथं मयं प्रत्यवददित्यतो मयविशेषणद्वयमाह-प्रणतं प्राञ्जलिस्थितमिति । प्रकर्षेण भक्तिश्रद्धातिशयेन नतं नम्रं स्वनमस्कारकारकम् । प्रकृष्टो मानसचेष्टाद्योतको योऽञ्जलिः कराग्रयोः सम्पुटीकरणं तत्र चित्तैकाग्र्येणावस्थितम् । एतेनावनतशिरःकरसम्पुटसंयोगः कायिकनमस्कार इति स्पष्टमुक्तम् । तथा च स्वामिन्नहं त्वां नतोऽस्मि मामनुगृहाणेदं कथयेत्युक्तिद्योतकनमस्कारोक्तेर्मयपृष्टोऽयं मयं प्रत्यवददिति भावः ॥ ७ ॥

भा० टी०-सूर्यभगवान् यह कह अपने अंशीयको आज्ञा देकर अन्तर्धान हुए । और प्रणाम करते हाथ जोडकर खडेहुए मयने सूर्यांशपुरुषने कहा ॥ ७ ॥

अथ प्रतिज्ञाततत्संवादानुवादे मयं प्रति ज्ञानं वक्तुकामः सूर्यांशपुरुषः सावधानतया मदुक्तं शृणु त्वमित्याह-

शृणुष्वैकमनाः पूर्वं यदुक्तं ज्ञानमुत्तमम् ॥
युगेयुगे महर्षीणां स्वयमेव विवस्वता ॥ ८ ॥

हे मय एकस्मिन्नेव मनो यस्यासौ । अन्यविषयेभ्यो मनः समाहृत्य मदुक्ते मनो ददानस्त्वं तज्ज्योतिःशास्त्रं शृणुष्व । श्रोत्रद्वारागतमनः संयोगेन

प्रत्यक्षं कुर्वित्यर्थः । ननु त्वं स्वकल्पितं वदिष्यसीत्यतस्तच्छन्दसम्बन्धमाह —पूर्वमित्यादि। यदुत्तमं नेत्ररूपं ज्ञानं शास्त्रं ज्योतिःशास्त्रमित्यर्थः। बहुकालांतरेण पूर्वकाले कदेत्यत आह-युगेयुग इति। प्रतिमहायुगे महामुनीनां तान्प्रतीति तात्पर्यार्थः। सूर्येण स्वयमद्वारकेण साक्षादित्यर्थः । एवकारो यथा त्वां प्रत्यहं द्वारं साक्षात् कथनासंभवात् तथा तान्प्रत्यहमन्यो वा द्वारमित्यस्य वारणार्थः । तेषां स्वतपःसमाजवशीकृतेश्वराणां तत्प्रसादाधिगताप्रतिहतेच्छानां सूर्यमण्डलाधिष्ठानसम्भवात् । उक्तमुपदिष्टम् । तथा च सूर्योक्तं त्वां प्रति कथ्यते न स्वकल्पितमिति भावः ॥ ८ ॥

भा० टी०-युग २ में महर्षियोंसे आपही सूर्यभगवान् जो उत्तम ज्ञान कहा करते हैं, तिसको एकाचित्त होकर श्रवण करो ॥ ८ ॥

ननु प्रतियुगं सूर्योक्तस्यैक्याभावात्त्वया किंयुगीयं शास्त्रमुपदिश्यते । अन्यथैकदोक्त्या युगेयुग इत्यस्यानुपपत्तेरित्यत आह—

शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः ॥
युगानां परिवर्तेन कालभेदोऽत्र केवलम् ॥ ९ ॥

इदं मया तुभ्यं वक्ष्यमाणं ज्योतिःशास्त्रं तत्सूर्योक्तम् । एवकारात्सूर्योक्ताभिन्नत्वेन त्वां प्रत्यनुवादो न कचित्स्वकल्पनान्तरेणेत्यर्थः । आद्यं प्राक्काले सूर्येणोक्तम् । नन्वासन्नयुगीयसूर्योक्तस्यापि पूर्वकालोक्तयाद्यत्वसंभव इत्यतस्तत्पदापेक्षितमाद्यपदविवरणरूपमाह—यदिति । शास्त्रं सूर्यः पूर्वं प्रथमं यस्मात्पूर्वमनुक्तमित्यर्थः । प्राह प्रकर्षेण विस्तरेण मुनीन् प्रत्युक्तवान् । तथाच प्रथमातिरेके कारणाभावात् प्रथमस्य विरतृतत्वाच्चानन्तरोक्तं पूर्वोक्ते गतार्थतया संक्षिप्तमुपेक्ष्य प्रथमयुगीयशास्त्रमुपदिश्यत इति भावः । ननु तर्ह्यनन्तरयुगीयशास्त्राणां सूर्योक्तानां वैयर्थ्यप्रसङ्ग इत्यत आह-युगानामिति । महायुगानां परिवर्तेन पुनःपुनरावृत्त्यात्र सूर्योक्तशास्त्रेषु केवलं स्वाभिन्नाभावस्तन्मात्रमित्यर्थः । कालभेदः कालकृतमन्तरम् । पूर्वशास्त्रकालादनन्तरशास्त्रकालो भिन्न इत्येषु शास्त्रेषु भेदो न शास्त्रोक्तरीतिभेद इत्यर्थः । तथाच कालवशेन ग्रहचारे किञ्चिद्वैलक्षण्यं भवतीति युगान्तरे तत्तदनन्तरं

---

१ केवल इति वा पाठः।

ग्रहचारेषु प्रसाध्य तत्कालस्थितलोकव्यवहारार्थं शास्त्रान्तरमिव कृपालुरुक्तवानिति नानन्तरशास्त्राणां वैयर्थ्यम् । एवञ्च मया वर्त्तमानयुगीयसूर्योक्तशास्त्रसिद्धग्रहचारमंगीकृत्याद्य सूर्योक्तशास्त्रसिद्धं ग्रहचारं च प्रयोजनाभावादुपेक्ष्य तदुक्तमेव त्वां प्रत्युपदिश्यत इति भावः । एवञ्च युगमध्येऽप्यवान्तरकाले ग्रहचारेष्वन्तरदर्शने तत्तत्काले तदनन्तरं प्रसाध्य ग्रंथास्तत्कालवर्तमानाभियुक्ताः कुर्वन्ति । तदिदमन्तरं पूर्वग्रंथे बीजमित्यामनन्ति । पूर्वग्रंथानां लुप्तत्वात्सूर्यर्षिसंवादोऽपीदानीं न दृश्यत इति । तदप्रसिद्धिरागमप्रामाण्याच्च नाशंक्या ॥ ९ ॥

भा० टी०—पहले भास्कर (सूर्य) ने जो कहाथा वही आदि शास्त्र है, केवल युग बदलनेके हेतु करके कालभेद हुआ है, सोही इस समय कहताहूं ॥ ९ ॥

अथ कालभेद इत्यनेनोपस्थितं कालं प्रथमं निरूपयिषुस्तावत्कालं विभजते—

लोकानामंतकृत्कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः ॥
स द्विधा स्थूलसूक्ष्मत्वान्मूर्त्तश्चामूर्त उच्यते ॥ १० ॥

कालो द्विधा तत्रैकः कालोऽखण्डदण्डायमानः शास्त्रान्तरप्रमाणसिद्धः । लोकानां जीवानामुपलक्षणादचेतनानामपि अन्तकृद्विनाशकः । यद्यपि कालस्तेषामुत्पत्तिस्थितिकारकस्तथापि विनाशस्यानन्तत्वात्कालत्वप्रतिपादनाय चान्तकृदित्युक्तम् । अन्तकृदित्यनेनैवोत्पत्तिस्थितिकृदित्युक्तमन्यथा नाशासम्भवात् । अतएव "कालः सृजति भूतानि कालः संहरति प्रजाः" इत्याद्युक्तं ग्रन्थान्तरे । अन्यो द्वितीयः कालः खण्डकालः । कलनात्मको ज्ञानविषयस्वरूपः । ज्ञातुं शक्य इत्यर्थः । स द्वितीयः कलनात्मकः कालोऽपि द्विधा भेदद्वयात्मकः । तदाह—स्थूलसूक्ष्मत्वादिति । महत्त्वाणुत्वाभ्याम् ॥ मूर्त्तः इयत्तावच्छिन्नपरिमाणः । अमूर्त्तस्तद्भिन्नः कालतत्त्वविद्भिः कथ्यते । चकारो हेतुक्रमेण मूर्त्तामूर्त्तक्रमार्थकः । तेन महान्मूर्त्तः कालोऽणुरमूर्त्तः काल इत्यर्थः ॥ १० ॥

भा० टी०-एक काल लोकोंका अन्तकारी अर्थात् अनादि है; दूसरा काल कलनात्मक अर्थात् ज्ञानयोग्य है । खण्डकाल स्थूल व सूक्ष्मके भेदसे मूर्त्त और अमूर्त्त है ॥ १० ॥

अथोक्तभेदद्वयं स्वरूपेण प्रदर्शयन्प्रथमभेदं प्रतिपिपादयिषुस्तदवान्तरभेदेषु भेदद्वयमाह—

प्राणादिः कथितो मूर्त्तस्त्रुट्याद्योऽमूर्तसंज्ञकः ॥
षड्भिः प्राणैर्विनाडी स्यात्तत्षष्ट्या नाडिका स्मृता ॥ ११ ॥

प्राणः स्वस्थसुखासीनस्य श्वासोच्छ्वासान्तर्वर्ती कालो दशगुर्वक्षरोच्चार्यमाण आदिर्यस्यैतादृशः प्राणानन्तर्गतो मूर्त्तः काल उक्तः । त्रुटिराद्या यस्यैतादृशः काल एकप्राणान्तर्गतत्रुटितत्परादिकोऽमूर्तसंज्ञः । अथामूर्त्तस्य मूर्त्तादिभूतस्य व्यवहारायोग्यत्वेन प्रधानतया नन्तरेदिष्टस्य भेदप्रतिपादनमुपेक्ष्य मूर्त्तकालस्य व्यवहारायोग्यत्वेन प्रधानतया प्रथमोदिष्टभेदान्विवक्षुः प्रथमं पलघट्यावाह—षड्भिरिति । षट्प्रमाणैरसुभिः पानीयपलं भवति पलानां षष्ट्या घटिकोक्ता कालतत्त्वज्ञैः ॥ ११ ॥

भा० टी०—प्राणादि मूर्त्तकाल है, त्रुट्यादिकी अमूर्त्त संज्ञा है । ६ प्राणकी एक विनाडी (पल) और ६० पलकी एक नाडी (दण्ड) होती है ॥ ११ ॥

अथ दिनमासावाह—

नाडीषष्ट्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्त्तितम् ॥
तत्त्रिंशता भवेन्मासः सावनोऽर्कोदयैस्तथा ॥ १२ ॥

घटीनां षष्ट्याहोरात्रं नाक्षत्रमुक्तम् । तुकारादहोरात्रस्य नाक्षत्रत्वोक्त्योक्तघट्या अपि नाक्षत्रत्वमुक्तम् । एतत्षष्टिघटीभिर्भचक्रपरिवर्त्तनात् नाक्षत्रदिनानां त्रिंशत्संख्यया मासो नाक्षत्रः । मासानामनेकत्वेन सावनमासस्वरूपमाह—सावन इति । तथा त्रिंशदहोरात्रैः सूर्योदयसम्बंधैस्तदवधिकैः । सूर्योदयादिसूर्योदयान्तकालरूपकाहोरात्रमानमापितैरित्यर्थः । सावनो मासः १२

भा० टी०—६० नाडीकी नाक्षत्रिक अहोरात्र (दिनरात), ३० अहोरात्रका एक मास (महीना) होता है सूर्योदयसे लेकर फिर सूर्यके उदय होनेतक सावनदिन होता है ॥ १२ ॥

अथ चान्द्रसौरमासनिरूपणपूर्वकं वर्षवद्दिव्यं दिनमाह—

ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत्संक्रान्त्या सौर उच्यते ॥
मासैर्द्वादशभिर्वर्षं दिव्यं तदहरुच्यते ॥ १३ ॥

---

१ उच्यते इति पाठान्तरम् ।

तद्वत्रिंशता तिथिभिश्चान्द्रो मासस्तत्र दर्शान्तावधिकः पूर्णिमान्तावधिकश्च शास्त्रे मुख्यतया प्रतिपादितः । अत्र शास्त्रे तु दर्शान्तावधिक एव मुख्यः । इष्टतिथ्यवधिकस्तु मासो गौणः । सङ्क्रान्त्या सङ्क्रान्त्यवधिकेन कालेन सौरो मासो मासज्ञैः कथ्यते । सङ्क्रान्तिस्तु सूर्यमण्डलकेन्द्रस्य राश्यादिप्रदेशसंचरणकालः । द्वादशभिर्मासैर्वर्षम् । यन्मानेन मासास्तन्मानेन वर्षं ज्ञेयम् । तद्वर्षं सौरमासस्यासन्नत्वात्सौरम् । अहः अहोरात्रः । दिव्यं दिविभवम् । सौरवर्षं देवानामहोरात्रमानं मानतत्त्वज्ञैः कथ्यत इत्यर्थः ॥ १३॥

भा० टी०-चान्द्रमास तिथियोंकरके और सौरमास राशिसंक्रमणके द्वारा निश्चित होताहै । १२ मासका एक वर्ष है यही देवताओंका एक दिन है ॥ १३ ॥

ननु देवानां यथाहोरात्रमुक्तं तथा दैत्यानामहोरात्रं कथं नोक्तमित्यतस्तदुत्तरं वदन्देवासुरयोर्वर्षमाह-

सुरासुराणामन्योऽन्यमहोरात्रं विपर्ययात् ॥
तत्षष्टिः षड्गुणा दिव्यं वर्षमासुरमेव च ॥ १४ ॥

देवदैत्यानां बहुत्वाद्बहुवचनम् । अन्योन्यं परस्परम् । विपर्ययात् व्यत्यासात् अहोरात्रम् । अयमर्थः । देवानां यद्दिनं तदसुराणां रात्रिः । देवानां या रात्रिस्तदसुराणां दिनम् । दैत्यानां यद्दिनं तद्देवानां रात्रिः । दैत्यानां या रात्रिस्तद्देवानां दिनमिति । तथाच देवदैत्ययोर्दिनरात्र्योरेव व्यत्यासाद्भेदो न मानेनेति तयोरहोरात्रस्यैक्याद्देवाहोरात्रमानकथनेनैव दैत्याहोरात्रमानमुक्तमिति भावः । युगकथनार्थं दिव्यवर्षं परिभाषया सुगममपि विशेषद्योतनार्थं प्रकारान्तरेणाह-तत्षष्टिरिति । दिव्याहोरात्रषष्टिः । देवर्तुरूपा षड्ऋतुभिः षष्टिर्गुणिता दिव्यमासुरं दैत्यसम्बन्धि । चः समुच्चये । तेन द्वयोरित्यर्थः । वर्षम् । एवकारस्तयोर्दिनरात्र्योर्भेदेन वर्षभेदः स्यादिति मन्दशङ्कानिवारणार्थम् ॥ १४॥

भा० टी०-सुर व असुरोंकी दिन रात्रिका विपर्यय अर्थात् जब एकका दिन होता है तो दूसरेकी रात्रि होतीहै ३६० दिव्य अहोरात्रसे देवासुरका एक वर्ष होताहै ॥१४॥

अथ कल्पमानं विवक्षुः प्रथमं युगमानमन्यदपि श्लोकाभ्यामाह-

तद्द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम् ॥
सूर्याब्दसंख्यया द्वित्रिसागरैरयुताहतैः ॥ १५ ॥

सन्ध्यासन्ध्यांशसहितं विज्ञेयं तच्चतुर्युगम् ॥
कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया ॥ १६ ॥

तेषां दिव्यवर्षाणां द्वादशसहस्राणि चतुर्युगम्। चतुर्णां युगानां कृतत्रेताद्वापरकल्याख्यानां समाहारो योगस्तदात्मकं महायुगमित्यर्थः। एतद्द्योतनार्थं चतुरित्युक्तिरन्यथा युगमित्युक्त्या तद्वैयर्थ्यापत्तेः। मानाभिज्ञैरुक्तम्। अथ सौरमानेन तत्संख्यां विशेषं चाह—सूर्याब्दसंख्ययेति। तद्देवासुरमानेनोक्तं चतुर्युगं द्वादशसहस्रवर्षात्मकं महायुगं सन्ध्यासन्ध्यांशसहितम्। युगचरणस्याद्यन्तयोः क्रमेण प्रत्येकं सन्ध्यासन्ध्यांशाभ्यां युक्तं स देवसन्ध्यासन्ध्यांशावन्तर्गतौ न पृथग्यत्रैतादृशम्। सौरवर्षप्रमाणेन द्वित्रिसागरैः 'अङ्कानां वामतो गतिः' इत्यनेन द्वात्रिंशदधिकैश्चतुःशतमितैः अयुतेन दशसहस्रेण गुणितैः। खचतुष्कद्वात्रिंशच्चतुर्भिः परिमितं ज्ञेयमित्यर्थः। अथ चतुर्युगान्तर्गतयुगांघ्रीणां विशेषतो मानाश्रवणात्समं स्यादश्रुतत्वादितिन्यायेन प्रत्येकं महायुगचतुर्थांशो मानमिति चतुर्युगमित्येन फलितं निषेधति—कृतादीनामिति। कृतत्रेताद्वापरकलियुगानाम्। धर्मपादव्यवस्थया धर्मचरणानां स्थित्या। इयं वक्ष्यमाणा व्यवस्थास्थितिर्ज्ञेया न तु समकालप्रमाणस्थितिः। अयमर्थः। कृतयुगे चतुश्चरणो धर्म इति तस्य मानमधिकम्। ततस्त्रेतायां धर्मस्य त्रिपादवत्त्वात्तदनुरोधेन त्रेतामानं न्यूनम्। एवं द्वापरकल्योर्धर्मस्य क्रमेण द्व्येकचरणवत्त्वात् कृतत्रेतामानाभ्यां क्रमेणोक्तानुरोधान्न्यूनमानम्। नतु समं मानमिति ॥ १५ ॥ १६ ॥

भा०टी०—दिव्य मानके १२००० हजार वर्षका एक चौकडी-युग होता है। सूर्याब्दकी संख्या ४३२०००० वर्ष है ॥ १५ ॥ सन्ध्या और सन्ध्यांशके साथ जो चतुर्युग हैं तिसमें धर्मपादके अनुसार कृतादि युगमानकी व्यवस्थिति है ॥ १६ ॥

अथ सर्वधर्मचरणयोगेन दशमितेन महायुगं भवति तर्हि स्वस्वधर्मचरणैः किमित्यनुपातेन पूर्वोक्तफलितेन कृतादियुगानां मानज्ञानं सविशेषमाह—

युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्व्येकसङ्गुणः ॥
क्रमात्कृतयुगादीनां षष्ठांशः सन्ध्ययोः स्वकः ॥ १७ ॥

प्रागुक्तदिव्यवर्षद्वादशसहस्रमितस्य युगस्य दशमो भागो दशांश इत्यर्थः।

चतुर्द्धा क्रमेण चतुस्त्रिद्व्येकैर्गुणितः। गुणक्रमात्कृतयुगादीनां कृतत्रेताद्वापरकलियुगानां मानं स्यादिति शेषः। ननु मनुग्रन्थे कृतादिमानं दिव्यवर्षप्रमाणेन ४००० । ३००० । २०००।१००० अत्र तु तन्मानं तद्वर्षप्रमाणेन ४८०० । ३६०० । २४०० । १२०० । इति विरोध इत्यत आह । षष्ठ इति । स्वकः स्वसम्बन्धी षष्ठो विभागः सन्ध्ययोराद्यन्तसन्ध्ययोरैक्य काल इति शेषः । तथा च मदुक्तमानानि ४८०० । ३६०० । २४०० । १२०० । एषां षडंशाः ८०० । ६०० । ४०० । २०० । एते स्वस्वयुगानामाद्यन्तयोः संध्ययोर्योगा इत्येषामर्धं सन्धिकालः । प्रत्येकमाद्यन्तयोः संन्धिकालः ४०० । ३०० । २०० । १०० । अनेन प्रत्येकं मदुक्तमानं न्यूनीकृतं ग्रन्थान्तरोक्तं केवल मानं भवति न स्वसन्धिभ्यां सहितम् । यथा कृतादिसन्धिः ४०० कृतमानं ४००० कृतान्तसन्धिः ४०० त्रेतादिसन्धि ३०० । त्रेतामानम् ३००० त्रेतान्तसन्धिः ३०० द्वापरादिसन्धिः २०० द्वापरमानं २००० द्वापरान्तसन्धिः २०० कल्यादिसन्धिः १०० कलिमानम् १००० कल्यन्तसन्धिः १०० । एवं च स्वसन्धिभ्यां सहितं मयोक्तं स्वसम्बन्धात्सन्ध्ययोस्तदन्तर्गतत्वाच्चेति न विरोध इति भावः ॥ १७॥

भा० टी०—चतुयुर्गके दशम भागको ४, ३, २ और एकसे गुणा करके कृतादिका युगमान होता है । स्वीय षष्ठांश भागही संध्या है ॥ १७ ॥

अथ कल्पमानार्थं मनुमानं तत्सन्धिमानं चाह—

युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते ॥
कृताब्दसंख्या तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः ॥ १८ ॥

युगानां सैकासप्ततिरेकसप्ततिर्महायुगमित्यर्थः । इह मूर्त्तकाले मन्वन्तरं मन्वारम्भतत्समाप्तिकालयोरन्तरकालमानमित्यर्थः । मूर्त्तकालमानभेदाभिज्ञैः कथ्यते । तस्य मनोरन्ते विरामे जाते सति कृताब्दसङ्ख्या मदुक्तकृतयुगवर्षमिति सन्धिः कालविद्भिः प्रकर्षेण द्वितीयमन्वारम्भपर्यंतं भूतभाविमन्वोरन्तिमादिसन्धिरूपैककालेन कथितः । तत्स्वरूपमाह—जलप्लव इति । जलपूर्णा सकला पृथ्वी तस्मिँल्लोकसंहारकाले भवति ॥ १८ ॥

भा० टी०—एकहत्तर युगका एक मन्वन्तर होता है, तिसके अन्तमें कृतयुगमान संख्यक सन्धिमान है । उसी समय जलप्लव (बाढ) होता है ॥ १८ ॥

अथ कल्पप्रमाणं सावशेषमाह--

संसन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश ॥
कृतप्रमाणः कल्पादौ सन्धिः पञ्चदशः स्मृतः ॥ १९ ॥

ते एकसप्ततियुगरूपा मनवः स्वायंभुवाद्याः ससन्धयः स्वस्वसन्धिसहिताश्चतुर्दशसंख्याकाः कल्पकाले ज्ञातव्याः । स्वसन्धियुक्तचतुर्दशमनुभिः कल्पः स्यादित्यर्थः । ननु ग्रन्थान्तरे कल्पमानं युगसहस्रं त्वया तु युगमानमेकसप्ततिगुणं मनुमानम् ३०६७२०००० कृताब्द १७२८००० युक्तससन्धिमनुमानम् ३०८४४८००० । इदं चतुर्दशगुणं कल्पप्रमाणं कृतोनं युगसहस्रमित्यतआह—कृतप्रमाण इति । कल्पादौ प्रथममन्वारम्भे कृतयुगवर्षमितो मनोश्चतुर्दशत्वेऽप्याद्यः पञ्चदशकः सन्धिः कालज्ञैरुक्तः । तथाच कृतवर्षानन्तरं प्रथममन्वारम्भ इति तद्वर्षयोजनेनाविरोध इति भावः ॥ १९॥

भा० टी०—कल्पमें सन्धिके साथ १४ मनु होते हैं । कल्पकी आदिमें कृतयुगप्रमाणकी एक सन्धि अर्थात् कल्पमें १४ मनु और पंद्रह संन्धियां होती हैं ॥१९॥

अथ ब्रह्मणो दिनरात्र्योः प्रमाणमाह—

इत्थं युगसहस्रेण भूतसंहारकारकः ॥
कल्पो ब्राह्ममहः प्रोक्तं शर्वरी तस्य तावती ॥ २० ॥

इत्थं पूर्वोक्तप्रकारसिद्धेन युगसहस्रेण भूतसंहारकारको ब्राह्मलयात्मकः कल्पकालो ब्राह्मं ब्रह्मणः सम्बन्ध्यहो दिनं कालज्ञैरुक्तम् । तस्य ब्रह्मणस्तावती दिनपरिमिता शर्वरी रात्रिःकल्पद्वयं तदहोरात्रमिति फलितार्थः॥ २०॥

भा० टी०-इस प्रकारसे सहस्र युगका भूतसंहारकारी कल्प होता है, यही ब्रह्माका एक दिन और ऐसेही उसकी रात्रि है ॥ २० ॥

अथ ब्रह्मण आयुःप्रमाणमतीतवयःप्रमाणं चाह—

परमायुः शतं तस्य तयाहोरात्रसंख्यया ॥
आयुषोऽर्द्धमितं तस्य शेषकल्पोऽयमादिमः ॥ २१ ॥

परमपरं शृणु पूर्वोक्तं त्वया श्रुतमपरं च वक्ष्यमाणं शृणु त्वम् । यद्वा परमेति दैत्यवरार्थकं सम्बोधनम् । त्वं तस्य ब्रह्मणस्तथा पूर्वोक्तयाहोरात्रमित्याकल्पद्वयरूपया शतं शतवर्षपरिमितमायुःशरीरधारणकालं जानीहि । एतदुक्तं

भवति। अहोरात्रमानात्पूर्वपरिभाषया मासमानं तस्मात्पूर्वोक्तपरिभाषया मासमानं तस्मात्पूर्वोक्तपरिभाषया ब्रह्मणो वर्षमानमेतच्छतसङ्ख्यया ब्रह्मायुरिति। ननु यथाश्रुतार्थेन कल्पशतद्वयमायुः कीयादीनामपि दिनसङ्ख्ययायुषोऽनुक्तेः सुतरां ब्रह्मणः शतदिनात्मकायुषोऽसम्भवात् । " निजेनैव तु मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम् " इति विष्णुपुराणोक्तेश्च । एतेन परमायुरिति निरस्तम्। ब्रह्मणोऽनियतायुर्दायासम्भवात् । तस्य ब्रह्मण आयुः शतवर्षरूप मस्यार्द्धं पञ्चाशद्वर्षपरिमितमितं गतम् । अयं वर्त्तमान आदिमः प्रथमः शेषकल्पः शेषायुर्दायस्य ब्रह्मदिवस उत्तरार्द्धस्य प्रथमदिवसो वर्त्तमान इति फलितार्थः ॥ २१ ॥

भा० टी०-ब्राह्म अहोरात्रकी संख्यासे ब्रह्माकी परमायु शत वर्ष है । गतकल्पमें तिनकी आधी आयु बीतगई । यह कल्प द्वितीयार्द्धका पहला दिन है ॥ २१ ॥

अथ वर्त्तमानेऽस्मिन्दिवसेऽप्येतद्गतमित्याह-

कल्पादस्माच्च मनवः षड्व्यतीताः ससन्धयः ॥
वैवस्वतस्य च मनोर्युगानां त्रिघनो गतः ॥ २२ ॥

अस्माद्वर्त्तमानात्कल्पाद्ब्रह्मदिवसात् षट्संख्याका मनव एकसप्ततियुगरूपाः ससन्धयः सप्तभिः संधिभिः कृतयुगप्रमाणैः सहिता व्यतीता गताः । चकार आयुषोऽर्धमितमिति प्रागुक्तेन समुच्चयार्थकः । वर्त्तमानस्य सप्तमस्य मनोर्वैवस्वताख्यस्य युगानां त्रिघनस्त्रयाणां घनः स्थानत्रयस्थिततुल्यानां घातः सप्तविंशतिसङ्ख्यात्मको गतः । सप्तविंशति युगानि गतानीत्यर्थः । चः समुच्चये ॥ २२ ॥

भा० टी०-कल्पके आदिसे लेकर वैवस्वत मनुके पहले सन्धि ६ मनु बीते हैं । और इस वैवस्वत मनुकेभी २७ युग बीतचुके हैं ॥ २२ ॥

अथ वर्त्तमानयुगस्यापि गतमेतदिति वदन्नमितकालेऽयतो वर्षगणः-कार्य इत्याह-

अष्टाविंशाद्युगादस्माद्यातमेतत्कृतं युगम् ॥
अतः कालं प्रसंख्याय संख्यामेकत्र पिण्डयेत् ॥ २३ ॥

अष्टाविंशतितमाद्वर्त्तमानान्महायुगादेतदल्पकालेन पूर्वकाले माम्प्रतं स्थितं

कृतं युगं गतम् । अतः कृतयुगान्तानन्तरमभिमतकाले कालं वर्षात्मकं प्रसंख्याय गणयित्वा संख्यां पञ्चस्थानस्थितां भिन्नामेकत्रैकस्थाने पिण्डयेत्सङ्कलनविषयां कुर्यात् । सर्वेषां गतानां योगं कुर्यादित्यर्थः ॥ २३ ॥

भा० टी०—यह अठाईसवें युगका कृतयुग बीता है । इस कारण कालकी संख्या करके एक स्थानमें गतवर्ष स्थिर करो ॥ २३ ॥

अथ कल्पादितो ग्रहादिभचक्रनियोजनकालं ग्रहगतिप्रारम्भरूपमाह–

ग्रहर्क्षदेवदैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम् ॥
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शतघ्ना वेधसो गताः ॥ २४ ॥

अस्य वर्त्तमानस्य ब्रह्मणो ग्रहनक्षत्रदेवदैत्यमानवराक्षसभूपर्वतवृक्षादिकचराचरं जंगमस्थावरात्मकं जगत्सृजतः सृजतीति सृजन् तस्य जगन्निर्मायकस्य शतसङ्ख्यागुणिताश्चतुःसप्तत्यधिकचतुःशतसङ्ख्या दिव्याब्दा गताः एभिर्दिव्यवर्षैर्ग्रहसृष्ट्यादिप्रवहवायुनियोजनान्तं कर्म ब्रह्मणा कृतमिति फलितार्थः ॥ २४ ॥

भा० टी०—कल्पके आरम्भसे दिव्यमानके ४७४०० वर्ष बीतने पर ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्यादि चराचरकी सृष्टि हुई है ॥ २४ ॥

अथ ग्रहपूर्वगत्युत्पत्तौ कारणमाह–

पश्चाद्व्रजन्तोऽतिजवान्नक्षत्रैः सततं ग्रहाः ॥
जीयमानास्तु लम्बन्ते तुल्यमेव स्वमार्गगाः ॥ २५ ॥

पश्चादनन्तरं पुनरावृत्त्या पश्चात् पश्चिमदिगभिमुखं नक्षत्रैस्तारकादिभिः सह ग्रहाः सूर्यादयोऽतिजवात् प्रवहवायुसत्वरगतिवशात्सततं निरन्तरं व्रजन्तो गच्छन्तः स्वमार्गगाः स्वकक्षावृत्तस्था जीयमाना नक्षत्रैः पराजिता नक्षत्राणामग्रे गमनात् । अतएव लज्जयेव गुरुभूता इति तात्पर्यार्थः । तुल्यं समम् । एवकारादधिकन्यूनव्यवच्छेदः । लम्बन्ते स्वस्थानात्पूर्वस्मिँल्लम्बायमाना भवन्ति । यथा लज्जितः पश्चाद्भवति नाग्रे । तुकारादधोऽधःकक्षाक्रमानुरोधेन शन्यादिग्रहाणां चन्द्रान्तानां गुरुतापचयः शनिरतिगुरुभूतस्तस्मात् किंचिन्न्यूनो गुरुस्तस्मादपि भौम इत्यादि यथोत्तरम् । यस्य कक्षा महती तस्य गुरुत्वाधिक्यं यस्य लघ्वी तस्य तदनुरोधेन गुरुताल्पत्वमिति ।

एतदुक्तं भवति । ब्रह्मणा प्रवहवायौ नक्षत्राधिष्ठितो मूर्त्तो गोलः स्थापितस्तदन्तर्गताः स्वस्वाकाशगोल स्थाः शन्यादयो नक्षत्राधिष्ठितमूर्त्तगोलस्थक्रान्तिवृत्तस्थरेवतीयोगतारासन्नरूपमेषादिप्रदेशसमसूत्रस्थाः स्थापिताः। क्रान्तिवृत्तं तु मेषतुलस्थाने विषुवद्वृत्तलग्नसम्पातात् त्रिभान्तरितक्रान्तिवृत्तप्रदेशौ स्वासन्नविषुवद्वृत्तप्रदेशाभ्यां चतुर्विंशत्यंशान्तरेण दक्षिणोत्तरौ मकरकर्कादिरूपौ तदेव द्वादशराश्यात्मकं वृत्तं ग्रहचारभूतम् । विषुवद्वृत्तं तु ध्रुवमध्यस्थं निरक्षदेशोपरिगम् । तत्र प्रवहवायुना स्वाघातेन मूर्तो नक्षत्रगोलो नाक्षत्रषष्टिघटीभिः परिवर्तते । तदन्तर्गतवायुभिस्तदाघातेन वा ग्रहा भ्रमन्त्यपि नक्षत्रगोलस्थितक्रान्तिवृत्तीयमेषादिप्रदेशेन समं न गच्छन्ति वायूनां स्वल्पत्वात्तदाघातस्याप्यल्पत्वाद्बिम्बानां गुरुत्वाच्च । अतस्तत्स्थानाद्ग्रहाणां लम्बनं दृश्यते । अत एव नक्षत्रोदयकाले तेषां द्वितीयदिने नोदयः किन्तु ग्रहो लम्बितप्रदेशेन वायुना तदनन्तरमूर्ध्वमागच्छतीत्यनन्तरमुदयः । लम्बनं तु शन्यादीनां कक्षानुरोधेन गुरुत्वाद्वायूनां तद्घातानां वा कक्षानुरोधेन बह्वल्पत्वात्तु यद्यपि वायोर्ध्रुवानुरोधेन सत्त्वानग्रहावलम्बनं विषुवद्वृत्ते भवितुमुचितं न क्रान्तिवृत्ते । तथाच वक्ष्यमाणक्रान्त्यनुपपत्तिः क्रान्तिवृत्तस्थद्वादशराशिभोगेन वक्ष्यमाणानां भगणानामनुपपत्तिश्च । तथापि वायुनावलम्बितो ग्रहो विषुवन्मार्गगोऽपि तद्विषुवप्रदेशासन्नक्रान्तिवृत्तप्रदेशेन ग्रहाकाशगोलएव स्वसमसूत्रेणाकृष्यत इति नानुपपत्तिः अत एव स्वमार्गगा इति क्रान्तिवृत्तानुसृतस्वाकाशगोलस्थकक्षा मार्गगता इत्यर्थकमुक्तमिति संक्षेपः ॥ २५ ॥

भा० टी०-सदा अतिशीघ्र चलनेवाले नक्षत्रसे, पीछे चलते हुए ग्रह पराजित होकर अपने नाडीमें तुल्यभावसे विलम्ब करते हैं ॥ २५ ॥

अथात एव ग्रहाणां लोके प्राग्गतित्वं सिद्धमित्यतआह—

प्राग्गतित्वमतस्तेषां भगणैः प्रत्यहं गतिः ॥
परिणाहवशाद्भिन्ना तद्वशाद्भानि भुञ्जते ॥ २६ ॥

अतोऽवलम्बनादेव तेषां ग्रहाणां प्राग्गतित्वं प्राच्यां दिशि गतिर्येषां ते प्राग्गतयस्तद्भावः प्राग्गतित्वं सिद्धम् । लम्बनस्वरूपेव ग्रहाणां पूर्वगतिरल्प-

न्नालोकैः कारणानभिज्ञैः प्रत्यक्षावगततया तच्छक्तिजनिता कल्पितेत्यर्थः । सा कियतीत्यत आह—भगणैरिति । वक्ष्यमाणभगणैः प्रत्यहं प्रतिदिनं गतिः प्राग्गमनरूपा भगणानां गत्युत्पन्नत्वाद्भगणसम्बन्धिवक्ष्यमाणदिनैः सूर्य्यसाव-नैर्ग्रहभगणा लभ्यन्ते तदैकेन दिनेन केत्यनुपाताज्ज्ञेया । ननु ग्रहभगणानां तुल्यत्वाभावात्प्रतिदिनं ग्रहगतिर्भिन्नाति पूर्वलंबनरूपा ग्रहगतिरयुक्तोक्ता ग्रह-लम्बनस्याभिन्नत्वादित्यत आह—परिणाहवशादिति । परिणाहः कक्षापरिधि-स्तद्वशात्तदनुरोधादियं ग्रहगतिर्भिन्ना तुल्या । अयमभिप्रायः । ग्रहाणां लम्बनं तुल्यप्रदेशे न परन्तु स्वस्वकक्षायां तत्प्रदेशे तुल्ये या कलास्ता गति-कलास्तास्तु महति कक्षावृत्तेऽल्पा लघुकक्षावृत्ते बह्व्यः । सर्वकक्षापरिधीनां चक्रकलाङ्कितत्वात् । भगणास्तु गतिवशादेव यस्यकक्षावृत्तं महत्तस्याल्पायस्य च लघुकक्षावृत्तं तस्य बहवस्तदुत्पन्ना गतिरपि तथेति विरोधः । नन्वेकरू-पंगतिं विहाय भिन्नरूपा गतिः कथमङ्गीकृतेत्यत आह—तद्वशादिति । भिन्न-गतिवशाद्भानिराशीन्नक्षत्राणि भुञ्जते ग्रहा भुजन्तीत्यर्थः। तथाच ग्रहराश्या-दिभोगज्ञानार्थमियमेव गतिरुपयुक्ता नैकरूपेति भावः ॥ २६ ॥

भा० टी०—भिन्न कक्षासे उत्पन्न हुए भगणके हेतु प्रतिदिनकी गतिमें पृथक्ता होती है, तिसी कारनसे राशिभोग कालादिकी विभिन्नता होती है ॥ २६ ॥

अथ भभोगे विशेषं वदन्वक्ष्यमाणभगणस्वरूपमाह—

शीघ्रगस्तान्यथाल्पेन कालेन महताल्पगः ॥
तेषां तु परिवर्त्तेन पौष्णान्ते भगणः स्मृतः ॥ २७ ॥

अथशब्द पूर्वोक्तेर्विशेषसूचकः । शीघ्रगतिग्रहस्तानि भान्यल्पेन कालेन न भुनक्त्यल्पगतिर्ग्रहो बहुकालेन भुनक्ति तुल्यराश्यादिभोगो मन्दशीघ्रग-तिग्रहयोस्तुल्यकालेन न भवतीति विशेपार्थः । तेषां राशीनां परिवर्तेन भ्रमणेन । तुकाराद्ग्रहादिगतिभोगजनितेन भगणः प्राज्ञैरुक्तः । क्रांतिवृत्ते द्वादशराशीनां सत्त्वात्तद्भोगेन चक्रभोसमाप्तेर्यत्स्थानमारभ्य चलितो ग्रहः पुनस्तत्स्थानमायाति स चक्रभोगः । परिवर्त्तसंज्ञोऽपि द्वादशराशिभोगाद्भगण इत्यर्थः । ननु क्रांतिवृत्ते सर्वप्रदेशेभ्यः परिवर्त्तसम्भवादत्र कः परिवर्त्तादिभूतः प्रदेश इत्यतआह—पौष्णान्त इति । सृष्ट्यादौ ब्रह्मणा क्रान्तिवृत्ते रेवतीयो-गतारासन्नप्रदेशे सर्वग्रहाणां निवेशितत्वात्तदवधितो ग्रहचलनाच्च । पौष्णस्य

रेवतीयोगताराया अन्ते निकटे प्रदेशे तथाच रेवतीयोगतारासन्नाग्रिमस्थानमेवाद्यन्तावधिभूतमिति भावः ॥ २७ ॥

भा० टी०-शीघ्र चलनेवाले ग्रह थोडे समयमें, और थोडे चलनेवाले अधिक समयमें गमन करते हैं। रेवतीके अंतमें फिर लौट आनेसे भगण होता है ॥ २७ ॥

ननु परिवर्त्तस्य भगणसंज्ञात्वयुक्ता त्र्यादिराशीनामपि भगणत्वादित्यतः परिभाषाकथनच्छलेन भगणस्वरूपमाह–

विकलानां कलाषष्ट्या तत्षष्ट्या भाग उच्यते ॥
तत्त्रिंशता भवेद्राशिर्भगणो द्वादशैव ते ॥ २८ ॥

यथा मूर्तकाले प्राणकाल आदिभूतस्तथा क्षेत्रपरिभाषायां विकलाः सूक्ष्मादिभूतास्तासां षष्ट्यैका कला कलानां षष्ट्या भोगोंऽशः क्षेत्रपरिभाषाभिज्ञैः कथ्यते भागत्रिंशता राशिः स्यात्। ते राशयः सकला द्वादश। एवकारस्त्रिचतुरादीनां निरासार्थः। तथा च साकल्ये गणपदप्रयोगाद्भगणस्य भोगेऽपि भगणव्यवहाराच्च पूर्वोक्तं युक्तमिति भावः ॥ २८ ॥

भा० टी०–६० विकलाकी एक कला, और ६० कलाका एक भाग होता है। ३० भाग (अंश) की एक राशि और १२ राशिका एक भगण होता है २८॥

अथ भगणान्विवक्षुः प्रथमं सूर्यबुधशुक्राणां भौमगुरुशनिशीघ्रोच्चानां च भगणानाह–

युगे सूर्यज्ञशुक्राणां खचतुष्करदार्णवाः ॥
कुजार्किगुरुशीघ्राणां भगणाः पूर्वयायिनाम् ॥ २९ ॥

महायुगे सूर्यबुधशुक्राणां खानां चतुष्कमेकस्थानादिसहस्रस्थानान्तचतुः स्थानस्थितानि शून्यानि ततोऽयुतादिप्रयुतस्थानपर्यन्तं दंतसमुद्रास्तथा च युगसौरवर्षाणि खाभ्रखाभ्राद्रिरामवेदमितानि भगणा द्वादशराशिभोगात्मकपरिवर्त्तानां संख्या भवंतीति शेषः। भौमशनिबृहस्पतीनां यानि शीघ्राणि शीघ्रोच्चानि तेषामेतन्मिता भगणाः। चकारः समुच्चयार्थकोऽनुसन्धेयः। अत्र कक्षाक्रमेण चारक्रमेण वा गुरोः खलमध्यगता भवतीति न तथोद्देशः। स्वतंत्रस्य नियोगानर्हत्वाद्वा। नन्वाकाश एषां बिम्बाभावादवलम्बनाभावेन गत्यभावात् कथं भगणा उक्ता इत्यत आह–पूर्वयायिनामिति। पूर्वगामिनाम्। तथा च तेषामदृश्यरूपाणां पूर्वगतिसद्भावाद्भगणोक्तौ न

क्षतिः । एषां स्वरूपादिनिर्णयस्तु स्पष्टाधिकारे प्रतिपादयिष्यते ॥ २९ ॥

भा० टी०-युगमें सूर्य बुध व शुक्रके मध्य और मङ्गल, शनि व बृहस्पतिके मध्य शीघ्र पूर्व को चलनेवाले भगण ४३२०००० हैं ॥ २९ ॥

अथ चन्द्रभौमयोर्भगणानाह-

इन्दो रसाग्नित्रित्रीषु सप्तभूधरमार्गणाः ॥
दस्रत्र्यष्टरसाङ्काक्षिलोचनानि कुजस्य तु ॥ ३० ॥

पूर्वश्लोकोक्तभगणा इत्यत्राग्रिमश्लोकेष्वप्यन्वेति । भूधराः सप्त न तु पर्वतस्य धराभिधानत्वादेकसप्ततिः । मार्गणाः शरास्तथा च चन्द्रस्य भगणाः षडग्निदेवपञ्चसप्तसप्तपञ्च मिताः । भौमस्य तुकारादाकाशस्थबिम्बात्मकस्येति पुनरुक्तिभ्रमवारणार्थं दन्ताष्टपंडकाकृतिमिताः ॥ ३० ॥

भा० टी० -चन्द्रमाके ५७७५३३३६;मंगलके २२९६८३२ भगण हैं ॥ ३० ॥

अथ बुधशीघ्रोच्चगुर्वोर्भगणानाह-

बुधशीघ्रस्य शून्यर्तुखाद्रित्र्यङ्कनगेन्दवः ॥
बृहस्पतेः खदास्रक्षिवेदषड्वह्नयस्तथा ॥ ३१ ॥

बुधशीघ्रोच्चस्यादृश्यरूपस्य पूर्वगतेर्भगणाः षष्टिसप्ततित्र्यंकात्यष्टिमिताः । हस्पतेस्तथा बिम्बात्मकस्येति पुनरुक्तिभ्रमवारणाय नखद्विवेदषड्रामभिताः ॥ ३१ ॥

भा० टी०-बुधशीघ्रके १७९३७०६०; बृहस्पतिके ३६४२२० भगण हैं ॥३१॥

अथ शुक्रशीघ्रोच्चशन्योर्भगणानाह-

सितशीघ्रस्य षट्सप्तत्रियमाश्विखभूधराः ॥
शनेर्भुजङ्गषट्पञ्चरसवेदनिशाकराः ॥ ३२ ॥

शुक्रशीघ्रोच्चस्यादृश्यरूपस्य पूर्वगतेर्भगणाः षट्सप्तत्रिद्विद्विखसप्तमिताः । एतेन भूधरा इत्यस्यैकसप्ततिरेकादशवार्थो निरस्तः । शनेर्बिम्बात्मकस्याष्टषट्पञ्चरसेन्द्रमिताः ॥ ३२ ॥

भा० टी०-शुक्र शीघ्रके ७०२२३७६; शनिके १४६५६८ भगण हैं ॥ ३२ ॥

अथ चन्द्रस्योच्चपातयोर्भगणानाह-

चन्द्रोच्चस्याग्निशून्याश्विवसुसर्पार्णवा युगे ॥
वामं पातस्य वस्वग्नियमाश्विशिखिदस्रकाः ॥ ३३ ॥

चन्द्रमन्दोच्चस्य पूर्वगतेरदृश्यरूपस्य भगणा महायुगे रामनखाष्टाष्टवेदमिताः। पातस्य चन्द्रशब्दस्य संनिहितत्वाच्चन्द्रपातस्यादृश्यरूपस्य वामं पश्चिमगत्या भोगात्मकपरिवर्त्तरूपभगणा महायुगे अष्टरामाकृतिरामद्विमिताः । अत्र युग ग्रहणं वक्ष्यमाणग्रहोच्चपातभगणसम्बन्धिकल्पकालवारणार्थम् । ग्रहोच्चपात भगणास्तु युगेयुगे नोत्पन्ना इत्यस्मिन्युगसम्बन्धिप्रसंगेनोक्ताः । मन्दोच्चपात स्वरूपादिनिर्णयस्तु स्पष्टाधिकारे व्यक्तो भविष्यति ॥ ३३ ॥

भा०टी०–चंद्रोच्चके ४८८२०३, चंद्रपातके बाईं ओर २३२२३८भगण हैं ॥३३॥

अथ युगे नाक्षत्रदिवसांस्तत्स्वरूपावगमाय ग्रहसावनदिनस्वरूपं स्वसंख्या ज्ञानहेतुकं चाह–

भानामष्टाक्षिवस्वद्रित्रिद्विद्व्यष्टशरेन्दवः ॥
भोदया भगणैः स्वैः स्वैरूनाः स्वस्वोदया युगे ॥ ३४ ॥

भानां नक्षत्राणां स्वतो गत्यभावेऽपि प्रवहवायुना परिभ्रमणात्तत्संख्या तुल्या भगणाः स्वदिनतुल्याः । अतएवात्र वाममिति पूर्वोक्तस्य युक्तो न्वयः । अष्टद्व्यष्टनगाग्निजातिगजदिनमिताः । ननु ग्रहाणामपि प्रवहवायु परिभ्रमणेनोदयसद्भावात्तेषां दिवसाः कथं ज्ञेया इत्यत आह–भोदया इति उदयो यस्मिन्नहनि स्वाद्यन्तावधि रूप इति व्युत्पत्त्योदयशब्देन दिनम् तथा च भोदया नाक्षत्रदिवसा एत उक्ताः स्वैः स्वैः स्वकीयैः स्वकीयैर्भगणै प्रागुक्तैर्वर्जिताः सन्तः स्वस्वोदया निजनिजसावनदिवसा युगेभवन्ति । इत्येनेनाभीष्टकाले नाक्षत्रदिवसा ग्रहगतभोगादिना भगणादिनोना ग्रहसावन दिवसा अभीष्टा भवन्ति। परंतु राशीन्पञ्चगुणितानंशादिकं दशगुणितं कल घट्यादिस्थाने हीनं कार्यमन्यथा विजातीयत्वादन्तरानुपपत्तेरिति सूचित अत्रोपपत्तिः । यदि ग्रहाणां प्राग्गमनावलम्बनं न स्यात्तर्हि ग्रहोदयनक्षत्रो योरकैहेतुत्वान्नाक्षत्रसावनदिवसयोरभेदः स्यात् । अतो ग्रहाणां नाक्षत्रदिवसेभ्यः सावनदिवसानामन्तरितत्वादवलम्बनजभगणान्तरेण नाक्षत्रदिवसेभ्यो ग्रहसावनदिवसा न्यूना भवन्ति। प्रवहेण भगणतुल्या ग्रहतुल्यानामकरणादित्युपपन्नम् । भोदया इत्यादि । अनेनैव भगणमान योगो नाक्षत्रदिवसा इत्यप्यर्थसिद्धम् ॥ ३४ ॥

भा० टी०-नक्षत्रोंके १५८२२३७८२८ भगण हैं नक्षत्रोंके भगणमेंसे ग्रहोंके भगण घटानेपर युगमें अपने २ उदयकी संख्या निकल आवेगी ॥ ३४ ॥

अथ वक्ष्यमाणचान्द्रदिवसाधिमासयोः संख्याज्ञानहेतुकं स्वरूपमाह-

भवन्ति शशिनो मासाः सूर्येन्दुभगणांतरम् ॥
रविमासोनितास्ते तु शेषाः स्युरधिमासकाः ॥ ३५ ॥

सूर्यचन्द्रभगणयोरन्तरं चन्द्रस्य मासा भवन्ति ते चान्द्रमासा रविमासोनिताः अत्र प्रथमं तुकारान्वयाद्द्वादशगुणितरविभगणरूपवक्ष्यमाणार्कमासैरूनिताः सन्तः शेषा अवशिष्टा ये चान्द्रमासास्तेऽधिमासा एव भवन्तिनान्ये। अनेन चान्द्रत्वमधिमासानां स्पष्टीकृतम्। अत्रोपपत्तिः। त्रिंशत्तिथ्यात्मकस्य रवीन्दुयुतिकालरूपदर्शान्तावधेश्चान्द्रमासस्य द्वादशराशिमितेन सूर्येन्द्वन्तरेणैव सिद्धिः। कथमन्यथा दर्शान्ते जातस्य मन्दशीघ्रयोः सूर्येन्द्वोर्योगस्य पुनर्दर्शान्ते संभवः। द्वादशराश्यन्तरं त्वेकं भगणान्तरमतो भगणान्तरेण चान्द्रो मासः सिद्धः। सौरमासापेक्षया यदन्तरेण चान्द्रमासानामधिकत्वं त एवाधिमासा इति स्वरूपमेव वक्ष्यमाणोपयोगात्परिभाषितम् ॥

भा० टी०-चंद्रमा और सूर्यका भगणान्तर चान्द्रमास है। चन्द्रमासमें रविमास घटनेपर अधिमास होजाता है ॥ ३५ ॥

अथ वक्ष्यमाणावमसूर्यसावनयोः स्वरूपमाह-

सावनाहानि चान्द्रेभ्यो द्युभ्यः प्रोज्झ्य तिथिक्षयाः ॥
उदयादुदयं भानोर्भूमिसावनवासराः ॥ ३६ ॥

चान्द्रेभ्यो द्युभ्यो वक्ष्यमाणचान्द्रदिवसेभ्यः सकाशादित्यर्थः। सावनाहानि सावनदिनानि प्रोज्झ्य त्यक्त्वावशेषं तिथिक्षयाः। तिथिषु चान्द्रदिनेषु सावनदिनानामवशेषतुल्यः क्षयो न्यूनत्वम्। यद्वा तिथिशब्देन सावनो दिवसस्तस्य चान्द्रदिवसात्क्षय इति स्वरूपमेव वक्ष्यमाणोपयोगात्परिभाषितम्। ननु भोदया भगणैरित्यादिना पूर्वं सर्वेषां सावनदिवसा उक्ता इत्यत्र कस्य ग्राह्या इत्यतः सूर्यसावनस्वरूपं कथनच्छलेनोत्तरमाह-उदयादिति। सूर्यस्योदयकालमारभ्याव्यवहिततदुदयकालपर्यन्तं यः कालः स एको दिवसः। इति ये दिवसास्ते भूमिसावनवासराः। भूदिवसा उदयस्य भूसम्बन्धेनावगमात्। सावनदिवसाश्चेत्यर्थः। तथाच निरुपपदसावनभूमिशब्दाभ्यां सूर्यस्य

वासरा एव नान्येषां सोपपदत्वाभावादिति भावः ॥ ३६ ॥

भा० टी०-चान्द्रदिनसे सावन दिन दूर करनेपर तिथिक्षय होता है। सूर्यके एक उदयसे दूसरे उदयतक एक भौम या सौर दिन होता है ॥ ३६ ॥

ते कियन्त इत्यतस्तत्प्रमाणं चांद्रदिनप्रमाणं चाह-

वसुद्व्यष्टाद्रिरूपांकसप्ताद्रितिथयो युगे ॥
चान्द्राः खाष्टखखव्योमखाग्निखर्तुनिशाकराः ॥ ३७ ॥

अष्टाश्विगजसप्तभूगोनगसप्तपञ्चभूमिता युगे सूर्यसावनदिवसाः । चांद्रदिवसा युगतिथ्य इत्यर्थः । अशीतिशून्यचतुष्कत्रिखनृपा एते त्रिंशद्भक्ताश्चांद्रमासा उक्तप्रायाः । अनेनैव चान्द्रदिवसानामुपपत्तिः सूर्यचंद्रयोर्भगणयोरन्तररूपचान्द्रमासास्त्रिंशद्गुणिता इति स्पष्टीकृताः ॥ ३७ ॥

भा० टी०-युगमें १५७७९१७८२८ सौरादिने और १६०३०००० ८० तिथि (चान्द्रदेन) हैं ॥ ३७ ॥

अथाधिमासावमयोः संख्यामाह-

षड्वह्नित्रिहुताशाङ्कतिथयश्चाधिमासकाः ॥
तिथिक्षया यमार्थाश्विद्व्यष्टव्योमशराश्विनः ॥ ३८ ॥

अधिमासकाः प्रागुक्तस्वरूपाश्चकाराद्युगे षड्देवरामगोशरेन्दुमितास्तिथिक्षया दिनक्षया अवमानीत्यर्थः । अर्थाः पञ्च । एवं द्विशराकृत्यष्टखतत्त्वानि ॥ ३८ ॥

भा० टी०-युगमें अधिमास १५९३३३६ और तिथिक्षय २५०८२२५२ हैं ॥ ३८ ॥

ननु सूर्यमासानुक्तेरधिमाससंख्या कथं ज्ञातेत्यतो रविमाससंख्यास्वरूपेण कहांश्चाह-

खचतुष्कसमुद्राष्टकुपञ्चरविमासकाः ॥
भवन्ति भोदया भानुभगणैरूनिताः कहाः ॥ ३९ ॥

सूर्यमासा द्वादशगुणितरविभगणानुरूपाः शून्यचतुष्कवेदभूनिशरमिताः । ननु सावनदिवससंख्या प्रागुक्ता कथमवगतेत्याह-भवन्तीति । भोदया नाक्षत्रदिवसाः प्रागुक्ताः सूर्यभगणैः प्रागुक्तैर्वर्जिताः संतः कहा भूसावना भवंति भोदय इत्यादिप्रागुक्तेः ॥ ३९ ॥

भा० टी०-युगमें रविमास ५१८४०००० हैं । नक्षत्र भगणसे सूर्यभगण घटादेनेपर कुदिन (सौरदिन) की गिनती होतीहै ॥ ३९ ॥

ननु सूर्यादिमन्दोच्चभौमादिपातानां युगे भगणानुत्पत्तेः कल्पभगणकथनमवश्य कमतस्तत्पंक्त्यां प्रागुक्ता एते भगणादयः कल्प एव कथं नोक्ता इत्यत आह—

अधिमासोनरात्र्यृक्षचान्द्रसावनवासराः ॥
एते सहस्रगुणिताः कल्पे स्युर्भगणादयः ॥ ४० ॥

एते प्रागुक्ता भगणादयो भगणा आदिर्येषां ते भगणादयः । अधिमासोनरात्र्यृक्षचान्द्रसावनवासराः । अधिमासाः षड्वह्नीत्यादितिथिक्षया इत्यान्यूनरात्रयोऽवमानि । ऋक्षचान्द्रसावनानां प्रत्येकं वासरसम्बन्धः । नाक्षत्रदिवसाःभानामित्यादि । चान्द्रदिवसाश्चान्द्रा खाटेत्यादि । सावनदिवसा वसुद्व्यद्रीत्यादि । अत्र सौरमासा अपि खचतुष्केत्यादि ग्राह्याः । सहस्रगुणिताः कल्पे भगणादय उक्ता भवन्ति युगसहस्रस्य कल्पत्वात् । तथा च लाघवार्थं युगयुक्ता इति भावः ॥ ४० ॥

भा० टी०-एक युगके अधिमास, तिथिक्षय, चान्द्रसावनादिन आदि सबको १००० से गुणा करनेपर एक कल्पके भगणादि होते हैं ॥ ४० ॥

अथ श्लोकाभ्यां रविचंद्रसूर्यादिग्रहाणां मंदोच्चभगणांश्चपातभगणान्प्रतिजानीते—

प्राग्गतेः सूर्यमन्दस्य कल्पे सप्ताष्टवह्नयः ॥
कौजस्य वेदखयमा बौधस्याष्टर्तुवह्नयः ॥ ४१ ॥
खखरन्ध्राणि जैवस्य शौक्रस्यार्थगुणेषवः ॥
गोऽग्नयः शनिमन्दस्य पातानामथ वामतः ॥ ४२ ॥

प्राग्गतेः कल्प इत्यनयोः शनिमन्दान्तं प्रत्येकं सम्बन्धः । पूर्वगतेः सूर्यमन्दोच्चस्य कल्पे सप्ताष्टरामिताः शनिपातस्य भगणा इति वक्ष्यमाणस्य भगणा इति पदमत्र प्रत्येकमन्वेति । कौजस्य कुजसम्बन्धिनः सूर्यमन्दस्येत्यस्यैकदेशो मन्दस्येति मन्दोच्चस्येत्यर्थकमत्रान्वेति । तथा च भौममन्दोच्चस्य चतुरधिकं शतद्वयम् । बौधस्य बुधमन्दोच्चस्याष्टषट्त्रिमिताः ।

जैवस्य गुरुसम्बन्धिनः । अत्र शनिमन्दस्येति वक्ष्यमाणस्यैकदेशो मन्दस्येति मन्दोच्चस्येत्यर्थकमन्वेत्येकवृत्तस्थत्वात् । यद्वाद्यन्तयोर्मन्दस्येत्युक्त्यैव मध्यस्थानामन्वयः सूपपन्न इति । तथा च गुरुमन्दोच्चस्य नवशतं शौक्रस्य शुक्रमन्दोच्चस्य पञ्चत्रिंशदधिकपञ्चशतं शनिमन्दोच्चस्यैकोनचत्वारिंशत् । अथानन्तरं पातानां भौमादिपातानां वामतः पश्चिमगत्या भगणा उच्यन्त इति शेषः ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

भा० टी०—एक कल्पमें मंदसूर्यके ३८७, मंगलके २०४ बुधके ३६८, बृहस्पतिके ९०० शुक्रके ५३५ और ३९ भगण बांई ओरको चलते हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

ताञ्श्लोकाभ्यामाह—

मनुदस्रास्तु कौजस्य बौधस्याष्टाष्टसागराः ॥
कृताद्रिचन्द्रा जैवस्य त्रिखाङ्काश्च भृगोस्तथा ॥ ४३ ॥
शनिपातस्य भगणाः कल्पे यमरसर्तवः ॥
भगणाः पूर्वमेवात्र प्रोक्ताश्चन्द्रोच्चपातयोः ॥ ४४ ॥

कुजसम्बन्धिनः । तुकारात्पातस्य भौमपातस्य कल्पे भगणाश्चतुर्दशाधिकं शतद्वयम् । बौधस्य बुधसम्बन्धिनः शनिपातस्येत्यस्यैकदेशः पातस्येत्यत्रान्वेति । बुधपातस्य द्वादशोना पञ्चशती । जैवस्य गुरुपातस्य चतुःसप्तत्यधिकं शतम् । भृगोः शुक्रस्य तथा सम्बन्धिनश्चकारात्पातस्य शुक्रपातस्येत्यर्थः । त्र्यधिका नवशती । शनिपातस्य द्विरस षट्का भगणाः कल्पे भवन्ति । नन्वस्मिन् प्रसंगे चंद्रस्योच्चपातयोर्भगणाः कथं नोक्ता इति मन्दाशङ्कापाकरणाय पूर्वोक्तं स्मारयति ॥ भगणा इति । चंद्रोच्चपातयोश्चन्द्रस्य मन्दोच्चपातयोर्भगणा अत्रास्मिन्नधिकारे पूर्वं ग्रहयुगभगणकथने पृथकागे विस्मरणनिरासार्थकः । प्रोक्ताश्चन्द्रोच्चस्येत्यादिश्लोकेनोक्ताः ॥ ४३ ॥ ४४॥

भा० टी०—एक कल्पमें मंगलके २१४, बुधके ४८८, बृहस्पतिके १७४, शुक्रके ९०३, शनिके ६६२ पातके बांई ओर चलनेवाले भगण हैं पहलेही चन्द्रमाके पात कहे हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अथाभिमतकाले ग्रहगतभोगानयनं विवक्षुस्तदुपजीव्याहर्गणसाधनार्थं मनुप्रग्रहं चारकालाद्गतान्दज्ञानोपजीव्यं कृतयुगान्तीयगताब्दज्ञानं श्लोकत्रयेणाह-

षण्मनूनां तु सम्पिण्ड्य कालं तत्सन्धिभिः सह ॥
कल्पादिसन्धिना सार्द्धं वैवस्वतमनोस्तथा ॥ ४५ ॥
युगानां त्रिघनं यातं तथा कृतयुगं त्विदम् ॥
प्रोज्झ्य सृष्टेस्ततः कालं पूर्वोक्तं दिव्यसंख्यया ॥४६॥
सूर्याब्दसंख्यया ज्ञेया कृतस्यान्ते गता अमी ॥
खचतुष्कयमाद्यग्निशररन्ध्रनिशाकराः ॥ ४७ ॥

षण्मनूनां कालं सौरवर्षात्मकं तत्सन्धिभिः षण्मनूनां कृतयुगप्रमाणैः षड्भिः संधिभिः सह सार्द्धं कल्पादिसन्धिना कृतप्रमाणः कल्पादावित्यनेन कल्पप्रारम्भसम्बद्धकृतयुगमितसन्धिना सार्द्धं सार्थं सम्पिण्ड्यैकीकृत्य । तुकारादायुषोऽर्धमितं तस्येत्यस्य निरासः । वैवस्वतमनोर्वर्त्तमानसप्तमवैवस्वताख्यस्य मनोर्युगानां त्रिघनं यातं युगसप्तविंशतिर्गतां तथैकीकृत्येदमष्टाविंशतियुगान्तर्गतं तुकारात्साम्प्रतं स्थितं कृतयुगं तथा गतत्वेनैकीकृत्य ततः सिद्धाङ्कात्सृष्टेः कालं सृष्टिकरणार्थं यः कालो वर्षात्मकस्तं दिव्यसंख्यया दिव्यमानेन पूर्वोक्तं कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शतघ्ना इत्यनेनोक्तम् । सूर्याब्दसंख्यया सौरवर्षमानेन षष्ट्यधिकशतत्रयगुणितं कृत्वेति तात्पर्यार्थः । एतेन प्रागुक्तैकीकरणं सौर वर्षप्रमाणेन दिव्यवर्षप्रमाणेनेति व्यक्तीकृतम् । प्रोज्झ्य न्यूनीकृत्य । चः समुच्चयार्थोऽनुसन्धेयः । अमी अवशिष्टाब्दाः खाभ्रखाभ्रद्विसप्तत्रिशरातिधृतयः कृतयुगचरणस्यावसाने गता अतीता ज्ञातव्याः । ननु कल्पादस्माच्च मनव इत्यादिपूर्वोक्तसम्पिण्डितकालोक्त्येदं षण्मनूनामित्यादि पुनरुक्तमाभाति । नच पूर्वं ब्रह्मगतवयःप्रमाणज्ञानार्थमिदानीं च ग्रहसाधनार्थम् । अन्यथा गतब्रह्मवयःप्रमाणाद्ग्रहसाधनापत्तेरिति वाच्यम् । ब्रह्मगतवयःप्रमाणादेव ग्रहसाधनस्य युक्तत्वादिष्टापत्तेः । अन्यथा ग्रहचक्रादेर्ब्रह्मोत्पत्तितस्तदवसानपर्यंतं सत्त्वाद्ब्रह्मदिनाधिककाले गताब्दज्ञानभावाद्ग्रहसाधनानुपपत्तिरिति चेन्न इत्थं युगसहस्रेण भूतसंहारकारकः कल्प इत्यनेन ब्रह्मदिनान्ते ग्रहचक्रादिनाशोक्तेस्तद्दिनादौ ग्रहचक्रोत्पत्तेश्च ब्रह्मदिवस एव तदादिगताब्दा ग्रहचारोपजीव्या न ब्रह्मगतायुः प्रमाणाब्दाः ग्रहासत्त्वे ग्रहसाधनापत्तेः । अतः पुनर्गताब्दाग्रहचारोपजीव्या ब्रह्मदिवसे साधिताः ।

परन्तु ब्रह्मदिनादितो ग्रहचारप्रवृत्तिकालपर्यंतं यः सृष्टिविलम्बितकालस्तदूना ब्रह्मदिनादिगताब्दाः सृष्टिगताब्दा ग्रहसाधनोपजीव्या इति तथोक्तम्। अन्यथा सृष्टयन्तर्गतकाले ग्रहचारासत्त्वे तत्साधनापत्तेः सृष्टिकालकथनानुपपत्तेश्चेति दिक्। यथा दिव्याब्दस्य सौरवर्षाणि ३६०। द्वादशसहस्रगुणितानि महायुगम् ४३२०००० इदमेकसप्ततिगुणं मानुनमम् ३०६७२०००० इदं षड्गुणितं षण्मनुमानम् १८४०३२०००० इदं स्वसन्धिभिः कृतयुगप्रमाणैः सप्तभिरेभिः १२०९६००० युगम् १८५२४१६००० एतत्सप्तविंशतियुग ११६६४०००० सहितम् १९६९०५६०००कृतयुग १७२८००० युक्तं जातानि कल्पगतवर्षाणि १९७०७८४०००। सृष्टिदिव्याब्दैः ४७४००। खषडग्निगुणितैरेभिः १७०६४०००। हीनं सृष्टिगताब्दा ग्रहचारोपजीव्याः कृतयुगान्ते खचतुष्केत्याद्युपपन्नाः १९५३७२०००० ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

भा० टी०—सन्धिके सहित छःमनुका समय कल्पकी आदि सन्धि, बीते हुए सत्ताईस युगका प्रमाण और कृतयुगमान जोड़के उसमेंसे कल्पारम्भसे लेकर सृष्टिकालतकके सौर वर्ष (२४ श्लोक) की संख्या घटानेसे सृष्टिके बीते हुए वर्ष निकल आवेंगे। सो १९५३७२०००० वर्ष हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

तथाभीष्टकालेऽहर्गणसाधनं ततो दिनमासाब्दपप्रतिज्ञां वासरेश्वरज्ञानं च श्लोकचतुष्टयेनाह—

अत ऊर्ध्वममी युक्ता गतकालाब्दसंख्यया ॥
मासीकृता युता मासैर्मधुशुक्लादिभिर्गतैः ॥ ४८ ॥
पृथक्स्थास्तेऽधिमासघ्नाः सूर्यमासविभाजिताः ॥
लब्धाधिमासकैर्युक्ता दिनीकृत्य दिनान्विताः ॥ ४९ ॥
द्विष्ठास्तिथिक्षयाभ्यस्ताश्चान्द्रवासरभाजिताः ॥
लब्धोनरात्रिरहिता लङ्कायामार्धरात्रिकः ॥ ५० ॥
सावनो द्युगणः सूर्याद्दिनमासाब्दपास्ततः ॥
सप्तभिः क्षयितः शेषः सूर्याद्यो वासरेश्वरः ॥ ५१ ॥

अतः कृतयुगान्तादूर्ध्वमुपर्यनन्तरमित्यर्थः। अभीष्टकाले यो गतकालस्तस्य सौरवर्षसङ्ख्यामी कृतयुगान्तीयसृष्टयब्दाः खचतुष्केत्यादिपूर्वोक्ता

युक्ता अभीष्टकाले सौरगताब्दा भवंति । एते मासीकृता द्वादशगुणिता इत्यर्थः । अभीष्टकाले मधुशुक्लादिभिश्चैत्रशुक्लाद्यवधिभूतैर्गतैर्मासैर्युताः । अत्र गतमासांतर्गतोऽधिमासश्चेन्न ग्राह्यस्तस्योत्तरमासाह्वयत्वेन तदन्तर्गतत्वात् तन्मासस्य षष्टिदिनात्मकत्वाच्च । ते सिद्धाः पृथक्स्था युगाधिमासगुणिता युगसूर्यमासभक्ताः प्राप्ताधिमासकैर्निरग्रैः सिद्धाः युक्ताः । अत्र यदा स्पष्टोधिमासः पतित आनयनेन लब्धस्तदानयनप्राप्ताधिमासैः सैकैर्युक्ताः यदा तु स्पष्टोऽधिमासो न पतित आनयने प्राप्तस्तदानयनप्राप्ताधिमासैर्निरंकैर्युक्ताः । थाभीष्टकालसाधिताहर्गणस्य त्रिंशद्दिनान्तरितत्वापत्तेरिति ध्येयम् । एते सिद्धा दिनीकृत्य त्रिंशता संगुण्येत्यर्थः । दिनान्विता वर्त्तमानमासस्य शुक्लप्रतिपदादिगततिथिभिर्युक्ता इत्यर्थः । एते द्विष्ठाः स्थानद्वये स्थाप्या एकत्र युगावमैर्गुणिता युगचान्द्रदिनैर्भक्ताश्च प्राप्तावमैर्निरग्रैरपरत्र हीनाः सन्तो लङ्कादेशेऽर्धरात्रकालिकः सावनोहर्गणस्यात् । ततः साधिताहर्गणात्मकाशात्सूर्यात्सूर्यमारभ्य दिनमासाब्दपा वारेश्वरमासेश्वरवर्षेश्वरा भवन्ति । तत्र वासरेश्वरज्ञानमाह—सप्तभिरिति । अथमहर्गणः सप्तभिः क्षयितो भक्त्वा शेषितः कार्यः । स शेषोऽवशिष्टः सूर्याद्यः सूर्यवारादिको वासरेश्वरो वारस्वामी गतो भवति । तदग्रिमो वर्तमानो वारेश इत्यर्थसिद्धम् । अत्रोपपत्तिः । सौर वर्षाणां मासकरणे सृष्ट्याद्यधिमासांतकालसम्बन्धिसावयवसौरमासा अव्यवहितपूर्वपतिताधिमासान्तकालादिस्वाभीष्टचैत्राद्यन्तकालसम्बंधिसावयवचान्द्रमासाः स्तयोर्योगश्चैत्रादौ द्वादशगुणितौ सौरवर्षाणि जातानि कुत इतिचेच्छृणु । द्वादशगुणितसौरवर्षाणि सौरवर्षादौ सौरमासा इति तु निर्विवादम् । ते स्वानीताधिमासैः सावयवैर्युताश्चांद्रासावयवाः सौरवर्षादौ । एतेऽवयवहीनाश्चैत्रादौ निरवयवाश्चान्द्रमासाः अवयमस्य चैत्रादिसौरवर्षाद्यन्तकालरूपाधिशेषत्वात् । ते निरग्राधिमासोनाश्चैत्रादावधिमासोन चान्द्रा द्वादशगुणितसौरवर्षरूपा उक्तयोगस्वरूपाः सिद्धाः । कथमन्यथानिरग्राधिमासयोजनेनैषां चैत्रादौ चान्द्रमाससमानत्वसम्भवः । एते स्वाभीष्टमासादिकालसिद्ध्यर्थं चैत्रशुक्लादिगतमासैर्युक्ताः । एतेन द्वादशगुणितसौरवर्षमितसौरमासानां चैत्रादिगतचान्द्रमासाः कथं योजिता एकजातित्वाभावादिति दूषणांगीकारो निरस्तः । उक्तरीत्या तत्र चान्द्रमासानामपि सत्त्वादेकजातीयत्वेन योगसम्भवात् । नहि

परन्तु ब्रह्मदिनादितो ग्रहचारप्रवृत्तिकालपर्यंतं यः सृष्टिविलम्बितकालस्तदूना ब्रह्मदिनादिगताब्दाः सृष्टिगताब्दा ग्रहसाधनोपजीव्या इति तथोक्तम्। अन्यथा सृष्ट्यन्तर्गतकाले ग्रहचारासत्त्वे तत्साधनापत्तेः सृष्टिकालकथनानुपपत्तेश्चेति दिक्। यथा दिव्याब्दस्य सौरवर्षाणि ३६०। द्वादशसहस्रगुणितानि महायुगम् ४३२०००० इदमेकसप्ततिगुणं मानुनमम् ३०६७२०००० इदं षड्गुणितं षण्मनुमानम् १८४०३२०००० इदं स्वसन्धिभिः कृतयुगप्रमाणैः सप्तभिरेभिः १२०९६००० युगम् १८५२४१६००० एतत्सप्तविंशतियुग ११६६४०००० सहितम् १९६९०५६०००कृतयुग १७२८००० युक्तं जातानि कल्गतवर्षाणि १९७०७८४०००। सृष्टिदिव्याब्दैः ४७४००। खषडग्निगुणितैरेभिः १७०६४०००। हीनं सृष्टिगताब्दा ग्रहचारोपजीव्याः कृतयुगान्ते खचतुष्केत्याद्युपपन्नाः १९५३७२००००॥ ४५॥ ४६॥ ४७॥

भा० टी०-सन्धिके सहित छःमनुका समय कल्पकी आदि सन्धि, वीते हुए सत्ताईस युगका प्रमाण और कृतयुगमान जोडके उसमेंसे कल्पारम्भसे लेकर सृष्टिकालतकके सौर वर्ष (२४ श्लोक) की संख्या घटानेसे सृष्टिके बीते हुए वर्ष निकल आवेंगे। सो १९५३७२०००० वर्ष हैं॥ ४५॥ ४६॥ ४७॥

तथाभीष्टकालेऽहर्गणसाधनं ततो दिनमासाब्दपप्रतिज्ञां वासरेश्वरज्ञानं च श्लोकचतुष्टयेनाह-

अत ऊर्ध्वममी युक्ता गतकालाब्दसंख्यया॥
मासीकृता युता मासैर्मधुशुक्लादिभिर्गतैः॥ ४८॥
पृथक्स्थास्तेऽधिमासघ्नाः सूर्यमासविभाजिताः॥
लब्धाधिमासकैर्युक्ता दिनीकृत्य दिनान्विताः॥ ४९॥
द्विष्ठास्तिथिक्षयाभ्यस्ताश्चान्द्रवासरभाजिताः॥
लब्धोनरात्रिरहिता लङ्कायामार्धरात्रिकः॥ ५०॥
सावनो द्युगणः सूर्याद्दिनमासाब्दपास्ततः॥
सप्तभिः क्षयितः शेषः सूर्याद्यो वासरेश्वरः॥ ५१॥

अतः कृतयुगान्तादूर्ध्वमुपर्यनन्तरमित्यर्थः। अभीष्टकाले यो गतकालस्तस्य सौरवर्षसङ्ख्यामी कृतयुगान्तीयसृष्ट्यब्दाः खचतुष्कत्यादिपूर्वोक्ता

करणार्थं त्रिंशद्गुणिता अभीष्टदिने तत्सिद्ध्यर्थं शुक्लादिगततिथयोऽत्र योजिता अभीष्टतिथ्यादौ चान्द्राहर्गणः । युगचान्द्रदिनैर्युगावमानि-तदानेन किमित्यनुपातागतावमैः सावयवहीनाश्चांद्राहर्गणस्तिथ्यन्ते साव-नोऽहर्गणोयमकोटिदेशे सूर्योदयकाले ग्रहचारस्य प्रवृत्तेस्तदादितो निर-वयवाहर्गणसिद्ध्यर्थं तिथ्यन्ततत्कालयोरन्तरमवमावयवरूपं योज्यमतः पूर्व-मेवावमावयवोऽनुपयुक्तोऽत्र न गृहीतोऽतश्चांद्राहर्गणः स्वानीतावमैर्निरेग्र-हीनोऽहर्गणः । सावनो निरवयवो यमकोटिदेशीयसूर्योदयकाले तत्र तद्दे-शस्याप्रसिद्ध तया प्रसिद्धलङ्कादेशार्द्धरात्रस्य तद्रूपस्योक्तिः कृता । सृष्ट्या-दावर्कवारसद्भावात् तदाद्या दिनमासवर्षेश्वराः । ग्रहाणां सततसङ्ख्यत्वात् सप्ततष्टोऽहर्गणः शेषं गतवारः ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥

भा० टी०--कृतयुगके बीतेहुए वर्षोंकी संख्यामें ऊपर कही हुई संख्या मिलाय मास करके मधु शुक्लादि विगत मासकी संख्याको मिलावे ॥४८॥ और जगह उक्तमास संख्याको अधिमाससे गुणकरके, सूर्यमाससे भागकर मास संख्याके साथ मिलाय दिन करके बीते हुए दिनोंके साथ मिलावे ॥ ४९ ॥ अन्यत्र दिनसंख्याको तिथि-क्षयद्वारा गुणकरके, चांद्रदिनसे भाग करे, फिर दिनकी संख्यासे घटानेपर लंकार्ध आर्द्धरात्रिक अहर्गण होंगे ॥ ५० ॥ द्युगणसे दिनमासाब्दपति निकलता है । अहर्गणको ७ से भागकरके शेषाङ्क रविसे गणित करनेपर दिनका अधिपति (स्वामी) होगा ॥ ५१ ॥

अथ प्रतिज्ञातयोर्मासवर्षपयोरानयनमाह—

मासाब्ददिनसंख्याप्तं द्वित्रिघ्नं रूपसंयुतम् ॥
सप्तोद्धृतावशेषौ तु विज्ञेयौ मासवर्षपौ ॥ ५२ ॥

अहर्गणाद्विष्ठःकृत्र मानदिनानां संख्यया त्रिंशता भक्ताद्यत् फलम् । तथा वर्षदिनानां संख्यया षष्ट्यधिकशतत्रयेण भक्ताद्यत् फलम् । शेषयो-रनुपयोगात्त्यागः । क्रमेण फलद्वयं द्वाभ्यां त्रिभिर्गुणितम् [illegible] सप्तभागहारेण भक्तात्फलस्यानुपयोगात् शेषौ क्रमेण मासस्याधिपवर्षस्याधि[illegible] ज्ञातव्यौ । सृष्ट्यादावर्कक्रमेण वारेश्वरगणना तत्क्रमेणाद्ययोर्गणना [illegible] वर्षमासेश्वरः । अथोपपत्तिः । सृष्ट्यादित्रिंशद्दिनात्मकमासाधिपः [illegible] रवस्य सूर्योऽधिपतिर्मासादिदिनेऽर्कस्याधिपतित्वात् । एवं द्वितीय[illegible] मासस्य दिनाधिपतिस्त्रयोदशो द्वितीयमासेश्वर इति प्रतिमासं [illegible]

पूर्वयोगोऽस्माभिः कृतो येन विजातीययोगो दूषणं तस्य द्वादशगुणितसौरवर्षरू-त्वेन स्वतः सिद्धत्वात् अथैषनिरग्राधिमासा योज्या इति सृष्ट्यादिपूर्वपतिताधिमासान्तकालावधि ये सौर मासाः सावयवास्तेभ्यो युगसौरमासैर्युगाधिमासास्तदैभिः सौरमासैः क इत्युनुपातेन निरग्राधिमासाश्चान्द्रा भवंति सौरेभ्यः साधितत्वात् । अथाभीष्ट कालेऽधिमासावयव ज्ञानार्थं युगचान्द्रमासैर्युगाधिमासास्तदा पूर्वपतिताधिमा सांतकालाभीष्टमासाद्यन्तरस्थितचान्द्रमासैः सावयवैरेभिः क इत्यनुपातेनाधिमासाभावात् तदवयवः सौर आयाति चान्द्रात्साधितत्वात् । परन्त्वव यवाययविनोरेकजातित्वासिद्धिरतस्तत्सम्पादनार्थमधिमासावयवस्योक्तसौरस्य युगसौरमासैर्युगचान्द्रमासास्तदोक्तसौराधिमासावयवेन किमित्यनु पातेन युगचान्द्रमासा गुणो युगसौरमासाहर इति तुल्ययोर्गुणहरयोर्युगचान्द्र मासयोर्नाशादिष्टचान्द्रमासानां युगाधिमासागुणो युगसौरमासाहर इति फल मधिमासावयवश्चांद्रः । अथ तादृशेष्टसौरचांद्रमासयोः पृथगज्ञानादधिमासतदवयवयो ज्ञानमशक्यमप्येको हरश्चेद्गुणकौ विभिन्नावित्यादिरीत्यष्टतादृशसौरचांद्रमासयोर्योग एवायं ज्ञातो युगाधिमासगुणितो युगसूर्यमासभक्तः फलमधिमासाः । शेषात्तदवयवोऽहर्गणानयनेऽनुपयुक्तः । तत्र केवलाधिमासानामेव न्यूनत्वेन तेषामेव योजनावश्यकत्वात् । अयं सृष्ट्यादित इष्टमासादिपर्यंतं चांद्रमासगणः सिद्धः । वहवस्तु द्वादशगुणितसौरवर्षरूपसौरमासानां सौरवर्षादितोऽभीष्टकालपर्यंतं सौरमासानाज्ञानाज्ज्ञातचैत्रादिगतचान्द्रमासा एव योजिताः परमिष्टसौरमासेष्वधिमासशेषमधिकं तच्चाधिमासानयनेऽधिशेषत्यागेन केवलाधिमासायोजने निरन्तरं भवति अधिमासानयनं च चान्द्रमिष्टसौरमासत्वेनैवाधिशेषाधिकेष्टसौरमासानामंगीकारादित्याहुः । तच्चिन्त्यम् । केवलेष्टसौरमासानीताधिमासानां निरग्राणामधिशेषाधिकसौरष्टमासेषु योजनेनैव निरन्तरितत्वसिद्धिः । अन्यथाधिशेषगुणितयुगाधिमासैर्यो युगार्कमासभक्तात्फलेनाधिशेषमाधिकमायातीति परमासन्नाधिशेषस्याधिकत्वे भवद्रीत्यनुपातानयनेनैकाधिकमासलब्ध्या योजितेन चान्द्रमासगणएकाधिकः स्यादिति । अथाभीष्टमासादिसिद्धचान्द्रमासाश्चान्द्रदिन-

भा० टी०—अपने २ भगण करके दिनराशिको (अहर्गण) गुणकरके कुदिनसे भाग करनेपर ग्रहकी मध्यगतिसे उत्पन्न हुए भगणादि मध्य होंगे ॥ ५३ ॥

अथामुं प्रकारमुच्चपातयोरानयनायातिदिशति—

एवं स्वशीघ्रमन्दोच्चा ये प्रोक्ताः पूर्वयायिनः ॥
विलोमगतयः पातास्तद्वच्चक्राद्विशोधिताः ॥ ५४ ॥

ये पूर्वयायिनः पूर्वदिग्गतयः स्वशीघ्रमन्दोच्चाः स्वेषां ग्रहाणां शीघ्रोच्चमन्दोच्चा ग्रहबहुत्वेन शीघ्रोच्चमन्दोच्चयोर्बहुत्वाद्बहुवचनम् । प्रोक्ताः पूर्वं भगणोक्त्या कथितास्तेऽप्येवं ग्रहानयनरीत्या साध्याः । ननु पूर्वयायिन एवं साध्यास्तर्हि पश्चिमगतयः पाताः कथं साध्या इत्यत आह—विलोमगतय इति । पश्चिमगतयः पाता अपि तद्वद्ग्रहानयनरीत्यात्र चंद्रोच्चपातौ ग्रहानयनवद्युगकल्पभगणसावनाभ्यां सिद्धौ भवतोऽन्येषामुच्चपातौ तु कल्पसावनदिनहरेणेति ध्येयम् । ननु तर्हि पूर्वपश्चिमगत्योः को विशेष आनयन इत्यत आह—चक्रादिति । आगता राश्यादिपाता द्वादशराशिभ्यः शोध्याः पाता भवन्ति । एतावानेन विशेष इति भावः । अत्रोपपत्तिः । पूर्वयायिनो मेषवृषमिथुनादिक्रमेण गच्छन्ति पश्चिमगतयस्तु मेषमीनकुम्भेत्याद्युत्क्रमेण गच्छन्ति । तत्रोत्क्रमगणनाया लोकेऽनभ्यासाद्राशिक्रमेण तज्ज्ञानार्थं द्वादशराशिभ्यः शोधिताः । पूर्वगतिपंक्तिस्था भवन्ति ॥ ५४ ॥

भा० टी०—ऐसेही अपने २ पहले चलनेवाले शीघ्रमन्दोच्चादि मध्य निर्णय होजायगा परन्तु समस्तपात विलोम गमन करनेवाले अर्थात् विपरीत मार्गमें चलानेवाले हैं, तिस कारणसे मध्यागतराश्यादि १२ राशिसे अलग करनेपर मध्य होजायगा ५४

अथ संवत्सरानयनमाह—

द्वादशघ्ना गुरोर्याता भगणा वर्तमानकैः ॥
राशिभिः सहिताः शुद्धाः षष्ट्या स्युर्विजयादयः ॥ ५५ ॥

अहर्गणानीतस्य भगणादिकस्य बृहस्पतेर्याता गता भगणा उपरिस्था द्वादशगुणिता वर्तमानकैर्यस्मिन्नधिष्ठितः स वर्त्तमानस्तत्सहितैरङ्कैर्युक्तैरित्यर्थः। राशिभिर्गणितागतराशिभिर्यद्राशौ तिष्ठति तस्य मेषादिसंख्ययेति फलितार्थः। युताः षष्ट्याशुद्धा भागावशेषिताः फलं भागादिकं चानुपयोगात्त्याज्यम् । विजयादयः संवत्सरा वर्त्तमासहिता भवन्ति । अत्रोपपत्तिः " मध्यगत्या

द्वयम् । त्रिंशद्दिनानां सप्ततष्टतया द्व्यवशेषात् । एवं षष्ट्यधिकशतत्रयाहोरात्राणामेकं सौरसावनवर्षं तस्याधिपोऽर्कः । वर्षादिदिनेऽर्कस्याधिपतित्वात् । एवं द्वितीयसावनवर्षादौ बुधस्य दिनाधिपतित्वाद्बुधो द्वितीयवर्षेश्वर इति प्रतिवर्षं वर्षेश्वरयोरन्तरं त्रयं षष्ट्यधिकशतत्रयदिनानां सप्ततष्टतया त्र्यवशेषात् । तथा च वर्तमानकाल तद्गणनया कियन्तो मासा गताः । कियंति च वर्षाणि गतानीति ज्ञानार्थमहर्गणस्त्रिंशद्भक्तः फलं गतमासाः । षष्ट्यधिकशतत्रयभक्तः फलं गतवर्षाणि । एकमासे द्वौ वारौ तदा गतमासैः क इति गतमासवारा वर्तमानार्थं सैकाः । एवमेकवर्षे त्रयो वारास्तदा गतवर्षैः क गतवर्षवारा वर्त्तमानार्थं सैका वाराणां सप्तसंख्यत्वात् सप्ततष्टौ शेषौ सूर्यादिकौ मासवर्षेश्वरौ ॥ ५२ ॥

भा० टी०—अहर्गणको मास (३०) और वर्ष (३६० दिनसंख्यासे भाग करके २ और तीनसे गुणाकरके तिस गुणित फलमें एक मिलावे फिर तिस संख्यामें ७ का भाग देनेपर शेषांक रविसे गणित करनेपर मासेश्वर और वर्षेश्वर होगा ॥ ५२ ॥

अथ ग्रहानयनमाह—

यथा स्वभगणाभ्यस्तो दिनराशिः कुवासरैः ॥
विभाजितो मध्यगत्या भगणादिर्ग्रहो भवेत् ॥ ५३ ॥

दिनराशिरहर्गणो यथा स्वभगणाभ्यस्तो यत्कालिकनिजोक्तभगणैर्गुणितो युगभगणैः कल्पभगणैर्वेत्यर्थः । तथा कुवासरैस्तात्कालिकसावनदिनैर्युगसावनैः कल्पसावनैर्वेति यथायोग्यमित्यर्थः । भक्तः फलं यस्य ग्रहस्य भगणा गुणनार्थं गृहीताः सग्रहो भगणादिर्भगणराशिभागकलाविकलात्मकभोगात्मकः । मध्यगत्या मध्यगतिमानेन न प्रतिदिनविलक्षणस्फुटगतिप्रमाणेनाग्रे तत्प्रमाणेन ग्रहभोगज्ञानस्योक्तेः । मध्यमो ग्रहः स्यादित्यर्थः । अत्रोपपत्तिः । युगादिसावनैर्युगादिभगणास्तदैकेन दिनेन केति प्राप्ता मध्यमगतिस्तत एकेन दिनेनेयं-गतिस्तदेष्टाहर्गणेन केति रूपयोस्तुल्यत्वेन विकराजनकत्वाच्च नाशादुपपन्नमानयनम् । यद्यपि युगादिसावनैर्युगादिभगणास्तदेष्टाहर्गणेन किमित्यैकानुपातेनानयनमुपपन्नं लाघवात्तथापि मध्यगत्येत्यस्य प्रदर्शनार्थमनुपातद्वयं गुरुभूतमपि प्रदर्शितम् ॥ ५३ ॥

भा० टी०-अपने २ भगण करके दिनराशिको (अहर्गण) गुणकरके कुदिनसे भाग करनेपर ग्रहकी मध्यगतिसे उत्पन्न हुए भगणादि मध्य होंगे ॥ ५३ ॥

अथामुं प्रकारमुच्चपातयोरानयनायातिदिशति-

एवं स्वशीघ्रमन्दोच्चा ये प्रोक्ताः पूर्वयायिनः ॥
विलोमगतयः पातास्तद्वच्चक्राद्विशोधिताः ॥ ५४ ॥

ये पूर्वयायिनः पूर्वदिग्गतयः स्वशीघ्रमन्दोच्चाः स्वेषां ग्रहाणां शीघ्रोच्चमन्दोच्चा ग्रहबहुत्वेन शीघ्रोच्चमन्दोच्चयोर्बहुत्वाद्बहुवचनम् । प्रोक्ताः पूर्वं भगणाकत्या कथितास्तेऽप्येवं ग्रहानयनरीत्या साध्याः । ननु पूर्वयायिन एवं साध्यास्तर्हि पश्चिमगतयः पाताः कथं साध्या इत्यत आह-विलोमगतय इति । पश्चिमगतयः पाता अपि तद्वद्ग्रहानयनरीत्यात्र चंद्रोच्चपातौ ग्रहानयनवद्युगकल्पभगणसावनाभ्यां सिद्धौ भवतोऽन्येषामुच्चपातौ तु कल्पसावनदिनहरेणेति ध्येयम् । ननु तर्हि पूर्वपश्चिमगत्योः को विशेष आनयन इत्यत आह-चक्रादिति । आगता राश्यादिपाता द्वादशराशिभ्यः शोध्याः पाता भवन्ति । एतावानेन विशेष इति भावः । अत्रोपपत्तिः । पूर्वयायिनो मेषवृषमिथुनादिक्रमेण गच्छन्ति पश्चिमगतयस्तु मेषमीनकुम्भेत्याद्युत्क्रमेण गच्छन्ति । तत्रोत्क्रमगणनाया लोकेऽनभ्यासाद्राशिक्रमेण तज्ज्ञानार्थं द्वादशराशिभ्यः शोधिताः । पूर्वगतिपंक्तिस्था भवन्ति ॥ ५४ ॥

भा० टी०-ऐसेही अपने २ पहले चलनेवाले शीघ्रमन्दोच्चादि मध्य निर्णय होजायगा परन्तु समस्तपात विलोम गमन करनेवाले अर्थात् विपरीत मार्गमें चलानेवाले हैं, तिस कारणसे मध्यागतपादि १२ राशिसे अलग करनेपर मध्य होजायगा ५४

अथ संवत्सरानयनमाह-

द्वादशघ्ना गुरोर्याता भगणा वर्तमानकैः ॥
राशिभिः सहिताः शुद्धाः षष्ट्या स्युर्विजयादयः ॥ ५५ ॥

अहर्गणानीतस्य भगणादिकस्य बृहस्पतेर्याता गता भगणा उपरिस्था द्वादशगुणिता वर्तमानकैर्यस्मिन्नधिष्ठितः स वर्त्तमानस्तत्सहितैरंकैर्युक्तैरित्यर्थः। राशिभिर्गणितागतराशिभिर्यद्राशौ तिष्ठति तस्य मेषादिसंख्ययेति फलितार्थः। युताः षष्ट्याशुद्धा भागावशेषिताः फलं भागादिकं चानुपयोगात्त्याज्यम् । विजयादयः संवत्सरा वर्त्तमासहिता भवन्ति । अत्रोपपत्तिः " मध्यगत्या

भभोगेन गुरोर्गौरिववत्सराः " इति लघुवसिष्ठसिद्धान्तोक्तेर्गुरुमध्यमराशिभोगकाल एकः संवत्सर इति सृष्टयाद्यानीतभगणादिर्गुरोः सम्पूर्णराशिज्ञानाथ भगणा द्वादशगुणा वर्तमानराशिसंख्यायुताः षष्टितष्टाः शेषं विजयादिकः संवत्सरो वर्तमानो भवति । संवत्सराणां षष्टिसंख्यत्वात् । सृष्टयादौ विजयसंवत्सरसद्भावाच्च ॥ ५५ ॥

भा० टी०—बृहस्पतिके भगणको १२ से गुणकरके राशिके साथ मिलाय ६० से भाग करनेपर भागफल विजयादि संवत्सर होगा ॥ ५५ ॥

अथोक्तमुपसंहरँल्लाघवेन ग्रहानयनमाह—

विस्तरेणतदुदितं संक्षेपाद्व्यावहारिकम् ॥
मध्यमानयनं कार्यं ग्रहाणामिष्टतो युगात् ॥ ५६ ॥

एतत् षण्मनूनां तु सम्पिण्ड्येत्यादिविस्तरेण गणितक्रियाबाहुल्येनोदितमुक्तं व्यावहारिकं लोकव्यवहारोपयुक्तमिदं ग्रहानयनं संक्षेपादल्पगणितप्रयासाज्ज्ञेयम् । तदाह—मध्यमानयनमिति । ग्रहाणां मध्यमानयनं मध्यमानेन गणितमिष्टतो वर्त्तमानात्त्रेताख्याद्युगान्महायुगस्य चरणात्त्रेतायुगादितो गताब्दैरल्पभूतैरेवोक्तरीत्याहर्गणमानीयोक्तरीत्या मध्यग्रहाः कार्या इत्यर्थः॥५६॥

भा० टी०—यह समस्त विस्तारसे कहा। कार्यके संक्षेपसे भी त्रेताकी आदिसे ग्रहोंके बीचमें लाना उचित है ॥ ५६ ॥

ननु सृष्टयादितो ग्रहचारप्रवृत्तेस्तदादित आनीतस्य ग्रहस्य वास्तवत्वेन तत्तुल्योऽयं ग्रहः कथमवगत इत्यत आह—

अस्मिन्कृतयुगस्यान्ते सर्वे मध्यगता ग्रहाः ॥
विना तु पातमन्दोच्चान्मेषादौ तुल्यतामिताः ॥ ५७ ॥

अस्मिन्निदानीन्तने कृतयुगस्यावसानसमये सर्वे सनग्रहाः सूर्यादयो मध्यगता मध्यमा मेषादौ मेषादिप्रदेशे तुल्यतां समानतां गणिना गतराश्यादिभोगेनेताः प्राप्ताः । पातमन्दोच्चान्विना । पातमन्दोच्चास्तु न तुल्या न वा मेषादौ । तथा च ग्रहाणां शीघ्रोच्चानां च भगणपूर्तित्वात्त्रेतादिसमयावगतगतकालादागतराश्यादयः सृष्टयादिगतकालावगतराश्यादिभिस्तुल्या अगणानां च प्रयोजनाभावादिति भावः ॥ ५७ ॥

भा० टी०-इस कृतयुगके अन्तमें पात और मन्द व उच्चके सिवाय समस्त ग्रह मध्य मेषके प्रथममें थे ॥ ५७ ॥

अथोच्चपातयोर्विशेषमाह-

मकरादौ शशाङ्कोच्चं तत्पातस्तु तुलादिगः ॥
निरंशत्वं गताश्चान्ये नोक्तास्ते मन्दचारिणः ॥ ५८ ॥

चन्द्रस्य मन्दोच्चं तदानीं मकरादावस्ति तत्पातश्चन्द्रपातस्तुलादिस्थोऽस्ति । तुकारादतस्तयोस्त्रेतादित आनयनं नवपञ्चाशियोजनविशेषेण सुगममित्यर्थः । नन्वेवमन्येषामपि यद्राश्यादिस्थत्वं तत्कथनेन तेषामप्यानमनं सुगमं भविष्यतीत्यत आह । निरंशत्वमिति । अन्येऽवशिष्टा मन्दोच्चपाता ये मन्दचारिणोऽल्पगतय उक्ताः पूर्वं भगणोक्त्या कथितास्ते चकारादस्मिन् कृतयुगान्ते निरंशत्वमंशाभाववत्तां न प्राप्ताः । तथाच तेषां राश्यादिकथने गौरवं मन्दगतित्वादेकदानीताः सहस्रवर्षपर्यंतमुपयुक्ता भवंतीति निरंतरं सत्साधनावश्यकताभावात्तेषामानयनं त्रेतादिगताब्देभ्य उपेक्षितमिति भावः । यदि च तत आनीयन्ते तदा स्वस्वक्षेपयुक्ताः कार्याः । क्षेपकास्तु रविमन्दोच्चं राश्यादिकं ० । ७ । २८ । १२ । भौमस्य ३ । ३ । १४ । २४ । बुधस्य ५ । ४ । ४ । ४८ गुरोः ० । ९ । ० । ० । शुक्रस्य ११ । १३ । २१ । ० । शनेः ४ । २० । १३ । १२ । भौमपातस्य ९ । ११ । २० । १२ । बुधस्य ८ । ११ । १६ । ४८ । गुरोः ८ । ८ । ५६ । २४ । शुक्रस्य ४ । १७ । २५ । ४८ । शनिपातस्य ४ । २० । १३ । १२ । एवमिष्टकालादपि ग्रहाः साध्याः स्वस्वक्षेपयोजनपूर्वम् ॥ ५८ ॥

भा० टी०-उच्च चन्द्रमा मकरका और चंद्रमाका पात तुलाकी आदिमें था मन्द चलनेवाले मन्दोच्चादिके अंशादिभी थे इस कारण नहीं कहे गये ॥ ५८ ॥

अथ ग्रहाणां देशान्तरफलानयनार्थं भूपरिधिं स्वोपजीव्यभूव्यासकथनपूर्वकमाह-

योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु ॥
तद्वर्गतो दशगणात्पदं भूपरिधिर्भवेत् ॥ ५९ ॥

[1] मंदोच्चके ० । ७ । २८ । १२ । मं. ३ । १४ । २४ । ५ । ४ । ४ । ४८ बृ० । ९ । शु० ११ । १३ । २१ । श ४ । २० । १३ । १२ पात म ९ । ११ । २० । १२ बु ८ । ११ १६ । ४८ बृ ८ । ८ । ५६ । २४ । शु ४ । १७ । २५ । । ४८ । श ४ । २० । १३ । १२ कृतयुगके अमाने थे ।

भभोगेन गुरोर्गौरवत्सरः ” इति लघुवसिष्ठसिद्धान्तोक्तेर्गुरुमध्यमराशिभोगकाल एकः संवत्सर इति सृष्ट्याद्यानीतभगणादिगुरोः सम्पूर्णराशिज्ञानाथ भगणा द्वादशगुणा वर्तमानराशिसंख्यायुताः षष्टितष्टाः शेषं विजयादिकः संवत्सरो वर्तमानो भवति । संवत्सराणां षष्टिसंख्यत्वात् । सृष्ट्यादौ विजयसंवत्सरसद्भावाच्च ॥ ५५ ॥

भा० टी०—बृहस्पतिके भगणको १२ से गुणकरके राशिके साथ मिलाय ६० से भाग करनेपर भागफल विजयादि संवत्सर होगा ॥ ५५ ॥

अथोक्तमुपसंहरँल्लाघवेन ग्रहानयनमाह—

विस्तरेणतदुदितं संक्षेपाद्व्यावहारिकम् ॥
मध्यमानयनं कार्यं ग्रहाणामिष्टतो युगात् ॥ ५६ ॥

एतत् षण्मनूनां तु सम्पिण्ड्येत्यादिविस्तरेण गणितक्रियाबाहुल्येनोदितमुक्तं व्यावहारिकं लोकव्यवहारोपयुक्तमिदं ग्रहानयनं संक्षेपादल्पगणितप्रयासाज्ज्ञेयम् । तदाह—मध्यमानयनमिति । ग्रहाणां मध्यमानयनं मध्यमानेन गणितमिष्टतो वर्त्तमानात्त्रेताख्याद्युगान्महायुगस्य चरणात्त्रेतायुगादितो गताब्दैरल्पभूतैरेवोक्तरीत्याहर्गणमानीयोक्तरीत्या मध्यग्रहाः कार्या इत्यर्थः॥५६॥

भा० टी०—यह समस्त विस्तारसे कहा। कार्यके संक्षेपसे भी त्रेताकी आदिसे ग्रहोंके बीचमें लाना उचित है ॥ ५६ ॥

ननु सृष्ट्यादितो ग्रहचारप्रवृत्तेस्तदादित आनीतस्य ग्रहस्य वास्तवत्वेन तत्तुल्योऽयं ग्रहः कथमवगत इत्यत आह—

अस्मिन्कृतयुगस्यान्ते सर्वे मध्यगता ग्रहाः ॥
विना तु पातमन्दोच्चान्मेषादौ तुल्यतामिताः ॥ ५७ ॥

अस्मिन्निदानीन्तने कृतयुगस्यावसानसमये सर्वे सप्तग्रहाः सूर्यादयो मध्यगता मध्यमा मेषादौ मेषादिप्रदेशे तुल्यतां समानतां गणिता गतराश्यादिभोगेनेताः प्राप्ताः । पातमन्दोच्चान्विना । पातमन्दोच्चास्तु न तुल्या न वा मेषादौ । तथा च ग्रहाणां शीघ्रोच्चानां च भगणपूर्त्तित्वात्त्रेतादिसमयावगतग्रहकालादागतराश्यादयः सृष्ट्यादिगतकालावगतराश्यादिभिस्तुल्या भगणानां च प्रयोजनाभावादिति भावः ॥ ५७ ॥

भा० टी०–इस कृतयुगके अन्तमें पात और मन्द व उच्चके सिवाय समस्त ग्रह मध्य मेषके प्रथममें थे ॥ ५७ ॥

अथोच्चपातयोर्विशेषमाह–

मकरादौ शशाङ्कोच्चं तत्पातस्तु तुलादिगः ॥
निरंशत्वं गताश्चान्ये नोक्तास्ते मन्दचारिणः ॥ ५८ ॥

चन्द्रस्य मन्दोच्चं तदानीं मकरादावस्ति तत्पातश्चन्द्रपातस्तुलादिस्थोऽस्ति । तुकारादतस्तयोस्त्रेतादित आनयनं नवषड्राशियोजनविशेषेण सुगममित्यर्थः । नन्वेवमन्येषामपि यद्राश्यादिस्थत्वं तत्कथनेन तेषामप्यानमनं सुगमं भविष्यतीत्यत आह । निरंशत्वमिति । अन्येऽवशिष्टा मन्दोच्चपाता ये मन्दचारिणोऽल्पगतय उक्ताः पूर्वं भगणोक्त्या कथितास्ते चकारादस्मिन् कृतयुगान्ते निरंशत्वमंशाभावतां न प्राप्ताः । तथाच तेषां राश्यादिकथने गौरवं मन्दगतित्वादेकदानीताः सहस्रवर्षपर्यंतमुपयुक्ता भवंतीति निरंतरं सत्साधनावश्यकताभावात्तेषामानयनं त्रेतादिगताब्देभ्य उपेक्षितमिति भावः । यदि च तत आनीयन्ते तदा स्वस्वक्षेपयुक्ताः कार्याः । क्षेपकास्तु रविमन्दोच्चं राश्यादिकं ० । ७ । २८ । १२ । भौमस्य ३ । ३ । १४ । २४ । बुधस्य ५ । ४ । ४ । ४८ गुरोः ० । ९ । ० । ० । शुक्रस्य ११ । १३ । २१ । ० । शनेः ४ । २० । १३ । १२ । भौमपातस्य ९ । ११ । २० । १२ । बुधस्य ८ । ११ । १६ । ४८ । गुरोः ८ । ८ । ५६ । २४ । शुक्रस्य ४ । १७ । २५ । ४८ । शनिपातस्य ४ । २० । १३ । १२ । एवमिष्टकालादपि ग्रहाः साध्याः स्वस्वक्षेपयोजनपूर्वम् ॥ ५८ ॥

भा० टी०–उच्च चन्द्रमा मकरका और चंद्रमाका पात तुलाकी आदिमें था मन्द चलनेवाले मन्दोच्चादिके अंशादिभी थे इस कारण नहीं कहे गये ॥ ५८ ॥

अथ ग्रहाणां देशान्तरफलानयनार्थं भूपरिधिं स्वोपजीव्यभूव्यासकथनपूर्वकमाह–

योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु ॥
तद्वर्गतो दशगणात्पदं भूपरिधिर्भवेत् ॥ ५९ ॥

मंदोचके ० । ७ । २८ । १२ । मं. ३ । १४ । २४ । ५ । ४ । ४ । ४८ वृ० । ९ । शु० ११ । १३ । २१ । श ४ । २० । १३ । १२ पात म ९ । ११ । २० । १२ बु ८ । ११ १६ । ४८ बृ ८ । ८ । ५६ । २४ । शु ४ । १७ । २५ । । ४८ । श ४ । २० । १३ । १२ कृतयुगके अन्तमें थे ।

अष्टौ शतानि द्विगुणानि षोडशशतं योजनानि भूकर्णौ भुवो भूगोलस्य कर्णो वृत्तपरिधिमध्यभागसूत्रं परिध्यर्द्धमितचापस्य ज्यारूपं द्विगुण इत्यनेन शतान्यष्टौ केंद्रात्परिधिपर्यंतमृजुसूत्रस्य मानमिति सूचितम् । कक्षाव्यासार्द्धस्य कर्णव्यवहारवदस्यापि भूकर्णव्यवहारः तुकारात्पुराणाविरुद्धोऽपि प्रत्यक्षसहकृतागमप्रमाणसिद्धः । अस्मात् परिधिज्ञानमाह।तद्वर्गत इति भूव्यासवर्गात्तु ल्ययोर्घातरूपाद्दशगुणान्मूलम् । कस्यायं समद्विघात इति तन्मूलं तत्प्रकारश्च ग्रन्थांतरे प्रसिद्धः भूपरिधिः स्यात् । अत्रोपपत्तिः । गजाग्निवेदराममित ३४३८ त्रिज्यायाः कक्षाव्यासार्द्धत्वद्द्विगुणत्रिज्यारूपव्यासे चक्रकलातुल्यः परिधिः २१६०० तदेष्टव्यासे कइति गुण २१६०० हरौ ६८७६ हरेणापवर्तितौ हरस्थाने रूपं गुणस्थाने सार्द्धाष्टावयवयुतास्त्रयस्तथा च व्यासोऽनेन गुणितः परिधिर्भवति । तत्र भगवता गुणस्यैकस्थानकरणार्थं वर्गः कृतः ९-५२ । ५२ । अत्र स्वल्पान्तराद्दशगृहीताः वर्गेण वर्गं गुणयेदित्युक्तत्वाद्व्यासवर्गो दशगुणितस्तन्मूलं व्यासो मूलरूपगुणगुणितः सिद्धो भवति । यद्यपि वर्गस्थाने दशग्रहणेन स्थूलमिदमानयनं तथापि परमकारुणिकेन भगवता लोकानुग्रहार्थं गणितलाघवायांगीकृतम् । वस्तुतो भगवता वेदमंगलविश्वरूपमितव्यासस्य ११३८४ । परिधिर्गणिता गतः प्रत्यक्षेण खखखरसराममितः ३६००० अत्र पूर्वोक्तरीत्यापवर्तने गुणाः ३।९।४४। पादोन दशावयवयुतत्रयमस्य वर्गो दशप्रायः ९ । ५९ । ५९ । इत्युपपन्नमुक्तम् ॥ ५९ ॥

भा० टी०—भूकर्ण १६०० योजन है । तिसके वर्गको १० से गुणा करके पद अर्थात् मूल निकाल लेनेमे भूपरिधि होती है ॥ ५९ ॥

स्फुटपरिध्यानयनं देशान्तरफलानयनं तत्संस्कारं च श्लोकाभ्यामाह—

लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः ॥
तेन देशांतराभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता ॥ ६० ॥
कलादितत्फलं प्राच्यां ग्रहेभ्यः परिशोधयेत् ॥
रेखा प्रतीचीसंस्थाने प्रक्षिपेत्स्युः स्वदेशजाः ॥ ६१ ॥

द्वादशपलभयोर्वर्गयोगमूलमक्षकर्णः । अनेन द्वादशगुणिता त्रिज्याभक्ता फलं लंबज्या । अनया गुणितो भूपरिधिस्त्रिज्यया गजाग्निवेदराममितया भक्तः फलं स्वकः स्वदेशसम्बन्धी स्पष्टो भूपरिधिः स्यात् । ग्रहस्य गतिर्दे-

शान्तराभ्यस्ता स्वरेखादेशस्वदेशयोरन्तरयोजनानि देशान्तरपदवाच्यानि तैर्गुणिता तेन स्पष्टेन भूपरिधिना भक्ता फलं कलादिकं तत्फलं प्राच्यां स्वरेखादेशात्स्वदेशस्य पूर्वदिग्भागस्थितत्वे ग्रहेभ्यः कलादिस्थाने परिशोधयेद्वर्जयेद्धीनं कुर्यादित्यर्थः ।रेखाप्रतीचीसंस्थाने स्वरेखादेशात्पश्चिमदिग्भागस्थिते स्वदेशे ग्रहेभ्यः कलादिस्थाने प्रक्षिपेद्योजयेत्कुर्यात् । गणक इति शेषः । ते सिद्धा ग्रहाः स्वदेशजाः स्वदेशीया भवन्ति । पूर्वमहर्गणस्य लंकादेशीयत्वेन तदुत्पन्नग्रहाणां लंकादेशीयत्वात् । अत्रोपपत्तिः । यद्यपि भूमेः कन्दुकाकारत्वेन सर्वत्राभिन्नः परिधिरिति स्फुटपरिध्यसम्भवस्तथापि निरक्षदेशस्य मध्यत्वकल्पनेनोक्तो भूपरिधिस्तद्देशानामेवं तदन्यत्र तदनुरोधेन वृत्तानां लघुत्वसम्भवेनोत्तरोत्तरं न्यूनपरिधिः स्वदेशे स्फुटसंज्ञः । एवं नवत्यक्षांशे मेरुस्थाने वडवास्थाने च परिध्यभावः । निरक्षदेशे परम उक्तः परिधिरतो यत्राक्षांशा नवतिपरमास्तत्र लम्बांशाभावः । यतोऽक्षांशाभावस्तत्र लम्बांशाः परमा नवतिः । लम्बांशाक्षांशौ तु वक्ष्यमाणस्वरूपौ । तथाच लम्बांशह्रासानुरोधेन परिधेरपि ह्रास इति परमलम्बांशैर्नवतिमितैरुक्तो भूपरिधिस्तदा स्वदेशीयलम्बांशैः क इत्यनुपात उपपन्नोऽपि वृत्ताश्रितांशेभ्योऽनुपातानामसम्भवेन सर्वैरुपेक्षितत्वाच्च ज्यानुपातस्य सर्वैरङ्गीकृतत्वात्प्रमाणस्थाने प्रमाणांशज्या परमात्रिज्या । इच्छास्थाने इच्छांशानां ज्यालम्बज्येति युक्तमुक्तमुपपन्नं स्पष्टपरिध्यानयनम् । देशान्तरोपपत्तिस्तु लङ्कादेशीयो ग्रहः स्वदेशतः समसूत्रेण यो दक्षिणोत्तरयोर्निरक्षदेश आसन्नस्तत्र कार्यः । तदर्थं लङ्कादेशस्वनिरक्षदेशयोजनज्ञानमावश्यकम् । एतत्त्वस्मादृशामशक्यमिति परिध्यपचयवत्तदन्तरतोपचितं लङ्कोत्तरदक्षिणसूत्रस्थस्वरेखादेशस्वदेशयोरन्तरं स्वपरिधिस्थं गणनया ज्ञातमस्मात्स्वपरिधिनेदमन्तरं योजनात्मकं तदोक्तपरिनाधिना किमित्यनुपातेन लङ्कास्वनिरक्षदेशयोरन्तमुक्तपरिधिस्थं ज्ञातम् । ततोऽर्कोदयद्वयान्तरकालेनार्को भूपरिधिं क्रामति तत्र ग्रहाः स्वां स्वां गतिं कलात्मिकामतिक्रामन्त्यत उक्तपरिधिना ग्रहगतिकलास्तदा प्राक्सिद्धलङ्कास्वनिरक्षदेशान्तरयोजनैः केत्यनुपातेनोक्तपरिध्योर्गुणहरयोस्तुल्यत्वेन नाशात्स्वरेखादेशस्वदेशयोरन्तरयोजनानि ग्रहगतिगुणितानि स्वपरिधिभक्तानि फलं ग्रहस्यान्तरकलाः । यद्यपि स्वपरिधिना गतिकलास्तदा स्वरेखादेश-

स्वदेशयोरन्तरयोजनैः केत्येकानुपातेनैव देशान्तरफलमुपपन्नं भवति तथापि निरक्षदेशपदार्थसम्बन्धाभावादिदमुपपन्नं फलं निरक्षदेशीयं कथमित्याग्रहनिरातातिमन्दस्य बोधार्थं गुरुभूतमप्यनुपातद्वयमुक्तम् । तद्धनर्णोपपत्तिस्तु लङ्कादेशात्स्वनिरक्षदेशस्य पूर्वभावस्थितत्वे लङ्कादेशार्द्धरात्रात्स्वनिरक्षदेशार्द्धरात्रमर्वाग्भवति । तदुदयकालात्प्रवहानिलवेगेन पूर्वभागे पूर्वमेवोदयात् । अतोऽग्रिमकालीनग्रहस्य पूर्वकालिकत्वासिद्ध्यर्थं तत्फलं न्यूनं कार्यम् । एवं निरक्षदेशस्य लङ्कातः पश्चिमस्थत्वे लङ्कोदयानन्तरोदयसद्भावाल्लङ्कार्द्धरात्रादग्रिमकालेऽर्द्धरात्रमतः पूर्वकालिकग्रहस्याग्रिमकालिकत्वसिद्ध्यर्थं तत्फलं योज्यम् । चक्रशोधितपातस्यायं संस्कारो विपरीत इति ज्ञेयम् । स्वनिरक्षदेशस्य लङ्कातः पूर्वापरभागस्थत्वं स्वरेखादेशात्स्वदेशस्य पूर्वापरभागस्थस्यानुरोधेनेति स्वनिरक्षदेशस्वदेशयोर्याम्योत्तरैक्यादर्द्धरात्रयोरभिन्नत्वात्स्वदेशार्धरात्रेऽपि स्वनिरक्षदेशार्द्धरात्रकालिका एव ग्रहा अविकृता इति सर्वमुक्तमुपपन्नम् ॥ ६० ॥ ६१ ॥

भा० टी०—पृथ्वीकी परिधिको अपने देशकी लम्बज्यासे गुणकरके त्रिज्यासे भाग करनेपर स्फुट भूपरिधि होती है । (ज्यादिको दूसरे अध्यायमें देखना चाहिये) देशान्तर द्वारा ग्रहभुक्ति गुणकरके स्फुट भू-परिधिसे भाग करनेपर जो कलादि फल हो, वह अपने देशसे पूर्वमें हो तो ग्रहसे घटावै । पश्चिममें हो तौ मिलावे ॥६०॥६१॥

अथ रेखास्वरूपं तद्देशांश्च कांश्चिदाह—

राक्षसालयदेवौकःशैलयोर्मध्यसूत्रगाः ॥
रोहीतकमवन्ती च यथा सन्निहितं सरः ॥ ६२ ॥

राक्षसालयं लङ्का देवानां गृहरूपः पर्वतो मेरुरनयोर्मध्ये ऋजुसूत्रं तत्र स्थिता देशा रेखाख्या लङ्कादक्षिणसूत्रस्थास्त्वनुपयुक्तास्तत्र मनुष्यागोचरत्वादिति नोक्ताः । ज्ञानार्थमुदाहरति । रोहीतकमिति । यथा रोहीतकं नगरमवन्त्युज्जयिनी सन्निहितं सरः कुरुक्षेत्रम् । चकारस्तथेत्यव्ययपरः तथान्यानि परस्परं सन्निहिततया ज्ञेयानि ॥ ६२ ॥

भा० टी०—राक्षसालय और देवौक पर्वतके मध्यमें जो सूत्र रोहीतक, अवन्ती और कुरुक्षेत्रादि स्थानके निकट दिया गया है, वही मध्य रेखा है ॥ ६२ ॥

१ दैनिकग्रहभुक्तिकलादि र. ५९ । ८ । च. ७९० । ३८ । मं. ३१ । २६ बु-शी. २४ । ५३ बृ. ४ । ५९ शु. शी. ९६ । ८ श. २ । ० च-उ. ६ । ४१ रा. वक्र ३ । ११ । भूपरिधि ५० । ६० योजन है ।

ननु येन स्वस्थानं रेखापुरात्पूर्वतोऽपरत्र वा कियद्योजनान्तरेणास्तीति न ज्ञायते तेन देशान्तरफलादिकं कथं कार्यमित्यतः श्लोकत्रयेणाह—

अतीत्योन्मीलनादिन्दोः पश्चात्तद्गणितागतात् ॥
यदा भवेत्तदा प्राच्यां स्वस्थानं मध्यतो भवेत् ॥ ६३ ॥
अप्राप्य च भवेत्पश्चादेवं वापि न मीलनात ॥
तयोरन्तरनाडीभिर्हन्याद्भूपरिधिं स्फुटम् ॥ ६४ ॥
षष्ट्या विभज्य लब्धैस्तु योजनैः प्रागथापरैः ॥
स्वदेशपरिधिर्ज्ञेयः कुर्याद्देशान्तरं हितैः ॥ ६५ ॥

चन्द्रस्य सर्वग्रहणांतर्गतोन्मीलनकालाद्विना देशांतरं गणितागताचंद्रग्रहणोक्तप्रकारगणितज्ञानात्। अतीत्य तत्कालस्यातिक्रमणं कृत्वा पश्चादनंतरकाले मन्दबोधार्थमिदम्। अन्यथातीत्य पश्चादित्यनयोरेकतरस्य वैयर्थ्यापत्तेः। तच्चंद्रबिम्बस्योन्मीलनं यदा यदीत्यर्थः। स्यात्तदा तर्हीत्यर्थः। स्वाभिमतस्थानं मध्यतो मध्यरेखादेशात्पूर्वदिशि भवेत्तिष्ठतीत्यर्थः। पश्चात्तदित्यत्र दृक्सिद्धमिति पाठे तु प्रत्यक्षमुन्मीलनमित्यर्थः। अप्राप्य तदतिक्रमणमकृत्वा पूर्वकाल एव। चकाराचन्द्रोन्मीलनं यदि स्यात्तर्हि मध्यरेखातः स्वस्थानमित्यर्थः। पश्चात् पश्चिमदिग्भागे भवेत्तिष्ठतीत्यर्थः। ननु चन्द्रस्य स्पर्शमोक्षसम्मीलनोन्मीलनकालेषून्मीलनकाल एव कथं गृहीत इत्यत आह-एवमिति। वा प्रकारांतरेण निमीलनाचंद्रसम्मीलनकालात्। एवं चन्द्रग्रहणाधिकारोक्तगणितप्रकारज्ञानादनंतरकाले सम्मीलनं यदि तर्हि मध्यरेखादेशात्स्वस्थानं पूर्वदिग्भागे तिष्ठति पूर्वकाले सम्मीलनं यदि तर्हि मध्यरेखादेशात्स्वस्थानं पश्चिमदिग्भागे तिष्ठतीत्यर्थः। अपिशब्दो निश्चयार्थे। तेनोन्मीलनसम्मीलनकालयोर्भिन्नरीतिव्युदासः। तथा चोन्मीलनग्रहणमुपलक्षणार्थं तत्रादि स्पर्शमोक्षयोर्ग्रहणाधंरूपयोरनिश्चयत्वसम्भावनयोक्तिमुपेक्ष्य ग्रहणमध्यस्थयोः सम्मीलनोन्मीलनयोर्निश्चयत्वेनोक्तिः कृतेति भावः। अथ देशांतरयोजनपुरःसरं देशांतरफलं सिद्धिमित्याह—तयोरिति। प्रत्यक्षोन्मीलनकालगणितागतोन्मीलनकालयोः सम्मीलनकालयोस्तादृशयोर्वान्तरघटीभिर्भूपरि-

१ अतीत्योन्मीलनादिन्दोर्दृक्सिद्धं गणितागतात्। इति वा पाठः।

धिस्पष्टं स्वदेशभूपरिधिं लंबज्याघ्न इत्याद्यवगतं हन्याद्गुणयेत् । तादृशं गुणितस्पष्टपरिधिं षष्ट्या भक्त्वा लब्धैः प्राग्भैर्योजनैः पूर्वभागयोजनैः । अथाथवा परैः पश्चिमविभागस्थितैर्योजनैः स्वदेशपरिधिः स्वदेस्यपरिधिरवधिः स्वदेशस्थानमण्डलरूपस्तुकाराद्रेखादेशांतरित इत्यर्थः । ज्ञेयो गणकेनेतिशेषः । स्वरेखास्वदेशयोरन्तर योजनानि फलमिति फलितार्थः।तैरंतरयोजनैर्देशांतर तेन देशांतराग्न्यस्तेत्यादिप्रागुक्तप्रकारेण ग्रहाणां देशांतरफलं कलात्मकं कुर्याद्गणक इति शेषः । हिकारात्तत्संस्कारोप्यभिन्नप्रकारत्वादभिन्न इत्यर्थः । अत्रोपपत्तिः । विना देशांतरसंस्कारं ग्रहगणितं स्वरेखादेशीयं भवति । अतो गणितसाधितोन्मीलनसम्मीलनादिकालाः स्वरेखादेशे सिद्ध्यंति । स्वदेशे पूर्वविभागस्थे प्रथमं स्वस्य सूर्योदयादिकालास्तदंतरं रेखाया इति चंद्रग्रहणस्य सर्वदेशे युगपत्संभवात् । गणितागतकालाद्रेखादेशस्थादनंतरं स्पर्शादिकालो भवति । एवं स्वदेशे पश्चिमविभागस्थे प्रथमं रेखादेशेऽर्कोदयादिकालास्तदनंतरं स्वदेश इति रेखास्थगणितागतस्पर्शादिकालाद्घट्यात्मकात्पूर्वमेव स्पर्शादिकालो भवति । अतः सम्यगुणपपन्नमतीत्येत्यादिसार्द्धश्लोकोक्तम् । स्वदेशरेखादेशसूर्योदयाद्यवधिकघट्यात्मककालयोरंतरंदेशांतरघटिकाः सिद्धाः सूर्योदयद्वयांतरकालेनार्को भूपरिधिं क्रामतीति षष्टिसावनघटीभिर्भूपरिधियोजनानि स्वदेशीयानि तदा तत्कालांतररूपदेशांतरघटीभिः कानीत्यनुपातेन स्वरेखादेशस्वदेशयोरन्तरयोजनानि । ज्ञातेभ्यः एभ्यः पूर्वदिशैव देशांतरं भवति । सूर्यग्रहणस्य सर्वदेशे युगपदसम्भवात्तदुन्मीलनकालादिनोक्तदिशा नैतज्ज्ञानमित्यनुरुक्तेरिति ध्येयम् ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

भा० टी०—गणितमें पडेहुए चंद्रग्रहणके पीछे जिस स्थानमें ग्रहण निकलताहो वही स्थान मध्यरेखासे पूर्व दिशामें और आगे होनेपर पश्चिममें जानना चाहिये। प्रत्यक्ष और गणितसे आये हुए कालके अंतर दण्ड स्वभूपरिधिसे गुणकरके ६० से भाग करनेपर स्वदेशांतर योजन प्राप्त होजायँगे। तिनसे अपने देशकी भूपरिधि और देशांतरादि निर्णय करना उचित है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अथ वारप्रवृत्तिकालज्ञानमाह—

वारप्रवृत्तिः प्राग्देशे क्षपार्द्धेऽभ्यधिके भवेत् ॥
तद्देशान्तरनाडीभिः पश्चादूने विनिर्दिशेत् ॥ ६६ ॥

रेखातः पूर्वभागस्थितस्वाभिमतदेशे तद्देशांतरनाडीभिः पूर्वप्रकारज्ञातदेशांतरनाडीभिरभ्यधिकेऽर्धरात्रे युक्तार्द्धरात्रसमयेऽर्धरात्रादनंतरं देशांतरघटीकाल इत्यर्थः । वारप्रवृत्तिर्वारस्यादिभूतः कालः स्यात् । रेखातः पश्चिमभागस्थदेशे पूर्वप्रकारज्ञातदेशांतरघटीभिरूनेऽधरात्रेऽर्धरात्रात् पूर्वमेव देशांतरघटीकाले वारप्रवृत्तिं विनिर्दिशेद्गणकः कथयेत् । अत्रोपपत्तिः । यमकोटिसूर्योदयकालो लङ्कार्धरात्रसमयरूपो ग्रहचारप्रवृत्तिरूपः स्वदेशे कदेति रेखातः पूर्वपरभागयोः स्वार्धरात्रकालादनंतरं पूर्वक्रमेण तदर्द्धरात्र देशांतरघटीभिर्भवति । स्वनिरक्षदेशस्वदेशार्धरात्रयोर्युगपत्संभवात् । अत उपपन्नं वारप्रवृत्तिरित्यादि । नन्वेतत्कालज्ञानं किमर्थमुक्तं प्रयोजनाभावादिति चेन्न । अहगणोत्पन्नग्रहस्य तात्कालिकत्वात् तत्कालज्ञानेन स्वार्धरात्रसमयस्य तत्कालस्य च यदन्तरं तेन तात्कालिकस्य ग्रहस्य चालने कृते सति स्वार्धरात्रसमये ग्रहः पूर्वसाधित एव भवतीति मन्दप्रत्ययस्यैव प्रयोजनत्वात् तत्कालज्ञानेन ग्रहस्य देशांतरसंस्काराकरणमिति लाघवाच्च । अतएव समनन्तरमेव ग्रहस्येष्टकालिकत्वसिद्ध्यर्थं चालनोक्तिः सङ्गच्छते । एतेन तत्ततोऽर्धरात्रात्क्षपाध निरक्षरात्र्यर्धे पञ्चदशघटिकात्मककाल उत्तरगोलेऽर्कोदयाच्चरघटीमिताग्रिमकाले दक्षिणगोलेऽर्कोदयाच्चरघटीमितपूर्वकाल इति फलितम् । पूर्वपश्चिमदेशयोर्देशान्तरघटीभिरधिकोने काले क्रमेण वारप्रवृत्तिरिति व्याख्यानं लङ्कासूर्योदयकालरूपवारप्रवृत्तिबोधकमपास्तम् । तच्छब्दस्य पूर्वपरामर्शकत्वादर्धरात्रादित्यस्यानुपपत्तेः पञ्चदशघटिकाकालस्य क्षपार्द्धशब्देनासिद्धेश्च । श्रीभगवताहर्गणस्य लङ्कायामार्द्धरात्रिक इत्यनेन लङ्कार्धरात्रकालिकत्वोक्तेः स्वदेशे तत्कालरूपवारप्रवृत्तिकालज्ञानस्योक्तस्य सङ्गत्यनुपपत्तेः । व्यवहारयोग्यलङ्कासूर्योदयकालवारप्रवृत्तेरत्र सङ्गत्यभावाच्च ॥६६॥

भा० टी०-देशांतर घडीके अनुसार पूर्वदेशके मध्य मध्यरात्रमें मिलानेसे और पश्चिम देशमें घटानेसे वार आदि निकल आवेंगे ॥ ६६ ॥

अथ ग्रहस्य तात्कालिककरणमाह–

इष्टनाडीगुणा भुक्तिः षष्ट्या भक्ता कलादिकम् ।
गते शोध्यं युतं गम्य कृत्वा तात्कालिको भवेत् ॥६७॥

यत्कालिको ग्रहस्तत्कालात्पूर्वमपरत्राभीष्टकाले या इष्टघट्यस्ताभिर्गु-

णिता ग्रहमध्यगतिः षष्ट्या भक्ता फलं कलादिकं गते गताभीष्टकाले पूर्वकालेऽभीष्टे सतीत्यर्थः । शोध्यं ग्रहे हीनं गम्येऽग्रिमाभीष्टकाले सति ग्रहे युतं कृत्वा गणकेन विधाय तात्कालिकः स्वाभीष्टसामयिको ग्रहो भवेत् । गणकेन ज्ञातो भवेत् । अत्रोपपत्तिः । षष्टिसावनघटीभिर्गतिकलास्तदाभीष्टगतैष्यघटीभिः का इत्यनुपातेनावगतकलात्मकचालनेन ग्रहः क्रमेण युतोनस्तात्कालिको ग्रहो भवति । चक्रशोधितपातस्य विपरीतमिति ज्ञेयम् । चालितस्पष्टग्रहापेक्षया चालितमध्यग्रहः स्पष्टः कृतश्चेत्सूक्ष्म इति सूचनार्थमत्र ग्रहचालनमुक्तम् ॥ ६७ ॥

भा० टी०—भुक्तिको इष्ट नाडीसे[1] गुण करके, ६० से भागकरके फल जाननेपर योग और गत होनेपर वियोग (अलग) करनेपर तिस कालका ग्रह होगा ॥ ६७ ॥

अथ चन्द्रस्य परमविक्षेपमानमाह—

भचक्रलिप्ताशीत्यंशपरमं दक्षिणोत्तरम् ॥
विक्षिप्यते स्वपातेन स्वक्रान्त्यन्तादनुष्णगुः ॥ ६८ ॥

अनुष्णगुश्चन्द्रः स्वक्रान्त्यन्ताद्विषुवद्वृत्तानुकारिणावलम्बितश्चन्द्रः स्वासन्नक्रान्तिवृत्तप्रदेशेनाकृष्यते तथा तत्स्थानात् स्वभोगमितरेवत्यासन्नाद्यवधिकाभीष्टस्थानभूतक्रान्तिवृत्तप्रदेशादपि स्वपातेन चंद्रपातेन दक्षिणोत्तरं दक्षिणस्यामुत्तरस्यां वा तत्सूत्रेण विक्षिप्यते त्यज्यते स्वभोगस्थानक्रान्तिवृत्तप्रदेशे चन्द्रबिंबं स्थातुं पातेन न दीयते ततोऽपि चन्द्रबिंबं स्थलान्तरे दक्षिणोत्तरसूत्रेण किञ्चिदन्तरेण त्यज्यत इत्यर्थः । एतेन सूर्यस्य पाताभावात्स्वभोगस्थानीयक्रान्तिवृत्तप्रदेशे बिंबं भवति न विक्षिप्तमित्यनुष्णगुरित्यनेनापि सूचितम् । परमविक्षेपणं दक्षिणोत्तरमित्यस्य विशेषणान्याह—भचक्रेति । द्वादशराशिकलानां षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रमितानामेषाम् २१६०० अशीतिभागः स्वसप्तयमकलामितः परमं यस्य तद्दक्षिणोत्तरमित्यर्थः । चन्द्रस्य परमो विक्षेपः स्वभमित इति फलितम् । केचिदत्र सूर्यस्य शराभावान्तत्कक्षातो भचक्रस्य पञ्चमकक्षात्वात् ततोऽपि चन्द्रकक्षाया अष्टमत्वात् तत्र दक्षिणोत्तररूपदिग्द्वये चन्द्रस्य विक्षेपणात् पंचाष्टद्विघातरूपाशीत्यंशो भचक्रलिप्तानां परमचन्द्रविक्षेप इत्युपपत्तिमाहुः ॥ ६८ ॥

---

१ मध्यरात्रसे अभीष्टदण्डकी अलगताका नाम इष्ट नाडी है । अभीष्ट दण्ड परे होनेसे इष्टदण्ड निकलता है ।

भा० टी०–चन्द्रमाके पातसे भचक्र कला संख्याके अस्सी भाग. क्रान्तिसे उत्तरमें या दक्षिणमें परम विक्षेप होता है ॥ ६८ ॥

अथैवं भौमादयोऽपि स्वपातैर्विक्षिप्यन्त इत्येषामपि परमविक्षेपानाह–

तन्नवांशं द्विगुणितं जीवस्त्रिगुणितं कुजः ॥
बुधशुक्रार्कजाः पातैर्विक्षिप्यन्ते चतुर्गुणम् ॥ ६९ ॥

तन्नवांशं तस्य चन्द्रपरमविक्षेपस्य नवभागं त्रिंशतं द्विगुणितं षष्टिकलामितं परमेण तदंतरेणेत्यर्थः । पातेन गुरुर्दक्षिणोत्तरयोः क्रमेण विक्षिप्यते । भौमः पातेन त्रिगुणितं त्रिंशतं नवतिकलामितपरमांतरेण विक्षिप्यते चतुर्गुणं त्रिंशतं विंशत्यधिकशतकलामितपरमांतरेण बुधशुक्रशनैश्चराः स्वस्वपातैः प्रत्येकं विक्षिप्यन्ते स्वभोगक्रान्तिवृत्तप्रदेशात्त्यज्यन्ते । केचिदत्रापि त्रयस्त्रिंशत्कला बिंबाच्चंद्रान्नवांशद्विगुणेन सत्र्यंशकलासप्तकस्य गुरुबिम्बस्य तद्रूपं विक्षेपणं युक्तमस्माद्भौमस्याधःस्थत्वात् त्रिगुणं परमविक्षेपणमस्मादपि बुधशुक्रयोर्लघुपृथुबिम्बयोरधःस्थत्वाच्चतुर्गुणं परमविक्षेपणं तुल्यं नाल्पाधिकमेवं शनेरुच्चकक्षास्थत्वेऽपि मन्दत्वाद्बुधशुक्रविक्षेपणतुल्यं परमविक्षेपणं युक्तमित्युपपत्तिमाहु ॥ ६९ ॥

भा० टी०–तिसके नवांशसे दूना बृहस्पति, तिगुना मंगल, और चौगुने बुध शुक्र व शनि पातकरके विक्षिप्त होते हैं ॥ ६९ ॥

नन्वेषामत्र कथने का सङ्गतिरित्यतः पूर्वोक्तमुपसंहरन्नाह–

एवं त्रिघनरन्ध्रार्करसार्कार्का दशाहताः ॥
चन्द्रादीनां क्रमादुक्ता मध्यविक्षेपलिप्तिकाः ॥ ७० ॥

एवं पूर्वश्लोकाभ्यां त्रिघनः सप्तविंशतिरंध्राणि नव द्वादश षट् द्वादश द्वादशैते दशगुणिताः क्रमादुक्ताङ्कक्रमाच्चंद्रादीनां वारक्रमाच्चंद्रभौमबुधगुरुशुक्रशनीनां विक्षेपकला मध्या अग्रे परमशरकलानामनियतत्वेनोक्तेः कथिताः । तथा च मध्यत्वेनैषामत्र प्रसंगसंगत्या कथनमिति भावः ॥ ७० ॥

भा० टी०–ऐसेही २७, ९, १२, ६ १२, १२के, १० से गुण करके क्रमानुसार चन्द्रादिमें विक्षेपकला होंगी ॥ ७० ॥

अथ पूर्वापरग्रंथयोरसंगतिनिवारणायधिकारसमाप्तिं फक्किकयाह–

इति सूर्यसिद्धान्ते मध्यमाधिकारः ॥ १ ॥

मयं प्रति सूर्यांशपुरुषेण सूर्योक्तस्यैव कथनादेतदुक्तस्यापि सूर्यसिद्धा–

न्तत्वम् । तत्र मध्यममानेन गणितमधिक्रियते यस्मिन्नेतादृशो ग्रंथैकदेशः परिपूर्तिमाप्त इत्यर्थः ॥ रंगनाथेन रचिते सूर्यसिद्धान्तटिप्पणे ॥ मध्याधिकारः पूर्णोऽयं तद्गूढार्थप्रकाशके ॥ इति श्रीसकलगणकसार्वभौमबल्लालदैवज्ञात्मजरंगनाथगणकविरचिते गूढार्थप्रकाशके मध्यमाधिकारः पूर्णः ॥ १ ॥

इति प्रथमाध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ स्पष्टाधिकारो व्याख्यायते । तत्र ग्रहाणां मध्यमातिरिक्तस्पष्टक्रियायां कारणमाह-

अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्त्तयो भगणाश्रिताः ॥
शीघ्रमन्दोच्चपाताख्या ग्रहाणां गतिहेतवः ॥ १ ॥

शीघ्रोच्चमन्दोच्चपातसंज्ञकाः पूर्वोक्तपदार्थजीवविशेषाः सूर्यादिग्रहाणां गतिकारणभूताः सन्ति । ननु कालेनैव ग्रहचलनं भवतीति कालो गतिहेतुर्नैत इत्यत आह-कालस्येति । पूर्वप्रतिपादितकालस्य स्वरूपाणि तथा चैषां कालमूर्त्तित्वेन ग्रहगतिहेतुत्वे न सम्भवतीति भावः । ननु कालस्य घट्यादिमूर्त्तित्वादेषां तदात्मकत्वाभावात्कथं कालमूर्त्तित्वमित्यत आह-भगणाश्रिता इति । भगोलस्थक्रान्तिवृत्तानुसृतग्रहगोलस्थ. क्रान्तिवृत्तप्रदेशाश्रिता राश्यात्मका इत्यर्थः । तथा च ग्रहराश्यादिभोगानां कालवशेनैवोत्पन्नत्वात् तदात्मकानां कालमूर्त्तित्वामिति भावः । ननु दृश्यन्ते कुतो नेत्यत आह-अदृश्यरूपा इति । वायवीयशरीरा अव्यक्तरूपत्वादप्रत्यक्षा इति भावः एवं च ग्रहाणामुच्चादिसद्भावात्स्पष्टक्रियोत्पन्नेति तात्पर्यम् ॥ १ ॥

भा० टी०-शीघ्रमन्दोच्चपात इत्यादि अदृश्यरूपी, भगणाश्रित एककालकी मूर्त्ति और ग्रहोंकी गतिके हेतु हैं ॥ १ ॥

अथानयोरुच्चपातयोर्मध्योच्चयोर्गतिहेतुत्वं प्रतिपादयति-

तद्वातरश्मिभिर्बद्धास्तैः सव्येतरपाणिभिः ॥
प्राक्पश्चादपकृष्यन्ते यथासन्नं स्वदिङ्मुखम् ॥ २ ॥

तेषामुच्चसंज्ञकजीवानां वायुरूपा ये रश्मयो रज्जवस्ताभिर्बद्धाविम्बात्मकग्रहास्तैरुच्चसंज्ञकजीवैः सव्यवामहस्तैरुच्चबहुत्वेन हस्तबाहुल्याद्बहुवचनं हस्ताभ्यामित्यर्थः । स्वदिङ्मुखं स्वाभिमुखं यथासन्नं ग्रहविम्बं भवति तथा

प्राक्पश्चात् पूर्वपश्चिममार्गाभ्यामित्यर्थः। अपकृष्यन्ते आकर्ष्यन्ते। अयमभिप्रायः। भचक्रगोलस्थ क्रान्तिवृत्तानुसृतग्रहाकाशगोलान्तर्गतक्रान्तिवृत्ते कक्षारूपे स्वस्वप्रदेशे ग्रहोच्चपातास्तिष्ठन्ति। तत्र बिम्बव्यासोनकक्षाकारसूत्रं प्रवहवाय्वतिरिक्तवायुरूपं स्वतो गतिस्वस्थ ने कम्पमानं ग्रहबिम्बव्यासे पूर्वापरे प्रोतमुच्चजीवहस्तद्वयान्तर्गतमास्ति। अथ ग्रहबिम्बमुच्चस्थानात्पूर्वस्मिन्स्वशक्त्या गच्छदपि वामहस्तस्थितसूत्रेणोच्चस्थानात्पूर्वरूपेण ग्रहस्थानात्पश्चिमरूपेण बृहत्सूत्रावयवात्मकेन स्वस्थानात्पश्चात् स्वाभिमुखमपकृष्यते निरन्तरमुच्चदेवतैः स्वशक्त्या यावत् षड्भान्तरं तयोः। अनन्तरं तन्मार्गेणाकर्षणसम्भवात्पूर्वस्मिन् गच्छद्ग्रहबिम्बं सव्यहस्तस्थितसूत्रेणोच्चस्थानात् पश्चिमरूपेण ग्रहस्थानात्पूर्वरूपेण बृहत्सूत्रावयवात्मकेन स्वस्थानात्पूर्वस्मिन् स्वाभिमुखमाकृष्यते स्वशक्त्या निरन्तरं यावदन्तराभावस्तयोरिति ॥ २ ॥

भा०टी०-वह वायु (अदृश्य) किरणों करके बाएं और दाहिने हाथमें खेंचकर सन्मुख पूर्व या पीछे अपने स्थानसे ग्रहोंको ले जाते हैं ॥ २ ॥

अथातएवैकरूपां पूर्वाधिकारावगतां गतिं त्यक्त्वा प्रत्यहं विलक्षणां गतिं प्राप्ता ग्रहा इत्यत आह-

प्रवहाख्यो मरुत्तांगस्तु स्वोच्चाभिमुखमीरयेत् ॥
पूर्वापरापकृष्टास्ते गतिं यांति पृथग्विधाम् ॥ ३ ॥

प्रवहाख्यः प्रवहसंज्ञको मरुद्वायुः पश्चिमाभिमुखभ्रमस्तान्ग्रहान् तुकारादुच्चानि स्वोच्चाभिमुखं स्वस्य प्रवहभ्रमेणेनोच्चं भावप्रधाननिर्देशादुच्चतायस्यां दिशि तत्स्वोच्चं पूर्वदिक्पूर्वभाग एव ग्रहाणां प्रवहभ्रमेणोच्चगमनदर्शनात्। तत्सम्मुखं पूर्वादिशीति तात्पर्यार्थः। ईरयेत् पश्चिमाभिमुखभ्रमणसिद्धप्रागुक्तग्रहावलम्बनरूपेण चालयतीत्यर्थः। अतः कारणात्ते ग्रहाः पूर्वापरापकृष्टा उच्चदेवतैः पूर्वपश्चिमदिशोराकृष्टाः पृथग्विधां प्रथमावगतैकरूपभिन्नप्रकारावगतां प्रतिक्षणविलक्षणां गतिं गमनक्रियां यान्ति प्राप्नुवन्ति। अवलम्बनाकर्षणाभ्यां प्रतिदिनं ग्रहाणां गतेरन्यादृशत्वं तदनुसारेण ग्रहचारज्ञानं युक्तमिति ग्रहाणां स्पष्टक्रियोत्पन्नेति भावः। यद्वा। ननु वायुरज्जुभिः कथं ग्रहाणामाकर्षणं सम्भवति तद्रज्जूनां विरलतया घनीभूतत्वाभावेनाकर्षणायोग्यत्वादित्यत आह। प्रवहाख्य इति। उच्चदेवताहस्तद्वयस्थितकक्षारसूत्रं

वायुः प्रवहवायुसम्बन्धात्प्रवहसंज्ञो न पश्चिमाभिमुखभ्रमप्रवहात्मकस्ता-न्ग्रहान्हारस्वोच्चाभिमुखं स्वोच्चदेवतास्थानसम्मुखमीरयेत् प्रेरयति चालयति। तुकारादुच्चस्थानात् पूर्वस्मिन्ग्रहे वायुः पश्चिमगत्या ग्रहं चालयति पश्चिमस्थे वायुः पूर्वगत्या ग्रहं चालयतीत्यर्थः। तथा च कक्षा कारसूत्रं तदा तदा तथा तथा भ्रमतीति दैवतैराकृष्यत इत्युपचारादुच्यत इति भावः अतएव ग्रहाणां स्पष्टक्रियोत्पन्नेत्याह—पूर्वापरापकृष्टा इति। उच्चदैवतैः पूर्वापरदिशयोरपकृष्टा ग्रहाः पृथग्विधां मध्यमातिरिक्तप्रकारां गतिं गमनक्रियां यान्ति। अतो न केवलं मध्यक्रियया निर्वाहः ॥ ३ ॥

भा० टी०—प्रवह नामक वायु ग्रहको अपनी ऊंची २ दिशाओंमें लेजाता है। इस प्रकार पूर्व पश्चिम दिशामें खींचकर पृथक् गतिको प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

अथ प्राक्पश्चादपकृष्यन्त इत्युक्तं विशदयति—

ग्रहात्प्राग्भगणार्द्धस्थः प्राङ्मुखं कर्षति ग्रहम् ॥
उच्चसंज्ञोऽपरार्द्धस्थस्तद्वत्पश्चान्मुखं ग्रहम् ॥ ४ ॥

ग्रहस्थानात्पूर्वभागस्थराशिषट्कस्थित उच्चसंज्ञो जीवो ग्रहबिम्बं पूर्वदिगभिमुखं स्वाभिमुखं कर्षत्याकर्षति। अपरार्द्धस्थो ग्रहस्थानात्पश्चिमभागस्थराशिषट्कस्थित उच्चसंज्ञो जीव इत्यर्थः। ग्रहबिम्बं पश्चान्मुखं पश्चिमदिगभिमुखं स्वाभिमुखं तद्वदाकर्षतीत्यर्थः ॥ ४ ॥

भा० टी०—पूर्व आधे भगणमें स्थित उच्चग्रहको पूर्वमें और दूसरे अर्द्धमें स्थित ग्रहको पश्चिममें खेंचता है ॥ ४ ॥

अथ पूर्वोक्तसिद्धं फलितमाह—

स्वोच्चापकृष्टा भगणैः प्राङ्मुखं यान्ति यद्ग्रहाः ॥
तत्तेषु धनमित्युक्तमृणं पश्चान्मुखेषु तु ॥ ५ ॥

स्वोच्चजीवाकर्षिता ग्रहाः पूर्वाभिमुखं भगणैराशिभिर्भगोलस्थक्रान्तिवृत्तानुसृतस्वाकाशगोलान्तर्गतक्रान्तिवृत्ते द्वादशराश्यन्तिके यद्राशिविभागैरित्यर्थः। यद्यत्संख्यामितं गच्छन्ति तत्तत्संख्यामितं भगणादिकं फलरूपं तेषु पूर्वावगतग्रहराश्यादिभोगेषु धनं योज्यम्। पश्चान्मुखेषु पश्चिमाकर्षितग्रहपूर्वावगतराश्यादिभोगेषु तुकाराद्यत्संख्यामितं फलरूपं पश्चिमतो गच्छन्ति तदित्यर्थः। ऋणं हीनमिति। एतत्पूर्वैः कथितम् ॥ ५ ॥

भा० टी०-अपने उच्चसे खेंचकर जब ग्रह पूर्वदिशामें जाते हैं, तब तिसमें धन विपरीत पश्चिम दिशामें जाय तो ऋण होता है ॥ ५ ॥

अथ पातानां ग्रहविक्षेपरूपतिहेतुत्वं प्रतिपादयति-

दक्षिणोत्तरतोऽप्येवं पातो राहुः स्वरंहसा ॥
विक्षिपत्येष विक्षेपं चन्द्रादीनामपक्रमात् ॥ ६ ॥

चन्द्रादीनां विरविग्रहाणामपक्रमात् क्रान्तिवृत्तस्थस्पष्टग्रहभोगस्थाना-द्दक्षिणोत्तरतो दक्षिणस्यामुत्तरस्यां वा दिशि । अपिशब्दः पूर्वापराभ्यां समुच्चयार्थकः । एष गणितागतः पातः पातराश्यादिभोगस्थानम् । अत्राप्य-पिशब्द उच्चेन समुच्चयार्थकोऽन्वेति । एवमुच्चेन पूर्वापरयोः फलान्तरं भवति तथेत्यर्थः । विक्षेपं विक्षेपणं स्वरंहसात्मवेगेन विक्षिपति करोति । विशिष्ट-वाचकानां पदानां विशेषणवाचकपदसमवधाने विशेष्यमात्रार्थत्वात् । चन्द्रा-दीन्विक्षिपतीति तात्पर्यार्थः । ननूच्चेन स्वाधिष्ठितजीवद्वारा ग्रहाकर्षणं क्रियते तथा पातेनाचेतनत्वाद्वेगाभावेन ग्रहविक्षेपणं कर्त्तुमशक्यमित्यत आह-राहुरिति । पातस्थानाधिष्ठात्री देवता राहुर्जीवविशेषश्चन्द्रपातस्तु दैत्यविशेषो राहुः । रहति त्यजति ग्रहमिति राहुरिति व्युत्पत्तेः ॥ ६ ॥

भा० टी० अपने बलसे पातहुआ राहु, ग्रहोंको दक्षिण व उत्तरदिशामें विक्षिप्त करता है । क्रान्तिवृत्तसे चन्द्रादिके विक्षेपको विक्षेप कहते हैं ॥ ६ ॥

अथैतद्विशदयति-

उत्तराभिमुखं पातो विक्षिपत्यपरार्द्धगः ॥
ग्रहं प्राग्भगणार्द्धस्थो याम्यायामपकर्षति ॥ ७ ॥

अपरार्द्धगो ग्रहस्थानात्पश्चिमविभागस्थितभगणार्धात्मक राशिषट्क-स्थितो राहुर्ग्रहबिम्बं स्वराश्यादिभोगस्थानीयप्रदेशादुत्तरदिगभिमुखं विक्षि-पति विक्षेपान्तरेण त्यजति । प्राग्भगणार्धस्थः ग्रहस्थानात्पूर्वविभागस्थितरा-शिषट्कमध्यस्थितो दक्षिणस्यां दिश्यपकर्षति विक्षिपति ॥ ७ ॥

भा० टी०-पश्चिमके आधे भगणमें गये हुए पात ग्रहोंको उत्तराभिमुखमें और पूर्वके आधे भगणमें स्थित ग्रहोंको दक्षिण दिशामें खेंचता है ॥ ७ ॥

अथ बुधशुक्रयोर्विशेषमाह-

बुधभार्गवयोः शीघ्रात्तद्वत्पातो यदा स्थितः ॥
तच्छीघ्राकर्षणात्तौ तु विक्षिप्येते यथोक्तवत् ॥ ८ ॥

बुधशुक्रयोः शीघ्रोच्चाज्जात्यभिप्रायेणैकवचनम् । बुधशुक्रयोः पातो जात्यभिप्रायेणैकवचनम् । तद्वत्परार्धपूर्वार्धमध्ये यदा यत्काले स्थितस्तु-कारात् यत्काले पाताभ्यामित्यर्थः । .... (?)
तौ बुधशुक्रौ यथोक्तवत्पूर्वार्धपरार्धक्रमेण दक्षिणोत्तरयोर्विक्षिप्येते विक्षेपान्तरेण त्यज्येते । तन्नूच्चात्तादृगवस्थितपातौ सम्बन्धाभावाद्बुधशुक्रौ दक्षिणोत्तरयोः कथं त्यजतोऽन्यथा वैयाधिकरण्येनातिप्रसङ्गापत्तेरित्यतःकारणमाह—तच्छीघ्राकर्षणादिति । बुधशुक्रयोः शीघ्रोच्चे तयोराकर्षणाभ्यां जात्यभिप्रायेणैकवचनम् । तथा च तदुच्चाभ्यां तादृगवस्थितपातौ तदुच्चजीवौ दक्षिणोत्तरयोस्त्यजत इति पूर्वोक्तरीत्या न्यायसिद्धमतस्तदुच्चसूत्रबद्धत्वाद्बुधशुक्रयोस्तथा विक्षेपणं न्यायसिद्धमेवेति भावः । ननु भौमगुरुशनीनामेवं कथं नोक्तमनयोर्वा कथमेतदुक्तं सर्वेषामेकरीतिकथनस्य समुचितत्वात् । किञ्च गुरुभौमशनीनामुच्चदेवताः स्वस्वकक्षास्था इति फलमुपपन्नं भवति बुधशुक्रयोरुच्चदेवतयोः कक्षतो दक्षिणोत्तरयोः स्थितत्वेन पूर्वोक्तरीत्या फलानुपपत्तिर्विलक्षणप्रवहवायुसूत्रस्थदेवतासम्बद्धस्य स्पष्टभूपरिध्याकारत्वेन कक्षाकारत्वाभावात् । विना कक्षाकारतां फलोत्पादनस्य ब्रह्मणोऽप्यशक्यत्वाच्च । न च विलक्षणप्रवहवायुसूत्रं देवतासम्बद्धं ग्रहाकाशगोले कक्षाकारत्वाभावेऽपि कक्षातुल्यं स्थानांतर इति फलोत्पत्तिर्याम्योत्तरान्तरसत्त्वेऽपि कल्पनयेति वाच्यम् । उच्चदेवतास्थानस्य कक्षातो दक्षिणत्वे तत्षड्भान्तरप्रदेशस्योत्तरत्वावश्यसम्भावेनोच्चबुधशुक्रयोरेकदिग्विक्षेपतुल्यत्वनियमानुपपत्तेः । तत्कथमिदं संगतं भगवदुक्तमिति चेत् । अत्रोच्यते । स्वरुच्या संगतार्थमङ्गीकृत्य तद्दूषणोद्घाटनेन भगवदुपालम्भनकर्तू रसनाच्छेदस्तत्तत्वार्थप्रकाशेनावश्यं करणीयः । तथाहि स्वशीघ्रोच्चाबुधशुक्रयोर्यदन्तरं राश्यात्मकं तद्वपातस्थेनान्तरेण युक्तः पूर्वातीतपात इत्यर्थः । यथा बुधशुक्रयोरपरपूर्वार्धक्रमेण स्थितोऽवस्थितः तुकारात्तथेत्यर्थः । तच्छीघ्राकर्षणात्तादृशपाताभ्यां शीघ्रवेगेनाकर्षणं तस्मात्पातस्थानाधिष्ठातृदेवताभ्यां स्वहस्तस्थितग्रहसंबद्धवायुसूत्रस्यातिवेगाकर्षणरचनादित्यर्थः । तौ बुधशुक्रावुक्तवदुत्तरदक्षिणक्रमेण विक्षिप्येते । अत्र पातशब्देन चक्रशोधितपातो बोध्यः।अन्यथा ग्रहो न शीघ्रोच्चरूपकेन्द्रयोजनस्योपपत्तिसि-

च्चत्वेन शीघ्रोच्चोनग्रहरूपकेन्द्रयो जनोक्त्यनुपपत्तेः । तथाच सर्वग्रहसाधारणं विक्षेपकथनं पातभेददर्शनार्थं बुधशुक्रयोः पृथगुक्तम् । नह्यन्यस्मिन्पक्षउच्चयोर्विक्षेपणं प्रतीयते येन प्रागुक्त सर्वविलोपाशंकनं शंकनीयम् । पातभेदोक्तिकारणं च "ये चात्रपातभगणाः कथिताज्ञभृग्वोस्ते शीघ्रकेन्द्रभगणैरधिका यतः स्युः। स्वल्पाः सुखार्थमुदिताश्चलकेन्द्रयुक्तौ पातौ तयोः पठितचक्रभवौ विधेयौ ॥" इति भास्कराचार्योक्तमिति दिक् ॥ ८ ॥

भा० टी०--बुध और शुक्रका पात, शीघ्रसे पहली कही हुई रीतिकरके स्थित होनेपर शीघ्राकर्षणके हेतुमें पहलेकी समान विक्षिप्त होता है ॥ ८ ॥

स्यादेतत्परमुच्चदेवतयोरविशेषात्सूर्यचन्द्रयोः समं फलं कुतो न भवतीत्यत आह-

महत्त्वान्मण्डलस्यार्कः स्वल्पमेवापकृष्यते ॥
मण्डलाल्पतया चन्द्रस्ततो बह्वपकृष्यते ॥ ९ ॥

सूर्यो मण्डलस्य बिंबस्य महत्वाद्गुरुत्ववत्त्वात्स्वल्पमितरग्रहापेक्षयाल्पं परमफलम् एवकारो निर्धारणेऽपकृष्यते उच्चजीवेनापकृष्यते । चंद्रो मण्डलाल्पतया बिम्बस्य लघुत्वेन ततः सूर्यफलाद्बह्वधिकं परमफलमुच्चजीवेनाकृष्यते ॥ ९ ॥

भा० टी०--सूर्यमंडल अधिक भारी होनेसे कम खिंचता है, चंद्रमा स्वल्प होनेसे अधिक खींचा जाता है ॥ ९ ॥

अथातएव भौमादीनामल्पमूर्तित्वादाभ्यां फलाधिकत्वं सम्भवतीत्याह-

भौमादयोऽल्पमूर्तित्वाच्छीघ्रमन्दोच्चसञ्ज्ञकैः ॥
दैवतैरपकृष्यंते सुदूरमतिवेगिताः ॥ १० ॥

भौमादयः पञ्चग्रहा अल्पमूर्तित्वाल्लघुतरबिंबत्वाच्छीघ्रमंदोच्चसञ्ज्ञकैः शीघ्रोच्चमंदोच्चसंज्ञैर्दैवतैः सुदूरमत्यंतं बह्वकृष्यंते । अतएवातिवेगिता अत्यंतवेगः संजातो येषां ते बिंबलघुत्वेनोच्चद्वयाकर्षणेन च बहुपरमफला इत्यर्थः । ननु सूर्यचंद्रयोः कक्षाकारविलक्षणप्रवहवायुचलनेन फलोत्पादनं युक्तं भौमादीनां तु प्रत्येकमुच्चद्वयसद्भावाद्वायुरश्म्याकर्षणासम्भवेन कक्षाकारप्रवहविलक्षणवायुचलनेन फलोत्पादनार्थमंगीकृतं कथं सम्भवति । उच्चद्वयस्थानस्यैकत्वाभावान्नह्येकमेव वायुमण्डलं युगपद्विरुद्धगत्योराश्रमं स्वतो

मर्हतीति चेन्न भौमादीनां शीघ्रमंदोच्चदेवताद्वयेन तत्सूत्रमार्गेण ग्रहबिम्बाकर्षणस्यैव राशक्त्याचरचनात् । न वायुमण्डलनकल्पनं सूर्यचंद्रयोरप्येवमेवांगीकारे बाधकाभा उच्च । वायुमण्डलकल्पनं तु तद्वातरश्मीत्युक्त्वानुपपत्त्या नातिप्रयोजनम् । तद्वातरश्मिभिर्बद्धा इत्यस्य पश्चिमभ्रमात्मकप्रवहवायौ स्वस्वाकाशगोले समसूत्रसम्बन्धेन स्थिता इति ग्रहस्थितिस्तद्रूपोक्त्यासमर्थनात् । नहि तदत्र हेतुगर्भं येनानुपपत्तिः शंकनीया । उच्चदेवताकल्पनेनाकाशस्थग्रहाणां तथातथां स्वशक्त्या तदाकर्षणात्फलद्वयसंस्काररूपैकफलोत्पादनं संगच्छते । अतएव सूत्रं ग्रहबिंबप्रोतकक्षाकारमिति कल्पनमपि निरस्तम् । उच्चद्वयात्तुल्यकर्षणेन विरुद्धकर्षणेन च सूत्रमण्डलभंगापत्तेरिति ॥ १० ॥

भा० टी०—मंगल आदि छोटी मूर्तिवाले होनेके कारणसे शीघ्रमंदोच्च देवताओं करके दूर खिंचे जाते और अति शीघ्र चलते हैं ॥ १० ॥

अथैतदुपसंहरति—

अतो धनर्णं सुमहत्तेषां गतिवशाद्भवेत् ॥
आकृष्यमाणास्तैरेवं व्योम्नि यान्त्यनिलाहताः ॥ ११ ॥

अतः पूर्वोक्तसुदूराकर्षणप्रतिपादनात्तेषां भौमादीनां गतिवशादाकर्षणोत्पन्नचलनवशात्सुमहदत्यधिकं फलं धनर्णं स्वोच्चापकृष्टेत्यादिना भवति । नन्वाकर्षणोत्पन्नचलनं कथं न प्रत्यक्षमित्यत आह—आकृष्यमाणा इति । तैरुच्चपातदैवतैरेवमुक्तप्रकारेणाकृष्यमाणा आकर्षिता एते भौमादयो व्योम्नि स्वस्वाकाशगोलेऽनिलाहताः पश्चिमाभिमुखानवरतप्रवहवाय्वाघाता यान्ति गच्छन्ति । तथाचावलम्बनोत्पन्नपूर्वगतिर्यथानप्रत्यक्षा तथा पूर्वगतिविकृत्यात्मकमेतदाकर्षणलनमनियतं प्रवाहवायुभ्रमणप्राबल्यादप्रत्यक्षमिति भावः ॥ ११ ॥

भा० टी०—इस चालके वशसे उनका धन और ऋण अत्यंत अधिक होता है । इस प्रकार आकाशमार्गमें खिंचते हुए होकर पवनके सहारेसे चलते हैं ॥ ११ ॥

अथैवं गतिकारणसद्भावैर्ग्रहाणां भौमादीनां फलिता का गतिरष्टभेदात्मिकेत्याह—

वक्रानुवक्रा कुटिला मन्दा मन्दतरा समा ॥
तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गतिः ॥ १२ ॥

भौमादिग्रहाणां विरविचंद्राणामष्टप्रकारा गतिः फलिता । तत्र वक्रे-त्यादिसमेत्यन्तं षट्प्रकारा गतिः शीघ्रतरा शीघ्रेति गतिद्वयम् । तथा समुच्चये । आसां स्वरूपज्ञानमग्रे स्फुटम् ॥ १२ ॥

भा० टी०-वक्र, अनुवक्र, कुटिल, मन्द, मदन्तर, सम, शीघ्र, शीघ्रतर यह आठ प्रकारकी गति हैं ॥ १२ ॥

अथतामष्टधा गतिं भेदद्वयेन क्रोडयति-

तत्रातिशीघ्रा शीघ्राख्या मन्दा मन्दतरा समा ॥
ऋज्वीति पञ्चधा ज्ञेया या वक्रा सानुवक्रगा ॥ १३ ॥

तत्राष्टविधगतिष्वतिशीघ्रेत्यादिसमेत्यन्ता इत्येवं पञ्चधा गतिः । ऋज्वी मार्गी गतिर्ज्ञेया या गतिः सानुवक्रगानुवक्रगमनेन सह वर्तमाना पूर्वश्लोकेऽनुवक्रगतेर्वक्रकुटिलमामध्याभिधानादुभयथासन्नत्वाच्च वक्रानुवक्रा कुटिलेति गतिर्वक्रा ज्ञेया तथा च ग्रहाणांगी वक्रेति गतिद्वयम् ॥ १३ ॥

भा० टी०-तिनमें अतिशीघ्र, शीघ्र, मन्द, मन्दतर और सम यह पांच सीधी गति है, कुटिल, वक्र और अनुवक्र यह तीन वक्रगति हैं ॥ १३ ॥

अथ ग्रहाणां स्पष्टक्रियां प्रतिजानीते-

तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहाः ॥
प्रयांति तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात् ॥ १४ ॥

नित्यं प्रत्यहं तत्तद्गतिवशात्तास्ता गतय एकस्मिन्दिने शीघ्रा परदिनेऽतिशीघ्रेत्यादिना यस्मिन्दिने या गतिस्तत्सम्बन्धानुरोधादित्यर्थः । ग्रहाः सूर्यादयो यथा येन प्रकारेण दृक्तुल्यतां वधितग्रहसमतां गच्छन्ति तत्तादृश स्फुटीकरणं स्पष्टक्रियागणितप्रकारमादरादत्यन्ताभिनिवेशादेतेनासंगतत्वनिरासः । प्रवक्ष्यामि सूक्ष्मत्वेन कथयामि ॥ १४ ॥

भा० टी०-इन गतियोंके वश होकर ग्रह सदा दृक्तुल्यता प्राप्त करते हैं । इस समय वही स्पष्टीकरण आदरसहित कहूंगा ॥ १४ ॥

अथ तत्र प्रथमं ज्यासाधनार्थं ज्यापिण्डान्विवक्षुस्तदानयनं श्लोकाभ्यामाह-

राशिलिप्ताष्टमो भागः प्रथमं ज्यार्धमुच्यते ॥
तत्तद्विभक्तलब्धोनमिश्रितं तद्द्वितीयकम् ॥ १५ ॥

आद्येनैवं क्रमात्पिण्डान्भक्त्वा लब्धोनसंयुताः ॥
खण्डकाः स्युश्चतुर्विंशज्ज्यार्धपिण्डाः क्रमादमी ॥ १६ ॥

एकराशिकलानामष्टादशशतानामष्टमोंऽशस्तत्त्वाश्विमितः प्रथममाद्यं ज्यार्धं संपूर्णं जीवार्द्धपिण्डकः कथ्यते तदभिज्ञैः । ततः प्रथमज्यार्धात्तेन प्रथमज्यार्धेन भक्ताल्लब्धेन हीनमन्यस्याप्रसंगात्प्रथमज्यार्धमनेन युक्तं तत्प्रथमज्यार्धं द्वितीयकं ज्यार्धं भवति । द्विगुणप्रथममेकोनम् । तृतीयादीनामानयनार्थमुक्तप्रकारमतिदिशति—आद्येनेति । प्रथमज्यार्धपिण्डेन । एवमुक्तरीत्या क्रमातिसद्धपिण्डान्भक्त्वा लब्धैरूनमाद्यं खण्डमनेन युताः खण्डका असिद्धा व्यवहितसिद्धज्यार्धपिण्डा असिद्धपिण्डा भवन्ति । यथा प्रथमखण्डं २२५ प्रथमभक्तं फलं १ द्वितीयखण्डं ४४९ प्रथमभक्तं फलं द्वयम् २ अर्धाधिकावयवस्यैकाधिकत्वेन ग्रहस्य साम्प्रदायिकत्वात् । फलैक्योनं प्रथमम् २२२ अनेन द्वितीयखण्डो ४४९ युतस्तृतीयम् ६७१ एवमिदं प्रथमखण्डभक्तं फलम् ३ अनेन पूर्वफलैक्यं ३ युतं जातं ६ सर्वफलैक्यमनेन प्रथमं खण्डं हीनम् २१९ अनेन तृतीयं ६७१ युतं चतुर्थम् ८९० एवमिदं प्रथमखण्डभक्तं फलं ४ पूर्वलब्धैक्योनप्रथमखण्डरूपं २१९ ज्यान्तररूपखण्डकमनेन ४ हीनम् २१५ अनेन चतुर्थं युतं पञ्चमम् ११०५ एवमग्रेऽपि । यथोक्तरीत्या संख्यखण्डानां सम्भवात्खण्डनियममाह—स्युरिति । एवं चतुर्विंशत्संख्याका ज्यार्धपिण्डाः कार्या न तदधिकाः । अत्र । एकविंशाच्च विंशाच्च पञ्चात्पञ्चदशादपि ॥ सप्तमाद्द्वादशात्सप्तदशाज्ज्यार्धोत्तरं मतम् ॥" इति ब्रह्मसिद्धान्तोक्तस्थलेऽर्धाधिकावयवस्यैकाधिकत्वेन न ग्रह इति ध्येयम् । गणितस्याविकृतत्वात्सिद्धाः पिण्डाः कथं नोक्ता इत्यत आह । क्रमादिति । अमी सिद्धाः पिण्डाः क्रमात्समनन्तरमेवोच्यन्ते । अत्रोपपत्तिः । समायां भूमौ वृत्तं भगणकलांकितं तिर्यगूर्ध्वाधरव्यासमितरेखाभ्यां चतुर्भागं कार्यं तत्रोर्ध्वरेखासक्तपरिधिप्रदेशादुभयत्र समविभागं विगणय्य तदग्रयोर्बद्धं सूत्रं वृत्ते द्विगुणविभागमितसम्पूर्णचापस्य सम्पूर्णज्या । अत्र गणितऊर्ध्वरेखातोऽर्धज्याया एव प्रयोजनात्तदर्धचापस्य तदर्धमर्धज्या । एवं वृत्तचतुर्थांश ऊर्ध्वरेखातोऽभीष्टाशानां चापाधाकाराणामर्धज्या अभीष्टा गण्याः । तत्रभगवता

स्वेच्छया वृत्तचतुर्थांशे त्रिराशिमिते चतुर्विंशज्ज्याः कल्पितास्तज्ज्ञानं तु वृत्ते चक्रकलानामंकितत्वात्तत्परिधिव्यासार्धं त्रिराशिज्यान्तिमा । भनन्दाग्निमितपरिधौ खबाणसूर्यमितो व्यासस्तदा चक्रकलापरिधौ क इत्यनुपातेन व्यासानयनम्। यथा चक्रकलाः२१६००खबाणसूर्यगुणाः२७०००००भनन्दाग्नि ३९२७ भक्ता व्यासः ६८७६ एतदर्धमन्तिमाज्या ३४३८ अथ वृत्ते चापज्ययोर्विवेके तयोरतुल्यत्वमपि भगवता कोऽपि वृत्तभागः समोऽस्त्यन्यथामलकादौ सर्पपाद्यवस्थानं न स्यादिति मत्वा तद्भागस्य ज्या तत्तुल्यैवेति । "वृत्तस्य षण्णवत्यंशो दण्डवद्दृश्यते तु सः ॥" इति शाकल्योक्तेः। प्रथमज्याचक्रकलाद्वादशांशरूपैकराजिकलानामष्टभागस्तत्त्वाश्विमितःएतन्मितमेव प्रथमचापत एतदन्तरेणाभीष्टाज्याश्चतुर्विंशत्। अथ चतुर्विंशतिजीवानां यथोत्तरमुपचयात्तदन्तररूपखंडानां यथोत्तरमपचयस्य वृत्तेज्यांकेनेन प्रत्यक्षत्वाज्ज्यान्तररूपखंडानामन्तरं यथोत्तरमुपचितमिति द्वाविंशतित्रयोविंशतिचतुर्विंशतिज्यानामन्तरयोरन्तरमिदं परमं खंडान्तरं सूक्ष्मज्योत्पत्तिप्रकारेणावगतम् १५ । १६ । ४८ । अथ त्रिज्ययेदं खंडकान्तरं तदा प्रथमज्यया किमित्यनुपातेन फलप्रमाणयोः फलेनापवर्त्य प्रमाणस्थाने तत्त्वाश्विनोऽनेन भक्ताः प्रथमज्याफलं पूर्वद्वितीयखंडयोरन्तरम् । अनेन पूर्वखंडं हीनं द्वितीयं खंडं भवति। तत्र पूर्वखंडं प्रथमज्यातुल्यमेव। द्वितीयखंडं प्रथमज्यायां युतं द्वितीयज्या । एवमस्यास्तत्त्वाश्विभागलब्धं द्वितीयतृतीयखण्डकयोरन्तरमनेन द्वितीयखण्डमूनं तृतीयखण्डमित्यनेन द्वितीयज्यायुता तृतीयज्या । एवं चतुर्थाद्याः । तत्र पूर्वमर्धाभ्यधिकग्रहणेनोत्तरत्राधिकान्तरपातसम्भावनया क्वचित् क्वचिदर्धाः भ्यधिकावयवस्यैकाधिकत्वेनाग्रह इत्युपपन्नं श्लोकद्वयम् ॥ १५ ॥ १६ ॥

भा० टी०–राशिकलाका (१८८०) अष्टमांभाग प्रथम ज्यार्द्ध है । तिसको ४तिसकरके भाग करके, भाग फलहीन करके पूर्वके साथ मिलानेसे दूसरा ज्यार्ध है ॥ १५ ॥ विगतपिण्डोंको क्रमशः आदि २२५ से भागलब्ध एकत्र कर २२५ से अलग कर तिसको पूर्वखण्डमें मिलानेसे खण्ड होंगे, इस प्रकार निम्नलिखित २४ ज्यार्द्ध पिण्ड नियत होंगे ॥ १६ ॥

अथैताः सिद्धाः श्लोकषट्केन कथयन्नुत्क्रमज्यार्धपिण्डज्ञानमाह—

तत्त्वाश्विनोऽङ्काब्धिकृता रूपभूमिधरर्तवः ॥
खांकाष्टौ पंचशून्येशा बाणरूपगुणेन्दवः ॥ १७ ॥
शून्यलोचनपञ्चैकाश्छिद्ररूपमुनीन्दवः ॥
वियच्चन्द्रातिधृतयो गुणरंध्राम्बराश्विनः ॥ १८ ॥
मुनिषडयमनेत्राणि चन्द्राग्निकृतदस्रकाः ॥
पञ्चाष्टविषयाक्षाणि कुञ्जराश्विनगाश्विनः ॥ १९ ॥
रन्ध्रपञ्चाष्टकयमा वस्वद्र्यंकयमास्तथा ॥
कृताष्टशून्यज्वलना नगाद्रिशशिवह्नयः ॥ २० ॥
षट्पञ्चलोचनगुणाश्चन्द्रनेत्राग्निवह्नयः ॥
यमाद्रिवह्निज्वलना रन्ध्रशून्यार्णवाग्नयः ॥ २१ ॥
रूपाग्निसागरगुणा वस्वग्निकृतवह्नयः ॥
प्रोज्झ्योत्क्रमेण व्यासार्धादुत्क्रमज्यार्धपिण्डकाः ॥२२॥

तथा समुच्चये । एतानुक्तान्क्रमज्यार्धपिण्डान् । उत्क्रमेणोपान्त्यपिण्डादिप्रथमपिण्डान्तं प्रत्येकं व्यासार्धात्त्रिज्यारूपपरमपिण्डात्प्रोज्झ्य न्यूनीकृत्य क्रमेणोत्क्रमज्यार्धपिण्डा भवन्ति । यथा त्रयोविंशतितमं ज्यार्धमुक्त रूपाग्निसागरगुणा इति वस्वग्निकृतवह्नय इति चरमपिण्डादूनं सप्रथम उत्क्रमज्यार्धपिंडः । एवं द्वाविंशतितमं चरमाच्छुद्धद्वितीय उत्क्रमज्यार्धपिण्डः । एवमग्रेऽपीति चतुर्विंशदुत्क्रमज्यार्धपिंडाः । अत्रोपपत्तिः । ज्याचापयोर्बाणरूपमन्तरमुत्क्रमज्या । यद्यपि पूर्वार्द्धज्यावद्बाणस्यार्धं न सम्भवतीत्युत्क्रमज्यापिण्डा इति वक्तुमुचित नोत्क्रमज्यार्धपिण्ड इति । तथापि भगवतानुगतपरिभाषार्थं चापबाह्यशराग्राभावेनोत्क्रमज्यायाः पूर्णशरांशत्वादुत्क्रमज्यार्धमित्युक्तम् । अथ वृत्तचतुर्थांशे सर्वज्याङ्कनेन यदंशानां ज्यात्रिज्यातो हीना तत्कोटयंशानामुत्क्रमज्येति स्फुटं दृश्यते अत उक्तज्यार्धक्रमेणोत्क्रमज्याज्ञानार्थं व्युत्क्रमेण त्रिज्या शुद्धा उक्त पिंडा उत्क्रमज्यापिण्डा इत्युपपन्नं प्रोज्झ्येत्यादि ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

अथ श्लोकपञ्चकेनोत्क्रमज्यापिंडान्पूर्वोक्तसिद्धान्निबध्नाति—

मुनयो रन्ध्रयमला रसषट्का मुनीश्वराः ॥
अष्टैका रूपषड्दस्राः सागरार्थहुताशनाः ॥ २३ ॥
खर्त्तुवेदा नवाद्र्यर्था दिङ्नगाऽत्र्यर्थकुञ्जराः ॥
नग म्बरवियच्चन्द्रा रूपभूधरशङ्कराः ॥ २४ ॥
शरार्णवहुताशैका भुजङ्गाक्षिशरेंदवः ।
नवरूपमहीध्रैका गजैकांकनिशाकराः ॥ २५ ॥
गणाश्विरूपनेत्राणि पावकाग्निगुणाश्विनः ॥
वस्वर्णवार्थयमलास्तुरङ्गर्तुनगाश्विनः ॥ २६ ॥
नवाष्टनवनेत्राणि पावकैकयमाग्नयः ॥
गजाग्निसागरगुणा उत्क्रमज्यार्धपिण्डकाः ॥ २७ ॥

एत उत्क्रमज्यापिण्डाः पूर्वसिद्धा निबद्धा महीध्रः पर्वतो भुजज्याभावे कोटयुत्क्रमज्यायाः परमत्वाच्छून्यज्योना त्रिज्या परमोत्क्रमज्यापिण्डस्त्रिज्याया उभयत्र परमत्वेनार्थसिद्धमन्त्यपिण्डत्वं वेति ध्येयम् ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

ज्यासंख्या	ज्यापिण्ड	उत्क्रम	ज्यासंख्या	ज्यापिण्ड	उत्क्रम	ज्यासंख्या	ज्यापिण्ड	उत्क्रम
१	२२५	७	९	१९१०	५७९	१७	३०८४	१९१८
२	४४२	२९	१०	२०९३	७१०	१८	३१९७	२१२३
३	६७१	६६	११	२२६७	८५३	१९	३२५६	२३३३
४	८९०	११७	१२	२४३१	१००७	२०	३३२१	२५४८
५	११०५	१८२	१३	२५८५	११७१	२१	३३७२	२७६७
६	१३१५	२६१	१४	२७२८	१३४५	२२	३४०९	२९८९
७	१५२०	३५४	१५	२८५९	१५२८	२३	३४३१	३२१३
८	१७१९	४६०	१६	२९७८	१७१९	२४	३४३८	३४३८

अथ प्रसंगात्परमक्रांतिज्यां वदन्क्रांत्यानयनमाह–

परमापक्रमज्या तु सप्तरन्ध्रगुणेन्दवः ॥
तद्गुणाज्या त्रिजीवाप्ता तच्चापं क्रान्तिरुच्यते ॥ २८ ॥

न्यूनं चतुर्दशशतं १३९७ परमक्रांतिज्या तुकाराच्चतुर्विंशत्यंशानां प्रमाणज्यानयनप्रकारसिद्धेत्यर्थः । अभीष्टाज्या परमक्रांतिज्यया गुणिता त्रिज्याभक्ता फलस्य वक्ष्यमाणप्रकारेण धनुः क्रांतिः कलात्मिका तत्त्वज्ञः कथ्यते । अत्रोपपत्तिः । विषुवद्वृत्तात्क्रांतिवृत्तभागस्य याम्योत्तरस्यान्तरं ।

कृते शंकंगुलैः शङ्कुस्थांगुलविभागमानगृहीतैरभीष्टसङ्ख्याकांगुलैः व्यासार्ध-
रूपैर्वृत्तमवक्रमालिखेत् । सर्वतः केंद्राद्वृत्तपरिधिरेखातुल्या स्यात्तथेत्यर्थः ।
ततस्तन्मध्ये तस्य केन्द्ररूपमध्ये कल्पनया द्वादशसंख्याकांगुलानि तुल्यानि
यस्मिंस्तं द्वादशविभागांकितमित्यर्थः । शंकुं समतलमस्तकपरिधिकाष्ठं
स्थापयेत् । ततः पूर्वापरार्धयोर्दिनस्य प्रथमद्वितीयभागयोस्तच्छायाग्रं स्थापि-
तशंकोश्छायान्तप्रदेशो मण्डलपरिधौ यस्मिन्विभागे स्पृशेत् । दिनस्य प्रथ-
मविभागेऽनुक्षणं छायाह्रासाद्वृत्ते यत्र प्रविशति दिनस्यापरार्द्धे छायानुक्षण-
वृद्धेर्वृत्तं यत्र निर्गच्छतीत्यर्थः । तत्र निर्गमनप्रवेशस्थानयोरुभौ द्वौ विन्दू
पूर्वापरसंज्ञौ क्रमेण वृत्ते परिधिरेखायां कृत्वा तन्मध्ये पूर्वापरविन्द्वन्तरा-
मध्ये तिमिना मत्स्येन रेखा कार्या सा दक्षिणोत्तररेखा भवति । मत्स्यस्तु
विन्द्वन्तरालसूत्रमितेन व्यासार्द्धेन विन्दुद्वयकेन्द्रकल्पनेन वृत्तद्वयं निर्माय
वृत्तद्वयसंयोगाभ्यां वृत्तद्वयपरिधिविभागाभ्यामन्तर्गतं मत्स्याकारं स्थानं
भवति । तत्रैकः संयोगो मुखं वाह्यवृत्तभागसम्मार्जनेनापरसंयोगस्तु पुच्छ-
मितरवृत्तभागद्वयं सम्मार्जनेन । मुखपुच्छावध्यृज्वी रेखा दक्षिणोत्तररेखा ।
तत्र विन्दोः सव्यं रेखाग्रं दक्षिणा दिक् । पश्चिमविन्दोः सव्यं रेखाग्रमुत्तरा
दिक् । अनन्तरं पूर्ववृत्तं मत्स्यश्च सम्मार्जनीयः । शंकुरपि तत्स्थानान्नि-
ष्कास्य इति केवला दक्षिणोत्तररेखा स्थितेति तात्पर्यम् । दक्षि-
णोत्तरदिशोर्मध्यस्थाने तिमिना दक्षिणोत्तररेखामितेन व्यासार्द्धेन दक्षिणो-
त्तरस्थानाभ्यां पूर्ववत्प्रत्येकं वृत्तं विधाय पूर्ववत्सिद्धेन मत्स्येनेत्यर्थः ।
पूर्वपश्चिमा रेखा कार्या । तत्र पूर्वविन्दोरासन्नं रेखाग्रं पूर्वा पश्चिमविन्दो-
रासन्नं रेखाग्रं पश्चिमेति मत्स्यसंमार्जनेन केवला पूर्वापररेखा सिद्धा । अथ
रेखासंयोगस्थानाद्दिक्साधनोपक्रमोक्तं पूर्ववृत्तमुल्लिखेत्तद्वृत्तपरिधौ यत्र रेखा
लग्ना तत्र दिगिति तद्वृत्तमध्यस्य दिक्चतुष्टयं वृत्ते सिद्धम् । तद्वत् । यथा
दक्षिणोत्तराभ्यां पूर्वापरा साधिता तत्प्रकारेणेत्यर्थः । एवकारोऽन्यप्रका-
निरासार्थकः । हि निश्चयेन । विदिक्कोण दिशा दिशां पूर्वादिगिलदिशां वै
मध्यमत्स्या अव्यवहितदिग्द्वयान्तर्गतोत्पन्नाः । तदवन्तः संसाध्याः सम्यक्

कृते शंक्वंगुलैः शङ्कुस्थांगुलविभागमानगृहीतैरभीष्टसङ्ख्याकांगुलैः व्यासार्ध-रूपैर्वृत्तमवक्रमालिखेत् । सर्वतः केंद्राद्वृत्तपरिधिरेखातुल्या स्यात्तथेत्यर्थः । ततस्तन्मध्ये तस्य केन्द्ररूपमध्ये कल्पनया द्वादशसंख्याकांगुलानि तुल्यानि यस्मिंस्तं द्वादशविभागांकितमित्यर्थः । शंकुं समतलमस्तकपरिधिकाष्ठं स्थापयेत् । ततः पूर्वापरार्धयोर्दिनस्य प्रथमद्वितीयभागयोस्तच्छायाग्रं स्थापि-तशंकोश्छायान्तप्रदेशो मण्डलपरिधौ यस्मिन्विभागे स्पृशेत् । दिनस्य प्रथ-मविभागेऽनुक्षणं छायाह्रासाद्वृत्ते यत्र प्रविशति दिनस्यापरार्द्धे छायानुक्षण-वृद्धेर्वृत्तं यत्र निर्गच्छतीत्यर्थः । तत्र निर्गमनप्रवेशस्थानयोरुभौ द्वौ बिन्दू पूर्वापरसंज्ञौ क्रमेण वृत्ते परिधिरेखायां कृत्वा तन्मध्ये पूर्वापरबिन्द्वन्त-मध्ये तिमिना मत्स्येन रेखा कार्या सा दक्षिणोत्तररेखा भवति । मत्स्यस्तु बिन्द्वन्तरालसूत्रमितेन व्यासार्द्धेन बिन्दुद्वयकेन्द्रकल्पनेन वृत्तद्वयं निर्माय वृत्तद्वयसंयोगाभ्यां वृत्तद्वयपरिधिविभागाभ्यामन्तर्गतं मत्स्याकारं स्थानं भवति । तत्रैकः संयोगो मुखं बाह्यवृत्तभागसम्मार्जनेनापरसंयोगस्तु पुच्छ-मितरवृत्तभागद्वयं सम्मार्जनेन । मुखपुच्छावच्छिन्नृज्वी रेखा दक्षिणोत्तररेखा । तत्र बिन्दोः सव्यं रेखाग्रं दक्षिणा दिक् । पश्चिमबिन्दोः सव्यं रेखाग्रमुत्तरा दिक् । अनन्तरं पूर्ववृत्तं मत्स्यश्च सम्मार्जनीयः । शंकुरपि तत्स्थानान्नि-ष्कास्य इति केवला दक्षिणोत्तररेखा स्थितेति तात्पर्यम् । दक्षि-णोत्तरदिशोर्मध्यस्थानं तिमिना दक्षिणोत्तररेखामितेन व्यासार्द्धेन दक्षिणो-त्तरस्थानाभ्यां पूर्ववत्प्रत्येकं वृत्तं विधाय पूर्ववत्सिद्धेन मत्स्येनत्यर्थः । पूर्वपश्चिमा रेखा कार्या । तत्र पूर्वबिन्दोरासन्नं रेखाग्रं पूर्वा पश्चिमबिन्दो-रासन्नं रेखाग्रं पश्चिमेति मत्स्यसंमार्जनेन केवला पूर्वापररेखा सिद्धा । अथ रेखासंयोगस्थानाद्दिक्साधनोपक्रमोक्तं पूर्ववृत्तमुल्लिखेत्तद्वृत्तपरिधौ यत्र रेखा लग्ना तत्र दिगिति तद्वृत्तमध्यस्य दिक्चतुष्टयं वृत्ते सिद्धम् । तद्वत् । यथा दक्षिणोत्तराभ्यां पूर्वापरा साधिता तत्प्रकारेणेत्यर्थः । एवकारोऽन्यप्रकार-निरासार्थकः । हि निश्चयेन । विदिशः कोण दिशां दिशां पूर्वादिसिद्धदिशां मध्यमत्स्या अव्यवहितदिग्द्वयान्तर्गतमत्स्याः । तद्वदुत्पन्नैः संपाताभ्यां सम्यक्

कृते शंकंगुलैः शङ्कुस्थांगुलविभागमानगृहीतैरभीष्टसङ्ख्याकांगुलैः व्यासार्ध-रूपैर्वृत्तमवक्रमालिखेत् । सर्वतः केंद्राद्वृत्तपरिधिरेखातुल्या स्यात्तथेत्यर्थः । ततस्तन्मध्ये तस्य केन्द्ररूपमध्ये कल्पनया द्वादशसंख्याकांगुलानि तुल्यानि यस्मिंस्तं द्वादशविभागांकितमित्यर्थः । शंकुं समतलमस्तकपरिधिकाग्रं स्थापयेत् । ततः पूर्वापरार्धयोर्दिनस्य प्रथमद्वितीयभागयोस्तच्छायाग्रं स्थापितशंकोश्छायान्तप्रदेशो मण्डलपरिधौ यस्मिन्विभागे स्पृशेत् । दिनस्य प्रथमविभागेऽनुक्षणं छायाह्रासाद्वृत्ते यत्र प्रविशति दिनस्यापरार्द्धे छायानुक्षणवृद्धेर्वृत्तं यत्र निर्गच्छतीत्यर्थः । तत्र निर्गमनप्रवेशस्थानयोरुभौ द्वौ बिन्दू पूर्वापरसंज्ञौ क्रमेण वृत्ते परिधिरेखायां कृत्वा तन्मध्ये पूर्वापरबिन्द्वन्तःमध्ये तिमिना मत्स्येन रेखा कार्या सा दक्षिणोत्तररेखा भवति । मत्स्यस्तु बिन्द्वन्तरालसूत्रमितेन व्यासार्द्धेन बिन्दुद्वयकेन्द्रकल्पनेन वृत्तद्वयं निष्पाद्य वृत्तद्वयसंयोगाभ्यां वृत्तद्वयपरिधिविभागाभ्यामन्तर्गतं मत्स्याकारं स्थानं भवति । तत्रैकः संयोगो मुखं बाह्यवृत्तभागसम्मार्जनेनापरसंयोगस्तु पुच्छमितरवृत्तभागद्वयं सम्मार्जनेन । मुखपुच्छावध्यृज्वी रेखा दक्षिणोत्तररेखा । तत्र बिन्दोः सव्यं रेखाग्रं दक्षिणा दिक् । पश्चिमबिन्दोः सव्यं रेखाग्रमुत्तरा दिक् । अनन्तरं पूर्ववृत्तं मत्स्यश्च सम्मार्जनीयः । शंकुरपि तत्स्थानान्निष्कास्य इति केवला दक्षिणोत्तररेखा स्थितेति तात्पर्यम् । दक्षिणोत्तरदिशोर्मध्यस्थाने तिमिना दक्षिणोत्तररेखामितेन व्यासार्द्धेन दक्षिणोत्तरस्थानाभ्यां पूर्ववत्प्रत्येकं वृत्तं विधाय पूर्ववत्सिद्धेन मत्स्येनेत्यर्थः । पूर्वपश्चिमा रेखा कार्या । तत्र पूर्वबिन्दोरासन्नं रेखाग्रं पूर्वा पश्चिमबिन्दोरासन्नं रेखाग्रं पश्चिमेति मत्स्यसंमार्जनेन केवला पूर्वापररेखा सिद्धा । अ॰ रेखासंयोगस्थानाद्दिक्साधनोपक्रमोक्तं पूर्ववृत्तमुल्लिख्य तद्वृत्तपरिधौ यत्र रेखा लग्ना तत्र दिगिति तद्वृत्तमध्यस्य दिक्चतुष्टयं वृत्ते सिद्धम् । तद्वत् । यथा दक्षिणोत्तराभ्यां पूर्वापरा साधिता तत्प्रकारेणेत्यर्थः । एवकारोऽन्यप्रकारनिरासार्थकः । हि निश्चयेन । विदिग्ज्ञेण दिशो दिशां पूर्वादिसिद्धदिशां मध्यमत्स्या अव्यवहितदिग्द्वयान्तर्गतत्स्थाः । तद्वदन्तः संसाध्याः सम्यक्

कृते शंकंगुलैः शङ्कुस्थांगुलविभागमानगृहीतैरभीष्टसङ्ख्याकांगुलैः व्यासार्ध-रूपैर्वृत्तमवक्रमालिखेत् । सर्वतः केंद्राद्वृत्तपरिधिरेखातुल्या स्यात्तथेत्यर्थः । ततस्तन्मध्ये तस्य केन्द्ररूपमध्ये कल्पनया द्वादशसंख्याकांगुलानि तुल्यानि यस्मिंस्तं द्वादशविभागांकितमित्यर्थः । शंकुं समतलमस्तकपरिधिकाष्ठं स्थापयेत् । ततः पूर्वापरार्धयोर्दिनस्य प्रथमद्वितीयभागयोस्तच्छायाग्रं स्थापितशंकोश्छायान्तप्रदेशो मण्डलपरिधौ यस्मिन्विभागे स्पृशेत् । दिनस्य प्रथमविभागेऽनुक्षणं छायाह्रासाद्वृत्ते यत्र प्रविशति दिनस्यापरार्द्धे छायानुक्षणवृद्धेर्वृत्तं यत्र निर्गच्छतीत्यर्थः । तत्र निर्गमनप्रवेशस्थानयोरुभौ द्वौ बिन्दू पूर्वापरसंज्ञौ क्रमेण वृत्ते परिधिरेखायां कृत्वा तन्मध्ये पूर्वापरबिन्द्वन्तरमध्ये तिमिना मत्स्येन रेखा कार्या सा दक्षिणोत्तररेखा भवति । मत्स्यस्तु बिन्द्वन्तरालसूत्रमितेन व्यासार्द्धेन बिन्दुद्वयकेन्द्रकल्पनेन वृत्तद्वयं निधाय वृत्तद्वयसंयोगाभ्यां वृत्तद्वयपरिधिविभागाभ्यामन्तर्गतं मत्स्याकारं स्थानं भवति । तत्रैकः संयोगो मुखं बाह्यवृत्तभागसम्मार्जनेनापरसंयोगस्तु पुच्छमितरवृत्तभागद्वयं सम्मार्जनेन । मुखपुच्छावध्यृज्वी रेखा दक्षिणोत्तररेखा । तत्र बिन्दोः सव्यं रेखाग्रं दक्षिणा दिक् । पश्चिमबिन्दोः सव्यं रेखाग्रमुत्तरा दिक् । अनन्तरं पूर्ववृत्तं मत्स्यश्च सम्मार्जनीयः । शंकुरपि तत्स्थानान्निष्कास्य इति केवला दक्षिणोत्तररेखा स्थितेति तात्पर्यम् । दक्षिणोत्तरदिशोर्मध्यस्थाने तिमिना दक्षिणोत्तररेखामितेन व्यासार्द्धेन दक्षिणोत्तरस्थानाभ्यां पूर्ववत्प्रत्येकं वृत्तं विधाय पूर्ववत्सिद्धेन मत्स्येनेत्यर्थः । पूर्वपश्चिमा रेखा कार्या । तत्र पूर्वबिन्दोरासन्नं रेखाग्रं पूर्वा पश्चिमबिन्दोरासन्नं रेखाग्रं पश्चिमेति मत्स्यसंमार्जनेन केवला पूर्वापररेखा सिद्धा । अथ रेखासंयोगस्थानाद्दिक्साधनोपक्रमोक्तं पूर्ववृत्तमुल्लिखेत्तद्वृत्तपरिधौ यत्र रेखा लग्ना तत्र दिगिति तद्वृत्तमध्यस्य दिक्चतुष्टयं वृत्ते चिह्नम् । तद्वत् । यथा दक्षिणोत्तराभ्यां पूर्वापरा साधिता तत्प्रकारेणेत्यर्थः । एवकारोऽन्यप्रकार-निरासार्थकः । हि निश्चयेन । विदिक्कोण दिशो दिशां पूर्वादिसिद्धदिशां मध्यमत्स्या अव्यवहितदिग्द्वयान्तर्गतास्तत्राः । लघवर्न्नैः संमाभ्याः सम्यक्

कृते शंक्वंगुलैः शङ्कुस्थांगुलविभागमानगृहीतैरभीष्टसङ्ख्याकांगुलैः व्यासार्ध-रूपैर्वृत्तमवक्रमालिखेत् । सर्वतः केंद्राद्वृत्तपरिधिरेखातुल्या स्यात्तथेत्यर्थः । ततस्तन्मध्ये तस्य केन्द्ररूपमध्ये कल्पनया द्वादशसंख्याकांगुलानि तुल्यानि यस्मिंस्तं द्वादशविभागांकितमित्यर्थः । शंकुं समतलमस्तकपरिधिकाष्ठदंडं ापयेत् । ततः पूर्वापरार्धयोर्दिनस्य प्रथमद्वितीयभागयोस्तच्छायाग्रं स्थापि- शंकोश्छायान्तप्रदेशो मण्डलपरिधौ यस्मिन्विभागे स्पृशेत् । दिनस्य प्रथ-मविभागेऽनुक्षणं छायाह्रासाद्वृत्ते यत्र प्रविशति दिनस्यापरार्द्धे छायानुक्षण-वृद्धेर्वृत्तं यत्र निर्गच्छतीत्यर्थः । तत्र निर्गमनप्रवेशस्थानयोरुभौ द्वौ बिन्दू पूर्वापरसंज्ञौ क्रमेण वृत्ते परिधिरेखायां कृत्वा तन्मध्ये पूर्वापरबिन्द्वन्तर-मध्ये तिमिना मत्स्येन रेखा कार्या सा दाक्षिणोत्तररेखा भवति । मत्स्यस्तु बिन्द्वन्तरालसूत्रमितेन व्यासार्द्धेन बिन्दुद्वयकेन्द्रकल्पनेन वृत्तद्वयं निष्पाद्य वृत्तद्वयसंयोगाभ्यां वृत्तद्वयपरिधिविभागाभ्यामन्तर्गतं मत्स्याकारं स्थानं भवति । तत्रैकः संयोगो मुखं बाह्यवृत्तभागसम्मार्जनेनापरसंयोगस्तु पुच्छ-मितरवृत्तभागद्वयं सम्मार्जनेन । मुखपुच्छावध्यृज्वी रेखा दक्षिणोत्तररेखा । तत्र बिन्दोः सव्यं रेखाग्रं दक्षिणा दिक् । पश्चिमबिन्दोः सव्यं रेखाग्रमुत्तरा दिक् । अनन्तरं पूर्ववृत्तं मत्स्यश्च सम्मार्जनीयः । शंकुरपि तत्स्थानान्नि-ष्कास्य इति केवला दक्षिणोत्तररेखा स्थितेति तात्पर्यम् । दक्षि-णोत्तरदिशोर्मध्यस्थाने तिमिना दक्षिणोत्तररेखामितेन व्यासार्द्धेन दक्षिणो-त्तरस्थानाभ्यां पूर्ववत्प्रत्येकं वृत्तं विधाय पूर्ववत्सिद्धेन मत्स्येनेत्यर्थः । पूर्वपश्चिमा रेखा कार्या । तत्र पूर्वबिन्दोरासन्नं रेखाग्रं पूर्वा पश्चिमबिन्दो-रासन्नं रेखाग्रं पश्चिमेति मत्स्यसंमार्जनेन केवला पूर्वापररेखा सिद्धा । अथ रेखासंयोगस्थानाद्दिक्साधनोपक्रमोक्तं पूर्ववृत्तमुल्लिखेत्तद्वृत्तपरिधौ यत्र रेखा लग्ना तत्र दिगिति तद्वृत्तमध्यस्य दिक्चतुष्टयं वृत्ते सिद्धम् । तदेव । यथा दक्षिणोत्तराभ्यां पूर्वापरा साधिता तत्प्रकारेणेत्यर्थः । एवकारोऽन्यप्रकार-निरासार्थकः । हि निश्चयेन । विदिक्कोण दिशो दिशां पूर्वादिसिद्धदिशां ये मध्यमत्स्या अव्यवहितदिग्द्वयान्तर्गतेऽन्तराः । तदवस्थैः संगाभ्याः मत्स्य-

कृते शंक्वंगुलैः शङ्कुस्थांगुलविभागमानगृहीतैरभीष्टसङ्ख्याकांगुलैः व्यासार्धरूपैर्वृत्तमवक्रमालिखेत् । सर्वतः केंद्राद्वृत्तपरिधिरेखातुल्या स्यात्तथेत्यर्थः । ततस्तन्मध्ये तस्य केन्द्ररूपमध्ये कल्पनया द्वादशसंख्याकांगुलानि तुल्यानि यस्मिंस्तं द्वादशविभागांकितमित्यर्थः । शंकुं समतलमस्तकपरिधिकाष्ठदंडं स्थापयेत् । ततः पूर्वापरार्धयोर्दिनस्य प्रथमद्वितीयभागयोस्तच्छायाग्रं स्थापितशंकोश्छायान्तप्रदेशो मण्डलपरिधौ यस्मिन्विभागे स्पृशेत् । दिनस्य प्रथमविभागेऽनुक्षणं छायाह्रासाद्वृत्ते यत्र प्रविशति दिनस्यापरार्द्धे छायानुक्षणवृद्धेर्वृत्तं यत्र निर्गच्छतीत्यर्थः । तत्र निर्गमनप्रवेशस्थानयोरुभौ द्वौ बिन्दु पूर्वापरसंज्ञौ क्रमेण वृत्ते परिधिरेखायां कृत्वा तन्मध्ये पूर्वापरबिन्द्वन्तरमध्ये तिमिना मत्स्येन रेखा कार्या सा दाक्षिणोत्तररेखा भवति । मत्स्यस्तु बिन्द्वन्तरालसूत्रमितेन व्यासार्द्धेन बिन्दुद्वयकेन्द्रकल्पनेन वृत्तद्वयं निष्पाद्य वृत्तद्वयसंयोगाभ्यां वृत्तद्वयपरिधिविभागाभ्यामन्तर्गतं मत्स्याकारं स्थानं भवति । तत्रैकः संयोगो मुखं बाह्यवृत्तभागसम्मार्जनेनापरसंयोगस्तु पुच्छमितरवृत्तभागद्वयं सम्मार्जनेन । मुखपुच्छावध्यृज्वी रेखा दक्षिणोत्तररेखा । तत्र बिन्दोः सव्यं रेखाग्रं दक्षिणा दिक् । पश्चिमबिन्दोः सव्यं रेखाग्रमुत्तरा दिक् । अनन्तरं पूर्ववृत्तं मत्स्यश्च सम्मार्जनीयः । शंकुरपि तत्स्थानान्निष्कास्य इति केवला दक्षिणोत्तररेखा स्थितेति तात्पर्यम् । दक्षिणोत्तरदिशोर्मध्यस्थाने तिमिना दक्षिणोत्तररेखामितेन व्यासार्द्धेन दक्षिणोत्तरस्थानाभ्यां पूर्ववत्प्रत्येकं वृत्तं विधाय पूर्ववत्सिद्धेन मत्स्येनेत्यर्थः । पूर्वपश्चिमा रेखा कार्या । तत्र पूर्वबिन्दोरासन्नं रेखाग्रं पूर्वा पश्चिमबिन्दोरासन्नं रेखाग्रं पश्चिमेति मत्स्यसंमार्जनेन केवला पूर्वापररेखा सिद्धा । अथ रेखासंयोगस्थानाद्दिक्साधनोपक्रमोक्तं पूर्ववृत्तमुल्लिखेत्तद्वृत्तपरिधौ यत्र रेखा लग्ना तत्र दिगिति तद्वृत्तमध्यस्य दिक्चतुष्टयं वृत्ते स्फुटम् । तद्वत् । यथा दक्षिणोत्तराभ्यां पूर्वापरा साधिता तत्प्रकारेणेत्यर्थः । एवकारोऽन्यप्रकारनिरासार्थकः । हि निश्चयेन । विदिक्कोण दिशां दिशां पूर्वादिसिद्धदिशां ये मध्यमत्स्या अव्यवहितदिग्द्वयान्तरोत्पन्नाः । तदवयवैः संपाद्याः सम्यक्-

कृते शंकंगुलैः शङ्कुस्थांगुलविभागमानगृहीतैरभीष्टसङ्ख्याकांगुलैः व्यासार्धरूपैर्वृत्तमवक्रमालिखेत् । सर्वतः केंद्राद्वृत्तपरिधिरेखातुल्या स्यात्तथेत्यर्थः । ततस्तन्मध्ये तस्य केन्द्ररूपमध्ये कल्पनया द्वादशसंख्याकांगुलानि तुल्यानि यस्मिंस्तं द्वादशविभागांकितमित्यर्थः । शंकुं समतलमस्तकपरिधिकाष्ठदंडं स्थापयेत् । ततः पूर्वापरार्धयोर्दिनस्य प्रथमद्वितीयभागयोस्तच्छायाग्रं स्थापितशंकोश्छायान्तप्रदेशो मण्डलपरिधौ यस्मिन्विभागे स्पृशेत् । दिनस्य प्रथमविभागेऽनुक्षणं छायाह्रासाद्वृत्ते यत्र प्रविशति दिनस्यापरार्द्धे छायानुक्षणवृद्धेर्वृत्तं यत्र निर्गच्छतीत्यर्थः । तत्र निर्गमनप्रवेशस्थानयोरुभौ द्वौ विन्दू पूर्वापरसंज्ञौ क्रमेण वृत्ते परिधिरेखायां कृत्वा तन्मध्ये पूर्वापरविन्द्वन्तरमध्ये तिमिना मत्स्येन रेखा कार्या सा दाक्षिणोत्तररेखा भवति । मत्स्यस्तु विन्द्वन्तरालसूत्रमितेन व्यासार्द्धेन विन्दुद्वयकेन्द्रकल्पनेन वृत्तद्वयं निष्पाद्य वृत्तद्वयसंयोगाभ्यां वृत्तद्वयपरिधिविभागाभ्यामन्तर्गतं मत्स्याकारं स्थानं भवति । तत्रैकः संयोगो मुखं बाह्यवृत्तभागसम्मार्जनेनापरसंयोगस्तु पुच्छमितरवृत्तभागद्वयं सम्मार्जनेन । मुखपुच्छावध्यृज्वी रेखा दक्षिणोत्तररेखा । तत्र विन्दोः सव्यं रेखाग्रं दक्षिणा दिक् । पश्चिमविन्दोः सव्यं रेखाग्रमुत्तरा दिक् । अनन्तरं पूर्ववृत्तं मत्स्यश्च सम्मार्जनीयः । शंकुरपि तत्स्थानान्निष्कास्य इति केवला दक्षिणोत्तररेखा स्थितेति तात्पर्यम् । दक्षिणोत्तरदिशोर्मध्यस्थाने तिमिना दक्षिणोत्तररेखामितेन व्यासार्द्धेन दक्षिणोत्तरस्थानाभ्यां पूर्ववत्प्रत्येकं वृत्तं विधाय पूर्ववत्सिद्धेन मत्स्येनेत्यर्थः । पूर्वपश्चिमा रेखा कार्या । तत्र पूर्वविन्दोरासन्नं रेखाग्रं पूर्वा पश्चिमविन्दोरासन्नं रेखाग्रं पश्चिमेति मत्स्यसंमार्जनेन केवला पूर्वापररेखा सिद्धा । अथ रेखासंयोगस्थानादिक्साधनोपक्रमोक्तं पूर्ववृत्तमुल्लिख्य तद्वृत्तपरिधौ यत्र रेखा लग्ना तत्र दिगिति तद्वृत्तमध्यस्य दिक्चतुष्टयं वृत्ते सिद्धम् । तद्वत् । यथा दक्षिणोत्तराभ्यां पूर्वापरा साधिता तत्प्रकारेणेत्यर्थः । एवकारोऽन्यप्रकारनिरासार्थकः । हि निश्चयेन । विदिशः कोण दिशां दिशां पूर्वादिसिद्धदिशां ये मध्यमत्स्या अव्यवहितदिग्द्वयान्तर्गतमत्स्याः । तद्वर्त्मनः संसाध्याः सम्यक्

कृते शंक्वंगुलैः शङ्कुस्थांगुलविभागमानगृहीतैरभीष्टसङ्ख्याकांगुलैः व्यासार्ध-रूपैर्वृत्तमवक्रमालिखेत् । सर्वतः केंद्राद्वृत्तपरिधिरेखातुल्या स्यात्तथेत्यर्थः । ततस्तन्मध्ये तस्य केन्द्ररूपमध्ये कल्पनया द्वादशसंख्याकांगुलानि तुल्यानि यस्मिंस्तं द्वादशविभागांकितमित्यर्थः । शंकुं समतलमस्तकपरिधिकाष्ठदंडं स्थापयेत् । ततः पूर्वापरार्धयोर्दिनस्य प्रथमद्वितीयभागयोस्तच्छायाग्रं स्थापितशंकोश्छायान्तप्रदेशो मण्डलपरिधौ यस्मिन्विभागे स्पृशेत् । दिनस्य प्रथमविभागेऽनुक्षणं छायाह्रासाद्वृत्ते यत्र प्रविशति दिनस्यापरार्द्धे छायानुक्षण-वृद्धेर्वृत्तं यत्र निर्गच्छतीत्यर्थः । तत्र निर्गमनप्रवेशस्थानयोरुभौ द्वौ बिन्दू पूर्वापरसंज्ञौ क्रमेण वृत्ते परिधिरेखायां कृत्वा तन्मध्ये पूर्वापरबिन्द्वन्तर-मध्ये तिमिना मत्स्येन रेखा कार्या सा दाक्षिणोत्तररेखा भवति । मत्स्यस्तु बिन्द्वन्तरालसूत्रमितेन व्यासार्द्धेन बिन्दुद्वयकेन्द्रकल्पनेन वृत्तद्वयं निष्पाद्य वृत्तद्वयसंयोगाभ्यां वृत्तद्वयपरिधिविभागाभ्यामन्तर्गतं मत्स्याकारं स्थानं भवति । तत्रैकः संयोगो मुखं बाह्यवृत्तभागसम्मार्जनेनापरसंयोगस्तु पुच्छ-मितरवृत्तभागद्वयं सम्मार्जनेन । मुखपुच्छावध्यृज्वी रेखा दक्षिणोत्तररेखा । तत्र बिन्दोः सव्यं रेखाग्रं दक्षिणा दिक् । पश्चिमबिन्दोः सव्यं रेखाग्रमुत्तरा दिक् । अनन्तरं पूर्ववृत्तं मत्स्यश्च सम्मार्जनीयः । शंकुरपि तत्स्थानान्नि-ष्कास्य इति केवला दक्षिणोत्तररेखा स्थितेति तात्पर्यम् । दक्षि-णोत्तरदिशोर्मध्यस्थाने तिमिना दक्षिणोत्तररेखामितेन व्यासार्द्धेन दक्षिणो-त्तरस्थानाभ्यां पूर्ववत्प्रत्येकं वृत्तं विधाय पूर्ववत्सिद्धेन मत्स्येनेत्यर्थः । पूर्वपश्चिमा रेखा कार्या । तत्र पूर्वबिन्दोरासन्नं रेखाग्रं पूर्वा पश्चिमबिन्दो-रासन्नं रेखाग्रं पश्चिमेति मत्स्यसंमार्जनेन केवला पूर्वापररेखा सिद्धा । अथ रेखासंयोगस्थानाद्दिक्साधनोपक्रमोक्तं पूर्ववृत्तमुल्लिखेत्तद्वृत्तपरिधौ यत्र रेखा लग्ना तत्र दिगिति तद्वृत्तमध्यस्य दिक्चतुष्टयं वृत्ते सिद्धम् । तद्वत् । यथा दक्षिणोत्तराभ्यां पूर्वापरा साधिता तत्प्रकारेणेत्यर्थः । एवकारोऽन्यप्रकार-निरासार्थकः । हि निश्चयेन । विदिशःकोण दिशो दिशां पूर्वादिसिद्धदिशां वे मध्यमत्स्या अव्यवहितदिग्द्वयान्तरोत्पन्नाः । तद्वदन्तः संसाध्याः मत्स्य-

कृते शंकंगुलैः शङ्कुस्थांगुलविभागमानगृहीतैरभीष्टसङ्ख्याकांगुलैः व्यासार्ध-रूपैर्वृत्तमवक्रमालिखेत् । सर्वतः केंद्राद्वृत्तपरिधिरेखातुल्या स्यात्तथेत्यर्थः । ततस्तन्मध्ये तस्य केन्द्ररूपमध्ये कल्पनया द्वादशसंख्याकांगुलानि तुल्यानि यस्मिंस्तं द्वादशविभागांकितमित्यर्थः । शंकुं समतलमस्तकपरिधिकाष्ठदंडं स्थापयेत् । ततः पूर्वापरार्धयोर्दिनस्य प्रथमद्वितीयभागयोस्तच्छायाग्रं स्थापितशंकोश्छायान्तप्रदेशो मण्डलपरिधौ यस्मिन्विभागे स्पृशेत् । दिनस्य प्रथमविभागेऽनुक्षणं छायाह्रासाद्वृत्ते यत्र प्रविशति दिनस्यापरार्द्धे छायानुक्षणवृद्धेर्वृत्तं यत्र निर्गच्छतीत्यर्थः । तत्र निर्गमनप्रवेशस्थानयोरुभौ द्वौ बिन्दू पूर्वापरसंज्ञौ क्रमेण वृत्ते परिधिरेखायां कृत्वा तन्मध्ये पूर्वापरबिन्द्वन्तरमध्ये तिमिना मत्स्येन रेखा कार्या सा दाक्षिणोत्तररेखा भवति । मत्स्यस्तु बिन्द्वन्तरालसूत्रमितेन व्यासार्द्धेन बिन्दुद्वयकेन्द्रकल्पनेन वृत्तद्वयं निष्पाद्य वृत्तद्वयसंयोगाभ्यां वृत्तद्वयपरिधिविभागाभ्यामन्तर्गतं मत्स्याकारं स्थानं भवति । तत्रैकः संयोगो मुखं बाह्यवृत्तभागसम्मार्जनेनापरसंयोगस्तु पुच्छमितरवृत्तभागद्वयं सम्मार्जनेन । मुखपुच्छावध्यृज्वी रेखा दक्षिणोत्तररेखा । तत्र बिन्दोः सव्यं रेखाग्रं दक्षिणा दिक् । पश्चिमबिन्दोः सव्यं रेखाग्रमुत्तरा दिक् । अनन्तरं पूर्ववृत्तं मत्स्यश्च सम्मार्जनीयः । शंकुरपि तत्स्थानान्निष्कास्य इति केवला दक्षिणोत्तररेखा स्थितेति तात्पर्यम् । दक्षिणोत्तरदिशोर्मध्यस्थाने तिमिना दक्षिणोत्तररेखामितेन व्यासार्द्धेन दक्षिणोत्तरस्थानाभ्यां पूर्ववत्प्रत्येकं वृत्तं विधाय पूर्ववत्सिद्धेन मत्स्येनेत्यर्थः । पूर्वपश्चिमा रेखा कार्या । तत्र पूर्वबिन्दोरासन्नं रेखाग्रं पूर्वा पश्चिमबिन्दोरासन्नं रेखाग्रं पश्चिमेति मत्स्यसंमार्जनेन केवला पूर्वापररेखा सिद्धा । अथ रेखासंयोगस्थानाद्दिक्साधनोपक्रमोक्तं पूर्ववृत्तमुल्लिख्य तद्वृत्तपरिधौ यत्र रेखा लग्ना तत्र दिगिति तद्वृत्तमध्यस्य दिक्चतुष्टयं वृत्ते सिद्धम् । तद्वत् । यथा दक्षिणोत्तराभ्यां पूर्वापरा साधिता तत्प्रकारेणेत्यर्थः । एवकारोऽन्यप्रकारनिरासार्थकः । हि निश्चयेन । विदिक्कोण दिशो दिशां पूर्वादिसिद्धदिशां यं मध्यमत्स्या अव्यवहितदिग्द्वयान्तर्गतास्तत्राः । तद्वदग्नः संज्ञाभ्याः मन्यक-

कृते शंक्वंगुलैः शङ्कुस्थांगुलविभागमानगृहीतैरभीष्टसङ्ख्याकांगुलैः व्यासार्ध-
रूपैर्वृत्तमवक्रमालिखेत् । सर्वतः केंद्राद्वृत्तपरिधिरेखातुल्या स्यात्तथेत्यर्थः ।
ततस्तन्मध्ये तस्य केन्द्ररूपमध्ये कल्पनया द्वादशसंख्याकांगुलानि तुल्यानि
यस्मिंस्तं द्वादशविभागांकितमित्यर्थः । शंकुं समतलमस्तकपरिधिकाष्ठदंडं
स्थापयेत् । ततः पूर्वापरार्धयोर्दिनस्य प्रथमद्वितीयभागयोस्तच्छायाग्रं स्थापि-
तशंकोश्छायान्तप्रदेशो मण्डलपरिधौ यस्मिन्विभागे स्पृशेत् । दिनस्य प्रथ-
मविभागेऽनुक्षणं छायाह्रासाद्वृत्ते यत्र प्रविशति दिनस्यापरार्द्धे छायानुक्षण-
वृद्धेर्वृत्तं यत्र निर्गच्छतीत्यर्थः । तत्र निर्गमनप्रवेशस्थानयोरुभौ द्वौ बिन्दू
पूर्वापरसंज्ञौ क्रमेण वृत्ते परिधिरेखायां कृत्वा तन्मध्ये पूर्वापरबिन्द्वन्तर-
मध्ये तिमिना मत्स्येन रेखा कार्या सा दाक्षिणोत्तररेखा भवति । मत्स्यस्तु
बिन्द्वन्तरालसूत्रमितेन व्यासार्द्धेन बिन्दुद्वयकेन्द्रकल्पनेन वृत्तद्वयं निष्पाद्य
वृत्तद्वयसंयोगाभ्यां वृत्तद्वयपरिधिविभागाभ्यामन्तर्गतं मत्स्याकारं स्थानं
भवति । तत्रैकः संयोगो मुखं बाह्यवृत्तभागसम्मार्जनेनापरसंयोगस्तु पुच्छ-
मितरवृत्तभागद्वयं सम्मार्जनेन । मुखपुच्छावध्यृज्वी रेखा दक्षिणोत्तररेखा ।
तत्र बिन्दोः सव्यं रेखाग्रं दक्षिणा दिक् । पश्चिमबिन्दोः सव्यं रेखाग्रमुत्तरा
दिक् । अनन्तरं पूर्ववृत्तं मत्स्यश्च सम्मार्जनीयः । शंकुरपि तत्स्थानान्नि-
ष्कास्य इति केवला दक्षिणोत्तररेखा स्थितेति तात्पर्यम् । दक्षि-
णोत्तरदिशोर्मध्यस्थाने तिमिना दक्षिणोत्तररेखामितेन व्यासार्द्धेन दक्षिणो-
त्तरस्थानाभ्यां पूर्ववत्प्रत्येकं वृत्तं विधाय पूर्ववत्सिद्धेन मत्स्येनेत्यर्थः ।
पूर्वपश्चिमा रेखा कार्या । तत्र पूर्वबिन्दोरासन्नं रेखाग्रं पूर्वा पश्चिमबिन्दो-
रासन्नं रेखाग्रं पश्चिमेति मत्स्यसंमार्जनेन केवला पूर्वापररेखा सिद्धा । अथ
रेखासंयोगस्थानाद्दिक्साधनोपक्रमोक्तं पूर्ववृत्तमुल्लिख्य तद्वृत्तपरिधौ यत्र रेखा
लग्ना तत्र दिगिति तद्वृत्तमध्यस्य दिक्चतुष्टयं वृत्ते सिद्धम् । तद्वत् । यथा
दक्षिणोत्तराभ्यां पूर्वापरा साधिता तत्प्रकारेणेत्यर्थः । एवकारोऽन्यप्रकार-
निरासार्थकः । हि निश्चयेन । विदिक्कोण दिशो दिशां पूर्वादिसिद्धदिशां च
मध्यमत्स्या अव्यवहितदिग्द्वयान्तरोत्पन्नाः । तत्कर्मैः संसाध्याः सम्यक्-

कृते शंक्वंगुलैः शङ्कुस्थांगुलविभागमानगृहीतैरभीष्टसङ्ख्याकांगुलैः व्यासार्ध-रूपैर्वृत्तमवक्रमालिखेत् । सर्वतः केंद्राद्वृत्तपरिधिरेखातुल्या स्यात्तथेत्यर्थः । ततस्तन्मध्ये तस्य केन्द्ररूपमध्ये कल्पनया द्वादशसंख्याकांगुलानि तुल्यानि यस्मिंस्तं द्वादशविभागांकितमित्यर्थः । शंकुं समतलमस्तकपरिधिकाष्ठदंडं स्थापयेत् । ततः पूर्वापरार्धयोर्दिनस्य प्रथमद्वितीयभागयोस्तच्छायाग्रं स्थापितशंकोश्छायान्तप्रदेशो मण्डलपरिधौ यस्मिन्विभागे स्पृशेत् । दिनस्य प्रथमविभागेऽनुक्षणं छायाह्रासाद्वृत्ते यत्र प्रविशति दिनस्यापरार्द्धे छायानुक्षण-वृद्धेर्वृत्तं यत्र निर्गच्छतीत्यर्थः । तत्र निर्गमनप्रवेशस्थानयोरुभौ द्वौ बिन्दू पूर्वापरसंज्ञौ क्रमेण वृत्ते परिधिरेखायां कृत्वा तन्मध्ये पूर्वापरबिन्द्वन्तर-मध्ये तिमिना मत्स्येन रेखा कार्या सा दाक्षिणोत्तररेखा भवति । मत्स्यस्तु बिन्द्वन्तरालसूत्रमितेन व्यासार्द्धेन बिन्दुद्वयकेन्द्रकल्पनेन वृत्तद्वयं निष्पाद्य वृत्तद्वयसंयोगाभ्यां वृत्तद्वयपरिधिविभागाभ्यामन्तर्गतं मत्स्याकारं स्थानं भवति । तत्रैकः संयोगो मुखं बाह्यवृत्तभागसम्मार्जनेनापरसंयोगस्तु पुच्छ-मितरवृत्तभागद्वयं सम्मार्जनेन । मुखपुच्छावध्यृज्वी रेखा दक्षिणोत्तररेखा । तत्र बिन्दोः सव्यं रेखाग्रं दक्षिणा दिक् । पश्चिमबिन्दोः सव्यं रेखाग्रमुत्तरा दिक् । अनन्तरं पूर्ववृत्तं मत्स्यश्च सम्मार्जनीयः । शंकुरपि तत्स्थानान्नि-ष्कास्य इति केवला दक्षिणोत्तररेखा स्थितेति तात्पर्यम् । दक्षि-णोत्तरदिशोर्मध्यस्थाने तिमिना दक्षिणोत्तररेखामितेन व्यासार्द्धेन दक्षिणो-त्तरस्थानाभ्यां पूर्ववत्प्रत्येकं वृत्तं विधाय पूर्ववत्सिद्धेन मत्स्येनेत्यर्थः । पूर्वपश्चिमा रेखा कार्या । तत्र पूर्वबिन्दोरासन्नं रेखाग्रं पूर्वा पश्चिमबिन्दो-रासन्नं रेखाग्रं पश्चिमेति मत्स्यसंमार्जनेन केवला पूर्वापररेखा सिद्धा । अथ रेखासंयोगस्थानाद्दिक्साधनोपक्रमोक्तं पूर्ववृत्तमुल्लिखेत्तद्वृत्तपरिधौ यत्र रेखा लग्ना तत्र दिगिति तद्वृत्तमध्यस्य दिक्चतुष्टयं वृत्ते सिद्धम् । तद्वत् । यथा दक्षिणोत्तराभ्यां पूर्वापरा साधिता तत्प्रकारेणेत्यर्थः । एवकारोऽन्यप्रकार-निरासार्थकः । हि निश्चयेन । विदिक्कोण दिशा दिशां पूर्वादिसिद्धदिशां ये मध्यमत्स्या अव्यवहितदिग्द्वयान्तरोत्पन्नाः । तच्चवर्त्मैः संसाध्याः सम्यक्-

कृते शंक्वंगुलैः शङ्कुस्थांगुलविभागमानगृहीतैरभीष्टसङ्ख्याकांगुलैः व्यासार्धरूपैर्वृत्तमवक्रमालिखेत् । सर्वतः केंद्राद्वृत्तपरिधिरेखातुल्या स्यात्तथेत्यर्थः । ततस्तन्मध्ये तस्य केन्द्ररूपमध्ये कल्पनया द्वादशसंख्याकांगुलानि तुल्यानि यस्मिंस्तं द्वादशविभागांकितमित्यर्थः । शंकुं समतलमस्तकपरिधिकाष्ठदंडं स्थापयेत् । ततः पूर्वापरार्धयोर्दिनस्य प्रथमद्वितीयभागयोस्तच्छायाग्रं स्थापितशंकोश्छायान्तप्रदेशो मण्डलपरिधौ यस्मिन्विभागे स्पृशेत् । दिनस्य प्रथमविभागेऽनुक्षणं छायाह्रासाद्वृत्ते यत्र प्रविशति दिनस्यापरार्द्धे छायानुक्षणवृद्धेर्वृत्तं यत्र निर्गच्छतीत्यर्थः । तत्र निर्गमनप्रवेशस्थानयोरुभौ द्वौ विन्दू पूर्वापरसंज्ञौ क्रमेण वृत्ते परिधिरेखायां कृत्वा तन्मध्ये पूर्वापरविन्द्वन्तरमध्ये तिमिना मत्स्येन रेखा कार्या सा दक्षिणोत्तररेखा भवति । मत्स्यस्तु विन्द्वन्तरालसूत्रमितेन व्यासार्द्धेन विन्दुद्वयकेन्द्रकल्पनेन वृत्तद्वयं निष्पाद्य वृत्तद्वयसंयोगाभ्यां वृत्तद्वयपरिधिविभागाभ्यामन्तर्गतं मत्स्याकारं स्थानं भवति । तत्रैकः संयोगो मुखं बाह्यवृत्तभागसम्मार्जनेनापरसंयोगस्तु पुच्छमितरवृत्तभागद्वयं सम्मार्जनेन । मुखपुच्छावध्यृज्वी रेखा दक्षिणोत्तररेखा । तत्र विन्दोः सव्यं रेखाग्रं दक्षिणा दिक् । पश्चिमविन्दोः सव्यं रेखाग्रमुत्तरा दिक् । अनन्तरं पूर्ववृत्तं मत्स्यश्च सम्मार्जनीयः । शंकुरपि तत्स्थानान्निष्कास्य इति केवला दक्षिणोत्तररेखा स्थितेति तात्पर्यम् । दक्षिणोत्तरदिशोर्मध्यस्थाने तिमिना दक्षिणोत्तररेखामितेन व्यासार्द्धेन दक्षिणोत्तरस्थानाभ्यां पूर्ववत्प्रत्येकं वृत्तं विधाय पूर्ववत्सिद्धेन मत्स्येनेत्यर्थः । पूर्वपश्चिमा रेखा कार्या । तत्र पूर्वविन्दोरासन्नं रेखाग्रं पूर्वा पश्चिमविन्दोरासन्नं रेखाग्रं पश्चिमेति मत्स्यसंमार्जनेन केवला पूर्वापररेखा सिद्धा । अथ रेखासंयोगस्थानाद्दिक्साधनोपक्रमोक्तं पूर्ववृत्तमुल्लिख्य तद्वृत्तपरिधौ यत्र रेखा लग्ना तत्र दिगिति तद्वृत्तमध्यस्य दिक्चतुष्टयं वृत्ते चिह्नम् । तद्वत् । यथा दक्षिणोत्तराभ्यां पूर्वापरा साधिता तत्प्रकारेणेत्यर्थः । एवकारोऽन्यप्रकारनिरासार्थकः । हि निश्चयेन । विदिशः कोण दिशो दिशां पूर्वादिसिद्धदिशां मध्यमत्स्या अव्यवहितदिग्द्वयान्तरोत्पन्नाः । तद्वत्तैः संसाध्याः सम्यक्

कृते शंकंगुलैः शङ्कुस्थांगुलविभागमानगृहीतैरभीष्टसङ्ख्याकांगुलैः व्यासार्ध-रूपैर्वृत्तमवक्रमालिखेत् । सर्वतः केंद्राद्वृत्तपरिधिरेखातुल्या स्यात्तथेत्यर्थः । ततस्तन्मध्ये तस्य केन्द्ररूपमध्ये कल्पनया द्वादशसंख्याकांगुलानि तुल्यानि यस्मिंस्तं द्वादशविभागांकितमित्यर्थः । शंकुं समतलमस्तकपरिधिकाष्टदंडं स्थापयेत् । ततः पूर्वापरार्धयोर्दिनस्य प्रथमद्वितीयभागयोस्तच्छायाग्रं स्थापितशंकोश्छायान्तप्रदेशो मण्डलपरिधौ यस्मिन्विभागे स्पृशेत् । दिनस्य प्रथमविभागेऽनुक्षणं छायाह्रासाद्वृत्ते यत्र प्रविशति दिनस्यापरार्द्धे छायानुक्षण-वृद्धेर्वृत्तं यत्र निर्गच्छतीत्यर्थः । तत्र निर्गमनप्रवेशस्थानयोरुभौ द्वौ बिन्दू पूर्वापरसंज्ञौ क्रमेण वृत्ते परिधिरेखायां कृत्वा तन्मध्ये पूर्वापरबिन्द्वन्तः-मध्ये तिमिना मत्स्येन रेखा कार्या सा दक्षिणोत्तररेखा भवति । मत्स्यस्तु बिन्द्वन्तरालसूत्रमितेन व्यासार्द्धेन बिन्दुद्वयकेन्द्रकल्पनेन वृत्तद्वयं निष्पाद्य वृत्तद्वयसंयोगाभ्यां वृत्तद्वयपरिधिविभागाभ्यामन्तर्गतं मत्स्याकारं स्थानं भवति । तत्रैकः संयोगो मुखं बाह्यवृत्तभागसम्मार्जनेनापरसंयोगस्तु पुच्छ-मितरवृत्तभागद्वयं सम्मार्जनेन । मुखपुच्छावध्यृज्वी रेखा दक्षिणोत्तररेखा । तत्र बिन्दोः सव्यं रेखाग्रं दक्षिणा दिक् । पश्चिमबिन्दोः सव्यं रेखाग्रमुत्तरा दिक् । अनन्तरं पूर्ववृत्तं मत्स्यश्च सम्मार्जनीयः । शंकुरपि तत्स्थानान्निष्कास्य इति केवला दक्षिणोत्तररेखा स्थितेति तात्पर्यम् । दक्षिणोत्तरदिशोर्मध्यस्थाने तिमिना दक्षिणोत्तररेखामितेन व्यासार्द्धेन दक्षिणोत्तरस्थानाभ्यां पूर्ववत्प्रत्येकं वृत्तं विधाय पूर्ववत्सिद्धेन मत्स्येनेत्यर्थः । पूर्वपश्चिमा रेखा कार्या । तत्र पूर्वबिन्दोरासन्नं रेखाग्रं पूर्वा पश्चिमबिन्दोरासन्नं रेखाग्रं पश्चिमेति मत्स्यसंमार्जनेन केवला पूर्वापररेखा सिद्धा । अथ रेखासंयोगस्थानाद्दिक्साधनोपक्रमोक्तं पूर्ववृत्तमुल्लिख्य तद्वृत्तमार्गे यत्र रेखा लग्ना तत्र दिगिति तद्वृत्तमध्यस्य दिक्चतुष्टयं वृत्ते स्फुटम् । तदन्तः । यथा दक्षिणोत्तराभ्यां पूर्वापरा साधिता तत्प्रकारेणेत्यर्थः । एवकारोऽन्यप्रकार-निरासार्थकः । हि निश्चयेन । विदिक्कोण दिशो दिशां पूर्वादिसिद्धदिशां ये मध्यमत्स्या अव्यवहितदिग्द्वयान्तर्गत्यन्ताः । तद्वदन्तः संसाध्याः सम्यक्

वक्रत्वं त्यजति] नान्ये । अत्र कारणमाह । महत्त्वादिति । अन्येषां शीघ्र परिधेः प्रागुक्तस्य महत्त्वाच्छनिशीघ्रपरिधेरधिकत्वात् । तथा च परिध्य- धिकत्वेन पूर्वमेव वक्रत्यजनमत एव भौमशुक्रयोर्बुधगुरुभ्यां प्रथमोद्देशः । शनेस्तु सुतरां बुधगुर्वोः शनितः पूर्वोद्देशः भृगुभूसुतौ जीवशशिजावित्यत्र परिध्यधिकत्वेन शुक्रगुर्वेः प्रथमं केवलमुद्देशो न भागानामल्पत्वक्रम इति भावः । ननु परिध्यधिकत्वे पूर्वपूर्वराशौ वक्रत्यजने कोपपत्तिरिति चेच्छणु । शून्यगतिसंबद्धशीघ्रकर्णात्फलांशखाङ्कान्तरेत्यादेर्विलोमविधिना शीघ्रोच्चगतेः फलकोटिज्यास्याः फलज्यास्यास्त्रिज्याभ्यस्तं भुजफलं चलकर्णविभाजित- मित्यस्य विलोमविधिना भुजफलमस्मात् तद्गुणे भुजकोटिज्ये भगणां- शविभाजिते इत्यस्य विलोमप्रकारेण भुजांशज्ञानार्थं भौमादीनां भुजज्या उत्तरोत्तरमधिकाः शीघ्रपरिधिभ्यो यथोत्तरमपचयवद्भ्यो हरेभ्यो लब्धत्वाद्धा- राधिकन्यूनत्वाभ्यां फलयोर्न्यूनाधिकत्वनिश्चयात् । तासां चापानि भुजभागा यथोत्तरमधिका वक्रारंभे तदन्ते च तुल्या अत एव तृतीयपदे वक्रान्तत्वा- द्भुजभागाः षड्युता यथोत्तरमधिकं शीघ्रकेंद्रं तेषां वक्रांते भवति । वक्रारम्भस्य द्वितीयपदे सम्भवाद्भुजभागहीनाः षड्राशयस्तेषां वक्रारम्भे यथोपचितं केन्द्रं भवति । तन्नूक्तरीत्या भौमशुक्रयोः षष्ठराशौ बुधगुर्वोः पञ्चमराशौ शनेश्चतुर्थराशाविति ज्ञेयम् । इदं भगवता विनाचक्रशोधनमापाततः। शीघ्रकेन्द्रराशिज्ञानाद्वक्रान्तज्ञानं लोकानुकम्पार्थमनतिप्रयोजन मुक्तमिति ध्येयम् ॥ ५५ ॥

भा० टी०–शीघ्रपरिधिका अधिकार हीनसे शुक्र और मंगल केन्द्रकी सातवीं राशिमेंही और बृहस्पति बुध अष्टममें और शनि नवम राशिमें वक्रका त्याग करता है ॥ ५५ ॥

अथ चन्द्रादिग्रहाणां विक्षेपसाधनं श्लोकाभ्यामाह–

कुजार्किगुरुपातानां ग्रहवच्छीघ्रजं फलम् ॥
वामं तृतीयकं मान्दं बुधभार्गवयोः फलम् ॥ ५६ ॥
स्वपातोनाद्ग्रहाज्जीवा शीघ्राद्भृगुजसौम्ययोः ॥
विक्षेपघ्नान्त्यकर्णाता विक्षेपस्त्रिज्यया विधोः ॥ ५७ ॥

अन्येषां तु परमशराः शीघ्रोच्चदेवताकृष्टग्रहबिम्बाधिष्ठितकल्पितवृत्ते शीघ्रकर्णव्यासार्द्धे लक्षिताः । कथमन्यथा शीघ्रफलसंस्कारेण ग्रहस्य स्पष्टत्वं युक्तम् । ग्रहबिम्बस्य तत्स्थत्वे तत्पातस्यापि तत्स्थत्वं युक्तम् । ग्रहबिम्बाधिष्ठितवृत्ते ग्रहभोगगस्य मन्दस्पष्टत्वेन गणितागतपातान्मन्दस्पष्टाच्छरसाधनमुपपन्नम् । तदुक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ "मन्दस्फुटो द्राक्प्रतिमण्डले हि ग्रहो भ्रमत्यत्र च तस्य पातः । पातेन युक्ताद्गणितागतेन मन्दस्फुटात्स्वे चरतः शरोऽस्मात् ॥" इति । तत्र स्पष्टाच्छरसाधनार्थं शीघ्रफलं पाते संस्कृतं शीघ्रफलव्यस्तसंस्कृतस्पष्टग्रहस्य मन्दस्पष्टत्वाद्यथोक्तसंस्कृतपातोने स्पष्टग्रहे पातोनमन्दस्फुटग्रहस्य सिद्धे । अथ बुधशुक्रपातभगणौ वास्तवौ नोक्तौ । तौ तु शीघ्रकेंद्रभगणाधिकौ अतो गणितागतपातयोर्मध्यग्रहोनशीघ्रोच्चरूपशीघ्रकेंद्रयुतयोर्द्वादशराशिशुद्धयोः पातत्वम् । तत्र पूर्वपातस्य द्वादशशुद्धत्वाच्छीघ्रकेंद्रं चक्रशुद्धं योज्यम् । अतो लाघवाद्गणितागतपातस्य शीघ्रोच्चोनमध्यग्रहरूपं केंद्रं योज्यम् । अयं पातो मन्दस्पष्टे मन्दफलसंस्कृतमध्यरूपे हीन इति ग्रहयोर्मध्ययोर्नाशाद्यथागतमन्दफलसंस्कृत शीघ्रोच्चं पातोनमिति सिद्धम् । तत्रापि मन्दफलं पाते व्यस्तं कृत्वा तदूनं शीघ्रोच्चं कृतं संस्कृतपातपंक्त्यां संस्कृतपातयोर्युक्तत्वात् । अथैतदानीतविक्षेपः कर्णव्यासार्धवृत्तेन त्रिज्यावृत्ते स्फुटग्रहस्थानः अतः कर्णाग्रेऽयं पूर्वानुपातानीतविक्षेपस्तदा त्रिज्याग्रे क इत्यनुपातेन त्रिज्यागुणः कर्णो हरः पूर्वं त्रिज्याहर इति त्रिज्ययोर्नाशाद्भुजज्यापरमविक्षेपगुणिता शीघ्रकर्णभक्तेति सर्वमुक्तमुपपन्नम् ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

भा० टी०–मंगल शनि और बृहस्पतिके चतुर्थ संस्कारागत शीघ्रफल पहले ग्रहमें जिसप्रकार संस्कृत हुए हैं । वैसेही इन फलोंको फिर इनहीके पातोंसे संस्कारित करे । बुध और शुक्रके कालमें तीसरा मान्यफल जिस भावसे संस्कारको प्राप्त हुआ है, तिसके विपरीतभावसे उक्तफल तिनके पातोंमें संस्कार करे । अर्थात् मांद्य फल ग्रहमें योग करना हो तो वियोग करे, और वियोग करना हो तो योग करे । चन्द्र, मंगल, शनि और बृहस्पतिके स्थानमें स्फुटसे उसके स्पष्टपात अलग करके शुक्र और बुधके स्थानमें शीघ्रसे स्फुटपात हीन करके भुजज्या स्थिर करे । भुजज्याको परमविक्षेप (१ अध्याय ७० श्लोक) से गुणकरके शेष शीघ्रकर्णके

षट्शतयुतैकविंशतिसहस्रमिताः स्वस्वग्रहस्याहोरात्रासवः कालतत्त्वज्ञैः कथिताः। अत्रोपपत्तिः। ग्रहः पूर्वगत्या लम्बितः प्रवहेण गतिभोगकालेन भचक्रपरिवर्तानन्तरमुदेत्यतो भचक्रपरिवर्त्तकालः षष्टिघटिकासु मितो ग्रहगतिकलासम्बद्धास्वात्मककालेनाधिको ग्रहाहोरात्रमस्वात्मकं नाक्षत्रप्रमाणेन भवति। तत्रैकराशिकलाभिर्ग्रहसम्बद्धराश्युदयप्राणास्तदा गतिकलाभिः क इत्यनुपातेन गत्यसव इत्युपपन्नं ग्रहोदयेत्यादि। अनेनैव श्लोकेन ग्रहणासुदयान्तर कर्मास्तीत्युक्तं भगवता। तथाहि। अनुपातानीतमध्यग्रहाणां नियताहोरात्रमानान्तरकाले सिद्धत्वान्न मध्यरात्रकाले ग्रहाणां सिद्धिः। रविमध्यगत्यसूनां प्रतिराशौ भिन्नत्वेन मध्यमसूर्याहोरात्रमानस्य नियतत्वाभावाद्‌तत्त्रैराशिकावगतग्रहा अनियतमध्यार्काहोरात्रमानान्तरेणार्धरात्रे यत्संस्कारेण भवन्ति तदेवोदयान्तरं तत्साधनं भगवता स्वल्पान्तरत्वादुपेक्षितम्। कथमन्यथा गतिकलासूनां समत्वमुपेक्ष्य गतिकलानामसवो भगवदुक्ताः संगच्छन्ते। उदयान्तरस्य गतिकलासु भेदोत्पन्नत्वात्॥ ५९॥

भा० टी०-सायनग्रह जिस राशिमें हो उस स्पष्ट राशिकी प्राणसंख्या तिसकी स्पष्ट गतिसे गुणकरके, १८०० से भाग करनेपर फल दैनिक प्राणसंख्यामें अर्थात् २१६०० ग्रहका स्पष्टाहोरात्रमान होगा॥ ५९॥

अथ चरोपयुक्तां क्रांतिज्यां द्युज्यां चाह-

क्रान्तेः क्रमोत्क्रमज्ये द्वे कृत्वा तत्रोत्क्रमज्यया॥
हीना त्रिज्या दिनव्यासदलं तद्दक्षिणोत्तरम्॥ ६०॥

स्पष्टक्रान्तेः क्रमोत्क्रमज्ये क्रमज्योत्क्रमज्ये द्वे अपि प्रसाध्य तत्र तन्मध्ये क्रान्त्युत्क्रमाज्यया त्रिज्याहीना दिनव्यासदलमहोरात्रवृत्तस्य व्यासार्धं द्युज्येत्यर्थः। तद्दिनव्यासार्धं दक्षिणोत्तरं दक्षिणगोल उत्तरगोले च स्यात्। क्रान्तेर्गोलद्वयेऽपि सत्त्वात्। अपरा क्रान्ति ज्यैव। अत्रोपपत्तिः। क्रान्त्यंशानां क्रमज्याक्रान्तिज्याभुजो विषुवद्वृत्तानुकाराण्यहोरात्र कृतान्युभयगोले तदुभयतस्तद्व्यासार्धं द्युज्याकोटिस्त्रिज्या कर्ण इति गोले प्रत्यक्षम्। त्रिज्यावृत्त उन्मंडले याम्योत्तरवृत्ते वा प्रत्यक्षम्। तत्र भुजकर्णयोर्वर्गान्तरपदं

कुज्या भुजोऽग्राकर्ण इत्यक्षक्षेत्रद्वयं प्रसिद्धम् । तत्र द्वादशकोटौ पलभाभुजः क्रान्तिज्याकोटौ को भुज इत्यनुपातेन कुज्या । तत्स्वरूपं तु निरक्षदेशक्षितिजस्वदेशक्षितिजान्तरालस्थिताहोरात्रवृत्तप्रदेशस्य द्युज्याप्रमाणेन ज्येति त्रिज्याप्रमाणेन तज्ज्याचरज्येति द्युज्याप्रमाणेन कुज्या त्रिज्या प्रमाणेन केत्यनुपातेन । चरज्या तद्धनुश्चरासवोऽहोरात्रवृत्तखंऽप्रदेशे निरक्षस्वक्षितिजान्तराल उत्तरगोले स्वक्षितिजस्य निरक्षक्षितिजादधःस्थत्वान्निरक्षक्षितिजयाम्योत्तरवृत्तान्तरालेऽहोरात्रावृत्तचतुर्थांशत्वादहोरात्रासु चतुर्थांशे चरासवो युता दिनार्धं हीना रात्र्यर्धं दक्षिणगोले स्वक्षितिजस्य निरक्षक्षितिजादूर्ध्वस्थ त्वाद्धीनादिनार्धं युता रात्र्यर्धमित्युपपन्नं सर्वं क्रान्तिज्येत्यादि० ॥६१॥६२॥६३॥

भा० टी०—क्रांतिज्या विषुवच्छायासे गुणकरके १२ से भाग करनेपर क्षितिज्या होगी। क्षितिज्याको त्रिज्यासे गुणकरके दिनके व्याससे भागकरके धनु नियत करनेपर चर प्राणसंख्या होगी ॥ ६१ ॥ अहोरात्रके चौथे भागको दो स्थानोंमें रखकर कहाहुआ चर प्राण एकमें मिलावै और दूसरेसे घटावै। उत्तर क्रांति होनेपर योगफल दिनार्द्ध और वियोगफल राज्यर्द्धमान होगा ॥६२॥ परंतु दक्षिणक्रांतिमें उलटा अर्थात वियोगफल दिनार्ध और योगफल रात्र्यर्द्ध होता है । इनको दूना करनेसे दिनादिमान होताहै । इस प्रकार नक्षत्रोंके विक्षेपसे क्रांतिका निर्णय करके दिनादिमान निर्णीत होता है ॥६३॥

अथ ग्रहस्य नक्षत्रानयनमाह—

भभोगोऽष्टशतीलिप्ताः खाश्विशैलास्तथा तिथेः ॥
ग्रहलिप्ता भभोगाप्ता भानि भुक्त्या दिनादिकम् ॥६४॥

अष्टशतमिताः कला नक्षत्रभोगः । प्रसङ्गात्तिथिभोममाह—खाश्विशैला इति । तिथेर्विंशत्यधिकसप्तशतमिताः कलास्तथा भोग इत्यर्थः । यस्य ग्रहस्य नक्षत्रज्ञानमिष्टं तस्य ग्रहस्य राशयस्त्रिंशद्गुण्या अंशा योज्यास्ते षष्टिगुणिताः कला योज्या इति परिभाषया कला नक्षत्रभोगभक्ताः फलं ग्रहस्य गतनक्षत्राणि शेषं वर्तमाननक्षत्रस्य गतकलास्तस्मात्तस्य गतदिनाद्यानयनमाह—भुक्त्येति । ग्रहस्य कलात्मिकया गत्या शेषदिनादिकं गतं भागहरणेन साध्यमेवं शेषोना-

वनघटिकास्तदा गतैष्यकलाभिः का इत्यनुपातेन गतैष्यघटिकानयनं युक्त-मुक्तम् ॥ ६५ ॥

भा० टी०–सूर्य और चन्द्रमाका स्फुट मिलाय कला करके ८०० से भाग करनेपर लब्धफल गतयोग होगा । अवशिष्टगत और ८०० से वियोग करनेपर गम्य होता है । तिसका ६० से गुण करके भुक्तियोगद्वारा भाग करनेपर गत और गम्य दण्ड होंगे ॥ ६५ ॥

अथ प्रसंगात्तिथ्यानयनमाह–

अर्कोनचन्द्रलिप्ताभ्यस्तिथयो भोगभाजिताः ॥
गता गम्याश्च षष्टिघ्ना नाड्यौ भुक्त्यंतरोद्धृताः ॥ ६६ ॥

पूर्वार्धव्याख्यानं पूर्वश्लोकपूर्वार्धरीत्या ज्ञेयमुत्तरार्धं स्पष्टम् । अत्रोपपत्तिः । तिथिभोगकलाभिरेका तिथिस्तदा सूर्योनचन्द्रकलाभिः का इत्यनुपातेन फलं गततिथयो वर्त्तमानतिथेर्गतैष्ये शेषशेषोनभोगकले ताभ्यां गत्यन्तरकलाभिरनुपातेन गतैष्यघटिकाः पूर्ववत् ॥ ६६ ॥

भा० टी०–चन्द्रमासे सूर्यको वियोगकरके तिथिभोग (७२०) से भाग करनेपर लब्धगत तिथि होती है । अवशिष्ट और ७२० से अवशिष्ट वियोग करनेपर गत और गम्य होते हैं । तिनको ६० से गुणकारके चन्द्ररवि–भुक्त्यन्तरसे भाग करनेपर गत और गम्य दण्ड होंगे ॥ ६६ ॥

अथ पञ्चांगावशिष्टं करणानयनं विवक्षुस्तावत्स्थिरकरणान्याह–

ध्रुवाणि शकुनिर्नागं तृतीयं तु चतुष्पदम् ॥
किंस्तुघ्नं तु चतुर्दश्याः कृष्णायाश्चापरार्धतः ॥ ६७ ॥

कृष्णपक्षीयायाश्चतुर्दश्यास्तिथेर्द्वितीयार्धाद्वितीयार्धमारभ्येत्यर्थः । चकार एवार्थे । तेनान्यतिथेरेतत्तिथिपूर्वार्धस्य च निरासः स्थिराणि करणानि । तान्याह–शकुनिरिति । चतुरङ्घ्रिस्तृतीयमानेन शकुनिनागयोः क्रमेणाद्यद्वितीयत्वं सूचितम् । तुकारात्क्रमेण तिथ्यर्धेषु भवन्ति । किंस्तुघ्नं चतुर्थम् । तुरन्तावधिद्योतकः तेनोक्तातिरिक्तं स्थिरकरणं नास्तीति सूचितम् ॥ ६७ ॥

भा० टी०–शकुनि, नाग, चतुष्पद और किंस्तुघ्न यह चार ध्रुव करण हैं । कृष्णा चतुर्दशीके शेषार्द्धसे क्रमशः भोग करते हैं ॥ ६७ ॥

अथ चरकरणान्याह-

बवादीनि ततः सप्त चराख्यकरणानि च ॥
मासेऽष्टकृत्व एकैकं करणानां प्रवर्त्तते ॥ ६८ ॥

ततः स्थिरकरणपूर्त्यनन्तरं बवादीनि चरसंज्ञककरणानि सप्तभद्रान्तानि शुक्लप्रतिपद्द्वितीयार्द्धतश्चतुर्थ्यंतं भवन्तीति चार्थः। ननु पञ्चम्यादितः कानि करणानि भवन्तीत्यत आह-मास इति। चरकरणानां बवादीनां सप्तानां मध्ये एकैकमेकमेकं करणं मासे स्थिरकरणकालोनितत्रिंशत्तिथ्यात्मकमासे स्वल्पान्तरान्मासग्रहणम्। अष्टकृत्वोऽष्टवारं प्रवर्तते प्रकर्षेण तिष्ठति भवतीत्यर्थः। तथाच पंचम्याद्यर्धादेतानि करणानि पुनः पुनः परिभ्रमन्ति। कृष्णचतुर्दश्याद्यार्धपर्यंतमिति भावः ॥ ६८ ॥

भा० टी०-बवादि सात चर करण क्रमानुसार एक चांद्रमासमें आठवार घूमते हैं ॥ ६८ ॥

ननु स्थिरकरणोक्तावपरार्धत इत्युक्त्या तेषां चतुर्णां तिथ्यर्धभोगेन शुक्लप्रतिपदाद्यर्धपर्यंतं क्रमणावस्थानं युक्तं चरकरणानां तु केवलोक्त्या तदनन्तरं कृष्णचतुर्दश्याद्यार्धपर्यंतमेक एव परिभ्रमोऽस्त्वित्यतस्तदुत्तरं कथयन्नन्यदप्याह-

तिथ्यर्द्धभोगं सर्वेषां करणानां प्रकल्पयेत् ॥
एषा स्फुटगतिः प्रोक्ता सूर्यादीनां खचारिणाम् ॥ ६९ ॥

सप्तानां चरकरणानां प्रत्येकं तिथ्यन्तश्चासौ भोगश्च तं तिथ्यर्धकालमितावस्थानं प्रकल्पयेत्। एकत्र निर्णीतः शास्त्रार्थोऽपरत्र भवतीतिन्यायात् करणत्वेनैषामप्यवस्थानं तत्तुल्यं कुर्यादित्यर्थः। अतएव तिथ्यर्धं करणं स्मृतमित्युक्त्या चान्द्रमासे त्रिंशत्तिथ्यात्मक षष्टिकरणानां सन्निवेशाच्चरकरणानामेव परिभ्रमणे प्रतिमासमनियततिथिभोगकं करणं भवतीति तद्वारणकप्रतिमासनियततिथिभोगककरणकसिद्ध्यर्थं चरकरणानामष्टवारंपरिभ्रमणोत्तरमवशिष्टतिथ्योश्चतुर्ष्वर्धेषु स्थिरकरणान्युक्तानीति तात्पर्यम्। तत्रापि कृष्णचतुर्दश्यपरार्धतस्तत्कल्पनं तदिच्छानियामकं स्वतन्त्रेच्छस्य नियोगा-

कृते शंक्वंगुलैः शङ्कुस्थांगुलविभागमानगृहीतैरभीष्टसङ्ख्याकांगुलैः व्यासार्ध-रूपैर्वृत्तमवक्रमालिखेत् । सर्वतः केंद्राद्वृत्तपरिधिरेखातुल्या स्यात्तथेत्यर्थः । ततस्तन्मध्ये तस्य केन्द्ररूपमध्ये कल्पनया द्वादशसंख्याकांगुलानि तुल्यानि यस्मिंस्तं द्वादशविभागांकितमित्यर्थः । शंकुं समतलमस्तकपरिधिकाष्ठदंडं स्थापयेत् । ततः पूर्वापरार्धयोर्दिनस्य प्रथमद्वितीयभागयोस्तच्छायाग्रं स्थापितशंकोश्छायान्तप्रदेशो मण्डलपरिधौ यस्मिन्विभागे स्पृशेत् । दिनस्य प्रथमविभागेऽनुक्षणं छायाह्रासाद्वृत्ते यत्र प्रविशति दिनस्यापरार्द्धे छायानुक्षण-वृद्धेर्वृत्तं यत्र निर्गच्छतीत्यर्थः । तत्र निर्गमनप्रवेशस्थानयोरुभौ द्वौ बिन्दू पूर्वापरसंज्ञौ क्रमेण वृत्ते परिधिरेखायां कृत्वा तन्मध्ये पूर्वापरबिन्द्वन्तर-मध्ये तिमिना मत्स्येन रेखा कार्या सा दाक्षिणोत्तररेखा भवति । मत्स्यस्तु बिन्द्वन्तरालसूत्रमितेन व्यासार्द्धेन बिन्दुद्वयकेन्द्रकल्पनेन वृत्तद्वयं निष्पाद्य वृत्तद्वयसंयोगाभ्यां वृत्तद्वयपरिधिविभागाभ्यामन्तर्गतं मत्स्याकारं स्थानं भवति । तत्रैकः संयोगो मुखं बाह्यवृत्तभागसम्मार्जनेनापरसंयोगस्तु पुच्छ-मितरवृत्तभागद्वयं सम्मार्जनेन । मुखपुच्छावध्यृज्वी रेखा दक्षिणोत्तररेखा । तत्र बिन्दोः सव्यं रेखाग्रं दक्षिणा दिक् । पश्चिमबिन्दोः सव्यं रेखाग्रमुत्तरा दिक् । अनन्तरं पूर्ववृत्तं मत्स्यश्च सम्मार्जनीयः । शंकुरपि तत्स्थानान्नि-ष्कास्य इति केवला दक्षिणोत्तररेखा स्थितेति तात्पर्यम् । दक्षि-णोत्तरदिशोर्मध्यस्थाने तिमिना दक्षिणोत्तररेखामितेन व्यासार्द्धेन दक्षिणो-त्तरस्थानाभ्यां पूर्ववत्प्रत्येकं वृत्तं विधाय पूर्ववत्सिद्धेन मत्स्येनेत्यर्थः । पूर्वपश्चिमा रेखा कार्या । तत्र पूर्वबिन्दोरासन्नं रेखाग्रं पूर्वा पश्चिमबिन्दो-रासन्नं रेखाग्रं पश्चिमेति मत्स्यसंमार्जनेन केवला पूर्वापररेखा सिद्धा । अथ रेखासंयोगस्थानाद्दिक्साधनोपक्रमोक्तं पूर्ववृत्तमुल्लिखेत्तद्वृत्तपरिधौ यत्र रेखा लग्ना तत्र दिगिति तद्वृत्तमध्यस्य दिक्चतुष्टयं वृत्ते सिद्धम् । तद्वत् । यथा दक्षिणोत्तराभ्यां पूर्वापरा साधिता तत्प्रकारेणेत्यर्थः । एवकारोऽन्यप्रकार-निरासार्थकः । हि निश्चयेन । विदिशकोण दिशो दिशां पूर्वादिसिद्धदिशां ये मध्यमत्स्या अव्यवहितदिग्द्वयान्तरोत्पन्नाः । लघवर्त्मतः संसाध्याः सम्यक्-

प्रकारेण साध्याः रेखवृत्तसंयोगस्थत्वेन ज्ञेयाः । अत्रोपपत्तिः । क्षितिजपूर्वापरवृत्तसंयोगौ पूर्वापरविभागस्थौ पूर्वापरदिशे तत्र पूर्वापरविभाग ज्ञानं सूर्योदयास्ताभ्यां तत्र क्षितिजे पूर्वापरवृत्तं कुत्र लग्नमिति ज्ञानं तु विषुवद्वृत्तक्रान्तिवृत्तसम्पातस्थसूर्यस्योदयास्तस्थलज्ञानेन विषुवद्वृत्तस्य पूर्वापरक्षितिजवृत्तसम्पातयोः सम्बद्धत्वात् । अथान्यस्मिन्दिने सूर्यस्योदयास्तावग्रांशान्तरेण याम्योत्तरे भवत इति । सूर्योदयास्तस्थानाभ्यामग्रांशान्तरेणोत्तरयाम्ये पूर्वापरस्थानं भवतीति क्षितिजस्य महत्त्वाद्दूरत्वाच्च तद्दानेन पूर्वापरज्ञानमशक्यमतस्तत्सूत्रेण स्वाभीष्टप्रदेशे तज्ज्ञानार्थमभीष्टसमस्थलेक्षितिजानुकारं वृत्तं कृतम् । तत्रापि सूर्योदयास्तसमसूत्रेणस्थलज्ञानस्य दुःशकत्वाच्छायार्थं शंकुःस्थाप्यः । तथापि सूर्योदये छायानन्त्याद्वृत्तपरिधौ तदग्रस्पर्शाभावः । परन्तु यथायथा सूर्य ऊर्ध्वं भवति तथातथा छायाह्रासाद्यत्र छाया वृत्तपरिधौ यदा प्रविशति तत्स्थानात्तात्कालिको वक्ष्यमाणभुजो व्यस्तोऽर्धज्याकारेण देयस्तदुत्क्रमज्यात्र परिधिप्रदेशे लगति तत्र शंकुस्थानस्य पश्चिमा । छायाग्रस्य पूर्वापरसूत्राद्भुजान्तरेण याम्योत्तरपतनात्सूर्यापरदिशि छायापतनाच्च । एवं दिनापरार्द्धे सूर्यो यथायथाधःसञ्चरति तथातथा छायावृद्धेः शंकुच्छाया वृत्तपरिधौ यत्र यदा निर्गच्छति तात्कालिको वक्ष्यमाणभुजो व्यस्तोऽर्धज्याकारेण तत्स्थानाद्देयस्तद्धुत्क्रनज्या यत्र परिधिप्रदेशे लगति तत्र शंकुस्थानस्य पूर्वा । तत्सूत्रं पूर्वापरसूत्रम् इदं शङ्कोरुपलक्षणत्वेन ज्ञातं तथाछायोपलक्षणेनापि प्रदेशस्य पूर्वापरसूत्रज्ञानम् । तथाहि । छायाग्रं विशति तत्रापरा छायाग्रं गिर्गच्छति तत्र पूर्वा । तत्रापि प्रवेशनिर्गमयोरेककालत्वासम्भवात्तत्कालिकः प्रवेशस्तत्काले छायायाः पश्चिमत्वं तत्र वस्तुभूतं तत्काले निर्गमनस्य पूर्वत्वासम्भवः । एवं निर्गमकाले निर्गमस्थानस्य पूर्वत्वं पूर्वत्वं वस्तुभूतं तत्काले निर्गमनस्य पश्चिमत्वासम्भवः । एककालिकसिद्ध्यर्थसुभयोरेकतरं चिह्नं चाल्यं तात्कालिकभुजयोरन्तरेण तत्र पूर्वचिह्नं भुजान्तरांगुलैरयनदिशि चाल्यम् । पश्चिमचिह्नं वा व्यस्तायनदिशि चाल्यम् । तत्सूत्रं सूत्रमध्यदेशस्य पूर्वापरसूत्रम् । एतन्मध्ये स्थापितशङ्को-

कृते शंकंगुलैः शङ्कुस्थांगुलविभागमानगृहीतैरभीष्टसङ्ख्याकांगुलैः व्यासार्ध-रूपैर्वृत्तमवक्रमालिखेत् । सर्वतः केंद्राद्वृत्तपरिधिरेखातुल्या स्यात्तथेत्यर्थः । ततस्तन्मध्ये तस्य केन्द्ररूपमध्ये कल्पनया द्वादशसंख्याकांगुलानि तुल्यानि यस्मिंस्तं द्वादशविभागांकितमित्यर्थः । शंकुं समतलमस्तकपरिधिकाष्ठदंड स्थापयेत् । ततः पूर्वापरार्धयोर्दिनस्य प्रथमद्वितीयभागयोस्तच्छायाग्रं स्थापितशंकोश्छायान्तप्रदेशो मण्डलपरिधौ यस्मिन्विभागे स्पृशेत् । दिनस्य प्रथमविभागेऽनुक्षणं छायाह्रासाद्वृत्ते यत्र प्रविशति दिनस्यापरार्द्धे छायानुक्षण-वृद्धेर्वृत्तं यत्र निर्गच्छतीत्यर्थः । तत्र निर्गमनप्रवेशस्थानयोरुभौ द्वौ बिन्दू पूर्वापरसंज्ञौ क्रमेण वृत्ते परिधिरेखायां कृत्वा तन्मध्ये पूर्वापरबिन्द्वन्तर-मध्ये तिमिना मत्स्येन रेखा कार्या सा दाक्षिणोत्तररेखा भवति । मत्स्यस्तु बिन्द्वन्तरालसूत्रमितेन व्यासार्द्धेन बिन्दुद्वयकेन्द्रकल्पनेन वृत्तद्वयं निष्पाद्य वृत्तद्वयसंयोगाभ्यां वृत्तद्वयपरिधिविभागाभ्यामन्तर्गतं मत्स्याकारं स्थानं भवति । तत्रैकः संयोगो मुखं बाह्यवृत्तभागसम्मार्जनेनापरसंयोगस्तु पुच्छ-मितरवृत्तभागद्वयं सम्मार्जनेन । मुखपुच्छावध्यृज्वी रेखा दक्षिणोत्तररेखा । तत्र बिन्दोः सव्यं रेखाग्रं दक्षिणा दिक् । पश्चिमबिन्दोः सव्यं रेखाग्रमुत्तरा दिक् । अनन्तरं पूर्ववृत्तं मत्स्यश्च सम्मार्जनीयः । शंकुरपि तत्स्थानान्नि-ष्कास्य इति केवला दक्षिणोत्तररेखा स्थितेति तात्पर्यम् । दक्षि-णोत्तरदिशोर्मध्यस्थाने तिमिना दक्षिणोत्तररेखामितेन व्यासार्द्धेन दक्षिणो-त्तरस्थानाभ्यां पूर्ववत्प्रत्येकं वृत्तं विधाय पूर्ववत्सिद्धेन मत्स्येनेत्यर्थः । पूर्वपश्चिमा रेखा कार्या । तत्र पूर्वबिन्दोरासन्नं रेखाग्रं पूर्वा पश्चिमबिन्दो-रासन्नं रेखाग्रं पश्चिमेति मत्स्यसंमार्जनेन केवला पूर्वापररेखा सिद्धा । अथ रेखासंयोगस्थानाद्दिक्साधनोपक्रमोक्तं पूर्ववृत्तमुल्लिखेत्तद्वृत्तपरिधौ यत्र रेखा लग्ना तत्र दिगिति तद्वृत्तमध्यस्य दिक्चतुष्टयं वृत्ते सिद्धम् । तद्वत् । यथा दक्षिणोत्तराभ्यां पूर्वापरा साधिता तत्प्रकारेणेत्यर्थः । एवकारोऽन्यप्रकार-निरासार्थकः । हि निश्चयेन । विदिशकोण दिशो दिशां पूर्वादिसिद्धदिशां ये मध्यमत्स्या अव्यवहितदिग्द्वयान्तरोत्पन्नाः । लघवर्मतः संसाध्याः सम्यक्-

प्रकारेण साध्याः रेखवृत्तसंयोगस्थत्वेन ज्ञेयाः । अत्रोपपत्तिः । क्षितिजपूर्वापरवृत्तसंयोगौ पूर्वापरविभागस्थौ पूर्वापरदिशे तत्र पूर्वापरविभाग ज्ञानं सूर्योदयास्ताभ्यां तत्र क्षितिजे पूर्वापरवृत्तं कुत्र लग्नमिति ज्ञानं तु विषुवद्वृत्तक्रान्तिवृत्तसम्पातस्थसूर्यस्योदयास्तस्थलज्ञानेन विषुवद्वृत्तस्य पूर्वापरक्षितिजवृत्तसम्पातयोः सम्बद्धत्वात् । अथान्यस्मिन्दिने सूर्यस्योदयास्तावग्रांशान्तरेण याम्योत्तरे भवत इति । सूर्योदयास्तस्थानाभ्यामग्रांशान्तरेणोत्तरयाम्ये पूर्वापरस्थानं भवतीति क्षितिजस्य महत्त्वाद्दूरत्वाच्च तद्दानेन पूर्वापरज्ञानमशक्यमतस्तत्सूत्रेण स्वाभीष्टप्रदेशे तज्ज्ञानार्थमभीष्टसमस्थलेक्षितिजानुकारं वृत्तं कृतम् । तत्रापि सूर्योदयास्तसमसूत्रेणस्थलज्ञानस्य दुःशकत्वाच्छायार्थं शंकुःस्थाप्यः । तथापि सूर्योदये छायानन्त्याद्वृत्तपरिधौ तदग्रस्पर्शाभावः । परन्तु यथायथा सूर्य ऊर्ध्वं भवति तथातथा छायाह्रासावत्र छाया वृत्तपरिधौ यदा प्रविशति तत्स्थानात्तात्कालिको वक्ष्यमाणभुजो व्यस्तोऽर्धज्याकारेण देयस्तदुत्क्रमज्यात्र परिधिप्रदेशे लगति तत्र शंकुस्थानस्य पश्चिमा । छायाग्रस्य पूर्वापरसूत्राद्भुजान्तरेण याम्योत्तरपतनात्सूर्यापरदिशि छायापतनाच्च । एवं दिनापरार्द्धे सूर्यो यथायथाधःसञ्चरति तथातथा छायावृद्धेः शंकुच्छाया वृत्तपरिधौ यत्र यदा निर्गच्छति तात्कालिको वक्ष्यमाणभुजो व्यस्तोऽर्धज्याकारेण तत्स्थानाद्देयस्तदुत्क्रमज्या यत्र परिधिप्रदेशे लगति तत्र शंकुस्थानस्य पूर्वा । तत्सूत्रं पूर्वापरसूत्रम् इदं शङ्कोरुपलक्षणत्वेन ज्ञातं तथाछायोपलक्षणेनापि प्रदेशस्य पूर्वापरसूत्रज्ञानम् । तथाहि । छायाग्रं विशति तत्रापरा छायाग्रं गिर्गच्छति तत्र पूर्वा । तत्रापि प्रवेशनिर्गमयोरेककालत्वासम्भवाद्यत्कालिकः प्रवेशस्तत्काले छायायाः पश्चिमत्वं तत्र वस्तुभूतं तत्काले निर्गमनस्य पूर्वत्वासम्भवः । एवं निर्गमकाले निर्गमस्थानस्य पूर्वत्वं पूर्वत्वं वस्तुभूतं तत्काले निर्गमनस्य पश्चिमत्वासम्भवः । एककालिकसिद्ध्यर्थमुभयोरेकतरं चिह्नं चाल्यं तात्कालिकभुजयोरन्तरेण तत्र पूर्वचिह्नं भुजान्तरांगुलैरयनदिशि चाल्यम् । पश्चिमचिह्नं वा व्यस्तायनदिशि चाल्यम् । तत्सूत्रं सूत्रमध्यदेशस्य पूर्वापरसूत्रम् । एतन्मध्ये स्थापितशङ्को-

श्छायाग्रप्रवेशनिर्गमचिह्नाभ्यां यथोक्तरीत्या भुजदानेन सिद्धपूर्वापरसूत्रेणाभिन्नत्वात् । तदुक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ-"तत्कालामपजीवयोस्तु विवराद्धकर्णामित्याहताल्लम्बज्याप्तमितांगुलैरयनदिश्यैन्द्री स्फुटा चालिता" इति । तदेतद्भगवता लोकानुकम्पया स्वल्पान्तरत्वादेकतरबिन्दुचालनं नोक्तं सुखार्थं किञ्चित्स्थूलावेव निर्गमप्रवेशबिन्दुपूर्वापरा भिधावुक्तौ । एवञ्चाभीष्टं स्थानं प्रवेशनिर्गमसूत्रमध्ये यथा भवति तथानेन प्रकारेण मण्डलकेन्द्रशंकुस्थापनादिनाभीष्टप्रदेशे पूर्वापरदिशे साध्ये इति । तन्मध्ये दक्षिणोत्तररेखाबिन्दुद्वयोत्पन्नमध्यमत्स्यैरेखैवेति । याम्योत्तरमध्ये पूर्वापरारेखातद्दिङ्मध्यमत्स्येनेति याम्योत्तरदिशोरित्यादि सम्यगुक्तम् । ननु पूर्वापरबिंदुभ्यां मत्स्येन या दक्षिणोत्तररेखा तदग्राभ्यां मत्स्येन रेखा पूर्वापरबिन्दुस्पृष्टैवेति पूर्वं तस्या एक बिन्द्वन्तरत्वेन सिद्धत्वात्पुनः साधनं व्यर्थम् अन्यथा दक्षिणोत्तररेखाया अप्यसंगतत्वापत्तेरिति चेत्सत्यम् । दक्षिणोत्तररेखाशुद्ध्यर्थमेव पूर्वापरबिन्दुस्पृष्टरेखायाः पुनः साधनमिति केचित् । वस्तुतस्तु दक्षिणोत्तरपूर्वापर सूत्रसम्पातरूपाभीष्टस्थानात्केन्द्रात्प्रागुक्तवृत्तस्य वक्ष्यमाणोपयोगित्वेनावश्यकत्वात्तस्य च पूर्वापरबिन्द्वन्तरसूत्राधिकव्याससूत्रत्वाद्बिन्द्वन्तरेखाया मूलाग्रयोर्वर्धनीया सा तत्र वृत्ते पूर्वापररेखा भवति । तस्या बिन्दोरुपर्यधश्च वक्रत्वं कदाचित्स्यादतः प्रथममेव पूर्णरेखासिद्ध्यर्थं बिन्द्वन्तरसिद्धमत्स्यमुखपुच्छगतरेखाया बिन्द्वन्तराधिकत्वेन तदुत्पन्नमत्स्यरेखाया ऋज्व्याः सुत रामधिकत्वेन पुनः पूर्वापररेखासाधनं युक्ततरमिति तत्त्वम् । एवमेवाव्यवहितं दिग्द्वयान्तरोत्पन्नलघुमत्स्यैश्चतुर्भिः सूत्रैर्वृत्ते कोणदिशः । तदिदमभीष्टस्थानकेन्द्रमण्डले दिगष्टकं सिद्धम् ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४॥

भा० टी०-जलकी समान इकसार शिलापर अथवा कैंडे समक्षेत्रमें इष्ट अंगुलके परिमाणका सममण्डल (वृत्त) खैंचे । तिसमें १२ अंगुलके परिमाणका शंकु स्थापन करे तिसकी छायाके अग्रभाग वृत्तको पूर्व या अपराह्नमें जिस स्थानपर स्पर्श करे तहां दो पूर्वापर संज्ञा बिन्दु विधान करे । तिमिसे जिनमें दक्षिण व उत्तरकी

---

१ दो वृत्तके छेदमें उत्पन्न मत्स्याकार स्थानका नाम तिमि है ।

रेखाको खंचैं। दक्षिणोत्तरके दो बिन्दुओंको केन्द्रकरके व्यासार्द्धके परिमाणसे वृत्तअंकित करनेपर तिमि होगा। तिससे पूर्व पश्चिम रेखा बनती है। दिक् मध्य मत्स्यसे ईशानादि दिक्को निर्णय करना चाहिये॥ १॥ २॥ ३॥ ४॥

अथ दिक्सूत्रसम्पातरूपाभीष्टस्थानात्तात्कालिकच्छायाग्रस्थानमाह—

चतुरस्रं वहिः कुर्यात्सूत्रैर्मध्याद्विनिर्गतैः॥
भुजसूत्रांगुलैस्तत्र दत्तैरिष्टप्रभा स्मृता॥ ५॥

मध्यादभीष्टस्थानाद्दिग्रेखासम्पातरूपाद्विनिर्गतैर्निःसृतैरष्टदिग्रेखारूपैः। बहिर्दिक्सूत्रसम्पातकेन्द्रवृत्ताद्बहिः। अनेनैव वृत्तकरणं पूर्वमनुक्तं द्योतितम्। अन्यथा वहिरित्यस्यानुपपत्तेः पूर्ववृत्तग्रहणे तु दिग्रेखासम्पातस्य मध्यत्वानुपपत्तेः। चतुरस्रं कोणरेखाधिकसूत्रकर्णद्वयतुल्यं समचतुर्भुजं कुर्यात्। तथा च तद्दर्शनम्। तत्र चतुरस्रे भुजसूत्रांगुलैर्वक्ष्यमाणभुजमितसूत्रस्यांगुलैर्निर्गमप्रवेशकालिकैर्दत्तैः पूर्वापरसूत्रादर्धज्यावद्दीयमानैस्तत्र वृत्ते यस्मिन्प्रदेशे भुजाग्रं तत्प्रदेश इष्टप्रभानिर्गमप्रवेशान्यतरकालिकच्छायाग्रमुक्तम्। प्रतीतिस्तु दिक्सूत्रसम्पातस्थशंकुना ज्ञेया। अत्रोपपत्तिः। वक्ष्यमाणभुजस्य छायाग्रपूर्वापरसूत्रान्तरत्वेन प्रतिपादितत्वादिष्टछायाग्रमुक्तदिशाज्ञानं सम्यक्। चतुरस्रकरणं वक्ष्यमाणाग्रासाधकप्राच्यपररेखानुकाररेखाया वृत्तान्तस्तद्बहिर्वा ऋजुत्वसिद्ध्यर्थमिति॥ ५॥

भा०टी०—छायाके परिभाणसे वृत्त खैंचकर पूर्व पश्चिमकी रेखासे वृत्तके बाहर एकसम चतुष्कोण कल्पित करे। वृत्तमें. छायाके अनुसार भुज[1]। पूर्वमें या पश्चिममें उत्तरमें या दक्षिणमें खैंचकर अग्रके साहित केंद्र संयोग करनेसे इष्ट दिक्का निर्णय होजायगा॥ ५॥

अथ पूर्वापररेखायाः संज्ञान्तरमाह—

प्राक्पश्चिमाश्रिता रेखा प्रोच्यते सममण्डलम्॥
उन्मण्डलं च विषुवन्मण्डलं परिकीर्त्यते॥ ६॥

प्राक्पश्चिमाश्रिता पूर्वपश्चिमसम्बद्धा साधिता रेखा समवृत्तमुच्यते। सैव रेखोन्मण्डलं विषुवन्मण्डलम्। चः समुच्चये। उभयसञ्ज्ञकं कथ्यते। अत्रो-

१ शंकुप्रच्छायाका दूरताके परिमाणको भुज कहते हैं।

पपत्तिः । क्षितिजपूर्वापरवृत्तसंयोगौ पूर्वापरे तत्सूत्रं पूर्वापरसूत्रमिति । पूर्वापरवृत्तस्य भूमावूर्ध्वाधरानुकारिवृत्तत्वेनादर्शनाद्रेखाकारतयैव दर्शनाच्च पूर्वापरवृत्तमपि तत्सूत्रम् । पूर्वापरवृत्तस्य सममण्डलत्वेनाभिधानात्तद्रेखासममण्डलसञ्ज्ञोक्ता । अथ स्वनिरक्षदेशक्षितिजवृत्तस्थोन्मण्डलाख्यस्य तत्संयोगयोः । संलग्नत्वात्तन्मध्यसूत्रत्वेन पूर्वापरसूत्रस्यापि सत्त्वात्पूर्वापरसूत्रमुन्मण्डलसञ्ज्ञम् । एतेनान्यदेशक्षितिजसञ्ज्ञया स्वदेशक्षितिजसंज्ञा सुतरां सिद्धति पूर्वापरसूत्रस्य क्षितिजवृत्तसञ्ज्ञा द्योतिता । पूर्वापरस्थानयोः क्षितिजवृत्तस्य संलग्नत्वादुल्लिखितवृक्षस्य क्षितिजानुकारित्वाच्च । एवं निरक्षदेशपूर्वापरवृत्तं विषुवन्मण्डलाख्यं पूर्वापरस्थानयोः । संलग्नमिति तन्मध्यसूत्रत्वेनापि पूर्वापरसूत्रस्य सिद्धत्वात्पूर्वापरसूत्रं विषुवन्मण्डलसंज्ञं क्रांतिवृत्तस्य दृग्वृत्तस्य चलत्वात्कादाचित्कत्वेन पूर्वापरस्थानसंलग्नत्वात्तत्संज्ञानोक्तेति ध्येयम् ॥ ६ ॥

भा० टी०—सममण्डल, उन्मंडल, या विषुवन्मण्डल पूर्व व पश्चिमकी आश्रित रेखा है ॥ ६ ॥

अथाग्राज्ञानमाह—

रेखा प्राच्यपरा साध्या विषुवद्भाग्रगातथा ॥
इष्टच्छाया विषुवतोर्मध्यमग्राभिधीयते ॥ ७ ॥

तस्मिंश्चतुरस्रे पूर्वापररेखात उत्तरभागे विषुवद्भाग्रगाक्षभाग्रप्रदेशस्थाक्षभांगुलान्तरितेत्यर्थः । प्राच्यपरारेखा पूर्वापररेखानुकारा रेखा तथा सर्वतस्तुल्यान्तरेण यथेष्टच्छायारेखा भुजान्तरेण तथाक्षभान्तरेण कार्या । अनन्तरमिष्टच्छाया विषुवतोरिष्टच्छायाग्रे खयोरित्यर्थः । मध्यं चतुरस्रेऽङ्गुलात्मकमन्तरालं सर्वतस्तुल्यम् । अग्रा कर्णवृत्ताग्रोच्यते । तत्रोपपत्तिः । भुजस्य कर्णवृत्ताग्रा पलभासंस्कारेणाग्र उक्तत्वाद्दक्षिणगोले पलभाधिकोत्तरभुजसद्भावेन पलभोनो भुजोऽग्रेति प्राच्यपरसूत्रादुत्तरभागेऽक्षभाग्ररेखा भुजमध्ये भवतीति द्वयोरेखयोरन्तरमग्रापलभोनभुजरूपा । एवमुत्तरगोल उत्तरभुजस्यपलभाल्पत्वाद्भुजोनपलभाग्रेति पलभारेखा प्राच्यपरसूत्रादुत्तरभागस्था भुजरेखातोऽप्यग्रान्तरेणोत्तरदिशीति द्वयोरेखयोरन्तरभुजोनपलभारूपं

कर्णवृत्ताग्रा । एवं दक्षिण भुजस्य पलभोनाग्रात्वात्पलभायुतो भुजोऽग्रेति प्राच्यपरसूत्राद्भुजाग्रपलभाग्ररेखायोः क्रमेण याम्योत्तरत्वात्तयोरन्तरालपलभा-भुजक्यैरूपमग्रापलभायाः शंकुतलानुकल्पत्वात्सदान्तरत्वं छायासम्बन्धाद्यु-क्तम् । गोले शंकुतलस्य दक्षिणत्वाद्ग्रहापरदिशि च्छायासद्भावाच्च । अतएव प्राच्यतरसूत्राद्दक्षिणभागे दक्षिणं भुजवशादक्षभाग्ररेखाकल्पेन उक्तानुत्पत्त्या सम्यगुत्तरभागे पूर्वापरसूत्रादिति विषुवद्भाग्रगेत्यत्र व्याख्यातम् ॥ ७ ॥

भा० टी०—विषुवच्छायाके परिमाणमें पूर्वपश्चिम रेखासे दूर एक सम रेखा साधन करे। विषुवद्रेखासे इष्टछाया रेखाके अन्तरको अग्रा कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ प्रसंगाज्ज्ञातच्छायातः कर्णज्ञानं तच्छुद्धिं चाह—

शंकुच्छायाकृतियुतेर्मूलं कर्णोऽस्य वर्गतः ॥
प्रोज्झ्य शंकुकृतिं मूलं छायाशंकुर्विपर्ययात् ॥ ८ ॥

द्वादशांगुलशंकुच्छाययोर्गयोगात्पदं छायाकर्णः स्यात् । अथास्य शुद्धि-रूपं छायासाधनमाह—अस्येति । छायाकर्णस्य वर्गाच्छंकुवर्गं चतुश्चत्वारिंशद-धिकं शतं विशोध्य मूलं छाया । प्रकारान्तरेण छायाकर्णशुद्धिमाह—शंकु-रिति । विपर्याच्छायासाधनवैपरीत्याच्छायाकर्णवर्गाच्छायावर्गं विशोध्य मूल-मित्यर्थः । शंकुर्द्वादशांगुलमितः स्यात् । अत्रोपपत्तिः । द्वादशांगुलशंकु कोटिरक्षभाभुजस्तत्कृत्योर्योगपदं कर्ण इत्यक्षकर्णः । कर्ण इत्याद्यक्षक्षे-त्राद्युक्तरीत्योपपन्नम् । ननु दिक्साधनोत्तरमिष्टभाग्राकर्णसाधनं भगवता सर्वज्ञेन किमर्थमुक्तमग्रेऽग्रादीनां स्वतंत्रतयोक्तत्वात् । नच विना गणितश्रममग्राज्ञानार्थमिदं युक्तमुक्तमिति वाच्यम् । वक्ष्यमाणभुज-ज्ञानस्याग्रोपजीव्यत्वेन तस्याश्च भुजोपजीव्यत्वेनान्योन्याश्रयात् । गणित-ज्ञाताग्रायाः पुनः साधनस्य व्यर्थत्वाच्च । नच भुजसूत्रांगुलैर्दत्तैरित्यनेनेष्ट-च्छायावृत्तं ज्ञातमिति न किन्त्वेतदुक्त्या दिक्सूत्रसम्पातस्थशंकोर्वृत्तपरिधौ छायावृत्तज्ञानात्तत्पूर्वापरसूत्रांतरे भुजसद्भावाद्विना गणितं भुजोऽपिज्ञात इति नान्योन्याश्रय इति वाच्यम् । तथापि भगवतः सर्वज्ञस्य निष्प्रयोजनत्वोक्तेरनुचितत्वात् । विनाप्रयोजनं मन्दोक्तेरप्यभावाच्च ।

नहि दिक्साधनेऽग्राभुजादिकमावश्यकं येन तदुक्तिर्युक्ता । किंच कर्णसाधनस्य गणितोक्त्या वक्ष्यमाणकर्णसाधनतुल्यत्वेनात्र कथनमनुचितम् । नहि दिक्साधनार्थं भाकर्णमित्याहतादिति सिद्धान्तशिरोमण्युक्तिवदत्र छायाकर्ण उपयुक्तो येन तदुक्तिर्युक्तेति चतुरस्रमित्यादिश्लोकचतुष्टयमन्येन मन्दबुद्धिनाक्षिप्तं न भगवतोक्तमिति चेन्मैवम् । भुजसाधनोपजीव्याग्राया एतदुक्तप्रकारेण सिद्धौ दिशःसम्यक्सिद्धा इति दिक्साधनशुद्ध्यर्थमग्रासाधनम् । प्रकारान्तरेणापि वक्ष्यमाणत्रिज्यावृत्तीयाग्रया त्रिज्या लभ्यते तदानयोगतया केत्यनुपातेन साधितकर्णासंवादेन शुद्ध्यवगमार्थं कर्णसाधनं चोक्तम् । अनयाग्रया कर्णस्तदा त्रिज्या वृत्तीयाग्रया क इति फलस्य त्रिज्या तुल्यस्यानयनार्थं वा कर्णसाधनमिति केचित् । वस्तुतस्तु मण्डले छायाप्रवेशनिर्गमस्थानास्थितपूर्वापरबिन्द्वोः प्रत्येकं रेखेति रेखाद्वयसर्वतस्तुल्यान्तरं कार्यं तेनान्तरेणान्यतरो बिन्दुश्चाल्पस्तौ पूर्वापरबिन्दू तद्रेखामध्यस्थानस्य पूर्वापररेखेति । तत्रोभयबिन्दुरेखयोरन्तरांगुलमानं स्वल्पत्वाद्गणयितुमशक्यमतः प्रत्येकरेखे प्राच्यपररेखे प्रकल्प्य तन्मध्यकेन्द्रात्पूर्ववृत्तं प्रत्येकमिति वृत्तद्वयं कुर्यात् । तत्र स्वस्ववृत्ते स्वस्व प्राच्यपररेखास्पृष्टा कार्या ताभ्यां स्वस्वकालिकौ भुजौ स्वस्ववृत्त देयौ तदग्र छायाग्ररेखे स्वस्ववृत्ते कार्ये स्वस्वप्राच्यपरसूत्रात्स्वस्ववृत्त उत्तरभागेऽक्षभांगुलान्तरेण रेखे कार्ये ततः स्वस्ववृत्ते स्वस्वतद्रेखयोरन्तरं स्वस्ववृत्त उभयकालिककर्णवृत्ताग्रे बहुत्वेन गणयितुं शक्ये तदन्तरं पूर्वबिन्द्वोर्याम्योत्तरमन्तरं कर्णवृत्ताग्रासाधनकथनेनानीतं भुजान्तरस्य बिन्द्वन्तरत्वात्तस्य चाग्रान्तरत्वेन फलितत्वात् । विषुवद्दिने गोलभेदे तु भुजान्तरमग्रायोग इति बिन्द्वोर्याम्योत्तरमग्रायोग इति । तेनोक्तरीत्या बिन्दुश्चाल्यस्ततसूत्रं पूर्वापरसूत्रं स्फुटमित्याशयेन भगवताग्रा निरूपिता तस्याः शुद्ध्यर्थं कर्णोऽपि साधित इति तत्त्वम् ॥ ८ ॥

भा० टी०-शंकुच्छायावर्ग और शंकुवर्ग मिलाकर मूल करनेसे छायाकर्ण होता है । कर्ण वर्गसे शंकुवर्ग हीन करके मूल करनेसे छाया और तिसके विपरीत अर्थात् कर्णवर्ग छाया वर्गहीन करनेपर शंकुकवर्ग होगा ॥ ८ ॥

अथ पूर्वाधिकारे क्रान्त्याद्यानयनमुक्तं तत्पूर्वाधिमासावगतग्रहात्केवलान्न साध्यमिति श्लोकाभ्यामाह–

त्रिंशत्कृत्यो युगे भानां चक्रं प्राक्परिलम्बते ॥
तद्गुणाद्भूदिनैर्भक्ता द्युगणाद्यदवाप्यते ॥ ९ ॥
तद्दोस्त्रिघ्ना दशाप्तांशा विज्ञेया अयनाभिधाः ॥
तत्संस्कृताद्ग्रहात्क्रान्तिच्छाया चरदलादिकम् ॥ १० ॥

भानां चक्रं राशीनां वृत्तं क्रांतिवृत्तं स्वस्वविक्षेपमितशलाकाग्रपाते नक्षत्रगणैर्युक्तमित्यर्थः । युगे महायुगे प्राक्पूर्वविभागे त्रिंशत्कृत्यस्त्रिंशत्सं- ख्याका कृतिर्विंशतिः षट्शतमित्यर्थः । परिलम्बते ध्रुवाधारभगोलस्थाना- त्तद्द्वारमवलम्बते । अत्र परिलम्बत इत्यनेन भचक्रपूर्णभ्रमणाभाव उक्तोऽ न्यथा ग्रहभगणप्रसंगेन मध्याधिकार एवैतदुक्तं स्यात् । तथाच तद्द्वारमव- लम्बनोक्त्या परावर्त्य यथास्थितं भवतीत्यागतं तत्रापि स्वस्थानात्तथैव पश्चिमतोऽप्यवलम्बत इति सूचितम् । एवञ्च भचक्रं पश्चिमत ईश्वरेच्छया प्रथमतः कतिचिद्भागैश्चलति ततः परावृत्त्य यथास्थितं भवति ततोऽपि तद्भागैः क्रमेण पूर्वतश्चलति ततोऽपि परावर्त्य यथास्थितमित्येको विलक्षणो भगणः । तेन प्रागित्युपलक्षणम् । पश्चिमावलम्बनानुक्तिस्तु संवादकाले तद- भावात् अत्र त्रिंशत्कृत्वेति पाठः प्रामादिकः । "युगे षट्शतकृत्वो हि भचक्रं प्राग्विलम्बते" इति सोमसिद्धान्तविरोधात् । तत्पश्चाच्चलितं चक्र- मिति ब्रह्मसिद्धान्तोक्तेश्च । अहर्गणात्तद्गुणात्षट्शतगुणिताद्भूदिनैर्युगीयसूर्य- सावनदिनैर्भक्ताद्यत्फलं भगणादिकं प्राप्यते तस्य भगणत्यागेन राश्यादिकस्य भुजः कार्यस्तस्माद्दशाप्तांशा दशभिर्भजनेनाप्तभागास्त्रिगुणिता अयनसंज्ञका ज्ञेयाः । भुजांशास्त्रिगुणिता दशभक्ताः फलमयनांशा इति तात्पर्यार्थः । तत्संस्कृतात्तैरयनांशैर्भचक्रपूर्वापरचलनवशाद्युतहीनाद्ग्रहात्पूर्वापरभचक्रचल- नावगमस्त्वयनग्रहस्य षड्भानन्तर्गतांतरगतत्वक्रमेण क्रान्तिच्छायाचरदला- दिकं साध्यम् । न केवलाद्विशेषोक्तेः । छाया वक्ष्यमाणा चरदलं चरं पर्वाधिकारोक्तम् । आदिशब्दादयनवलनमायनदृक्कर्म संगृह्यते ।

यद्यपि तत्संस्कृताद्ग्रहात्क्रान्तिरित्येव वक्तव्यमन्येषामत्र तदुपजीवत्वाद्ग्रहणं व्यर्थं तथापि क्रांतिरित्युक्त्या केवलक्रांतिज्ञानार्थं तत्संस्कृतग्रहात्क्रांतिः साध्या । पदार्थांतरोपजीव्यायाः क्रांतेः साधनं तु केवलादित्यस्य वारणार्थं क्रांतिमात्रं तत्संस्कृतात्साध्यमिति सूचकच्छायाचरदलादिकथनम् । अत्रोपपत्तिः । ईश्वरेच्छया क्रावृत्तं स्वमार्गे पश्चिमतः सप्तविंशत्यंशैः क्रमोपचितैश्चलितंततः परावृत्य स्वस्थान आगत्य तत्स्थानात् । पूर्वतः सप्तविंशत्यंशैश्चलितम् । तथा च सृष्ट्यादिभूतक्रांतिविषुववृत्तिसम्पाताश्रितक्रान्तिवृत्तप्रदेशो रेवत्यासन्नः प्रागानीतग्रहभोगावधिरूपः स्वस्थानात्पूर्वमपरत्र वा क्रांतिवृत्तमार्गे गतः। विषुववृत्ते तु तद्भागस्य पश्चिमभागः पूर्वभागो वा गतः सम्पाते तद्वृत्तयोर्याम्योत्तरांतराभावात्कान्त्यभावः । पूर्वसम्पातप्रदेशे तु तयोर्याम्योत्तरान्तरत्वात्क्रांतिरुत्पन्ना । अतो यथास्थितग्रहभोगात्क्रांतिरसंगतेति सम्पातावधिकग्रहभोगात्क्रांतिर्युक्ता । तत्र सम्पातावधिकग्रहभोगज्ञानार्थं पूर्वसम्पातावधिकः पूर्वाधिकारोक्तो ग्रहभोगो वर्तमानसम्पातपूर्वसम्पाताश्रितक्रांतिवृत्तप्रदेशयोरन्तरभागैरयनांशाख्यैः पूर्वसम्पातप्रदेशस्य पूर्वपश्चिमावस्थानक्रमेण युतहीनो भवति । क्रान्त्युपजीव्यपदार्था अपि वर्तमानसम्पातादुत्पन्ना इति तत्साधनमपि तत्संस्कृतग्रहात् । अथायनांशज्ञानं तु षट्शतभगणेभ्यः पूर्वानुपातरीत्याहर्गणाद्ग्रहभोगो भगणादिकस्तत्र गतभगणमितं परपूर्वभचक्रविलम्बनं गतम् । वर्तमानं त्वारम्भे पश्चिमावलम्बनाद्राशिषट्कान्तर्गते राश्यादिके पश्चिमावलम्बनमनन्तर्गते पूर्वावलम्बनम् । तत्रापि त्रिभान्तर्गतानन्तर्गतत्वक्रमेणचलनं परावर्तनं चेति भुजः साधितस्ततो नवत्यंशैः सप्तविंशतिभागास्तदा भुजांशैः क इत्यनुपातेन गुणहरौ नवभिरपवर्त्य भुजांशास्त्रिगुणिता दशभक्ता इति सर्वमुपपन्नम् ॥ ९ ॥ १० ॥

भा० टी०—भचक्र महायुगमें ६०० वार पूर्वदिशामें परिलम्बमान होता है। उस संख्याको दिनगणसे गुणकरके भूदिन संख्यासे भाग करनेपर लब्ध संख्या भगणादि होंगे। (भगण छोडकर) राश्यादि भुज (जैसा पहले कह आये हैं) करे। भुजको

तीनसे गुणकरके और दशसे भाग करनेपर अयन होगा । ग्रहमें अयन संस्कार करके क्रान्तिज्या, चर आदि निर्णय करे । दोनों विषुवमें यह सरलतासे दृग्गोचर होता है ॥ ९ ॥ १० ॥

अथोक्तस्यान्तरस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वमिति सार्द्धश्लोकेनाह-

स्फुटं दृक्तुल्यतां गच्छेदयने विषुवद्वये ॥
प्राक्चक्रं चलितं हीने छायार्कात्करणागते ॥
अन्तरांशैरथावृत्त्य पश्चाच्छेषैस्तथाधिके ॥ ११ ॥

अयने दक्षिणोत्तरायणसन्धौ विषुवद्वये गोलसन्धौ चलितं चक्रं दृक्तुल्यतां दृष्टिगोचरतां स्फुटमनायासं गच्छेत् । तत्र प्रत्यक्षतस्तन्मितमन्तरं दृश्यत इत्यर्थः । तथाच सृष्ट्यादिकाले रेवतीयोगतारासन्नावधि मेषतुलाद्योः कर्कमकराद्योर्विषुवायनप्रवृत्तेरिदानीं त्वन्यत्र तत्स्वरूपे प्रत्यक्षे इति क्रान्तिवृत्तं चलितमन्यथा तदनुपपत्तेरिति भावः । ननु पूर्वतोऽपरत्र वा चलितमिति कथं ज्ञेयमित्यत आह-प्रागिति । छायार्काद्यद्दिने सूर्यस्यायनदिक्परावर्तनमुदये प्राच्यपरसूत्रस्थत्वं वा तस्मिंन्दिनेऽन्यस्मिंन्दिने वा मध्याह्नच्छायातो वक्ष्यमाणप्रकारेण सूर्यः साध्यस्तस्मादित्यर्थः । करणागते प्रागुक्तप्रकारेणानीतः स्पष्टः सूर्यस्तस्मिन्नित्यर्थः । न्यूने सति । अन्तरांशैः सूर्ययोरन्तरांशैश्चक्रं क्रांतिवृत्तं प्राक्पूर्वस्मिंश्चलितमिति ज्ञेयम् । अथ यद्यधिके सति शेषैः सूर्ययोरन्तरांशैश्चक्रमावृत्त्य परिवृत्य पश्चात्पश्चिमाभिमुखं तथा चलितमिति ज्ञेयम् । अत्रोपपत्तिः । छायातो वक्ष्यमाणप्रकारेण सूर्यो वर्तमानसम्पाताद्गणितागतस्तु रेवतीयोगतारासन्नाद्यावधितोऽतस्तयोरन्तरमयनांशास्तत्र क्रान्तिवृत्तस्य पूर्वचलने गणितागतार्काच्छायार्कोऽधिको भवति । पश्चिमचलने तु न्यूनो भवतीति सम्यगुपपन्नम् ॥ ११ ॥

भा० टी०-छायागत अर्कसे गणितागत न्यून होनेपर चक्र पूर्वचारी है । अधिक होनेपर पश्चात्गामी अर्थात् पीछे चलनेवाला है। अन्तरांश परिमाणमें क्रान्तिवृत्त चलता है ॥ ११ ॥

अथ चराद्युपजीव्यां पलभामाह-

एवं विषुवति च्छाया स्वदेशे या दिनार्धजा ॥

दक्षिणोत्तररेखायां सा तत्र विषुवत्प्रभा ॥ १२ ॥

स्वाभीष्टदेश एवं विषुवती चलितविषुवद्दिनसम्बद्धा रेवत्यासन्नस्याप्युपचाराद्विषुवत्सञ्ज्ञा तद्व्यावर्तकमेवमिति । दिनार्धजा माध्याह्निकी या यन्मिता द्वादशांगुलशंकोश्छाया दक्षिणोत्तररेखायां निरक्षोत्तरदक्षिणदेशक्रमेणोत्तरस्यां दक्षिणस्यां प्रभायाः दक्षिणोत्तर रेखास्तत्वं विना मध्याह्नसम्भवात्सा तन्मिता तत्र तस्मिन्नभीष्टदेशे विषुवत्प्रभाक्षभा भवति । एतेन द्वादशांगुलशंकुः कोटिः पलभासुजस्तत्कृत्योर्योगपदं कर्ण इत्यक्षकर्णः । कर्ण इत्यक्षक्षेत्रं वक्ष्यमाणोपयुक्तं प्रदर्शितम् । तदा सूर्यस्य विषुवद्वृत्तस्थत्वाद्विषुवत्प्रभेति संज्ञोक्ता ॥ १२ ॥

भा० टी०–इसी प्रकारसे विषुवदिनके मध्याह्नकी छाया दक्षिणोत्तर रेखामें दिखाई देती है, सोई तहांकी विषुवच्छाया है ॥ १२ ॥

अथ लम्बाक्षयोरानयनमाह–

शंकुच्छायाहते त्रिज्ये विषुवत्कर्णभाजिते ॥
लम्बाक्षज्ये तयोश्चापे लम्बाक्षौ दक्षिणौ सदा ॥ १३ ॥

त्रिज्ये द्विस्थानस्थे शंकुच्छायाहते एकत्र द्वादशगुणितापरत्र प्रागुक्तया विषुवत्कर्णभाजितोभयत्राक्षकर्णेन भक्ता फले क्रमेण लम्बज्याक्षज्ये तयोर्ज्ययोर्धनुषी क्रमेण लम्बाक्षौ सदोभयगोले दक्षिणदिक्स्थौ भवतः । अत्रोपपत्तिः । याम्योत्तरवृत्ते निरक्षस्वदेशपूर्वापरवृत्तयोर्यदन्तरं तदक्षः । याम्योत्तरवृत्ते दक्षिणक्षितिजप्रदेशाद्विषुवद्वृत्तस्य यदन्तरं तल्लम्बः । उभावूर्ध्वगोले स्वपूर्वापरवृत्ताद्दाक्षिणौ तज्ज्ये अक्षलम्बज्ये भुजकोटी त्रिज्या कर्ण इत्यक्षक्षेत्रादक्षकर्णकर्णे द्वादशपलभे कोटिभुजौ तदा त्रिज्या कर्णकावित्यनुपाताभ्यां लम्बाक्षज्ये तद्धनुषी लम्बाक्षावित्युपपन्नम् ॥ १३ ॥

भा० टी०–विषुव दिनके शंकु (१२) और छायाको त्रिज्या (३४३८) से अलग गुण करके कर्णसे भाग करनेपर क्रमानुसार लम्बज्या और अक्षज्या होगी तिसका धनु करनेसे लंब और अक्ष होगा ॥ १३ ॥

अथ मध्याह्नच्छायातोऽक्षानयनं श्लोकाभ्यामाह–

मध्यच्छायाभुजस्तेन गुणिता त्रिभमौर्विका ॥
स्वकर्णाप्ता धनुर्लिप्ता नतास्ता दक्षिणे भुजे ॥ १४ ॥
उत्तराश्चोत्तरे याम्यास्ताः सूर्यक्रांतिलिप्तिकाः ॥
दिग्भेदे मिश्रिताः साम्ये विश्लिष्टाश्चाक्षलिप्तिकाः ॥ १५ ॥

अभीष्टदिने माध्याह्निकी छाया भुजसंज्ञा ज्ञेया। तेत भुजेन त्रिज्यागुणिता मध्याह्नच्छायाकर्णेन भक्ता फलस्य धनुःकला नतानतसञ्ज्ञास्ता नतकलादक्षिणे भुजे मध्याह्नच्छायारूपभुजे प्राच्यपरसूत्रमध्याद्दक्षिणदिक्स्थे सति । उत्तरदिक्का उत्तरे भुजे दक्षिणाः । चो विषयव्यवस्थार्थकः । ता नतकलाः सूर्यक्रांतिकलाः प्रागुक्ताः । दिग्भेदे स्वादिशोर्भिन्नत्वे मिश्रिताः संयुक्ताः साम्येऽभिन्नदिक्त्वे विश्लिष्टा अन्तरिताः । चोविषयव्यवस्थार्थकः । अक्षकला भवन्ति । अत्रानावश्यकभुजसञ्ज्ञया भगवतोपपत्तिरुक्ता । तथा हि द्वादशांगुलशङ्कुकोटौ मध्याह्नच्छायाकर्णे वा मध्यच्छायाभुजस्तथा स्वस्वस्तिकान्मध्याह्नकाले सूर्यस्य याम्योत्तरवृत्ते यदन्तरेण नतत्वं ता नतकलास्तज्ज्यानतांशज्यामध्याह्नोन्नतांशज्यारूपशङ्कौ त्रिज्याकर्णे वा भुज इति मध्याह्नच्छायाकर्णे कर्णे मध्याह्नच्छायाभुजस्तदा त्रिज्याकर्णे को भुज इत्यनुपातेन नतज्या तद्धनुरत्र कलात्मकत्वान्नतकलास्ता ग्रहसंबद्धा इति छायादिदिग्विपरीतदिक्काः । अथ क्रान्त्यांशाक्षांशयोरेकदिक्त्वे योगेन नतांशा इति दक्षिणानतकलादक्षिणक्रांतिकलाभिर्हीना अक्षांशा भवन्ति । क्रान्त्यंशाक्षांशयोर्भिन्नदिक्त्वेऽन्तरेण नतांशा यदि दक्षिणास्तदा क्रान्त्यूनाक्षांशस्य नतत्वादुत्तरक्रान्तियुता अक्षांशाः । यदि तूत्तरास्तदाक्षोनक्रान्तेर्नतत्वान्नतोत्तरक्रान्तिरक्ष इति सम्यगुपपन्नम् । केचित्तु भुजग्रहणादभीष्टकाले प्राच्यपरसूत्राच्छायाग्रं यदन्तरेण याम्यमुत्तरं वा भुजस्तं स्वल्पान्तरान्मध्यच्छायां प्रकल्प्य तस्याः कर्णं चानीयोक्तदिशानतलिप्तास्ता अभीष्टक्रान्तिसंस्कृता अक्षांशा भवन्तीत्याहुः ॥ १४–१५ ॥

भा॰ टी॰—मध्याह्नकी छायाही भुज है। तिसको त्रिज्यासे गुणकरके छायाकर्णसे भाग करके धनु निर्णय करनेपर नति होगी। छाया दक्षिणमें हो तो उत्तर नति और उत्तरमें होनेसे दक्षिण नति होती है। यह अलग दिशामें हो तो सूर्यक्रांतिमें योग करनेसे स्वीयअक्ष होगा। सम दिशामें होनेसे वियोग करना चाहिये १४-१५॥

अथाक्षात्पलभानयनमाह—

नाभ्योऽक्षज्या च तद्वर्गं प्रोज्झ्य त्रिज्याकृतेः पदम् ॥
लम्बज्यार्कगुणाक्षज्या विषुवद्भाथ लम्बया ॥ १६ ॥

ताभ्योऽक्षकलाभ्योऽक्षज्या भवति। चः समुच्चये। अक्षज्यावर्गं त्रिज्यावर्गात्त्यक्त्वा शेषान्मूलं लम्बज्या। अनन्तरमक्षज्या द्वादशगुणा लम्बया लम्बज्यया गुणनस्य भजनसंबन्धाद्भक्तेत्यर्थसिद्धम्। अक्षभा स्यात्। अत्रोपपत्तिः। अक्षकलानां ज्याक्षज्यातस्यास्त्रिज्या कर्णे भुजत्वात्तद्वर्गोनात्त्रिज्यावर्गान्मूलं लम्बज्याकोटिः। तयाक्षज्याभुजस्तदा द्वादशकोटौ को भुज इत्यनुपातेन विषुवच्छायेति ॥ १६ ॥

भा॰ टी॰—अक्षज्यावर्ग त्रिज्यावर्गसे अलग करके अन्तमेंसे लम्बज्या होती है द्वादश गुणित अक्षज्या, लम्बज्यासे भाग करनेपर विषुवद्भा होती है॥ १६ ॥

अथाक्षज्ञाने नतभागेभ्यः क्रान्तिद्वारा सूर्यसाधनं सार्धश्लोकाभ्यामाह—

स्वाक्षार्कनतभागानां दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा ॥ १७ ॥
दिग्भेदेऽपक्रमः शेषस्तस्य ज्यात्रिज्यया हता ॥
परमापक्रमज्याप्ता चापं मेषादिगो रविः ॥ १८ ॥
कर्कादौ प्रोज्झ्य चक्रार्धात्तुलादौ भार्धसंयुतात् ॥
मृगादौ प्रोज्झ्य भगणान्मध्याह्नेऽर्कः स्फुटोऽभवेत् ॥ १९ ॥

स्वदेशाक्षांशेष्टदिनीयमध्याह्नसूर्यनतांशयोर्भागानां बहुत्वाद्बहुवचनम्। एकदिक्त्वेन्तरमन्यदिक्त्वेऽन्यथा योगः कार्यः। शेष उक्तसंस्कारसिद्धोऽङ्कः क्रान्तिः स्यात्। तस्यापक्रमस्य ज्यात्रिज्यया गुण्या परमक्रान्तिज्यया प्रागुक्तया भक्ता फलस्य धनुर्भागादिकं मेषादिगो मेषादिराशित्रितयान्तर्गतोऽर्कः स्यात्। कर्कादित्रयेऽर्के चक्रार्धात्षड्राशित आगतार्कं त्यक्त्वा शेषं मध्याह्नकाले स्फुटोऽर्कः स्यात्। तुलादित्रितये षड्भयुतादागतार्का-

त्स्फुटोऽर्को ज्ञेयः । आगतोऽर्कः षड्भयुतः स्फुटोऽर्कः । स्यादित्यर्थः । मकरादित्रयेऽर्के द्वादशराशिभ्य आगता त्यक्त्वा शेषमयनांशसंस्कृतः स्फुटोऽर्कः स्यात् । करणागतज्ञानार्थं व्यस्तायनांशसंस्कृत इत्यर्थसिद्धम् । पूर्वं तत्संस्कृतग्रहात्क्रान्तिः साध्येत्यर्थस्योक्तः । अत्रोपपत्तिः । एकदिशि क्रान्त्यक्षयोगान्नतं दक्षिणमतोऽक्षोनं क्रांतिर्दक्षिणा । भिन्नदिशि क्रान्त्यू-नाक्षोनतं दक्षिणमनेनाक्षो हीनः क्रान्तिरुत्तरा । अक्षोनक्रांतिर्नतं तूत्तरम-तोऽक्षयुतं क्रांतिरुत्तरा । अस्या ज्याक्रांन्तिरर्क ? ज्या । परमक्रांतिज्याया त्रिज्याभुजः स्यात्तदानया कैतीटा सायनार्कभुजज्या तद्धनुः सायनार्क-भुंजः । भुजस्य चतुर्षु पदेषु तुल्यत्वात्प्रथमपदे मेषादित्रये सूर्यस्यत्र भुज-त्वाद्भुज एव सूर्यः । कर्कादित्रये द्वितीयपदे षड्भाद्रूनस्यार्कस्य भुजत्वाद्भु-जोनषड्भमर्कः । एवं तृतीयपदतुलादित्रये षड्भेन भुजत्वाद्भुजोनषड्भमर्कः । एवं तृतीयपदतुलादित्रये षड्भेन हीनार्कस्य भुजत्वात्षड्युतो भुजोऽर्कः । चतुर्थपदे मकरादित्रये सूर्योनभगणस्य भुजत्वाद्भुजोनभगणोऽर्क इति सर्वं वैपरीत्यात्सुगमतरम् ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

भा० टी० - निजदेशके अक्ष और सूर्यनतांश एक दिशामें हो तो अन्तर करनेसे अन्य दिशामें योग करनेसे अपक्रम होगा । इस अपक्रमकी ज्या त्रिज्यासे गुण-करके परमापक्रमज्या (१३९७) से भाग करके ज्या करनेसे मेषादिमें सायन रवि स्पष्ट होगा । कर्कटादिमें चक्रार्ध (६ राशि) से वियोग करनेपर, तुलादि ६ राशिमें योग करनेसे और मकरादिमें १२ राशिसे वियोग करनेपर (सायन) रविस्पष्ट होगा ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथागतस्फुटसूर्यस्य करणागतस्फुटतुल्यत्वज्ञानमागतस्फुटसूर्यान्मध्य-मयकरणागतमध्यमार्कतुल्यत्वेन विशेषं वक्तुं श्लोकार्धेनाह-

तन्मान्दमसकृद्वामं फलं मध्यो दिवाकरः ॥

तस्मादागतस्फुटसूर्यान्मान्दफलं मन्दफलमसकृदनेकवारं वामं व्यस्तं संस्कृतं स्फुटसूर्येऽहर्गणानीतः स्फुटसूर्यः स्यात् । अयमर्थः । स्फुटसूर्यमध्यमं प्रकल्प्य पूर्वमन्दोच्चात्प्रागुक्तरीत्या मन्दफलं धनमृणमानीय स्फुटसूर्यऋणे धनं कार्यं मध्यमसूर्यः । अस्मादपि मन्दफलं स्पष्टसूर्ये व्यस्तं संस्कृतं मध्य-

मोऽस्मादपि मन्दफलं स्पष्टे व्यस्तं मध्यस्तं मध्यमार्क इति यावदविशेषस्तावदसकृत्साध्योऽर्को मध्योऽहर्गणानीतो भवतीति । तथाच मध्यमार्कात्स्फुटार्कसाधन एकवारं मन्दफलसंस्कारः स्फुटार्कान्मध्यार्कसाधने त्वनेकवारं मन्दफलव्यस्तसंस्कार इति विशेषोऽभिहितः । अत्रोपपत्तिः । मध्यमसूर्यादानीतमन्दफलेन संस्कृतो मध्यः स्फुटोऽर्को भवति । वा तेनैव मन्दफलेन व्यस्तं संस्कृतो मध्यो भवति । अत्र स्फुटार्कान्मध्यार्कसाधने मध्यमज्ञानासम्भवात्तदानीतमन्दफलज्ञानमशक्यं अतः स्फुटसूर्यं मध्यमं प्रकल्प्यानीतमन्दफलेनाभिमतासन्नेन स्पष्टोऽर्को व्यस्तं संस्कृतो मध्यमासन्नः । अस्मादपिमन्दफलमभिमतासन्नमपि पूर्वस्मात्सूक्ष्ममिति यावदविशेषे मध्यार्कसाधितं मन्दफलं भवतीति निरवद्यं सर्वमुक्तम् ॥

भा० टी०—निरणय रवि स्पष्टसे मान्द्यफल निर्णयकरके विपरीतभावसे असकृत् संस्कार करनेसे रविमध्य लाभ होगा । अर्थात् रविस्पष्टको रविमध्यकी समान गिनकर मन्दोच्च संस्कारादिके द्वारा मान्दफल प्राप्त होकर विपरीत संस्कार करनेसे सूर्यकी स्थूल होगा तिसको मध्य ज्ञानकरके मान्द फल फिर कहीहुई रीतिसे रविस्पष्टमें विपरीत भावकरके संस्कार करे ।

अथ मध्याह्ने छायकर्णयोरानयनं विवक्षुः प्रथमं तात्कालिकनतांशज्ञानं कथयंस्तद्भुजकोटिज्ये कार्ये इत्याह—

स्वाक्षार्कापक्रमयुतिर्दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा ॥
शेषं नतांशाः सूर्यस्य तद्बाहुज्या च कोटिजा ॥ २० ॥

दिक्साम्य एकदिक्त्वे स्वदेशाक्षांशमध्याह्नकालिकसूर्यक्रांत्यंशयोर्योगः । अन्यथा अत उक्तादेकदिक्यत्वाद्वैपरीत्ये भिन्नदिक्त्वादित्यर्थः । अक्षांशक्रांत्यंशयोरंतरं कार्यं शेषं संस्कारोत्पन्नं सूर्यस्य मध्याह्ने नतांशास्तेषां नतांशानां भुजरूपाणां ज्या कोटिज्या तदंशा नवतिशुद्धाः कोटिस्तत उत्पन्ना ज्या । चः समुच्चये साध्या । अत्रोपपत्तिः । याम्योत्तरवृत्ते सूर्यस्य मध्याह्ने स्वस्वस्तिकादनन्तरं नतांशा विषुवद्वृत्तपर्यंतमक्षांशाः । विषुवद्वृत्तसूर्ययोरन्तरं क्रांत्यंशाः । अतो दक्षिणक्रान्तौ क्रान्त्यक्षयोगो नतांशा उत्तरक्रान्तौक्रान्त्य-

नाक्षोऽक्षोन क्रान्तिर्वा दक्षिणोत्तरनतांशास्तेषां ज्याद्वयस्यां भुजस्तत्कोटिज्या-महाशंकुः कोटिस्त्रिज्याकर्ण इति च्छायाक्षेत्रे तदंशानां भुजः स्यात् ॥२०॥

भा० टी०-निजदेशके अक्षांश और सूर्यक्रान्ति एकदिशामें हों तो योग, और विपरीतमें अन्तर करनेसे शेषमाध्याह्निक सूर्यकानतांश हैं तिसकी भुजज्या और कोटिज्या करे ॥ २० ॥

अथ च्छायाकर्णयोरानयनमाह-

शङ्कुमानांगुलाभ्यस्ते भुजत्रिज्ये यथाक्रमम् ॥
कोटिज्यया विभज्याते छायाकर्णावहर्दले ॥ २१ ॥

भुजत्रिज्ये नतांशज्या त्रिज्ये इत्यर्थः । शङ्कोः प्रमाणांगुलानि द्वादश तैर्गुणिते कार्ये । उभयत्र कोटिज्यया नतांशोननवत्यंशानां ज्ययेत्यर्थः । भक्त्वा लब्धे द्वे यथाक्रमं भुजज्या त्रिज्यास्थानीयफलक्रमेण मध्याह्ने छाया तत्कर्णो भवतः । अत्रोपपत्तिः । द्वादशांगुलशंकुः कोटिरिष्टच्छायाभुजस्त-त्कृत्योर्योगपदं कर्ण इति च्छायाकर्णः कर्ण इति च्छायाक्षेत्रे । महाशंकु-कोटौ दृग्ज्यात्रिज्ये भुजकर्णौ तदा द्वादशांगुलशंकुकोटौ काविल्यनुपातेन मध्याह्नकालेन छाया तत्कर्णौ भवतः । साधकयोस्तात्कालिकत्वादित्युप-पन्नम् ॥ २१ ॥

भा० टी०-शंकुमानांगुलि (१२) से भुजज्या (नतांशको) और त्रिज्याको अलग अलग गुणकरके कोटिज्यासे विभक्त करनेपर छाया और कर्ण होंगे ॥ २१ ॥

अथ भुजसाधनं विवक्षुः प्रथममग्रां कर्णाग्रआनयति-

क्रांतिज्या विषुवत्कर्णगुणाप्ता शंकुजीवया ॥
तर्काग्रास्वेष्टकर्णघ्नी मध्यकर्णोद्धृता स्वका ॥ २२ ॥

सूर्यक्रान्तिज्या अक्षकर्णगुणिता शंकुजीवया शंकुर्द्वादशांगुलस्तद्रूपाज्या तयेत्यर्थः द्वादशभिरिति फलितम् । भक्ताफलं सूर्यस्याग्रा । उपलक्षणाद्ग्रहस्यापि इयमग्रास्वाभिमतकालिकच्छाया कर्णेन गुणिता मध्यकर्णोद्धृता कर्णस्य व्यासस्य मध्यमर्धमिति मध्यकर्णो व्यासार्धं त्रिज्या तयेत्यर्थः । पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्चेति सूत्रेण मध्यपदस्य पूर्वनिपातः । भक्ताफलं स्वका स्वकर्णाग्रा स्यात् । अत्रोपपत्तिः । क्रांतिज्योन्मण्डले को-

दिरक्षितिजे कर्णः कुज्याभुज इत्यक्षक्षेत्रे द्वादशकोटावक्षकर्णः कर्णस्तदा क्रांतिज्याकोटौ कः कर्ण इत्यनुपातेनाग्रा । त्रिज्यावृत्त इयं कर्णवृत्ते केत्यनुपातेन कर्णवृत्ताग्रेत्युपापन्नम् ॥ २२ ॥

भा०टी०—क्रान्तिज्याको अक्षकर्णसे गुणकरके शंकु (१२) से भाग करनेपर सूर्याग्रा होता है । अग्राको इष्टदिवसीय कर्णसे गुण करके त्रिज्यासे भाग करनेपर स्वकर्णाग्रा होगी ॥ २२ ॥

अथ भुजानयनश्लोकाभ्यामाह—

विषुवद्भायुतार्काग्रा याम्ये स्यादुत्तरो भुजः ॥
विषुवत्यां विशोध्योदग्गोले स्याद्बाहुरुत्तरः ॥ २३ ॥
विपर्ययाद्भुजो याम्यो भवेत्प्राच्यपरान्तरे ॥
माध्याह्निको भुजो नित्यं छाया माध्याह्निकी स्मृता॥२४॥

अर्काग्रा सूर्यस्याभीष्टकालिककर्णाग्रा याम्ये दक्षिणगोले विषुवद्भायुताक्षच्छायया युक्तोत्तरदिक्को भुजः स्यात् । उत्तरगोले विषुवत्यां पलभायां कर्णाग्रां विशोध्य न्यूनीकृत्य शेषमुत्तरदिक्को भुजः स्यात् । ननु कर्णाग्रा पलभायां यदा न शुद्ध्यति तदा कथं भुजः साध्य इत्यत आह—विपर्ययादिति । अक्षभां कर्णाग्रायां विशोध्य शेषंदक्षिणो भुजः स्यात् । ननु भुजस्य याम्यत्वमुत्तरत्वं वा कस्मादित्यत आह—प्राच्यपरान्तर इति । पूर्वापरसूत्रादन्तरालप्रदेशे याम्य उत्तरो वा भुजः स्यादित्यर्थः । ननु तथापि द्वितीयावधेरनुक्तत्वादन्तरस्याप्रसिद्धेः पूर्वापरसूत्रात्कस्यान्तरं भुज इत्याशङ्कायां उत्तरं मध्याह्नच्छायास्वरूपकथनच्छलेनाह—माध्याह्निक इति । मध्याह्नकालिको भुजः सदा माध्याह्निकी मध्याह्नकालिकी छायोक्ता । तथा च छायाग्रं प्राच्यपरसूत्राद्याम्यमुत्तरं वा यदन्तरेण स भुज इति व्यक्तीकृतम् । अत्रोपपत्तिः शङ्कुमूलं प्राच्यपरसूत्राद्याम्यमुत्तरं वा यदन्तरेण स याम्योत्तरो भुजो ग्रहस्य शङ्कुस्तु ग्रहादवलंम्बसूत्रं क्षितिजसमसूत्रावधि तत्रायं भुजः शंकुतलाग्रयोः संस्कारजः । शंकुतलं तु स्वाहोरात्रवृत्तस्थितोदयास्तसूत्राच्छङ्कुमूलं यदंतरेण तद्दक्षिणम् । अग्रा तु पूर्वापरसूत्रादुदयास्तसूत्रावध्यन्तरमुत्तरदक्षिण-

गोलक्रमेणोत्तरदक्षिणा । तत्र ग्रहापरदिशि षड्भान्तरेऽस्माद्व्यस्तमिति शङ्कुतलमुत्तरमथापि व्यस्तदिक्केति तत्संस्कारो भुजो गोले प्रत्यक्षः । स महाशङ्कोरिति महाशङ्कोरयं तदा द्वादशाङ्गुलशङ्कोः क इत्यनुपातेन भुजः पूर्वापरसूत्राच्छायाग्रावधि । तत्र शङ्कुतलाग्रे द्वादशाङ्गुलशङ्कोः साधिते तत्संस्कारेण भुजः स एव। तत्राप्यग्रात्पूर्वं साधिता शङ्कुतलं तु द्वादशाङ्गुलशङ्कोः पलभा महाशङ्कुः कोटिः शंकुतलं भुजो हृतिः कर्ण इत्यक्षक्षेत्रे द्वादशकोटौ पलभाजस्तदा महाशंकुकोटौ को भुज इत्यनुपातेन शंकुतलमानीय महाशङ्कोरियं द्वादशाङ्गुलशङ्कोः किमित्यनुपाते गुणहरयोस्तुल्यत्वन्नाशेन पलभाया एवावशिष्टत्वात् । सा तूत्तरादक्षिणगोलेऽग्राया उत्तरत्वादेकदिक्त्वेन पलभाग्रयोर्योग उत्तरो भुजः । उत्तरगोलेऽग्राया दक्षिणत्वेन भिन्नदिक्त्वात्पलभाग्रयोरन्तरं भुजस्तत्र पलभायाः शेषमुत्तरो भुजोऽग्रायाः शेषं दक्षिणो भुजः। मध्याह्ने छायायाभुजरूपत्वान्मध्याह्नकालिको भुजो मध्याह्नच्छायेति सर्वं युक्तम् ॥ २३ ॥ २४ ॥

भा० टी०-दक्षिणगोलमें विषुवद्भासे स्वकर्णाग्राका योग और उत्तरमें विषुवद्भासे वियोग करनेपर उत्तर भुज होता है ॥ २३ ॥ विषुवद्भासे वियोग असम्भव होनेपर स्वकर्णाग्रासे वियोग करनेपर दक्षिणभुज होता है। मध्याह्नभुजकी मध्याह्नच्छाया कहते हैं ॥ २४ ॥

अथ याम्योत्तरवृत्तस्थच्छायाकर्णमुक्त्वा पूर्वपरवृत्तस्थच्छायाकर्णं प्रकारद्वयेनाह-

लम्बाक्षजीवे विषुवच्छायाद्वादशसंगुणे ॥
क्रान्तिज्याप्ते तु तौ कर्णौ सममण्डलगे रवौ ॥ २५ ॥

लम्बज्याक्षज्ये क्रमेणाक्षभाद्वादशाभ्यां गुणिते उभयत्र क्रान्तिज्यया भक्ते तुकारात्फले समवृत्तस्थेऽर्के तौ दृग्योग्यच्छायासम्बद्धौ कर्णौ भवत उभयत्र छायाकर्णः स्यात् । अत्रोपपत्तिः । स्वमस्तकोपरि पूर्वापरानुकारेण यद्वृत्तं तत्सममण्डलसंज्ञम् । तत्रस्थस्य च्छायाकर्णानयनम्। पलभाभुजेऽक्षकर्णः कर्णस्तदा क्रान्तिज्या भुजे कः कर्ण इति समशङ्कुः क्रान्ति-

ज्याभुजे समशङ्कुः क्रान्तिज्याभुजे समशङ्कुकुज्योनतद्वृत्त्योः क्रमेण कर्णकोटित्वात् । अस्मात् शङ्कुमानांगुलाभ्यस्ते इत्यादिना त्रिज्या द्वादशगुणितानेन भक्ता तत्र 'छेदं लवं च परिवर्त्य हरस्य शेषः कार्योऽत्र भागहरणे गुणनाविधिश्च' इत्युक्तेः । पलभया त्रिगुण्याक्रान्तिज्याक्षकर्णाभ्यां भक्ता । तत्र त्रिज्या द्वादशगुणिताक्षकर्णभक्ता लम्बज्यैव सिद्धातो लम्बज्यापलभागुणिताक्रान्तिज्याभक्ताफलं समवृत्तगतच्छायाकर्णः । अथात्रैव पलभाभुजे द्वादशकोटिरक्षज्या भुजे का कोटिरिति लम्बज्याग्रहणे पलभयोस्तुल्यत्वान्नाशादक्षज्याद्वादशगुणाक्रान्तिज्याभक्ताछायाकर्णः सममण्डलगतः क्रान्तिज्यायाः सदायं कर्णः सिद्धयेन्नहि सर्वदा समवृत्तगतो ग्रह इति समवृत्तगता ग्रहस्यैव कर्णः साध्यो नान्यदेति सूचनार्थं सममण्डलगे रवावित्युक्तम् ॥ २५ ॥

भा० टी०—रविमण्डलस्थ होनेपर लम्बज्याको विषुवच्छायासे गुण अथवा अक्षज्याके द्वादशद्वा। गुणकरके क्रान्तिज्यासे भाग करनेपर कर्ण होगा ॥ २५ ॥

नुन ग्रहाधिष्ठिताहोरात्रपूर्वापरवृत्तसम्पातादवलम्बरूपसमशङ्कोर्गोले प्रत्यक्षसिद्धस्यसाधनार्थं समवृत्तस्थत्वाभावेऽपि च्छायाकर्णः साध्यः । सममण्डलगे रवावित्युक्तिस्तु स्वाधिष्ठिताहोरात्रवृत्तपरा न त्वन्यदा न साध्योऽन्यथा लक्षत्वेन प्रकारस्यातिप्रसङ्गापत्तेः । नहि प्रकारे तद्व्यावर्तकं विशेषणं प्रसिद्धं येन नातिप्रसंगः । परन्तु यदा सममण्डलेऽक्षांशाधिकक्रान्त्या ग्रहाधिष्ठितद्युरात्रवृत्तानामसम्बन्धस्तदा गोले समशङ्कोरदर्शनात्तत्र कथं तत्साधनमनिवारितमित्यतः सममण्डलगे रवावित्यस्य पूर्वोक्त एवार्थ इत्यभिप्रायं सममण्डलकर्णानयनप्रकारान्तरकथनच्छलेनाह—

सौम्याक्षोना यदा क्रान्तिः स्यात्तदा द्युदलश्रवः ॥
विषुवच्छाययाभ्यस्तः कर्णो मध्याग्रयोद्धृतः ॥ २६ ॥

यदोत्तराक्रान्तिरक्षादल्पा स्यात्तदा द्युदलश्रवः समवृत्तस्यार्काक्रांतिसाधितमध्याह्नकर्णः । नतु मध्याह्नकालिकः । अक्षभया गुणितो मध्याग्रया गृहीतमध्याह्नकर्णाग्रया भक्तः फलं समण्डलगतग्रहम्बिस्य च्छायाकर्णः स्यात् । अत्र

सौम्यत्यनेन दक्षिणक्रान्तौ तदसाधनं सममण्डलगतग्रहबिम्बस्यादर्शनादिति स्फुटमुक्तम् । अन्यथाक्षाल्पक्रान्तौ दक्षिणगोले समशङ्कोः प्रत्यक्षत्वात्तन्निवारणानुपपत्तेः । अत्रोपपत्तिः । सममण्डलप्रवेशकालिकमध्याह्नच्छायाकर्णादवस्तुभूतात्कर्णेन द्वादशांगुलशंकुस्तदा त्रिज्याकर्णेन क इति मध्यशंकुस्तात्कालिकः । द्वादशकोटावक्षभाभुजस्तदा महाशंकुकोटौ क इति शंकुतलम् । द्वादशयोर्नाशात्पलभात्रिज्याघातो मध्यकर्णभक्त इति । अनेन भुजेन मध्यशंकुस्तदाग्राभुजेन क इति समशंकुर्द्वादशाग्रामध्यकर्णघातो मध्यकर्णपलभाभ्यां भक्तोऽग्राभुजे समशंकुतद्धृत्योः कोटिकर्णत्वात् । अस्मात्पूर्वप्रकारेण च्छायाकर्णानयने द्वादशयोर्नाशान्मध्यकर्णपलभात्रिज्याघातोऽग्रामध्यकर्णाभ्यां भक्त इति तुल्ययोर्मध्यकर्णमितगुणहरयोर्नाशाकरणेन सिद्धम् । स्वतन्त्रेच्छस्य नियोक्तमशक्यत्वात् । तत्रापि भाज्यहरौ त्रिज्ययापवर्त्यहरस्थाने मध्यकर्णगुणिताग्रा त्रिज्याभक्तेति मध्यकर्णाग्रा सिद्धा अतो मध्याग्रयोद्धृत इत्युक्तम् । भाज्यस्थाने तु मध्यकर्णपलभाघात इति दक्षिणगोले ग्रहादर्शनान्न साधितः । उत्तरगोलेऽपि क्रांतिरक्षाधिका तदा सममण्डलप्रवेशासम्भवान्न साधितः सममण्डलावध्यक्षांशत्वात् । अल्पक्रांतौ तत्सम्भवात्साधितः । नह्यसिद्धं गोले गणितसाध्यं मानाभावादित्युपपन्नं सौम्येत्यादि । भास्कराचार्यैस्तु—"मार्त्तण्डः सममण्डलं प्रविशति स्वल्पेऽपमे स्वात्पलाद्दृश्यो ह्युत्तरगोल एव स विशन् साध्या तदैवास्य भा । अप्राप्तेऽपि समाख्यमण्डलमिने यः शंकुरुत्पद्यते नूनं सोऽपि परानुपातविषये नैवं क्वचिद्दृश्यति ॥ " इत्यनेनतत्रापि साधितः ॥ २६ ॥

भा ० टी ०—जब क्रान्ति अक्षसे कम होवै, तब विषुवच्छाया गुणित मध्याह्न कर्णको मध्याग्रासे भाग करनेपर पहला कहा हुआ कर्ण होगा ॥ २६ ॥

अथ स्वाभिमतकर्णेन स्वस्वकाले भुजार्थं कर्णवृत्ताग्रा साध्येति । सूचनार्थं कर्णाग्रभुक्तप्रकारेण पुनरपि मध्यकर्ण इति प्रागुक्तस्य स्फुटीकरणार्थं चाह—

स्वक्रान्तिज्या त्रिजीवाघ्नी लम्बज्याप्ताग्रमौर्विका ॥
स्वेष्टकर्णहता भक्ता त्रिज्ययाग्रांगुलादिका ॥ २७ ॥

स्वाभिमतकालिकक्रांतिज्या त्रिज्यया गुणिता लम्बज्यया भक्ता फलमग्राज्यारूपा । लम्बज्याकोटौ त्रिज्याकर्णः क्रांतिज्याकोटौ कः कर्ण इत्यग्रेत्युपपत्तिः । उत्तरार्द्धं पुनरुक्तव्याख्यातप्रायम् । यदि तु पूर्वोक्तकर्णवृत्ताग्रानयनश्लोके शंकुजीवयेत्यस्य शंकोः कोटिरूपत्वात्पूर्वं साधितनतांशभुजकोटिज्ययत्येर्थो मध्यकर्ण इत्यस्य च तात्कालिकमध्याह्नच्छायायाः कर्णस्तदा न पुनरुक्तम् । परन्त्वर्काग्रेत्यस्य तात्कालिकमध्याह्नकालिककर्णाग्रार्थः स्वकेत्यस्य च स्वाभीष्टकालिककर्णाग्रार्थो बोध्यः । एतदुपपत्तिस्तु द्वादशकोटावक्षकर्णः कर्णस्तदाक्रांतिज्याकोटौ कः कर्ण इति स्वकालिकाग्रा । त्रिज्यावृत्त इयं तदा तात्कालिकमध्याह्नकालिकच्छायाकर्णेन नतांशकोटिज्याभक्तद्वादशत्रिज्याघातात्मकेन केति द्वादशत्रिज्याघातयोर्गुणहरत्वेन तुल्ययोर्नाशादक्षकर्णगुणितक्रान्तिज्यात्कालिकमध्याह्ननतांशकोटिज्यया भक्तेति । तात्कालिकमध्याह्नच्छायाकर्णेनेय कर्णाग्रा तदा स्वाभीष्टकालिकच्छायाकर्णेन केति स्वकालिकाकर्णाग्रेत्युप पन्ना । सूर्याधिष्ठिताहोरात्रवृत्तयाम्योत्तरवृत्तोर्ध्वसम्पातस्तात्कालिकमध्याह्नं परानुपातार्थंबोध्यम्॥२७॥

भा० टी०—स्वक्रांतिज्या त्रिज्यासे गुणकरके लम्बज्यासे भाग करनेपर अग्रा होगी उसको उसके इष्टकर्णसे गुणकरके त्रिज्यासे भागकरनेपर अंगुलादिक होंगे ॥ २७ ॥

अथ कोणच्छायाकर्णसाधनार्थं कोणशंकुदृग्ज्ये श्लोकपञ्चकेनाह-

त्रिज्यावर्गार्धतोऽग्रज्या वर्गोनाद्द्वादशाहतात् ॥
पुनर्द्वादशनिघ्नाच्च लभ्यते यत्फलं बुधैः ॥ २८ ॥
शंकुवर्गार्धसंयुक्तविषुवद्वर्गभाजितात् ॥
तदेव करणी नाम तां पृथक्स्थापयेद्बुधः ॥ २९ ॥
अर्कघ्नी विषुवच्छायाग्रज्यया गुणिता तथा ॥
भक्ता फलाख्यं तद्वर्गसंयुक्तकरणीपदम् ॥ ३० ॥
फलेन हीनसंयुक्तं दक्षिणोत्तरगोलयोः ॥
याम्ययोर्विदिशोः शंकुरेवं याम्योत्तरे रवौ ॥ ३१ ॥

परिभ्रमति शंकोस्तु शंकुरुत्तरयोस्तु सः ॥
तत्रिज्यावर्गविश्लेषान्मूलं दृग्ज्याभिधीयते ॥ ३२ ॥

पूर्वप्रकारानीतैस्तात्कालिकाग्रज्याया नतु कर्णाग्रायाः पूर्वकर्णस्यैवासिद्धेः। वर्गेण हीना त्रिज्या वर्गार्द्धाद्द्वादशगुणात्पुनर्द्वितीयवारं द्वादशगुणात् । चः समुच्चये । तेन द्वादशगुणितस्य द्विधा स्थापननिरासाच्चतुश्चत्वारिंशदधिकशतगुणितादित्यर्थः । पृथग् गणकोक्तिस्तु गुणनसुखार्थम् । शंकोर्द्वादशांगुलात्मकस्य वर्गार्धेन द्विसप्तत्या युक्तेन पलभावर्गेण भाजितार्द्धवर्गगणितकर्तृभिर्यत्संख्यामितं फलं प्राप्यते तत्संख्यामितं करयणीनाम सञ्ज्ञया करणी । तां करणीं बुधो गणकः पृथगेकत्र स्थने स्थापयेत् । ततो द्वादशगुणितापलभाग्रज्यया पूर्वगृहीतया गुणिता तथा द्विसप्ततियुतेन पलभावर्गेण भक्ताल्लब्धं फलसंज्ञं तस्य फलस्य वर्गेण युतायाः करण्या मूलं दक्षिणोत्तरगोलयोः क्रमेण फलेनोनयुतम् । एवमुक्तप्रकारेण सिद्धः शंकुशंङ्कोर्गणितकर्तुः सकाशाद्दक्षिणोत्तरे सूर्ये परिभ्रमति सति तुकारः क्रमार्थे क्रमेण याम्ययोरुत्तरयोर्विदिशोराग्नेयनैर्ऋत्योरीशानीवायव्योः कोणयोरित्यर्थः । द्वितीयतुकारः पूर्वापरदिने विभागक्रमार्थकत्वेन विदिशोरित्यत्रान्वेति । तेन दिनपूर्वार्धे आग्नेयैशान्योर्दक्षिणोत्तरक्रमेण दिनापरार्धे नैर्ऋत्यवायव्योर्दक्षिणोत्तरक्रमेणेति फलितार्थः। स कोणसञ्ज्ञः शंकुः स्यात् । कोणशंकुत्रिज्ययोर्वर्गान्तरान्मूलं दृग्ज्योच्यते । अत्रोपपत्तिर्बीजैकवर्णमध्यमाहरणेन । तत्र "यावत्तावत् कल्प्यमव्यक्तराशेर्मानं तस्मिन् कुर्वतोद्दिष्टमेव । तुल्यौ पक्षौ साधनीयौ प्रयत्नात्त्यक्त्वाक्षिप्ता वापि संगुण्य भक्त्वा ॥" इत्युक्तेः । समौ पक्षौ साध्यौ तदर्थं कोणशंकुमानम् । या १ द्वादशकोटौ पलभा भुजः शंकुकोटौ को भुज इति कोणशंकुतलम् । या. प. $\frac{1}{12}$ । अग्रया युतं दक्षिणगोले भुजः । या. प. अ. $\frac{3}{12}$ । उत्तरगोलेऽग्रयान्तरितं भुजस्तत्र समवृत्तादुत्तरं शंकुतलोनाग्रा भुजः । या. प. ६ अ. $\frac{3}{12}$ । समवृत्ताद्दक्षिणेऽग्रोनं शंकुतलं भुजः । या. प. १ अ. $\frac{3}{12}$ । कोणस्य दक्षिणोत्तरपूर्वापरसूत्रमध्यत्वाद्भुजतुल्यसमचतुरस्रे कर्णः स्वस्वस्तिकात् कोणस्थसूर्यनवांशानां ज्याद्-

ज्येति भुजवर्गो द्विगुणो दृग्ज्यावर्गो दक्षिणगोले । याव. प. व. १. या. प. अ. २४ अव ३६। उत्तरगोले । याव. पव. १ या. प. अ. २४ अव १४४। अयं कोणशंकुः । या १ वर्गयाव १ हीनत्रिज्यावर्गरूपदृग्ज्यावर्गयाव १ अत्रव १ सम इति पक्षौ समच्छेदीकृत्य च्छेदगमे पक्षयोः शोधनार्थं न्यासः ।

दक्षिणगोले { याव. पव. १ या. प. अ. २४ अव १४४ / याव. ७२ या. त्रिव. ७२ }

उत्तरगोले { याव. पव. १ या. प. अ. २४. अव. १४४ / या. ७२ या. त्रिव. ७२ }

अथ "एकाव्यक्तं शोधयेदन्यपक्षाद्रूपाण्यन्यस्येतरस्माच्च पक्षात्" इत्युक्तेनाव्यक्तपक्षेऽव्यक्तवर्गस्थाने द्विसप्ततिपलयावर्गयोगो यावत्तावद्वर्गगुणोऽव्यक्तस्थाने पलभाग्रा चतुर्विंशतिघातो यावत्तावद्गुणो दक्षिणगोले धनमुत्तरगोले ऋणम् । रूपपक्षे तु चतुश्चत्वारिंशदधिकशतगुणितेनाग्रावर्गेण हीनो द्विसप्ततिगुणस्त्रिज्यावर्गस्तत्र द्विसप्ततिगुणस्त्रिज्यावर्गश्चतुश्चत्वारिंशदधिकशतगुणितेन त्रिज्यावर्गार्धेन न तुल्यत्वात्तुल्यगुणलाघवार्थं तथैव धृतः । तत्राप्येकदैव गुणनार्थं त्रिज्यावर्गार्धमग्रावर्गेण हीनं चतुश्चत्वारिंशदधिकशतगुणमिति सिद्धम् । सार्धराशिज्याधिकाग्रायां तु त्रिज्यावर्गार्धेन हीनोऽग्रावर्गश्चतुश्चत्वारिंशदधिकशतगुण ऋणम् । "अव्यक्तवर्गादि यदावशेषं पक्षौ तदेष्टेन निहत्य किंचित् । क्षेप्यं तयोर्येन पदप्रदः स्यादव्यक्तपक्षोऽस्य पदेन भूयः । व्यक्तस्य पक्षस्य समक्रियैवमव्यक्तमानं खलु लभ्यते तत् ॥" इत्युक्तेः पक्षयोर्मूलार्थमव्यक्तवर्गाङ्केनापवर्तः कार्यः । वर्गाङ्कस्तु द्विसप्ततियुतः पलभावर्गस्तेनापवर्तितेऽव्यक्तपक्षे प्रथमस्थाने यावत्तावद्वर्गः सिद्धः । द्वितीयस्थाने द्विमितगुणकस्य पृथक्करणादर्कघ्नी विषुवच्छायाग्रज्यया गुणिता तथा भक्ता फलाख्यमित्युक्त्या फलं द्विगुणं यावत्तावद्गुणं दक्षिणोत्तरगोलक्रमेण धनमृणम् । रूपपक्षेऽपवर्जिते करण्याख्यं सार्धराशिज्यातोऽग्रायामूनाधिकायां धनमृणम् । ततोऽपि मूलार्थपक्षयोरव्यक्ताङ्कार्धरूपफलस्य वर्गो योजितः । तत्राव्यक्तपक्षयोजनपूर्वकमूलग्रहणे प्रथमस्थाने यावत्तावत् । द्वितीयस्थाने

फलं दक्षिणोत्तरगोलयोर्धनमृणम् । यथा । या १ फ १ । या १ फ ़ । उत्तरगोलेऽव्यक्तस्यर्णत्व था ़ फ १ । उभयथा मध्याव्यक्तनाशसम्भवात् । रूपपक्षे तु फलग्रहणे तद्वर्गसंयुक्तकरणीपदमिति सार्धराशिज्यानधिकाग्रायामधिकायां तु करण्यूनस्य फलवर्गस्य मूलम् । तथा च त्रिज्यावर्गार्धतोऽग्रज्यावर्गोनादित्यत्र सार्धराशिज्याधिकाग्रायामुक्तानुपपत्तावपि । " यत्र क्वचिच्छुद्धिविधौ यदेह शोध्यं न शुद्धेद्विपरीतशुद्धया । विधिस्तदा प्रोक्तवदेव किन्तु योगे वियोगः सुधिया विधेयः ॥ " इति भास्करोक्तरीत्याग्रज्यावर्गोनादित्यत्राग्रावर्गेणावर्गाद्वा हीनादित्यर्थद्वयेन क्रमेण न्यूनाधिकाग्रासम्बन्धेन वा न क्षतिरिति ध्येयम् । अथ पुनः समशोधनार्थम्—

पक्षयोर्न्यासः । दक्षिणगोले { या १ फ १ / या० प१ } करण्यूनफलवर्गपदस्य फलतो न्यूनत्वात् तत्पक्षयोरपि न्यासः । { या १ फ १ / या० प० } अत्रैकाव्यक्तमित्यादिना । "शेषाव्यक्तेनोद्धरेद्रूपशेषव्यक्तं मानं जायतेऽव्यक्तराशेः" इत्यनेन च प्रथमस्थाने पदं फलेन हीनमित्युपपन्नम् । द्वितीयस्थाने पदेन हीनं फलमित्यृणकोणशंकुर्भगवतायं नोक्तः । ऋणस्य स्थितिविपरीतत्वात् । न ह्यूर्ध्वगोले स्थितिविपरीतमधोगोलेऽदृश्यते येन तत्कथनमावश्यकम् । नाप्यधोगोले दृश्यत्वात् तत्कथनापत्तिः ऊर्ध्वगोलस्थस्य च्छायासाधकत्वेन साधनात् तत्र च्छायासंभवादेवाप्रयोजकत्वात् । उत्तरगोले तु { या. १ फ. १ / या० प० १ } वा { या. १ फ. १ / या० प० ़ } प्रथमस्थाने फलेन युतं पदमुपपन्नम् । द्वितीयस्थाने फलेनोनं पदमित्यृणत्वान्नोक्तः । छायानुपयुक्तत्वात् । करण्यूनफलवर्गपदस्य फलतो न्यूनत्वात् तत्पक्षयोरपि न्यासः । { या. १ फ. १ / या० प० १ } वा { या १ फ. १ / या० प० १ } अत्र प्रथमस्थाने पदेन युक्तं फलं कोणशंकुरुपपन्नः द्वितीयस्थाने पदेन हीनं फलं कोणशंकुरिति तद्द्वयमुपपन्नम् । नान्वद ततोर्ध्वगोले द्विनार्ध एव कोण-

शंकुद्वयं दृश्यत्वाद्भगवता कथमुपेक्षितमिति चेन्न। तत्र त्रिज्यावर्गार्धत इत्यत्र व्यस्तशोधनात्फलेन हीनसंयुक्त पदमित्यत्राप्युत्तरगोल एव हीनसंयुक्तमित्यस्यावृत्त्या फलं पदेन हीनसंयुक्तमित्यर्थसिद्धेर्भगवता तद्द्वयस्यानुपेक्षितत्वात्। समवृत्ताद्दक्षिणस्थत्वे कोणशंकुर्दिने पूर्वापरार्धक्रमेणाग्नेय्यां नैर्ऋत्यां वोत्तरस्थत्वेनैशान्यां वायव्यां वा भवतीति सर्वमुपपन्नम्। अत्र बीजक्रियोपपादकसूत्राणामुपपत्तिर्विस्तरभीत्या नोक्ता। सा त्वग्रजकृष्णदैवज्ञगुरुचरणरचितायां भास्करीयबीजटीकायां सम्यगुक्तावधेयेति। शंकुः कोटिस्त्रिज्याकर्णस्ववर्गान्तरपदं दृग्ज्या दृग्वृत्तनतांशानां ज्येति तत्रिज्यावर्गविशेषान्मूले दृग्ज्येत्युपपन्नम् ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

भा० टी०—त्रिज्यावर्गार्द्धसे (५९०९९१२) तात्कालिक अग्रज्यावर्ग वियोगकरके १४४ से गुणकरके जो फललाभ होगा तिसको शंकुवर्गार्द्ध (७२) संयुक्त त्रिषुवच्छाया वर्गसे भागकरनेपर करणी होगी। तिसको अलगकर रखना चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥ द्वादशगुणित विषुवच्छाया अग्रज्यासे गुणकरके पहले कहेहुये शंकुवर्गार्द्ध (७२) संयुक्त विषुवच्छायावर्गसे भाग करनेपर फल होगा। इसका वर्ग और करणी योगकरके मूलकरनेसे जो हो तिससे दक्षिणगोलमें फलहीन और उत्तरगोलमें फल योग करनेपर कोणशंकु होगा। सूर्य दक्षिणमें हो कोणशंकु, दक्षिणके दो कोनोंमें और उत्तरमें होनेपर उत्तरके दो कोणोंमें होगा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अथैतच्छायाच्छायाकर्णयोरानयनमाह—

स्वशंकुना विभज्याप्ते दृक्त्रिज्ये द्वादशाहते ॥
छायाकर्णौ तु कोणेषु यथास्वं देशकालयोः ॥ ३३ ॥

कोणीयदृग्ज्यात्रिज्ये द्वादशगुणे दृग्ज्यासंबन्धिकोणशंकुना भक्त्वा लब्धे दृग्ज्याक्रमेण च्छायाच्छायाकर्णौ स्तः। तुकारादेव कोणेषु चतुर्षु देशकालयोः। यथा स्वं स्वमनतिक्रम्येति यथास्वं यथाकालं छायाच्छायाकर्णौ साध्यौ। अयमर्थः। क्वचिद्देशे चतुर्षु कोणेषु क्वचिच्च कोणद्वयं क्वचिच्च दिनार्ध एव कोणद्वय इत्यादिदेशकालानुरोधेन यथायोग्यमिति। अत्रोपपत्तिः। प्रागुक्ता स्पष्टा च ॥ ३३ ॥

भा० टी०-तिसकावर्ग और त्रिज्यावर्गका अन्तर मूलकरनेसे दृग्ज्या होगी। द्वादशगुणिता दृग्ज्या और द्वादशगुणितत्रिज्या (४१२९६) कोण शंकुसे भाग करनेपर इष्टस्थानमें यथासमयमें छाया और कर्ण होगा ॥ ३३ ॥

अथ दिक्प्रदेशसंबन्धेन च्छायाकर्णावुक्त्वा कालसंबधेन सार्धश्लोकाभ्यामाह-

त्रिज्योदक्चरजायुक्ता याम्यायां तद्विवर्जिता ॥
अन्त्या नतोत्क्रमज्योना स्वाहोरात्रार्धसंगुणा ॥
त्रिज्याभक्ता भवेच्छेदो लम्बज्याघ्नोऽथ भाजितः ॥ ३४ ॥
त्रिभज्यया भवेच्छंकुस्तद्वर्गं परिशोधयेत् ॥
त्रिज्यावर्गात्पदं दृग्ज्या छायाकर्णौ तु पूर्ववत् ॥ ३५ ॥

उत्तरगोले चरोत्पन्नया ज्यया चरज्येत्यर्थः। पूर्वंचरानयने चराज्यायाश्चरज्येति सञ्ज्ञोक्तिः । युक्ता त्रिज्यान्त्या स्यात् याम्यगोले तया चरज्योना त्रिज्यान्त्या । नतोत्क्रज्योना सूर्योदयाद्दिनगतघट्योर्दिनशेषघयोर्वा दिनार्द्धान्तर्गता उन्नतसञ्ज्ञास्ताभिरूनं दिनार्धं नतकालो घट्यात्मकस्तस्यासुभ्यो लिप्तास्तत्त्वयमैरित्यादि विधिना सुनयो रंध्रयमाला इत्याद्युक्तोत्क्रमज्यापिण्डैर्ज्योत्क्रमज्या। पञ्चदशघट्यधिकनते तु पञ्चदशघटोलून नतस्य क्रमज्याखण्डैः क्रमज्या तया युक्ता त्रिज्योत्क्रमज्या भवति। तया हीनेत्यर्थः। स्वाहोरात्रार्धसंगुणा । गृहीतचरज्यासम्बन्ध्यहोरात्रवृत्तव्यासार्द्धं द्युज्या तया गुणिता त्रिज्यया भक्ता फलं छेदसञ्ज्ञः स्यात् । अथानन्तरं छेदो लम्बज्यया गुणितस्त्रिज्यया भाज्यः फलमिष्टकाले शंकुः स्यात् । तस्य शङ्कोर्वर्गंत्रिज्यावर्गाच्छोधयेत् । शेषस्य मूलं दृगूज्या । आभ्यां छायाकर्णौ तु पूर्ववत् पूर्वोक्तरीत्या भवतः। अत्र छायाकर्णौ त्विति कोणच्छाया कर्णसाधनश्लोकान्तभागस्य ग्रहणात्तश्लोकोक्तरीत्याभीष्टशंकुदृगूज्याभ्यां छायाकर्णौ साध्यावित्युक्तम् । अत्रोपपत्तिः । याम्योत्तरत्तोर्ध्वभागग्रहाधिष्ठितद्युरात्रवृत्तसंपातात् क्षितिजद्युरात्रवृत्तसम्पातद्वयवद्धो दयास्तसूत्रक्षितिजसंवद्धयाम्योत्तरवृत्तसूत्रसंपातपर्यंतमहोरात्रवृत्ते सूत्रं त्रिज्यानुरुद्धमन्त्या

सा तूत्तरगोले चरज्यायुता त्रिज्यादक्षिणगोले चरज्ययोना त्रिज्या । उन्मण्डलयाम्योत्तरसूत्रवध्यहोरात्रवृत्तव्यासार्द्धे त्रिज्यत्वात् । उन्मंडलस्योत्तरदक्षिणक्रमेण क्षितिजादूर्ध्वाधःस्थत्वेन तद्याम्योत्तरसूत्रयोर्मध्ये चरज्यात्वाच्च । ग्रहहोरात्रवृत्ते याम्योत्तराहोरात्रवृत्तसंपातादुभयत्र नतघट्यन्तरेण स्थाने तत्सूत्रं नतकालस्थसम्पूर्णज्या । तन्मध्यादूर्ध्वसूत्रं शररूपं नतोत्क्रमज्या । तया हीनान्त्या ग्रहस्थानादहोरात्रवृत्त उदयास्तसूर्यपर्यन्तमृजुसूत्रं त्रिज्यानुरुद्धमिष्टान्त्या। तत्तुल्या याम्योत्तरोर्ध्वं व्याससूत्रान्तर्गता सा द्युज्या प्रमाणसधितेष्टहृतिः । द्युज्यागुणात्रिज्याः भक्ताफलं छेदः । अस्मात्रिज्याकर्णलम्बज्याकोटिस्तदेष्टहृतिकर्णे काकोटिरित्युनुपातेनेष्टशंकुः । अस्माद्दृग्ज्याच्छाया तत्कर्णा उक्तरीत्यासिद्धयन्तीत्युक्तमुपपन्नम् ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥

भा० टी०--उत्तर दिशामें सूर्य होनेपर त्रिज्यासे चरज्याको योग और दक्षिणमें रहनेसे त्रिज्यासे चरज्याका वियोग करनेपर अन्त्य होता है मध्याह्नसे इष्टकाल वियोग करके अंशादिमें परिवर्त्तन करनेसे नत होता है, नतके अनुसार उत्क्रमज्या अन्नसे वियोग करके स्वाहोरात्रार्द्ध व्यासद्वारा गुणकरक त्रिज्या (३४३८) से भाग करनेपर छेद होता है । छेदको लम्बज्यासे गुणकरके त्रिज्यासे भाग करनेपर शंकु होगा । त्रिज्या (११८१९८४४) से शंकु वर्ग (१४४) वियोगकरके मूलकरनेपर दृग्ज्या होती है । इसकी छाया और कर्ण पहले जैसे होंगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अथ श्लोकत्रयेण च्छायाकर्णाभ्यां नतकालानयनमाह-

अभीष्टच्छाययाभ्यस्तात्रिज्या तत्कर्णभाजिता ॥
दृग्ज्या तद्वर्गसंशुद्धात्रिज्यावर्गाच्च यत्पदम् ॥ ३६ ॥
शकुंः सत्रिभजीवाघ्नः स्वलम्बज्याविभाजितः ॥
छेदः स त्रिज्ययाभ्यस्तः स्वाहोरात्र्यार्द्धभाजितः ॥ ३७ ॥
उन्नतज्या तया हीना स्वान्त्या शेषस्य कार्मुकम् ॥
उत्क्रमज्याभिरेवं स्युः प्राक्पश्चाधनतासवः ॥ ३८ ॥

अभीष्टकालिकच्छायया गुणिता त्रिज्यागृहीतच्छायायाश्छायाकर्णेन भक्ता फलदृग्ज्याया वर्गेण हीनात्रिज्यावर्गाद्यत्सङ्ख्यामितं मूलम् । चकारो

यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात्तच्छब्दपरः। अभीष्टशंकुः । स इष्टशंकुस्त्रिज्यया गुणितः स्वदेशीयलम्बज्यया भक्तः फलं छेदः । स च्छेदस्त्रिज्यया गुणितो द्युज्यया भक्त उन्नतकालस्य ज्या विलक्षणा । यद्धनुरुन्नतकालो न भवति । तयानीतयोन्नतज्यया हीना स्वान्त्या स्वद्युज्यासम्बद्धचरज्यायावगतान्त्या । अवशेषस्यौत्क्रमज्याभिर्मुनयो रंध्रयमला इत्याद्युक्तोत्क्रमज्यापिण्डैर्धनुः । अवशेषस्य त्रिज्याधिकत्वे तु यदधिकं तस्य क्रमज्यापिण्डैर्धनुश्चतुःपञ्चाशद्युक्तमुत्क्रमनुधर्भवति । एवं प्रकारेण सिद्धाङ्का दिनस्य पूर्वार्धापरार्धयोर्नतकालासवो भवन्ति । अत्रोपपत्तिः । पूर्वोक्तव्यत्यासात्सुगमा । तत्र च्छेदस्त्रिज्यापरिणत इष्टान्त्या तस्या ज्यात्वासम्भवः । अवध्युदयास्ततसूत्रस्याहोरात्रवृत्तव्याससूत्रत्वाभावादित्युन्नतज्याकारेण स्वल्पान्तरत्वेन दर्शनादुन्नतज्येत्युक्तम् । अत एव भास्कराचार्यैः "इष्टान्त्यकामुन्नतकामौर्वीतुल्या प्रकल्प्या" इत्याद्युक्तम् । तद्धनुरसूनासुन्नतकालत्वापत्त्या तया हीनेत्यादिभागस्य व्यर्थत्वापत्तेरिति दिक् ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

भा० टी०-इष्टच्छायाको त्रिज्यासे गुणकरके तिसको कर्णद्वारा भाग करनेपर दृग्ज्या होती है। त्रिज्यावर्गसे दृग्ज्यावर्ग वियोग करके मूल करनेसे शंकु होता है। शंकुको त्रिज्यासे गुणकरके स्वीय लम्बज्यासे भाग करनेपर छेद होता है। छेदको त्रिज्यासे गुणकरके स्वाहोरात्रार्द्धसे भाग करके स्वीय अन्त्यसे वियोग करनेपर शेष उन्नतज्या होगी तिससे धनुकरे । उन्नतज्याके उत्क्रमज्याके परिमाणसे धनकरनेपर पूर्वापर नति प्राण सिद्ध होगा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अथेष्टकालिकाग्रया क्रान्तिज्याद्वारा सूर्यसाधनं सार्धश्लोकेनाह-

इष्टाग्राघ्नी तु लम्बज्या स्वकर्णाङ्गुलभाजिता ॥
क्रान्तिज्या सा त्रिजीवाघ्नी परमापक्रमोद्धृता ॥
तच्चापं भादिकं क्षेत्रं पदैस्तत्र भवो रविः ॥ ३९ ॥

इष्टकालिकाकर्णाग्रया गुणिता लम्बज्या । तुकारादग्रज्याया निरासः । तात्कालिकच्छायायाः कर्णाङ्गुलसङ्ख्याभिर्भक्ता फलं क्रान्तिज्या । सा क्रान्तिज्या त्रिज्यया गुणितापरमक्रान्तिज्यया भक्ता फलस्य धनूराश्यादिकं क्षेत्रं स्थानं भुज इति यावत् । पदैश्चतुर्भिश्चिह्नज्ञातैस्तत्र पदे भव

उत्पन्नः । यथोक्तरीत्या कर्कादौ भोज्झ्य चक्रार्धेत्याद्युक्त्या सूर्यः स्यात् । अत्रोपपत्तिः । कर्णाग्रे कर्णाग्रा लभ्यते त्रिज्याग्रे केत्यग्रा । त्रिज्याकर्णे लम्बज्याकोटिस्तदाग्राकर्णे काकोटिरित्यनुपातेन त्रिज्ययोस्तुल्ययोर्गुणहरयोर्नाशादिष्टकर्णाग्रागुणितलम्बज्याकर्णभक्ता क्रान्तिज्या । अस्यासूर्यानयनं प्रागेवोक्तमिति पुनरुक्तत्वात्सुगमतरम् ॥ ३९ ॥

भा० टी०-इष्टाग्रसे लम्बज्याको गुण करके अपने कर्णांगुलसे भाग करनेपर रविक्रान्तिज्या होगी । तिसको त्रिज्यासे गुणकरके परमापक्रमज्यासे भाग करनेपर लब्धज्यासंख्याके धनु निर्णय करनेसे (यह जाना हुआ रहनेसे कि चक्रके कोन पदमें है) रविका (सायन) स्फुट होता है ॥ ३९ ॥

अथ भाभ्रमणमाह-

इष्टेऽह्नि मध्ये प्राक्पश्चाद्धृते बाहुत्रयान्तरे ॥
मत्स्यद्वयान्तरयुतोस्त्रिस्पृक्सूत्रेण भाभ्रमः ॥ ४० ॥

अभिमते दिवसे पूर्वविभागे पश्चिमविभागे बाहुत्रयान्तरे पूर्वापरसूत्राभुजत्रयान्तरे स्थाने धृते । अयमर्थः । पूर्वापरसूत्रस्य मध्यस्थानाद्भुजांगुलान्तरेण चिह्नतृतीयं पश्चिमविभागे पूर्वापरसूत्रादितरकालान्तरीयभुजांगुलान्तरेण चिह्नम् । एवमेकस्मिन् दिवसे कालत्रये स्वभुजान्तरेण पूर्वापरसूत्राच्चिह्नत्रये कृते सतीति । मत्स्यद्वयान्तरयुतेरव्यवहितचिह्नाभ्यां प्रत्येकं मत्स्यमुत्पाद्येति मत्स्यद्वयस्य प्रत्येकमुखपुच्छगतरूपमध्यसूत्रयोः स्वमार्गानुसारेण प्रसारितयोर्योगो यस्मिन् स्थाने तस्मादित्यर्थः । त्रिस्पृक्सूत्रे । चिह्नत्रयलग्नतुल्यसूत्रमितितेन व्यासार्धेन भाभ्रमच्छायामार्गमण्डलं भवति । प्रथमान्तिमकालान्तर्गतकालिकच्छायाग्रं तद्वृत्तपरिधौ भवतीत्यर्थः । अत्रोपपत्तिः। प्राच्यपरसूत्राद्भुजान्तरे छायाग्रामिति छायाग्रत्रयं ज्ञात्वा तत्स्पृष्टपरिधिवृत्तस्य मध्यज्ञानार्थमव्यवहितचिह्नद्वयमत्स्याभ्यामव्यवहितचिह्नमध्यस्य दक्षिणोत्तरसूत्रे भवतः । तत्र वृत्तपरिधिप्रवेशोऽयः केन्द्रस्य तुल्यान्तरत्वेनाव्यवहितचिह्नमध्यस्थानस्यावश्यं परिधिसक्तत्वात्तत्सूत्रमपि केन्द्रे लग्नं भवति । एवं प्रत्येकाव्यवहितचिह्नमध्यसूत्रयोर्योगस्तद्वृत्तकेन्द्रं सिद्धम् । मध्यरेखाज्ञानार्थं मत्स्यद्वयं तत्केन्द्राद्वृत्तं भागत्रयस्पृग्भवतीति किंचित्रम् । यद्यपि छायाग्रस्य

सूर्यचलनानुरोधेन चलनात्तस्य तु वृत्ताकारासम्भवात्प्रतिक्षणद्युरात्रवृत्तभेदात्। अन्यथा क्रान्तिभेदानुपपत्तेरित्येकवृत्तपरिधौ छायाग्रभ्रमणं न सम्भवति। अतएव भास्कराचार्यैः 'भाचितयाग्राभ्रमणं न सत्' इत्युक्तम् । तथापि साधितभाग्राणामवश्यमेकवृत्तस्थत्वसम्भवात्तदन्तर्वर्त्तिनां छायाग्राणां तत्परिधिस्थत्वं स्वल्पान्तरत्वादङ्गीकृत्य भगवता कृपालुना छायाग्रदर्शनंवि-नापि छायाग्रस्थानज्ञानमन्यकालिकच्छायाग्रस्थानयोर्दर्शनेनाभीष्टसमये मेघादिनाच्छादिते रवौ राश्यादिसूर्यज्ञानोपजीव्याग्राभुजादिज्ञानार्थमुक्तम् । बहुकालान्तरितनाग्रहणे स्थूलम् । अल्पान्तरिते किञ्चित् सूक्ष्ममिति ध्येयम् ॥ ४० ॥

भा० टी०-इष्ट दिनके मध्यमें और पूर्वमें व परमें तीन चिह्न करके मत्स्यद्वयगत रेखाके संयोगस्थानसे तीन चिह्नोंको स्पर्श करके वृत्तकल्पना करनेसे छायाशेष भ्रमणमार्ग निर्णीत होताहै ॥ (वास्तविक सूक्ष्मविचार करके छायाग्र दूसरे मार्गमें भ्रमण करता है) ॥ ४० ॥

अथ कालज्ञानमुक्त्वा तदुपजीवकफलादेशाद्युपयुक्तलग्नज्ञानं विवक्षुस्त-दुपयुक्तस्वोदयज्ञानार्थं मेषादित्रयाणां लंकोदयासुसाधनपूर्वकतन्निबंधनं श्लोकाभ्यामाह-

त्रिभद्युकर्णार्धगुणाः स्वाहोरात्रार्धभाजिताः ॥
क्रमादेकद्वित्रिभज्यास्तच्चापानि पृथक् पृथक् ॥ ४१ ॥
स्वाधोधः परिशोध्याथ मेषाल्लङ्कोदयासवः ॥
खागाष्टयोऽर्द्धगोऽगैकाः शरत्र्यंकहिमांशवः ॥ ४२ ॥

एकद्वित्रिभज्याः एकराशिज्या द्विराशिज्या त्रिराशिज्यास्त्रिराशिद्यु-ज्यया गुण्याः क्रमात्स्वक्रान्तिज्यासम्बन्धिद्युज्याभिर्भाज्याः । फलानां धनूंषि भिन्नभिन्नस्थाने स्थाप्यानि । स्थानद्वये स्थाप्यानीत्यर्थः । अनन्तरं स्वाधोऽधः स्वादधोऽध एकराशिज्यासम्बन्धिफलं यथास्थितं ततः प्रथमफलं द्वितीयफलाद्द्वितीयफलं तृतीयफलान्न्यूनीकृत्य पृथगनुक्तौ प्रथमफलं द्विती-यफलान्न्यूनं कृतं शद्वयोः फलयोर्मार्जनात् तृतीये शोध्यासम्भवः । प्रथमस्य

ज्ञानासम्भवश्चेति प्रथमद्वितीययोः पृथक् स्थापनमावश्यकम् । अतएव न त्रिधा पृथगित्युक्तम् । मेषात् मेषमारभ्य राशित्रयाणां लंकोदयासवो भवन्ति । प्रथमफलं मेषस्योदयासवः द्वितीयोनतृतीयफलं मिथुनस्योदयासव इत्यर्थः । नियतत्वात्तन्मानमाह—खागाष्टय इति । मेषमानं सप्ततियुतं षोडशशतं वृषमानं पञ्चोनमष्टादशशतम् । मिथुनमानं पञ्चत्रिंशदधिकमेकोनविंशतिशतमित्यर्थः । अत्रोपपत्तिः । सिद्धान्तशिरोमणौ "मेषादिजीवाः श्रुतयोऽवमृत्ते तद्भूमिजे क्रान्तिगुणा भुजाः स्युः । तत्कोटयः स्वद्युनिशाख्यवृत्ते व्यासार्द्धवृत्ते परिणामितानाम् ॥ चापेषु तासामसवस्ततो ये तेऽधोविशुद्धा उदया निरक्षे ॥" इति । तत्स्वरूपोक्त्यातिज्याकर्णे त्रिराशिद्युज्याकोटिस्तदैकद्वित्रिराशिज्याकर्णेषु का इत्यनुपातेन कोटयो द्युज्याप्रमाणेनाहोरात्रवृत्ते तदासुकरणार्थं त्रिज्याप्रमाणेन साध्या इति द्युज्याप्रमाणेनैतास्तदा त्रिज्याप्रमाणेन का इत्यनुपातेन त्रिज्ययोर्गुणहरयोस्तुल्यत्वेन नाशादेकादिराशिज्यास्त्रिराशिद्युज्यया गुण्याः स्वद्युज्यया भक्ता इत्युपपन्नाः । आसां धनेष्वेकादिराशीनामुदयासवस्तत्र प्रत्येकराश्युदयासुज्ञानार्थं स्वाधोऽधः शोधनमित्युपपन्नं त्रिभद्युकर्णार्धगुणा इत्यादिलंकोदयासव इत्यन्तम् । अत्र लङ्कापदं निरक्षदेशपरं व्याख्येयम् । सर्वनिरक्षदेशे क्षेत्रसंस्थानस्योक्तस्य तुल्यत्वेनोक्तरीत्यान्यनिरक्षदेशे तत्सिद्धौ बाधकाभावात् । अन्यथा स्वनिरक्षदेशे तत्साधनार्थं ग्रहवद्देशान्तरसंस्कारकरणापत्तेः । निजोदयकरणार्थं स्वनिरक्षदेशीयानां चरसंस्कारस्य समनन्तरमेवोक्तत्वादिति दिक् । खागाष्टय इत्यादावुक्तप्रकारगणितकर्मैवोपपत्तिः ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

भा० टी०—एक, दो और तीन राशिकी ज्याको क्रमशः त्रिराशिद्युज्या (१३८७) से गुण करके निज २ राशिकी अहोरात्रार्द्धज्यासे भाग करके धनुनिर्णयकरे । पहलेका, द्विराशिके प्रथमका वियोग और त्रिराशिके फलसे द्विराशिफल हीन करनेपर कलामेषादिका लंकोदय प्राण होगा । प्राणसंख्या मेष १६७०, वृष १७९५, मिथुन १९३५ है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथैभ्यः स्वदेशोदयासून् श्लोकार्धेनाह—

स्वदेश :खण्डोना भवन्तीष्टोदयासवः ॥ ४३ ॥

एते सिद्धाः। स्वकीयैर्देशसम्बन्धेन यान्युत्पन्नानि चरखण्डानि चरानयनप्रकारेणैकादिराशीनां चराण्यानीयोक्तरीत्या स्वाधोऽधः शोधितानि मेषादिमिथुनान्तानां राशीनां चरखण्डानि भवंति। तैरूनाः सन्त इष्टोदयासवश्चरखण्डसम्बन्धिदेशे मेषादित्रयाणामुदयासवो भवन्तीत्यर्थः। अत्रोपपत्तिः। "मेषादेर्मिथुनान्तो नाडीभिस्तिथिमिताभिरुद्वृत्ते। लगति कुजे तदधःस्थे प्रथमं ताभिश्चरोनाभिः॥" इति भास्करोक्त्या प्रत्येकोदयासुज्ञानं प्रत्येकचरणेति। प्रत्येकचरं तु चरखण्डमित्युपपन्नम् ॥ ४३ ॥

भा० टी०-इससे स्वदेशचरखंडावियोग करनेपर इष्टदेशका उदयप्राण होगा। पीछेसे क्रमानुसार लंकोदयप्राणके साथ पश्चातसे चरखंडयोग करनेपर कर्कादिका उदयप्राण होगा ॥ ४३ ॥

अथावशिष्टराशीनामुदयानाह-

व्यस्ताव्यस्तैर्युताः स्वैः स्वैः कर्कटाद्यास्ततस्त्रयः[1] ॥
उत्क्रमेण षडेवैते भवन्तीष्टास्तुलादयः[2] ॥ ४४ ॥

ततोऽनन्तरमेते मेषादिलङ्कोदयासवो व्यस्ता मिथुनवृषमेषक्रमेण स्थापिताः स्वैः स्वैर्मेषादिचरखण्डैस्त्रिभिर्व्यस्तैरुदयक्रमेण स्थापितैर्युताः कर्कादयास्त्रयः कन्यान्ताः क्रमेण ज्ञातोदयासु माना भवन्ति। एवं षण्णामुक्त्वावशिष्टानामुदयासुज्ञानमाह उत्क्रमेणेति। एत उक्तमेषादयः कन्यान्ताः षड्सङ्ख्याका उत्क्रमेण कन्यासिंहकर्काद्युत्क्रमेण। एवकारो मेषवृषादिक्रमनिरासार्थकः। तुलादयः षड्राशय इष्टाज्ञातस्वदेशोदयासुमाना भवन्ति। तथाच कन्योदयस्तुलायाः। सिंहोदयो वृश्चिकस्य। कर्कोदयो धनुषः। मिथुनोदयो मकरस्य। वृषोदयः कुम्भस्य। मेषोदयो मीनस्येति सिद्धम्। अत्रोपपत्तिः। "कन्यान्ताद्धनुषोऽन्तस्तिथिमितनाडीभिरुद्वलये। लगति कुजे चोर्ध्वस्थे पश्चात्ताभिश्चराढ्याभिः॥ तद्रहितैः खहुताशैः कन्यान्तो वा झषान्तो वा। चरखण्डैरूनाढ्यास्तेन निरक्षोदयाः स्वदेशे स्युः॥" इति भास्करोक्त्या सुगमा ॥ ४४ ॥

---

१ कर्कटाद्याः पुनस्त्रय इति पाठान्तरम्। २ भवन्तीष्टोदयास्त्व इति वा पाठः।

भा० टी०-मेषादि ६ राशिका उदयप्राण, पीछेसे तुलादिका उदयप्राण होगा॥४४॥

अथाभीष्टकाले ऋणधनलग्नसाधनार्थं गतभोग्यासूनाह-

गतभोग्यासवः कार्या भास्करादिष्टकालिकात् ॥
स्वोदयासुहता भुक्तभोग्या भक्ताः खवह्निभिः ॥ ४५ ॥

इष्टकाले चालनेन सञ्जातात्सूर्याद्गतभोग्यासवः । गतासवो भोग्यासवश्च साध्याः । कथं साध्या इत्यत आह-स्वोदयासुहता इति । भुक्तभोग्याः सूर्याक्रान्तराशेर्ये भुक्तभागाः । सूर्यस्य भागाद्यवयवात्मका एते त्रिंशतः शुद्धा भोग्यभागाः । सूर्याक्रान्तराशेः स्वदेशोदयासुभिर्गुणितास्त्रिंशता भक्ता गतासवो भोग्यासवः क्रमेण भवन्ति । अत्रोपपत्तिः । यस्मिन् काले लग्नं साध्यं तस्मिन्काले सूर्यः साध्योऽन्यथा तात्कालिकलग्नसिद्धिर्न स्यात् । अथैतदर्थं सूर्याक्रान्तराशेर्भुक्तासवो भोग्यासवश्च साध्याः सूर्योदयात्तत्काल-पर्यन्तं पूर्वाग्रिमकालयोस्तद्राशेर्लग्नत्वात् । अनन्तरं च राश्युदयासुगणनया लग्नज्ञानस्य सुशकत्वाच्च । अतस्त्रिंशद्भागैरुदयासवस्तदा भुक्तभोग्यभागैः कइति भुक्तभोग्यकालासवः अत्रोदयकालासूनां सम्पातावधि राशिग्रहणेनो-त्पन्नत्वात्सूर्योऽयनांशसंस्कृतो ग्राह्यः । अन्यथा सूर्याक्रान्तराशेरुक्तोदयसम्ब-न्धाभावादसंगततापत्तेः । अत एव "युक्तायनांशादपमः प्रसाध्यः कालौ च खेटात् फलु भुक्तभोग्यौ" इति भास्कराचार्योक्तिं संगच्छते । ननूक्तरीत्यौ-दयिकार्कादेव भुक्तभोग्यासवः साध्याः सूर्योदयात्तत्कालावधि तद्राशेर्लग्न-त्वात् । नहीष्टकाले तद्राशिर्लग्नं येन तद्गतभोग्यासवः साधवः । नापि तात्का-लिकार्कात्सूर्योदयावधिकास्ते तात्कालिकार्कस्य सूर्योदयकालिकत्वाभावात् । तत्कथं भगवता सर्वज्ञेन भास्करादिष्टकालिकादित्युक्तमिति चेत् । उच्यते । उदयानां नाक्षत्रत्वान्नक्षत्रघट्यो ग्राह्यास्तास्त्वसिद्धाः । सर्व्वत्र साधितघटीनां सावनत्वात् । तासां नाक्षत्रीकरणमावश्यकमन्यथा तद्गणनानुपपत्तेः । तदर्थं ग्रहोदयप्राणहता इत्याद्युक्त्या षष्टिसावनघटीषु गतिकलोत्पन्नासवोऽधिकाः नाक्षत्रत्वार्थं तदिष्टसावनघटीषु कियदधिकमित्यनुपातेनागतफलयुक्ताः सावनाः कार्याः तत्रागतफलस्य क्षेत्रावयवोदयासुभिरष्टादशशतकलास्तदागतासुभिः

का इत्यनुपातसिद्धाटादशशतोदयास्वोर्गुणहरयोस्तुल्यत्वेन नाशादवशिष्टचालनस्वरूपः सूर्ये योजितः। सावनास्त्वविकृता एव स्थिताः। तथा चेष्टकालिकोऽर्को यत्काले लग्नं तत्कालात्पूर्वगृहीतसावनघट्यो नाक्षत्रा एव भवन्तीति भगवता सम्यगुक्तम्। भास्करादिष्टकालिकादिति। अनेनैवाभिप्रायेण भास्कराचार्य्यैरप्युक्तम् "लग्नार्थमिष्टघटिका यदि सावनास्तास्तात्कालिकार्क्किकरणेन भवेयुरार्क्ष्यः। आर्क्ष्योदया हि सदृशीत्य इहापनेयास्तात्कालिकत्वमथ न क्रियते यदार्क्ष्यः॥" इति ॥ ४५ ॥

भा० टी०—उदयमान करके तिसकालके (सायन) रविस्पष्टके गत और भोग्य अंशादि पूरण करके ३० भोग्य करनेपर गत और भोग्य आसव होगा ॥ ४५ ॥

अथाभीष्टघटिकाभ्य ऋणधनलग्नसाधनं श्लोकाभ्यामाह—

अभीष्टघटिकासुभ्यो भोग्यासून् प्रविशोधयेत् ॥
तद्वत्तदेष्यलग्नासूनेवं यातांस्तथोत्क्रमात् ॥ ४६ ॥
शेषं चेत्त्रिंशताभ्यस्तमशुद्धेन विभाजितम् ॥
भागहीनं च युक्तं च तल्लग्नं क्षितिजे तदा ॥ ४७ ॥

अभीष्टकाले याः सूर्योदयघटिकास्तासामसुभ्यो भोग्यासून् शोधयेत्। तदनन्तरं तदेष्यलग्नासून्। सूर्याक्रान्तराशेरग्रिमराशय एष्यलग्नानि। तेषामुदयासूनपि तद्वत्क्रमेण शोधयेत्। एवमुक्तरीत्या शेषघटिकासुभ्यो यातान्भुक्तासून्भुक्तराश्युदयासूंश्च व्यस्तक्रमात्तथा शोधयेत्। यो राश्युदयो न शुद्ध्यति सोऽशुद्धस्ते त्रिंशता गुणितं शेषं भक्तम्। चेदित्यनेन शेषाभावे क्रिया न कार्या शून्यफलसिद्धेरिति सूचितम्। फलेन भागादिना भुक्तसम्बन्धेन हीनं चकारादशुद्धराशिसङ्ख्यामानं भोग्यसम्बद्धभागादिफलेन युक्तं चकारादन्तिमशुद्धराशिसङ्ख्यामानं तदा गतराश्यादिमानसम्बन्धिसम्पातावधिकक्रांतिवृत्तैकप्रदेशरूपं तदाभीष्टकाले क्षितिजेक्षितिजवृत्तपूर्वविभागे लग्नं सम सूत्रसम्बन्धेन लग्नस्वरूपोक्त्याभीष्टकाले तल्लग्नं स्यादित्यर्थः। फलादेशार्थं ग्रहाणां रेवतीयोगतारासन्नावधितो ग्रहाद् तत्पंक्तिस्थलग्नस्यापि फलादेशार्थं तत एव समुचितं ग्रहणमित्यागतलग्नसम्पातावधिकमयनांशैर्व्यस्तं

संस्कुर्यादिति स्वतः सिद्धमिति नोक्तम् । नच पूर्वमेव सूर्यस्यायनांशसंस्कारानुक्त्या लग्नमपि यथास्थितमित्ययनांशव्यस्तसंस्कारोऽनुक्तः संगत इति वाच्यम् । स्थूलत्वाल्लग्नार्थे सूर्येऽयनांशसंस्कारस्तस्य तत्संस्कृताद्ग्रहात् क्रान्तिच्छायाचरजलादिकमित्यत्रादिपदसंगृहीतत्वाच्च । अथ भगवतायनांशव्यस्तसंस्कारः कण्ठेन नोक्त इति लग्नं सम्पातावधिकमेव फलादेशार्थे गृहीतम् । सूर्यस्य तु लग्नार्थमयनांशसंस्कारस्यावश्यकत्वात् । उदयानां सम्पातावधिकत्वादिति चेन्मैवम् । "भाग हीनंच युक्तं च तल्लग्नं क्षितिजे तदा" इत्यर्धस्यावृत्त्याग्रिमश्लोकादिस्थप्राक्पश्चादित्यस्यावृत्त्या च प्राक्पश्चाच्चक्रचलने भागैरयनांशैः क्रमेण हीनं युक्तं लग्नं स्यादित्यर्थे च भगवतः कण्ठोक्तेः सिद्धत्वाच्च । अत्रोपपत्तिः । अभीष्टघटिकासुभ्यो भोग्यगतासुशोधने सूर्याक्रान्तराशिर्लग्नं नेति ज्ञातम् । ततोऽग्रिमपश्चाद्राश्युदयशोधने शुद्धो राशिर्लग्नं नेति ज्ञातम् । ततो यो राश्युदयो न शुध्यति स एव राशिरभीष्टकाले क्षितिजे लग्न इति । तस्य को भागो लग्न इति ज्ञानार्थमशुद्धराश्युदयासुभिस्त्रिंशद्भागास्तदा शेषासुभिः क इत्यनुपातेन भुक्तभोग्यक्रमेण लग्नराशेर्भोग्यभुक्तभागादिकं सिद्धम् । तत्र भोग्यभागास्त्रिंशतःशुद्धा गता भागा लग्नराशेर्भवन्तीत्यशुद्धा राशिसंख्यातो भोग्यभागा शुद्धा लग्नं भवति । भुक्तभागाश्च भुक्तराशिसंख्यायां युक्ता लग्नं भवति । अयनांशव्यस्तसंस्कारो ग्रहपंक्तिस्थत्वार्थम् । अन्यथा कलादेशार्थे ग्रहा अयनांशसंस्कृता ग्राह्या इति सर्वं निरवद्यम् ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

भा० टी०-स्वाभीष्ट घटिकाके प्राणसे भोग्य वियोग करे । फिर क्रमानुसार पीछे २ की राशिके प्राण जबतक वियोग होसके, करे शेषको ३० तीससे गुणा करके, शोध्यराशिकी प्राणसंख्यासे भाग करनेपर जो अंशादि होंगे, सो गतराशिकी संख्यासे मिलानेपर (सायन) लग्न स्पष्ट होगी ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

अथ प्रसङ्गान्मध्यलग्नानयनं लग्नानयनविशेषसूचनार्थमाह—

प्राक्पश्चान्नतनाडीभिस्तस्माल्लंकोदयासुभिः ॥
भानौ क्षयधने कृत्वा मध्यलग्नं तदा भवेत् ॥ ४८ ॥

दिनार्धन्तर्गतदिनगतशेषहीनं दिनार्धं क्रमेण प्राक्पश्चिमं नतं राव्यर्धान्तर्गतरात्रिषगतयुतं दिनार्धं प्राक्पश्चिमनतं जातकपद्धतौ प्रसिद्धम् । नतघटिकाभिस्तस्मात्तात्कालिकसूर्यात् । निरक्षदेशराश्युदयासुभिः पूर्वोक्तप्रकारेण सिद्धराशिभागादिकं प्राक्पश्चिमनतक्रमेण सूर्य क्षयधने हीनयुते कृत्वा तदाभीष्टकाले मध्यलग्नं दशमलग्नं स्यात् । अयमभिप्रायः । प्रनते नतघट्यसुभ्य· सूर्याक्रान्तराशेर्निरक्षोदयासुभिर्भुक्तासून्विशोध्य तत्पूर्वराशीनां निरक्षोदयासूंश्च विशोध्य शेषं त्रिंशद्गुणमशुद्धनिरक्षोदयभक्तं फलेन भागादिना शोधितग्रहसंख्यातुल्यराशिभिश्च सूर्यो हीनो मध्यलग्नम् । एवं पश्चिमनतेन नतघट्यसुभ्यः सूर्याक्रान्तराशेर्निरक्षोदयासुभिर्भोग्यासून् विशोध्य तदग्रिम राशीनां निरक्षोदयासूंश्च विशोध्य शेषं त्रिंशद्गुणमशुद्धनिरक्षोदयभक्तं फलेन भागादिनाशोधितग्रहसंख्यातुल्यराशिभिश्च सूर्यो युतो मध्यलग्नम् । एवं भुक्तभोग्यासुभ्योऽल्पकालेऽपीष्टासवास्त्रिंशद्गुणिताः सूर्याक्रान्तराश्यभक्ताः फलेन भागादिना हीनयुतोऽर्को मध्यलग्नं स्यात् । अनेन प्रकारेण लग्नमपि साध्यम् । अत्रोपपत्तिः । ऊर्ध्वयाम्योत्तरवृत्ते यः क्रान्तिवृत्तप्रदेशो लग्नस्तन्मध्यलग्नम् । तत्साधनार्थमभीष्टकाल याम्योत्तरवृत्ताद् द्युरात्रवृत्ते सूर्यो यावता घटीविभागादिना नतः स नतकालः । प्राक्पश्चिमकपालयोः-प्राक्पश्चिमसंज्ञः । अर्धरात्रिमारभ्य दिनार्धपर्यंतं प्राक्कपालम् । दिनार्धमारभ्याऽर्धरात्रपर्यंतं पश्चिमकपालम् । तत्र प्राङ्नते सूर्यस्य याम्योत्तरवृत्तात्पूर्वस्थत्वेन सूर्यात्पूर्वराशिभाग एव याम्योत्तरवृत्तलग्न इति सूर्यादूनमृणलग्नरीत्या नतघटीभिः साध्यम् । पश्चिमनते तु सूर्यस्य याम्योत्तरवृत्तात्पश्चिमस्थत्वेन सूर्याग्रिमराशेर्मध्यलग्नत्वात्सूर्यादधिकक्रमलग्नरीत्या नतघटीभिः साध्यम् तत्रोद्वृत्ताद्याम्योत्तरवृत्तस्य पञ्चदशघट्यन्तरेण नियतं सत्त्वान्निरक्षोदयासुभिः साध्यमिति । शेषक्रियोपपत्तिस्त्वतिस्पष्टतरेति संक्षेपः ॥ ४८ ॥

भा० टी–इस प्रकार प्राक् पश्चान्नतनाडीसे और लंकोदयप्राणखण्ड लेकर रवि-स्फुटमें ऋण धन करनेसे मध्य वा दशम लग्न होगी ॥ ४८ ॥

अथ कालसाधनमाह-

भोग्यासूनूनकस्याथ भुक्तासूनधिकस्य च ॥
संपिंड्यान्तरलग्नासूनेवं स्यात्कालसाधनम् ॥ ४९ ॥

अथानन्तरं लग्नार्कयोर्मध्ये योऽत्यन्तमूनस्तस्य भोग्यासूनधिकयस्य भुक्तासून् सम्पिण्ड्यैकीकृत्यांतरलग्नासून् सूर्यलग्नमध्ये ये लग्नराशयस्तेषामुदयासून् । चःसमुच्चये । एकीकृत्यैवमुक्तप्रकारेण कालस्य सिद्धिर्भवति । अत्रोपपत्तिः । ऊनादधिकमग्र एव भवतीत्यूनतुल्यलग्नस्य भोग्यकालोऽन्तरस्थराश्युदययुतोऽधिकतुल्यलग्नस्य भुक्तकालेन युतस्तल्लग्नयोरन्तरवर्ती कालः सिद्धः स्यात् ॥ ४९ ॥

भा० टी०-लग्न और रवि स्पष्टके मध्यमें न्यूनकी भोग और दूसरेको भुक्त और इन दोनोंके मध्यमें स्थित राशियोंकी प्राणसंख्या इकट्ठी करनेसे जो प्राणसंख्या होगी तिससे काल सिद्ध होगा ॥ ४९ ॥

अथैवं लग्नार्काभ्यां साधितकालस्य दिनरात्र्यन्तर्गतत्वज्ञानमाह-

सूर्यादूने निशाशेषे लग्नेऽर्कादधिके दिवा ॥
भचक्रार्धयुताद्भानोरधिकेऽस्तमयात्परम् ॥ ५० ॥

सूर्यात्त्रिराश्यन्तर्गतत्वेन न्यूने लग्ने सति पूर्वप्रकारसिद्धः कालो रात्रिशेषे भवति । सूर्यात् षड्भान्तर्गतत्वेनाधिके लग्ने पूर्वप्रकारसिद्धः कालो दिने स्यात् । षड्भायुतात्सूर्यादधिके लग्ने लग्नसषड्भसूर्याभ्यामानीतः पूर्वरीत्या कालोऽस्तमयात्सूर्यास्तकालात्परमनन्तरं रात्रावित्यर्थः । एतेन रात्रीष्टकाले गते सषड्भसूर्याल्लग्नं साध्यमिति सूचितम् । अत्रोपपत्तिः । सूर्योदये सूर्यतुल्यलग्नत्वात्सूर्यादूनाधिके लग्ने क्रमेण रात्रिशेषे दिने च कालः स्यात् । एवमस्तकाले सषड्भसूर्यस्य लग्नत्वात् तदधिके लग्ने रात्रावेव कालः सिद्ध्येदित्यादि सुगमतरम् ॥ ५० ॥

भा०टी०-लग्नस्पष्ट, सूर्यस्फुटसे कम होनेपर रात्रिशेष और अधिकहोनेपर दिनमें और ६ राशियुक्त सूर्यसे लग्न अधिक होनेपर सन्ध्याका पर होगा ॥ ५० ॥

अथाग्रिमग्रन्थस्यासङ्गतित्वनिरासार्थमधिकारसमाप्तिं फक्किकयाह-दिग्देशकालानां प्रतिपादनमिदं परिपूर्तिमानमित्यर्थः । दिशां साधनं शिलातल

इत्यादिनियतं तत्सम्बन्धेन समकोणयाम्योत्तरशंकूनां साधनान्यपि दिगन्तर्गतान्यनियतानि । पलभालम्बाक्षादिसाधनं देशनिरूपणं नियतम् । अग्राचरादिसाधनमनियतम् । कालसाधनं तद्वशाच्छायादिसाधनं च कालनिरूपणामिति विवेकः ॥ रङ्गनाथेन रचिते सूर्यसिद्धान्तटिप्पणे ॥ त्रिप्रश्नस्याधिकारोऽयं पूर्णो गूढप्रकाशके ॥ इति श्रीसकलगणकसार्वभौमवल्लालदैवज्ञात्मजरङ्गनाथगणकविरचिते गूढार्थप्रकाशे त्रिप्रश्नाधिकारः पूर्णः ॥

इति त्रिप्रश्नाधिकारः ॥ तीसरा अध्याय समाप्त ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ चन्द्रग्रहणाधिकारो व्याख्यायते । तत्र प्रथमं सूर्यचंद्रयोर्बिंबयोजनानि तत्स्फुटीकरणं च सार्धश्लोकेनाह–

सार्धानि षट्सहस्राणि योजनानि विवस्वतः ॥
विष्कंभो मण्डलस्येन्दोः सहाशीत्या चतुःशतम् ॥
स्फुटस्वभुक्त्या गुणितौ मध्यभुक्त्त्योद्धृतौ स्फुटौ ॥ १ ॥

षट्सहस्राणि सार्धानि सहस्रस्यार्धं पञ्चशतं तत्सहवर्तमानानि पञ्चषष्टिशतं योजनानि सूर्यस्य मण्डलस्य गोलरूपबिंबस्य विष्कंभो व्यासः । चन्द्रस्य गोलाकारबिम्बस्याशीत्या सहाशीत्यधिकं चतुः शतं योजनानि । तौ व्यासौ स्पष्टया निजगत्या गुणितौ निजमध्यगत्या भक्तौ स्फुटौ स्तः । अत्र गणिते व्यासस्यैव बिम्बव्यवहारोऽभियुक्तानाम् । अत्रोपपत्तिः । त्रिज्यामितकर्णे मध्यमकक्षायां भ्रमणात्तत्र यद्बिम्बं व्यासात्मकं तन्मध्यमम् । तत्र स्वल्पान्तरेण मध्यगत्यङ्गीकारान्मध्यगत्येदं तदा स्फुटगत्या किमिति स्पष्टं बिम्बं नीचे पृथूच्चेऽणुतरम् । गत्योः परमाधिकन्यूनत्वात् ॥ १ ॥

भा०टी०–सूर्यमण्डलका परिमाण ६५०० योजन और चद्रमाका परिमाण ४८० योजन है । निज २ की तात्कालिक गतिसे गुणकरके मध्यगतिसे भाग करनेपर स्फुट व्यास होगा ॥ १ ॥

---

१ चतुःशती इति पाठान्तरम् ।

ग्रहणमनुचितम् । तथाप्यल्पान्तरांगीकारेण तददोषः । इन्दुव्यासार्कव्यासयाभूगोलाध्यायोक्तकक्षा भूकर्णगुणिता महीमण्डलभाजिता तत्कर्ण इति । तत्कक्षव्यासार्थत्वे तु सुतराम् । तत्रापि स्पष्टार्कबिम्बयोजनग्रहणे मध्यार्कयोजनबिम्बं सूर्यस्पष्टगतिगुणित सूर्यमध्यगतिभक्तामिति सिद्धम । नचोक्तरीत्या सूर्यस्पष्टमध्यगती गुणहरौ भूव्यासमध्यार्कबिम्बयोजनान्तरस्योत्पन्नौन केवलं बिम्बस्येति भूव्यासस्तादृशो महीव्यास इत्यनेन कथं सिद्ध इति वाच्यम् । भगवता स्वल्पान्तरेण महीव्यासस्य यथास्थितस्यैवांगीकारात् । महीव्यासस्फुटार्कश्रवणान्तरमित्युक्त्या मध्यस्थास्फुटपदस्योभयत्रान्वयेनार्कश्रवणसन्निधानेन च सूर्यबिम्बस्फुटरीत्यैव महीव्यासस्य स्फुटत्वसिद्धेश्च । अथैतत्खण्डसिद्धफलं भूव्यासाद्धीनं भूमायोजनानि । तत्र कलाकरणार्थं भूव्यासस्यापरखण्डस्य त्रिज्यागुणः स्पष्टचन्द्रगतिभक्तमध्यगतिगुतिचन्द्रमध्ययोजनकर्णरूपस्पष्टयोजनकर्णो हरः । तत्र त्रिज्यामध्ययोजनकर्णौ गुणहरौ गुणेनावर्त्य हरस्थाने पञ्चदश चन्द्रस्पष्टमध्यगती गुणहराविति सूच्युक्तोपपन्ना । भूमायाः सूच्यनुकारत्वात्प्रथमखण्डं द्वितीयखण्डे हीनं भूमायोजनात्मिका सा पञ्चदशभक्ता कलादिकेत्युक्तमुपपन्नम् । यदि तु भूव्यासहीनं रविबिम्बमित्यादौ मध्यबिम्बानुक्तेः प्रथममेव स्पष्टार्कबिम्बग्रहणं तदा महीव्यासस्य स्पष्टत्वाप्रसिद्ध्या महीव्यासस्फुटार्कश्रवणान्तरमित्येव यथाश्रुतं सम्यक् । परन्तु तदा भूव्यासोनार्कबिम्बस्य सूर्यमध्यस्पष्टगती हरगुणाववशिष्टौ वाच्यावपि भगवता स्वल्पान्तरत्वादनुक्तौ । न चानुपाते सूर्यचन्द्रयोर्मध्ययोजनकर्णाविव गृहीतौ न स्फुटाविति मध्यस्फुटगती हरगुणावनुत्पन्नौ नोक्ताविति वाच्यम् । चन्द्रस्पष्टयोजनकर्णस्वरूपग्रहणेनोत्पन्नसूच्या अनुक्तत्वापत्तेः । नच चन्द्रकर्णस्य मध्यत्वेन गृहीते बह्वन्तरपतः स्पष्टत्वेन तस्य ग्रहे सूच्युपपन्ना सूर्यकर्णस्य मध्यत्वेन गृहीतेत्यल्पान्तरमिति वाच्यम् । मध्यार्कबिम्बयोजनग्रहणेन स्फुटार्कश्रवणानुपपत्तेः । नचोभयत्रागृहीते प्रत्येकमल्पान्तरमपि बह्वन्तरमत एकत्र सूर्यगतिग्रहणमुचितमिति वाच्यम् । विनिगमनाविरहात् । पूर्वं सूर्यबिम्बस्यैव सूर्यस्पष्टमध्यगती गुण-

हरौ न महीव्यासस्य भ्रान्त्ये तूभयोरिति-स्थूलसूक्ष्मविनिगमकेतुभ्रान्त्ये सूर्य-गतिग्रहणस्यौचित्याच्च । अथ महीव्यासस्य प्रथमखण्डस्य चन्द्रगतिग्रहणेन सूच्युक्ताविव द्वितीयखण्डस्य भूव्यासोनस्फुटरविबिम्बस्यार्थात्सूर्यगतिग्रहणं सूचितमिति न क्षतिरिति चेन्न । व्याख्याप्रसंगे सूर्यगतिग्रहणे मानाभावा-दुपपत्तेरप्रसंगाच्च । अन्यथात्रापि चन्द्रगतिग्रहणापत्तेरिति । एतेन चन्द्र-मध्यगत्या भूव्यासस्तदा चन्द्रस्पष्टगत्या क इति भूव्यासरूपं खण्डं स्पष्टं सूचीसंज्ञं सूर्यबिम्बप्रमाणेनापरं भूव्यासोनस्फुटरविबिम्बखण्डं तदा चन्द्र-बिम्बप्रमाणेन किमिति स्पष्टं द्वितीयं खण्डं तयोः स्पष्टयोरन्तरं स्पष्टा भूमेति सर्वमुपपन्नमिति निरस्तम् । उक्तानुपाताभ्यां तयोः स्पष्टत्वसिद्धौ माना-भावात् । स्पष्टत्वस्याप्रसंगाच्च । चन्द्रसूर्ययोर्मध्यबिम्बानुपपत्तेश्च । यत्तु भूव्यासस्य स्पष्टत्वं सूचीरूपमनुपपद्य मानं हृदिज्ञात्वा भूव्यास एव प्रथम-खण्डं भूव्यासोनस्पष्टरविबिम्बस्य मध्यकर्णानुपाताभ्यामल्पान्तरेणाप्रवर्तना-न्मध्यबिम्बे गुणहरावुत्पाद्य द्वितीयखण्डमुभयोरंगुलीकरणं चन्द्रमध्यकर्णेन त्रिज्यामिताः कलास्तदाभ्यां का इत्यनुपाते प्रमाणफलयोः फलावर्त्तनेन प्रमाणस्थानापन्नपञ्चदशहरेणेति तयोरन्तरं भूभेत्युक्तं ज्ञानराजदैवज्ञैः सिद्धान्त सुंदरे । " इनावनी व्यासवियोगनिघ्नं शशाङ्कबिम्बं रविबिम्बभक्तम् । फलो-नभूव्याससमा कुभासौ शरेन्दुभक्ता कलिकादिका स्यात् ॥ " इतिग्रन्थेन । अत्र सूर्यव्यासः स्फुटार्कबिम्बयोजनात्मकोनमध्ययोजनात्मकः । चन्द्रार्क-बिम्बे गुणहरौ मध्ययोजनात्मकौ न स्फुटबिम्बयोजनात्मकौ तट्टीकाकृचि-न्तामण्यभिमतौ उपजीव्य सूर्यसिद्धान्तविरोधात् । तदुक्तं तदुपपत्त्यापि तदसिद्धेश्च । अत्र यदपि तट्टीकाकृचिंतामण्युक्तं मध्यमस्य भूभाबिम्बस्या-नयनं फलाविशेषेण मध्यकर्णाविव गुणहरौ प्रकल्प्योक्तविधिना सिद्धस्य मध्यबिम्बस्य यदि मध्यगत्यन्तरेणेदं स्फुटगत्यन्तरेण किमित्यनुपातेन स्फुटत्वं मूलकृदनुक्तमपि कार्यमिति तद्गत्यन्तरवशेन भूभाया अनुत्पत्त्या न समञ्जसम् । अन्यथा गतिवशेन साधितार्कचन्द्रबिम्बवद्गत्यन्तरकलाभ्यो विकविताभ्य एव भूभायाः साधनापत्तेरिति । तदसत् ।" स्फुटेन्दुभुक्तिर्भूव्या-

सगुणिता मध्ययोद्धृता " इति सूर्यसिद्धान्तोक्तयुक्तिसिद्धसूच्यनुक्त्या भूव्यासस्यैवाविकृतस्य ग्रहणादित्यलं परदोषगवेषणापल्लवितेन ॥ ४ ॥ ५ ॥

भा० टी०—चन्द्रस्पष्टगतिसे पृथ्वीव्यासको (१६००) गुण करके चन्द्रमाकी दैनिकभुक्तिसे भाग करनेपर सूची होगी । महाव्यास (१६००) और सूर्यस्फुटव्यासके अन्तरको चन्द्रमध्यव्यास (४८०) से गुणकरके मध्यार्कव्यास (६५००) से भाग करनेपर जो प्राप्त होवै, तिसको सूचीसे वियोग करनेपर तमव्यासयोजन होंगे । पहलेकी अनुसार इसको १५ से भाग करनेपर कलादि होगी ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ ग्रहणद्वयसंभूतिमाह—

भानोर्भार्धे महीच्छाया तत्तुल्येऽर्कसमेऽपि वा ॥
शशांकपाते ग्रहणं कियद्भागाधिकोनके ॥ ६ ॥

सूर्यात्सकाशात्षड्भान्तरे भूच्छाया सूर्यापरदिक्त्वात् । तत्तुल्ये सषड्भार्केरूपच्छायाक्षेत्रादिना समे चन्द्रपाते । अपिवाथवा सूर्यतुल्ये चन्द्रपाते सूर्यचन्द्रयोः प्रत्येकं ग्रहणम् । ननु समत्वाभावेऽपि ग्रहणमित्यत आह—कियद्भागेत्यादि । सषड्भार्कादर्काद्वा कतिपयैर्भागैरधिक ऊनेऽपि चन्द्रपाते ग्रहणम् । तथाच न क्षतिः । भागाश्चन्द्रग्रहणे द्वादशनिश्चयार्थम् । सूर्यग्रहणे तु नतांशषडंशसंस्कारात्समेत्यापाततः । अत्रोपपत्तिः । सषड्भार्केकवेलार्कान्यतरतुल्ये चन्द्रपाते शराभावश्चन्द्रस्य तत्तुल्यत्वात् । तदा चन्द्रो भूच्छायायां भवतीति ग्रहणम् । एवं शरसत्त्वेऽपि मानैक्यखण्डादल्पे भूच्छायायां मण्डलैकदेशस्य सत्त्वेन ग्रहणम् । एवं शराभावे मानैक्यखण्डान्न्यूनशरे च चन्द्रमण्डलं सूर्यमण्डलस्याच्छादकं भवति । परन्तु तत्र शरो नतिसंस्कृतोऽतः सम्यगुक्तमुपपन्नम् ॥ ६ ॥

भा० टी०—सूर्यसे ६ राशि दूरपर पृथिवीकी छाया स्थित है । चन्द्रपात छाया या सूर्यकी बराबर राशिमें स्थित हो ग्रहण होगा । थोडी कमताई अधिकाई मेंभी ग्रहण होगा ॥ ६ ॥

ननु तत्कुत्र भवतीत्यतस्तयोर्ग्रहणयोः कालमाह—

तुल्यौ राश्यादिभिः स्याताममावास्यान्तकालिकौ ॥
सूर्येन्दुपौर्णमास्यन्ते भार्धे भागादिकौ समौ ॥ ७ ॥

अमावास्यान्तकालोत्पन्नौ सूर्यचन्द्रौ राश्याद्यवयवैः समौ भवतः। पौर्णमास्यंते भागादिकौ तुल्यौ सूर्यचन्द्रौ षड्भान्तरे स्याताम्। तथाचामान्ते सूर्यचन्द्रयोरेकत्रोर्ध्वाधरान्तेरण सत्त्वात्सूर्यग्रहणम्। पौर्णमास्यन्ते चन्द्रभूभयोरेकत्रावस्थानाच्चन्द्रग्रहणम्। एतेन पूर्वश्लोके शशाङ्कपात इत्यत्र चन्द्रपातौ द्वौ न ग्राह्याविति सूचितम्। एतच्छ्लोकस्य वैयर्थ्यापत्तेः। अत्रोपपत्तिः। अमान्ते सूर्यचन्द्रयोःपूर्वापरान्तराभावेन योगात्तुल्यौ सूर्यचन्द्रौ पूर्णिमान्ते भचक्रार्धान्तरत्वात्षड्राश्यन्तरौ भागादिसमाविति ॥ ७ ॥

भा० टी०—अमावस्याके अन्तिमकालमें सूर्यकी राश्यादि चंद्रमाकी तुल्य हैं। पूर्णिमाके अंतमें चन्द्रमा और सूर्यमें ६ राशिका फरक (अन्तर) है ॥ ७ ॥

अथ पर्वान्ते सूर्यचन्द्रपातानां साधनमाह—

गतैष्यपर्वनाडीनां स्वफलेनोनसंयुतौ ॥
समलितौ भवेतां तौ पातस्तात्कालिकोऽन्यथा ॥ ८ ॥

तौ सूर्यचन्द्रौ गतैष्यपर्वनाडीनां यत्कालिकौ सूर्यचंद्रौ तत्कालाद्गता एष्या वा दर्शान्तपूर्णिमान्तान्यतरघटिकास्तासां स्वफलेन स्वगतिसम्बन्धेन यत्फलम्। "इष्टनाडी गुणा भुक्तिः षष्ट्याभक्ता कलादिकम्" इति मध्याधिकारोक्तेनानीतम्। तेन गतैष्यक्रमेणोनयुतौ तत्र समकलौ स्तः यद्यपि समांशाविति वक्तुं युक्तं तथाप्यन्यतिथ्यन्तापसाधितौ समकलाविति द्योतनार्थं समकलावित्युक्तम्। पातः स्वगत्युत्पन्नफलेनान्यथागतैष्यक्रमेण युतोनस्तात्कालिकः पर्वान्तकालिकः स्यात्। अत्रोपपत्तिश्चालनश्लोकः। तत्र तिथ्यन्ते भागान्तरत्वेन कलादिसाम्यम्। पातस्य चक्रशोधितत्वेनेतरग्रहवैपरीत्यम् ॥ ८ ॥

भा० टी०—मध्यरात्रिके स्पष्टराश्यादिमें पर्वांतकाल मध्यरात्रिके पूर्व होनेपर तात्कालिक हीन नहीं तो योगकरनेसे चन्द्रमा और सूर्यकी समकला होगी पातसंबंधमें तिस कालका संस्कार उलटा करना पडता है ॥ ८ ॥

अथ प्रागुक्तानां विम्बानां प्रयोजनमाह—

छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद्भवेत् ॥
भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्यभवेदसौ ॥ ९ ॥

सूर्यमण्डलस्याच्छादकश्चन्द्रः स्यात् । नन्वाकाशे द्वयोः सत्त्वेन सूर्य एव चन्द्रस्य च्छादकः कथं न स्यादित्यत आह—अधःस्थ इति । वक्ष्यमाणकक्षाध्याये सूर्यकक्षातोऽधःकक्षास्थत्वाच्चन्द्रस्यैवाच्छादकत्वम् । 'नह्यूर्ध्वस्थदच्छादकौ येन सूर्यश्चन्द्रस्य च्छादकः ।' ननु विनैकत्रावस्थानं छादनं न भवत्यतआह—घनवदिति । यथाऽधःस्थो मेघः सूर्यस्याच्छादको भवति तथा चन्द्रो भवतीत्यर्थः । प्राङ्मुखः पूर्वाभिमुखो गच्छंश्चन्द्रो भूच्छायां प्रति प्रविशति । अतः कारणादस्य चन्द्रस्यासौ भूभाच्छादिका भवेत् । तथा च सूर्यग्रहणे सूर्यचन्द्रबिम्बयोः प्रयोजनं चन्द्रग्रहणे चन्द्रभूभाबिम्बयोः प्रयोजनमिति भावः । अत्रोपपत्तिः । चन्द्रो दर्शान्ते सूर्यादधोभवतीति चन्द्रः सूर्यस्याच्छादकः । बुधशुक्रयोस्तु मण्डलाल्पत्वान्नाच्छादकत्वम् । चन्द्रस्याधोग्रहाभावात्षड्भान्तरे भूम्या प्रतिबद्धाः सूर्यकिरणाश्चन्द्रगोले न पतन्ति । अतो निष्प्रभस्य चन्द्रस्य भूभायां प्रवेश इति चन्द्रस्य भूभाच्छादिका ॥९॥

भा० टी०—मेघकी समान चन्द्रमा नीचे आयकर सूर्यको ढकलेता है । आगे चलताहुआ चन्द्रमा पृथिवीकी छायामें प्रवेशकरे तो ग्रहण होता है ॥ ९ ॥

अथ ग्रासानयनमाह—

तात्कालिकेन्दुविक्षेपं छाद्यच्छादकमानयोः ॥
योगार्धात्प्रोज्झ्य यच्छेषं तावच्छन्नं तदुच्यते[1] ॥ १० ॥

यश्छाद्यते स च्छाद्यः । सूर्यग्रहणे सूर्यश्चन्द्रग्रहणे चन्द्रः । यश्छादयति स च्छादकः । सूर्यचन्द्रग्रहणयोः । क्रमेण चन्द्रभूभे । तयोः पूर्वानीतमानकलयोरैक्यस्यार्धात्तात्कालिकचन्द्रात्पूर्वोक्तप्रकारेण साधितं विक्षेपं कलादिकं विशोध्य यदवशिष्टं तत्प्रमाणकं छन्नं छादकेन च्छाद्यस्य यावान्मण्डलप्रदेश आच्छादितस्तावत्प्रदेशात्मकं ग्रासरूपं ग्रहणं तत्त्वज्ञैः कथ्यते । अत्रोपपत्तिः । छाद्यच्छादकमंडलनेमियोगे ग्रहणाद्यन्तरूपे मण्डलकेन्द्रयोरन्तरं स्वबिम्बखण्डयोगरूपम् । बिम्बस्य व्यासमानात्मकत्वात् । तत्तु समत्वाल्लाघवाच्च योगार्धरूपं धृतम् । ततो यथा प्रवेशस्तथा ग्रासो भवतीति

१ यच्छिष्टं तत्तमश्छन्नमुच्यत इति वा पाठः । २ ग्राह्यमानाधिक इति पाठः ।

पर्वान्ते छाद्यच्छादकयोर्विक्षेपान्तररितत्वात्तदूने विक्षेपे मण्डलयोगस्तदन्तरमितः स एव ग्रासः ॥ १० ॥

भा० टी०-तिसकालके चन्द्र-पिक्षेपको छाद्य और छादकमानके योगार्द्धसे वियोग करनेपर जो बचता है तिसको छन्न कहते हैं ॥ १० ॥

अथ सम्पूर्णन्यूनग्रहणज्ञानग्रहणाभावज्ञानं चाह-

यद्ग्राह्यमधिके तस्मिन्सकलं न्यूनमन्यथा ॥
योगार्धादधिके न याद्विक्षेपे ग्राससम्भवः ॥ ११ ॥

तस्मिञ्छन्नमानेऽधिके ग्राह्यमानाधिके यद्यस्मात्कारणाद्ग्राह्यमानमस्ति । अतःकारणात्सकलं सम्पूर्णं ग्रहणं भवात् । अन्यथा ग्राह्यमानान्न्यूनं ग्रासे न्यूनं ग्राह्यमानान्तर्गतं ग्रहणं स्यात् । मानैक्यखण्डाद्विक्षेपेऽधिके सति ग्राससम्भवो ग्रहणं न स्यात् । अत्रोपपत्तिः । ग्राह्यमानादधिके ग्रासे सम्पूर्णग्रहणं न्यूने न्यूनं मानैक्यखण्डादधिके विक्षेपे मण्डलस्पर्शासंभवाद्ग्रहणाभावः ॥ ११ ॥

भा० टी०-जो ग्राह्य ग्रहबिम्बसे छन्नमान अधिक हो तो संपूर्ण ग्रहण किया जायगा अन्यथा होनेसे कम ग्रहण किया जायगा । योगार्द्धसे विक्षेप अधिक होनेपर ग्राससम्भव नहीं होता ॥ ११ ॥

अथ स्थित्यर्धविमर्दार्धे श्लोकाभ्यामाह-

ग्राह्यग्राहकसंयोगवियोगौ दलितौ पृथक् ॥
विक्षेपवर्गहीनाभ्यां तद्वर्गाभ्यामुभे पदे ॥ १२ ॥
षष्ट्या संगुण्य सूर्येन्द्वोर्भुक्त्यन्तरविभाजिते ॥
स्यातां स्थितिविमर्दार्धे नाडिकादिफले तयोः ॥ १३ ॥

ग्राह्यग्राहकमानयोर्योगान्तरे अर्धिते पृथक्स्थानांतरे स्थाप्ये । अग्रिमक्रियायां कदाचिदशुद्धत्वसंभवे पुनः क्रियार्थमेतयोरावश्यकत्वात् । तद्वर्गाभ्यां योगार्द्धान्तरार्धयोर्वर्गाभ्यां विक्षेपवर्गेण वर्जिताभ्यामुभे द्वेमूले षष्ट्या गुणयित्वा सूर्यचन्द्रयोर्गत्यन्तरकलाभिर्भक्ते तयोर्योगवियोगयोः स्थाने षष्ट्यादिफले क्रमेण स्थित्यर्धं विमर्दार्धं भवतः । अत्रोपपत्तिः । ग्रहणरं-

भाद्ग्रहणान्तपर्यंतं यः कालः स स्थितिसंज्ञः । तस्य खण्ड एकं ग्रहणारंभान्मध्यग्रहणपर्यन्तमपरं मध्यग्रहणाद्ग्रहणान्तरपर्यन्तम् । तत्र बिम्बनेमिस्पर्शकाले मानैक्यखण्डं कर्णः स्पर्शमोक्षकालिकशरो भुजः स्पर्शमोक्षान्यतरकालिकशराग्रमध्यकालिकशराग्रयोरन्तरं पूर्वापरं कोटिरिति तत्खण्डसाधकं क्षेत्रम् । एवं सम्पूर्णग्रहणे सम्मीलनोन्मीलनकालयोरन्तरकालो मर्दस्तत्र मध्यग्रहणात्सम्मीलनोन्मीलनकालावधि खण्डे तत्साधकं छाद्यच्छादकमण्डलकेंद्रयोरन्तरं मानार्धान्तरतुल्यं कर्णस्तात्कालिकशरो भुजः शराग्रयोरन्तरं विक्षेपवृत्ते पूर्वापरं कोटिरिति क्षेत्रम् । सम्मीलनं छाद्यमण्डलस्याच्छादनसमाप्तिः । उन्मीलनं तु छादकमण्डलादाच्छादितसंपूर्णच्छाद्यमण्डलस्य निःसरणारंभः । तत्र स्पर्शमोक्षसंमीलनोन्मीलनकालानामज्ञानान्मध्यकालिकविक्षेपग्रहणम् । भुजकर्णवर्गान्तरपदं कोटिरिति पूर्वश्लोकोक्तमुपपन्नम् । छाद्यच्छादकमण्डलकेंद्रयोः पूर्वापरान्तराभावे मध्यग्रहणसंभवाच्छाद्यच्छादकयुतिगत्यन्तरकलाभिः षष्टिघटिकास्तदानीतकोटिकलाभिः काइत्यनुपातेन स्थितिमर्दखण्डे । तत्र चन्द्रग्रहणे भूभागतेः सूर्यगत्यनुरोधात्सूर्यगतित्वामित्युपपन्नं द्वितीयश्लोकोक्तम् ॥ १२ ॥ १३ ॥

भा० टी०–पृथक ग्राह्य ग्राह्यकमान योगार्द्ध और वियोगार्द्ध वर्ग निर्णयकरे । तिससे विक्षेप वर्ग हीन मूल निर्णय करके करे । उन दो मूलको ६० से गुण करके सूर्येन्दु स्पष्ट भुक्त्यन्तरसे भाग करनेपर स्थूलस्थितार्द्ध और स्थल विमर्दार्ध दण्डादि होंगे ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ स्थित्यर्धविमर्दार्धे असकृत्साध्ये इति श्लोकाभ्यामाह–

स्थित्यर्धनाडिकाभ्यस्ता गतयः षष्टिभाजिताः ॥
लिप्तादिप्रग्रहे शोध्यं मोक्षे देयं पुनः पुनः ॥ १४ ॥
तद्विक्षेपैः स्थितिदलं विमर्दार्धं तथासकृत् ॥
संसाध्यमन्यथा पाते तल्लिप्तादिफलं स्वकम् ॥ १५ ॥

सूर्यचन्द्रपातानां गतयः स्थित्यर्धघटीभिर्गुणिताः षष्ट्या भक्ताः फलं कलादिप्रग्रहे स्पर्शस्थित्यर्धनिमित्तं सूर्यचन्द्रयोर्हीनमोक्षे मोक्षस्थित्यर्धनि मित्तंसूर्यचन्द्रयोर्देयं योज्यम् । चन्द्रपाते तल्लिप्तादिफलं स्थित्यर्धघट्यानीतं कलादि-

पूर्वफलं स्वकं स्वगत्युत्पन्नमन्यथा विपरीतं प्रग्रहस्थित्यर्धनिमित्तं योज्यं मोक्षस्थित्यर्धनिमित्तं हीनमित्यर्थः।तद्विक्षेपैस्तात्कालिकचन्द्रपाताभ्यामानीतशरकलाभिः। कलानां बहुत्वाद्विक्षेपैरिति बहुवचनम्। विक्षेपाभ्यामित्यर्थः । पुनः पुनः स्थितिदलं कार्यम्। अत्रैकं पुनःपदं स्पर्शस्थित्यर्थसम्बद्धं द्वितीयं मोक्षस्थित्यर्धसम्बद्धं पुनःपदम् । तेन स्पर्शस्थित्यर्धार्थसाधितचन्द्रपाताभ्यामानीतशरेण प्रागुक्तप्रकारेण स्पर्शस्थित्यर्धं संसाध्यम् । मोक्षस्थित्यर्धार्थसाधितचन्द्रपाताभ्यामानीतशरेण पूर्वोक्तरीत्या मोक्षस्थित्यर्धः साध्यमित्यर्थः । तच्चोभयमसकृद्वारंवारं स्पर्शस्थित्यर्धानीतचालनेन मध्यकालिकौ चन्द्रपातावुक्तरीत्या प्रचाल्य तच्छरेण पूर्वोक्तरीत्या स्पर्शस्थित्यर्धमस्माद्प्युक्तरीत्या स्पर्शस्थित्यर्धमेवं यावदविशेषः एवं मोक्षस्थित्यर्धानीतचालनेन मध्यकालिकौ चन्द्रपाता उक्तरीत्या प्रचाल्य तच्छरेण पूर्वोक्तरीत्या मोक्षस्थित्यर्धं मस्मादप्युक्तरीत्या मोक्षस्थित्यर्धमेवं यावदविशेष इत्यर्थः । ननु स्थित्यर्धविमर्दार्धयोरेकमित्युक्तेः कथं विमर्दार्धमसकृत्साध्यमिति नोक्तमित्यत आह–विम र्दार्धमिति । तथा स्पर्शमोक्षस्थित्यर्धसाधनरीत्या सकृद्यावदविशेषस्तावत्स्पर्शमर्दार्धं मोक्ष मर्दार्धं च संसाध्यम् । तथाहि स्थित्यर्धनाडिकाभ्यस्ता इत्यत्र विमर्दार्धनाडिका ग्रहात्स्पर्शमर्दार्धमोक्षमर्दार्द्धे साध्ये । आभ्यां प्रत्येकमसकृत्स्पर्शमर्दार्धमोक्षमर्दार्धे स्फुटे स्तः । अत्रोपपत्तिः । प्रागुक्तं क्षेत्रं स्पर्शमोक्षसम्मीलनकालिकशरवशादिति तदज्ञानान्मध्यकालिकशरग्रहणेन स्थूलं स्थित्यर्धं मर्दार्धं चातो मध्यकालात्तदन्तरेण पूर्वापरकालिकयोस्तेषां सम्भवात्तत्कालचालितचन्द्रपाताभ्यां विक्षेपस्तात्कालिको भवति परं स्थूलः। स्थूलस्थित्यर्धाद्यानीतत्वात् । अतोऽस्मदानीतं स्थित्यर्धादिपूर्वापेक्षया सूक्ष्ममपि स्थूलमित्यसकृत्सूक्ष्ममिति । तत्र सम्मीलनोन्मीलनकालयोराकाशस्पर्शमोक्षसम्भवात्स्पर्शमोक्षमर्दार्धमिति ध्येयम् ॥ १४ ॥ १५ ॥

भा० टी०–स्थित्यर्ध दण्डसे सूर्य चन्द्र और राहुकी गति गुण करके ६० से भाग करनेपर जो कलादि हों, सो ग्रहसे स्पर्शहीन (पातस्थानमें योग और मोक्षमें चंद्रमा व सूर्यमें योग और पातस्थानमें वियोग करना होता है ॥ १४ ॥ तिससे तिसकालके विक्षेपद्वारा स्थित्यर्द्ध और विमर्दार्द्ध बारम्बार निर्णय करनेपर सूक्ष्म होताहै. ॥ १५ ॥

अथ मध्यग्रहणस्पर्शमोक्षकालानाह—

स्फुटतिथ्यवसाने तु मध्यग्रहणमादिशेत् ॥
स्थित्यर्धनाडिकाहीने ग्रासो मोक्षस्तु संयुते ॥ १६ ॥

स्पष्टतिथ्यन्तकाले । तुकारात्तत्पूर्वापरकालनिरासः । मध्यग्रहणग्रासोपचयसमाप्तिं कथयेत् । मध्यग्रहणसम्बन्धेन मध्यसूर्यचन्द्रानीतमध्यतिथ्यन्ते तत्सम्भव इति कस्यचिद्भ्रमस्तद्वारणार्थं स्फुटेति । स्थित्यर्धघटिकाभिरूने तिथ्यन्तकाले ग्रासः स्पर्शः । संयुते स्थित्यर्धघटीभिर्युते तिथ्यन्तकाले मोक्षः । तुकारः स्पर्शमोक्षस्थित्यर्धाभ्यां स्पर्शमोक्षकालाविति विषयव्यवस्थार्थकः । तिथ्यन्तकाले छाद्यच्छादकयोः पूर्वापरान्तराभावाद्योगे मण्डलस्पर्शौ यावान्भवति ततः पूर्वाग्रिमकालयोर्न्यून एवातोऽत्र मध्यग्रहणकालः । केचित्तु । "पर्वान्तः किल साधितो भवलये सूर्येन्दुचिह्नान्तरात्तस्मिन्बिम्बसमागमो न हि यतश्चन्द्रः शराग्रे स्थितः । तस्मादायनदृष्टिसंस्कृतविरोधानीततिथ्यन्तके बिम्बैक्यं भवतीति किं न विहितं पूर्वैर्न विद्मो वयम् ॥" इत्यनेनात्र मध्यग्रहणं खण्डयति । तन्न । पूर्वापरान्तराभावे योगसत्त्वेन कदम्बसूत्रस्थयोर्याम्योत्तरान्तरस्यैव सत्त्वेन तत्र मध्यग्रहणस्योचितत्वात् । अन्यथा ध्रुवसूत्रे समसूत्रे वा योगाभ्युपगमे विनिगमनाविरहापत्तेः । यथा गतग्रहयोः कदम्बसूत्रेणैव योगाभ्युपगमात् । दृष्टिप्रत्ययार्थं दृक्कर्मोक्तेः । ग्रहणद्वयस्य स्वत एव दृग्गोचरत्वात् । ग्रहद्वयादर्शनाच्चेत्यादिसंक्षेपः । मध्यग्रहणकालात्पूर्वं स्पर्शस्थित्यर्धघटीभिः स्पर्शः । अग्रिमकाले मोक्षस्थित्यर्धघटीभिर्मोक्षः । स्थित्यर्धयोस्तदन्तररूपत्वेन सिद्धेः ॥ १६ ॥

भा० टी०–स्पष्टतिथिके शेषमें मध्यग्रहण होता है । तिससे सूक्ष्म स्थित्यर्ध दण्ड वियोग करनेपर ग्रास (स्पर्श) काल होताहै और योग करनेसे मोक्षकाल होता है १६ ।

अथ सम्पूर्णग्रहणे निमीलनोन्मीलनकालावप्याह—

तद्वदेव विमर्दार्धनाडिकाहीनसंयुते ॥
निमीलनोन्मीलनाख्ये भवेतां सकलग्रहे ॥ १७ ॥

संपूर्णग्रहणं तद्वत् । यथास्थित्यर्धोनाधिके तिथ्यन्ते स्पर्शमोक्षौ तथं-

त्यर्थः । एवकारात्तद्भिन्नरीतिव्युदासः । स्पर्शविमर्दार्धमोक्षविमर्दार्धघटीभ्यां क्रमेणोनयुते तिथ्यंते क्रमेण निमीलनोन्मीलनसञ्ज्ञे स्याताम् । अत्रोपपत्तिः । मर्दार्धस्य मध्यकालात्तदन्तररूपत्वेन तदुनाधिके तस्मिन्क्रमेण निमीलनोन्मीलने सम्पूर्णग्रहण एव भवतः । न्यूनग्रहणे तत्स्वरूपव्याघातात्तदभावः ॥ १७॥

भा० टी०–सम्पूर्ण ग्रहणमें सूक्ष्म विमर्दार्द्ध घटिका मध्य ग्रहणसमयसे हीन और तिसमें योग करनेसे निमीलन उन्मीलन काल होगा ॥ १७ ॥

अथेष्टकाल इष्टग्रासंज्ञानार्थं कोटिकलानयनमाह–

इष्टनाडीविहीनेन स्थित्यर्धेनार्कचन्द्रयोः ॥
भुक्त्यन्तरं समाहन्यात्षष्ट्याप्ताः कोटिलिप्तिकाः ॥१८॥

सूर्यचन्द्रयोर्गत्यन्तरं कलात्मकं ग्रहणारम्भाद्या इष्टघटिकाः स्पर्शस्थित्यर्धघट्यनधिकास्ताभिरूनेन स्पर्शस्थित्यर्धेन गुणयेत् । अस्मात्षष्टिविभक्तप्राप्ताः कोटिकला भवन्ति । अत्रोपपत्तिः । इष्टकाले छाद्यच्छादकमण्डलकेंद्रयोरन्तरं कर्णस्तत्कालशरो भुजस्तत्कालशराग्रमध्यकालिपराग्रयोरन्तरं विक्षेपवृत्ते कोटिरिति क्षेत्रइष्टघट्यूनस्पर्शस्थित्यर्धघटिकानां कलाः कोटिः सिद्धा । पूर्वस्पर्शकालिककोट्याः स्थित्यर्धघटिकानां सिद्धत्वात् ॥ १८ ॥

भा० टी०–सूर्यचन्द्रकी गतांतरकलाके द्वारा ग्रहणारम्भसे दण्डादिवियुक्त स्थित्यर्द्ध गुणकरके ६० से भाग करनेपर भागफल कोटि कला होगा ॥ १८ ॥

अथात्र सूर्यग्रहणे विशेषमाह–

भानोर्ग्रहे कोटिलिप्ता मध्यस्थित्यर्धसंगुणाः ॥
स्फुटस्थित्यर्धसम्भक्ताः स्फुटाः कोटिकलाः स्मृताः ॥ १९॥

सूर्यस्य ग्रहणे उक्तप्रकारेण याः कोटिकलाः सूर्यग्रहणोक्तस्पष्टस्थित्यर्धानीतामध्यस्थित्यर्धेन सूर्यग्रहणोक्तस्पष्टशरानीतस्थित्यर्धेन संगुणिता स्फुटस्थित्यर्धेन सूर्यग्रहणाधिकारोक्तेन भक्ताः सत्यः स्पष्टा कोटिकलाः सूर्यग्रहणतत्त्वज्ञैरुक्ताः । अत्रोपपत्तिः । सूर्यग्रहणे स्पर्शमोक्षान्यतरमध्यकालयोरन्तरस्य स्थित्यर्धत्वात्तस्य च स्पष्टशरोद्भूतस्थित्यर्धलम्बनान्तरैक्यसंस्कारमितत्वात्स्पष्टस्थित्यर्द्धानुरुद्धा उक्तरीत्या नीताः कोटि कलाः । अपेक्षिताश्च स्पष्ट-

शरोद्भूतस्थित्यर्द्धानुरुद्धाः । एतत्कोटिसम्बद्धं क्षेत्रम् । स्थित्यर्धक्षेत्रान्तर्गत्वात् । स्पष्टस्थित्यर्धस्य तूक्तक्षेत्रोत्पन्नत्वाभावात् । अन्यथा स्पष्टशरोद्गतस्थित्यर्धस्य लंबनान्तरैक्यसंस्कारानुक्तिप्रसङ्गः । अतः स्पष्टस्थित्यर्धनैता आगताः कोटिकलास्तदा स्पष्टशरोद्गतक्षेत्रजमध्यमरूपस्थित्यर्धेन का इति स्फुटाः कलाः सिद्धाः ॥ १९ ॥

भा० टी०—सूर्यग्रहणमें कोटिकला मध्यस्थित्यर्धद्वारा गुणकरके स्फुट स्थित्यर्ध द्वारा भागकरनेपर स्फुट कोटिकला होगी ॥ १९ ॥

अथाऽस्य इष्टग्रासानयनमाह—

क्षेपो भुजस्तयोर्वर्गयुतेर्मूलं श्रवस्तु तत् ॥
मानयोगार्धतः प्रोज्झ्य ग्रासस्तात्कालिको भवेत् ॥ २० ॥

क्षेपो विक्षेपो भुजः । कोटिभुजयोः कर्णसापेक्षत्वादाह—तयोरिति । कर्णस्तु तयोः कोटिभुजयोर्वर्गयोगान्मूलं सिद्ध एव । तत्कर्णवर्गात्मकं मूलं ग्राह्यग्राहकमानैक्यार्धाद्विशोध्य शेषं तात्कालिकः कल्पितेष्टकालसंबंधी ग्रासो वांतग्रासः स्यात् । अत्रोपपत्तिः । क्षेत्रं पूर्वं प्रतिपादितम् । स्पर्शकाले मानैक्यखण्डस्य कर्णत्वात् क्षेत्रयोरुभयोर्मध्यकालावधित्वादिष्टकर्णोनं मानैक्यखण्डमिष्टग्रास एव ॥ २० ॥

भा० टी०—विक्षेप (भुज) वर्ग और कोटीफलका वर्ग मिलाकर मूल ग्रहण करनेसे कर्ण होगा । चन्द्रसूर्यमान-योगार्द्धसे कर्णवियोग करनेपर तात्कालिक ग्रास होगा ॥ २० ॥

अथ मध्यग्रहणानन्तरमिष्टग्रासानयनमाह—

मध्यग्रहणतश्चोर्ध्वमिष्टनाडीर्विशोधयेत् ॥
स्थित्यर्धान्मौक्षिकाच्छेषं प्राग्वच्छेषं तु मौक्षिके ॥ २१ ॥

मध्यग्रहणकालादूर्ध्वमनन्तरम् । चकारो विशेषार्थकतुकारपरः । इष्टघटिकाः कर्म । मौक्षिकान्मोक्षकालसम्बद्धात् स्थित्यर्धात् । न स्पर्शे विशोधयेत् । गणक इति कर्त्राक्षेपः । शेषं कोटिलिप्तादिग्रासानयनान्तं गणितकर्म प्राग्वदुक्त्यंतरं समाहन्यादित्युक्तप्रकारेण कुर्यात् । मौक्षिके मोक्षस्थित्यर्धान्तर्गतेष्टकाले तुर्विशेषे । ग्रासः शेषमुर्वरितो ग्रासोऽवान्तरग्रासो भवति ।

पूर्ववद्गतः । अत्रोपपत्तिः । पातादिमध्यग्रहणात्पूर्वमिष्टकालस्य ग्रहणारंभा-वधिकस्य स्पर्शस्थित्यर्धसम्बद्धत्वादागतो ग्रास उपचयात्मकः । नावशिष्टः । अवशिष्टमण्डलस्य शुद्धत्वेन ग्रस्तत्वासम्भवात् । एवं मध्यग्रहणानन्तरमिष्ट-कालस्य मोक्षस्थित्यर्धान्तर्गतत्वादुक्तरीत्यानीतो ग्रासोऽपचयात्मकः । न शुद्धबिम्बदर्शनात्मकः । ग्रस्तत्वाभावात् ॥ २१ ॥

भा० टी०-मध्यग्रहणके पीछे होनेपर मौक्षिकस्थित्यर्द्धसे इष्टनाडी (मोक्षकाल-विमुक्त इष्ट दण्डादि) वियोग करके कोटिनिर्णय करे ॥ २१ ॥

अथाभीष्टग्रासादिष्टकालानयनं श्लोकाभ्यामाह-

ग्राह्यग्राहकयोगार्धाच्छोध्याः स्वच्छन्नलिप्तिकाः ॥
तद्वर्गात्प्रोज्झ्य तत्कालविक्षेपस्य कृतिं पदम् ॥ २२ ॥
कोटिलिप्ता रवेः स्पष्टस्थित्यर्धेनाहता हृताः ॥
मध्येन लिप्तास्तन्नाड्यः स्थितिवद्ग्रासनाडिकाः ॥ २३ ॥

छाद्यच्छादकमानैक्यखण्डादभीष्टग्रासकलाः शोध्याः । शेषस्य वर्गाद-भीष्टग्रासकालिकविक्षेपस्य वर्गं विशोध्यः शेषस्य मूलं कोटिकलाः । सूर्य-ग्रहणे विशेषमाह-रवेरिति । सूर्यस्य ग्रहण इतिशेषः । भानोर्ग्रह इति पूर्व-मुक्तेः । उक्तप्रकारेण याः कलास्ता मध्यग्रहणकालस्पर्शमोक्षान्यतरकाल-योरन्तररूपेण स्पष्टस्थित्यर्धेन गुण्याः । स्पष्टशरोत्पन्नस्थित्यर्धेन मध्यमेन भक्ताः फलं कोटिकला भवन्ति । स्थितिवत् स्थित्यर्धसाधनरीत्या । "षष्ट्या सङ्गुण्य सूर्येन्द्वोर्भुक्त्यन्तरविभाजिताः" इत्युक्तेन तासां कोटि-कलानां घटिकायास्ता अभीष्टग्राससम्बन्धिघटिकाः स्पर्शमोक्षान्यतर-स्थित्यर्धान्तर्गताः क्रमेण मध्यग्रहणाच्छेषा गता वा भवन्ति । अत्रोपपत्तिः । पूर्वोक्तव्यत्यासात्सुगमतरा । परन्तु स्वाभीष्टग्रासकालिकशरज्ञाने सूक्ष्मम् । तच्छराज्ञाने मध्यकालिकशरग्रहणेन स्थूलम् । अतएव भास्कराचार्यैः काल-साधने तत्कालबाणेन मुहुः स्फुट इत्युक्तमिति विशेषः ॥ २२ ॥ २३ ॥

भा०टी०-ग्राह्य और ग्राहकके योगार्द्धसे स्वीय आच्छन्न (ग्रास) कला पृथक्करे तिसके वर्गसे तित कालका विक्षेपवर्ग अलग करके मूलकरनेसे कोटि होगी ॥ २२ ॥

परन्तु सूर्यग्रहणमें कोटिकला स्पष्ट स्थित्यर्द्धसे गुणकरके मध्यस्थित्यर्द्धसे भागकरने-पर कोटि होगी। तिससे स्थितिके सिद्ध होनेकी समान ग्रासनाडीको स्थिर करना चाहिये ॥ २३ ॥

अथ वक्ष्यमाणग्रहणपरिलेखोपयुक्तवलनस्यानयनं श्लोकाभ्यामाह-

नतज्याक्षज्ययाभ्यस्ता त्रिज्याप्ता तस्य कार्मुकम् ॥
वलनांशाः सौम्ययाम्याः पूर्वापरकपालयोः ॥ २४ ॥
राशित्रययुताद्ग्राह्यात्क्रान्त्यंशैर्दिक्समैर्युताः ॥
भेदेऽन्तराज्ज्यावलना सप्तत्यंगुलभाजिताः ॥ २५ ॥

यत्कालिकं वलनं कर्तुमिष्टं तात्कालिकं नतं चन्द्रग्रहणे चन्द्रस्य सूर्य-ग्रहणे सूर्यस्य साध्यम्। तद्यथा स्वोदयात्स्वास्ताद्गतशेषघटिकाः। स्वदि-नार्धान्तर्गताः स्वदिनार्धादूनाः क्रमेण पूर्वापरनतघटिका भवन्ति। तन्नतं नवतिगुणं स्वदिनार्धभक्तं नतांशास्तेषां ज्या .नतज्येत्यर्थः। स्वदेशाक्षांश ज्यया गुणिता त्रिज्यया भक्ता फलस्य धनुः कलात्मकं षष्टिभक्तं पूर्वाप रकपालयोः पूर्वापरनतयोः क्रमेणोत्तरदक्षिणावलनांशा भवन्ति। यत्का-लिकं वलनं तात्कालिकाद्ग्राह्याद्राशित्रययुतात्सायनांशाद्ये क्रान्त्यंशास्तैर्दि-क्तुल्ययुता स्तेषां ज्याभेदे भिन्नदिक्त्वेऽन्तरात्क्रान्त्यंशवलनांशयोरन्तरा-ज्ज्यासप्तत्यंगुलैर्भक्ता शेषदिका। अंगुलात्मकत्वेन हरस्योद्देशांगुलादिका वलना भवति। अत्रोपपत्तिः। समवृत्तपूर्वापरादिदिग्भ्यः क्रान्तिवृत्तपूर्वाप-रादिदिशो यावतान्तरेण वलिता उत्तरस्यां दक्षिणस्यां वा वलनांशाः। तदा-नयनार्थं प्रथमतः समवृत्तानुरुद्धदिग्भ्यो विषुवद्वृत्तदिशो यावतान्तरेण वलिता दक्षिणोत्तरयोस्तदाक्षवलनम्। तथाहि। समप्रोतचलवृत्तं ग्रहचिह्नस्थं सम-विषुद्वृत्तयोर्यत्र लग्नं तत्प्रदेशान्नवत्यंशान्तरे स्वस्ववृत्ते प्राच्योरन्तरं वलन तत्तुल्यमेवतरादिशामन्तरं पूर्वकपालस्थग्रहे समवृत्तप्राचीतो विषुवद्वृत्तप्राच्या उत्तरत्वादुत्तरम्। पश्चिमकपालस्थे तु समवृत्तप्राचीतो विषुवद्वृत्तप्राच्या दक्षिणत्वाद्दक्षिणम्। तत्र क्षितिजस्थे ग्रहे तदन्तरमक्षांशतुल्यम्। याम्यो-त्तरवृत्तस्थे ग्रहे तदन्तराभावः। अतस्त्रिज्यातुल्यया नतकालज्ययाऽक्ष्या-

तुल्याक्षवलनज्या तदेष्टनतज्यया केत्यनुपातागताक्षज्यया धनुराक्षवलनमुक्तमुपपन्नम् । द्वितीयं तु विषुवद्वृत्तदिग्भ्यः । क्रांतिवृत्तदिशो यावतान्तरेण वलिता दक्षिणोत्तरयोस्तदायनं वलनम् । तथाहि वप्रोतवृत्तं ग्रहचिह्नस्थं विषुवद्वृत्ते यत्रासन्नं लगति तत्स्थानाच्चतुर्थांशान्तरे यत्स्थानं तद्विषुवत्प्राची । तस्या ग्रहचिह्नात् त्रिभान्तरितक्रान्तिवृत्तप्राची यदन्तरेण तदायनं वलनम् । तत्तुल्यमेवेतरदिशामन्तरम् । उत्तरायणस्थे ग्रह उत्तरं दक्षिणायनस्थे ग्रहे दक्षिणम् । नत्वयनसंधावभावात्मकम् । गोलसन्धौ परमक्रान्तितुल्यमतः त्रिभक्रान्तितुल्यं सत्रिभग्रहगोलदिक्कमित्युपपन्नं राशित्रययुताद्ग्राह्यात्क्रान्त्यंशैरिति । द्वयोर्वलनयोरेकदिक्त्वे समवृत्तप्राचीतः क्रान्तिवृत्तप्राचीतद्योगरूपस्फुटवलनान्तरेण वलनदिशि भवति । भिन्नदिक्त्वे तु वलनान्तररूपस्फुटवलनान्तरेण शेषदिशि भवति । तज्ज्यस्फुटवलनज्या त्रिज्यावृत्ते । अग्रे परिलेख एकोनपञ्चाशन्मितव्यासार्द्धवृत्ते दानार्थं त्रिज्यावृत्त इयं तदैकोनपञ्चाशन्मितं व्यासार्द्धे केत्यनुपाते प्रमाणेच्छयोरिच्छापवर्तनाद्धरस्थानेऽधोवयवत्यागात्सप्ततिः । अतो दिक्समैर्युता इत्याद्युपपन्नम् ॥ २४ ॥ २५ ॥

भा० टी०–ग्रस्तकी नवी हुई ज्याको अक्षज्यासे गुणकरके त्रिज्यासे भागकरनेपर जो ज्या होगी तिनसे धनुकरनेपर वलनांश होगा नतके पूर्वापरके अनुसारसे वलन उत्तर दक्षिणमें स्थिर करना चाहिये ॥ २४ ॥ तीन राशिवाले ग्रस्तग्रहस्फुटकी निर्देश करो । वलनांश और उत्क्रान्ति एकदिशामें होनेसे योग, अन्यथा अन्तर करनेसे स्फुट वलन है । स्फुट वलनज्या ७० से भाग करनेपर भागफल अंगुलादिक वलन ग्रस्त ग्रहका होगा ॥ २५ ॥

अथ कलात्मकबिम्बविक्षेपादीनामंगुलीकरणमाह–

सोन्नतं दिनमध्यर्थं दिनार्धात्तं फलेन तु ॥
छिन्द्याद्विक्षेपमानानि तान्येषामंगुलानि तु ॥ २६ ॥

दिनमानमध्यर्धमर्धं इत्यध्यर्धं स्वार्धयुक्तमित्यर्थः । अभीष्टकालिकोन्नतघटीभिः सहितं दिनार्धेन भक्तं फलेन । तुकारो यद्ग्रहणं तस्य दिनमानोन्नते ग्राह्ये इत्यर्थकः । विक्षेपग्राह्यग्राहकबिम्बमानानि । तानि पूर्वोक्तानि कलात्मककानि । ग्रासादिकमपि ध्येयम् । भजेत् । तुकारात्फलमेषां कलात्म-

कानामङ्गुलानि भवन्ति । अत्रोपपत्तिः । उदयास्तकाले बिम्बकिरणानां भूमिगोलावरुद्धत्वेनाल्पोर्ध्वस्थकिरणानां नयनप्रतिहननार्हत्वाद्बिम्बं व्यक्तत्वान्महद्भासते । तत्रांगुलात्मकं बिम्बकलात्रयात्मकैकांगुलप्रमाणेनभवति । खमध्यस्थे ग्रहे तु बिम्बस्य सर्वकिरणावरुद्धत्वान्नयनप्रतिघाताच्च सूक्ष्मं बिम्बं भासते तत्रांगुलात्मकं बिम्बं कलाचतुष्टयात्मकैकांगुलप्रमाणेन भवति । तत्रोदयास्तकाले शङ्कोरभावात्खमध्ये तस्य त्रिज्यातुल्यत्वात्त्रिज्यातुल्यशङ्कावुदयकांलिकैकांगुलमानस्य कलात्रयस्यैकांगुलमुपचयो लभ्यते तदेष्टशङ्कौ कइत्यनुपातेनाभीष्टकाले फलं युक्तम् । त्रयमेकांगुलस्य कलात्मकं मानं भवति । अतएव भास्कराचार्यैरुदयास्तकाले सार्द्धद्वयं कलांगुलमानमंगीकृत्य "त्रिज्योद्धृतस्तत्समयोत्थशंकुः सार्धद्वियुक्तोऽङ्गुललिप्तिकाः स्युः" इत्युक्तम् । तत्र भगवता लोकानुकम्पया स्वल्पान्तरत्वाच्च मध्याह्नेऽपि कलाचतुष्टयात्मकमेकांगुलमंगीकृत्य दिनार्धतुल्यपरमोन्नतकाल एकापचयस्तदेष्टोन्नतकाले क इत्यनुपातागतफलयुक्तं त्रयं कला एकांगुलमानमभीष्टकाले । तत्र दिनार्धभक्तोन्नतकालस्य फलरूपत्वात्त्रयाणां समच्छेदतया योजने त्रिगुणितं दिनार्धं सार्धैकगुणदिनमानरूपमुन्नतकालयुक्तं दिनार्धभक्तमिति सिद्धम् । तत एतत्कलाभिरेकांगुलं तदेष्टकलाभिः किमित्यनुपातेन कलात्मकानामङ्गुलीकरणमुक्तमुपपन्नम् ॥ २६ ॥

भा० टी०—दिनमानमें निजके अर्द्ध और उन्नतघटिका योग करके दिनार्द्धसे भागकरनेपर जो फल होगा, तिस्से कलादि विक्षेप बिम्बमान आदिको भागकरनेसे अंगुलादि होंगे ॥ २६ ॥

अथाग्रिमग्रन्थस्यासङ्गतित्वनिरासार्थमधिकारसमाप्तिं फक्किकयाह—स्पष्टम् । रंगनाथेन रचिते सूर्यसिद्धान्तटिप्पणे । चन्द्रग्रहाधिकारोऽयं पूर्णो गूढप्रकाशके ॥ इति श्रीसकलगणकसार्वभौमबल्लालदैवज्ञात्मजरंगनाथगणकविरचितेगूढार्थप्रकाशके चन्द्रग्रहणाधिकारः पूर्णः ॥

इति चन्द्रग्रहणाधिकारः चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ।

अथ पंचमोऽध्यायः ।

अथ सूर्यग्रहणाधिकारो व्याख्यायते । तत्र यत्पदार्थविशेषप्रयुक्तश्चन्द्रग्रहणाधिकारातिरिक्तः सूर्यग्रहणाधिकारस्तद्विशेषयोरभावस्थानादेवोत्पत्तिनियमात्तयोरभावस्थानकथनव्याजेन तयोरुद्देशमाह-

मध्यलग्नसमे भानौ हरिजस्य न सम्भवः ॥
अक्षोदङ्मध्यभक्रान्तिसाम्येनावनतेरपि ॥ १ ॥

सूर्येऽमावास्यान्तकालिके मध्यलग्नसमे सति दिनमध्यस्थान ऊर्ध्वयाम्योत्तरवृत्ते लग्नः क्रांतिवृत्तप्रदेशो मध्यलग्नं त्रिप्रश्नाधिकारोक्तम् । तत्तुल्ये सति मध्याह्न इति फलितम् । हरिजस्य लम्बनस्य भूपृष्ठक्षितिजवशाल्लम्बनोत्पत्तेर्लंबनस्यापि क्षितिजवाचकहरिजशब्देनाभिधानात्सम्भव उत्पत्तिर्न । तत्र लम्बनाभाव इत्यर्थः । अथ मध्याह्न इति स्फुटोक्त्यपेक्षया मध्यलग्नसम इति वक्रोक्तिः कृपालोर्भगवतो नोचितेत्यग्रिमग्रन्थार्थतत्त्वविचारणयापि मध्याह्ने तदभावानुपपत्तेः साम्प्रदायिकव्याख्यामनादृत्य तत्त्वार्थो व्याख्यायते । लग्नयोरुदयक्षितिजास्तक्षितिजप्रदेशयोः संलग्नक्रांतिवृत्तप्रदेशयोर्मध्यम् । ऊर्ध्वमध्यप्रदेशस्त्रिभोनलग्नमित्यर्थः । प्रयोगस्तु मध्याह्न इतिवत् । तत्तुल्येऽर्के लम्बनस्याभाव इति । "दर्शान्तलग्नं प्रथमं विधाय न लम्बनं वित्रिभलग्नतुल्ये । रवौतदूनेऽभ्यधिके च तत्स्यादेवं धनर्णं क्रमशश्च वेद्यम्" ॥ इति भास्कराचार्येण स्फुटमुक्तेश्च । नत्यभावस्थानमाह-अक्षेत्यादि । अक्षांशा उत्तरा ये मध्यमस्य मध्यलग्नस्य क्रान्त्यंशाः । अत्र मध्यलग्नशब्देन दशमभावस्त्रिभोनलग्नं वा ग्राह्यमुभयपक्षेऽप्यदोषः । अनयोस्तुल्यत्वेऽवनतेर्नतेः । अपिशब्दात्सम्भवो न । अभाव इत्यर्थः । नत्वपिशब्दाल्लम्बनस्यापि तत्राभावः । उत्तरक्रान्त्यक्षयोस्तुल्यत्वे मध्यलग्नतुल्यार्कत्वाभावेऽपि तदभावापत्तेः । अत्रोपपत्तिः । अमावास्यान्तकाले समौ सूर्यचन्द्रौ । तत्र चन्द्रशराभावे भूगर्भात्तीयमानं भूसूत्रमर्कस्थानावधि चन्द्रं स्पृशत्येवेति भूगर्भेच्छादकत्वं चन्द्रस्य सूर्यस्य च्छाद्यत्वं सम्भवति । तत्र मनुष्याणामसत्त्वाद्भूपृष्ठे तेषां सत्त्वाच्च

भूपृष्ठान्नीयमानमर्कोपरि सूत्रं चन्द्रे न लगत्येव। किन्तु चन्द्राधिष्ठानगोले चन्द्रचिह्नादूर्ध्वं लगति। तत्र यदा चन्द्र आयाति तदा भूपृष्ठे सूर्यस्य चन्द्रश्छादको भवति। यदा तु खमध्ये सूर्यस्तदा भूगर्भसूत्रं भूपृष्ठसूत्रं च सूर्योपरिगमेकमेव चन्द्रे लगतीति भूपृष्ठेऽमान्तकाले चन्द्रश्छादको भवति। अतएव भूगर्भपृष्ठसूत्रान्तरं लम्बनम्। भूपृष्ठसूत्रात्सूर्योपरिगाच्चन्द्राधिष्ठानाकाशगोले चन्द्रस्य शरसत्त्वे चन्द्रचिह्नस्य वा लम्बितत्वात्। अतएव भास्कराचार्यैरुक्तम् 'दृग्गर्भसूत्रयोरैक्यात्खमध्ये नास्ति लम्बनम्॥' इति। अथ चन्द्राधिष्ठानगोले भूपृष्ठसूत्रमर्कोपरिगतं चन्द्रचिह्नादूर्ध्वं चन्द्रदृग्वृत्ते यद्दंशैर्लगति तल्लम्बनं दृग्वृत्ताकारकक्रांतिवृत्ते भवति। यथा तु दृग्वृत्ताद्भिन्नं क्रांतिवृत्तं तदा भूपृष्ठसूत्रं चन्द्राधिष्ठानगोले चन्द्रदृग्वृत्ते चन्द्रादूर्ध्वं यत्र लग्नं तत्र चन्द्रगोलस्थक्रांतिवृत्तयाम्योत्तर रूपकदम्बप्रोतवृत्तमानीय चन्द्रगोलस्थक्रांतिवृत्ते यत्र लग्नं तच्चन्द्रचिह्नयोरन्तरं क्रांतिवृत्ते पूर्वापरं स्फुटलम्बनकलाः कोटिः। चन्द्रस्य क्रांतिवृत्तानुसारेण गमनात्प्रोतवृत्ते क्रांतिवृत्तदृग्वृत्तयोरन्तरं याम्योत्तरं कलात्मकं नतिर्भुजः। भूगर्भपृष्ठसूत्रान्तरं दृग्वृत्ते कलात्मकं दृग्लम्बनं कर्णः। दृग्वृत्तस्य कदम्बप्रोतवृत्ताकारत्वे क्रांतिवृत्ते तयोरन्तराभावाल्लम्बनाभावः। याम्योत्तरमन्तरं दृग्लम्बनं नतिरेवोत्पन्ना। दृग्वृत्ताकारक्रान्तिवृत्ते तु दृग्लंबनमेव क्रांतिवृत्ते तयोरन्तरमिति लम्बनमुत्पन्नंनत्यभावश्च। तथा च दृग्वृत्तस्य कदम्बप्रोतवृत्ताकारत्वे त्रिभोनलग्नस्थानेऽर्को भवति। तद्वृत्तस्य क्रान्तिवृत्तयाम्योत्तरत्वेनोदयास्तलग्नमध्यवर्तित्वेन लग्नस्थानात् त्रिभान्तरितत्वात्। नहि क्रान्तिवृत्ताद्याम्योत्तरान्तरज्ञानार्थंसमप्रोतवृत्तमङ्गीकार्यम्। येन दशमभावतुल्यार्के लम्बनाभाव उपपन्नः स्यात्। क्रांतिवृत्तस्य गोलवृत्तत्वेन समप्रोतवृत्तस्य देशवृत्तत्वेन सम्बन्धाभावात्। अतएव भगवता सर्वज्ञेन नतिसाधनार्थमग्रे दृक्क्षेपः कदम्बप्रोतवृत्ते त्रिभोनलग्नस्यैव साधितः। दृक्क्षेपाभावे त्रिभोनलग्नस्य खमध्यस्थत्वेन तदा तस्य दशमभावतुल्यत्वेन दशमभावनतांशाभावाद्दृक्क्षेपाभावः। तदा त्रिभोनलग्नस्य नतांशाभावश्च। नतांशाभावस्त्वक्षांशतुल्योत्तरक्रांतौ सुखार्थं स्थूलांगीकारे तु दशम-

भावस्यैव नतांशोन्नतज्ये दृक्क्षेपदृग्गती नतिलम्बनयोः साधनार्थं समनन्तरमेव भगवतोक्तेर्नतु वस्तुरूपे । आयासेन दृक्क्षेपसाधनस्योक्तस्य वैयर्थ्यापत्तेरिति सर्वं निरवद्यम् ॥ १ ॥

भा० टी०—सूर्यस्फुट मध्यलग्न सम होनेसे लम्बनका सम्भव नहीं होता । उत्तर-अक्षांश और दशमकी क्रान्तिसाम्यमें अवनतिकीभी सम्भावना नहीं है ॥ १ ॥

अथोद्दिष्टयोरभावस्थानातिरिक्तस्थाने सम्भवात्प्रतिपादनं प्रतिजानीते—

देशकालविशेषेण ययावनतिसम्भवः ॥
लम्बनस्यापि पूर्वान्यदिग्वशाच्च तथोच्यते ॥ २

देशविशेषेण कालविशेषेणावनतिसम्भवो नतिकालोत्पत्तिर्गोलस्थित्या यथा भवति । लम्बनस्यापि समुच्चये त्रिभोनलग्नस्थानात् पूर्वापरदिगनुरोधात् चकारात्सम्भवो देशकालविशेषेण यथा भवतीत्यर्थः । तथा तत्तुल्येन नतिलम्बने आनयनद्वारा मया कथ्येते ॥ २ ॥

भा टी०—देशकालके उपरोक्त न होनेसे जो अवनति होती है और मध्यरेखाके पूर्व या पश्चिममें होनेके वशसे जो लंबन होता है, सो इस समय कहता हूं ॥ २ ॥

तत्रोपयुक्तामुदयाभिधामाह—

लग्नं पर्वान्तनाडीनां कुर्यात्स्वैरुदयासुभिः ॥
तज्ज्यान्त्यापक्रमज्याघ्नी लम्बज्याप्तोदयाभिधा ॥ ३ ॥

स्वैः स्वदेशीयैरुदयासुभी राश्युदयासुभिः पर्वघटिकानां लग्नं गणकः कुर्यात् । पर्वान्तकालिकं लग्नं साध्यमित्यर्थः । यद्यपि पूर्वं लग्नसाधनं स्वोदयैरेवोक्तमिति स्वैरुदयासुभिरिति व्यर्थं तथापि समनन्तरमेव दशमभावसाधनोक्त्या कस्यचिद्दशमं व्यक्षोदयैरेवात्र साध्यमिति भ्रमस्य वारणाय पुनरुक्तिः । तस्य लग्नस्यायनांशसंस्कृतस्य ज्याभुजज्यापरमक्रान्तिज्यया गुण्या स्वदेशीयलम्बज्यया भक्ताफलमुदयसञ्ज्ञं स्यात् । अत्रोपपत्तिः । लग्नक्रान्तिज्यासाधनार्थं लग्नभुजज्यायाः परमक्रान्तिज्यागुणात्त्रिज्या हृल्लब्धो लग्नज्याकोटौ त्रिज्याकर्णस्तदा लग्नक्रान्तिज्याकोटौ कःकर्ण इत्यनुपाते त्रिज्ययो र्नाशाल्लग्नभुजज्या परमक्रान्तिज्या गुणालम्बज्यया भक्ताफलं

लग्नस्याग्रा । इयं भगवतोदयसञ्ज्ञोक्ता लग्नस्योदयसंज्ञत्वात् । उदयसम्बन्धाच्चेत्युक्तमुपपन्नम् ॥ ३ ॥

भा० टी—स्वदेशीय उदयप्राणसे पर्वान्तकालकी (सायन) लग्न गिने । तिसकी भुजज्याको परमपक्रमज्या (१३९७) से गुणकरके स्वदेशीय लम्बज्यासे भाग करनेपर उदय होगा ॥ ३ ॥

अथोपयुक्तां मध्यज्यां सार्धश्लोकेनाह—

तदा लङ्कोदयैर्लग्नं मध्यसञ्ज्ञं यथोदितम् ॥
तत्क्रान्त्यक्षांशसंयोगो दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा ॥
शेषं नतांशास्तन्मौर्वी मध्यज्या साभिधीयते ॥ ४ ॥

तदा पर्वान्तकाले लङ्कोदयैर्न्यक्षदेशीयराश्युदयैर्यथोदितं पूर्वोक्तप्रकारेण जातकपद्धत्युक्तनतघटीभिर्धनमृणं यथायोग्यं मध्यसञ्ज्ञं लग्नं दशमभावात्मकं साध्यम् । अत्र लग्नसम्बन्धेन स्वदेशराश्युदयासु ग्रहणशङ्कावारणाय लंकोदयैरित्युक्तम् । तस्य दशमभावस्यायनांशसंस्कृतस्य क्रान्तिः स्वदेशाक्षांशाः। अनयोर्योग एकदिक्त्वे कार्यः । अन्यथा भिन्नदिक्त्वेऽन्तरं तयोरेव शेषं संस्कारजदिक्कानतांशास्तेषां ज्य कार्या सा मध्यलग्ननतांशज्या मध्यज्योच्यते तत्सम्बन्धात् । अत्रोपपत्तिः स्पष्टा ॥ ४ ॥

भा० टी०—तदुपरान्त लङ्कोदयप्राणसे (सायन) मध्यलग्न (दशम) साधन करैं । मध्य लग्नकी क्रान्ति और अक्षांश एक ओर होनेसे योग और अन्यथा वियोग करनेसे शेषनतांश होता है, तिसकी ज्या करनेसे मध्यज्या होती है ॥ ४ ॥

अथाभ्यामुपयुक्तं दृक्क्षेपं लम्बनोपयुक्तां दृग्गतिं च सार्धश्लोकेनाह—

मध्योदयज्ययाभ्यस्ता त्रिज्याप्तावर्गितं फलम् ॥ ५ ॥
मध्यज्यावर्गविश्लिष्टं दृक्क्षेपः शेषतः पदम् ॥
तत्त्रिज्यावर्गविश्लेषान्मूलं शङ्कुः सदृग्गतिः ॥ ६ ॥

पूर्वोक्तमध्यज्या पूर्वानीतोदयाभिधयोदयज्यया । अस्या ज्याहतत्वाज्ज्ययेत्युक्तम् । गुणितात्रिज्यया भक्तफलं वर्गितं वर्गः सञ्जातो यस्य तत् । तस्य वर्गः कार्य इत्यर्थः । मध्यज्यायावर्गे विश्लिष्टं हीनं वर्गितं फलं कार्यम । शेषान्मूलं दृक्क्षेपः स्यात् । दृक्क्षेपत्रिज्ययोर्वा वर्गौ तयोरन्तर-

न्मूलं शंकुः स आनीतः शकुंर्दिग्गतिसञ्ज्ञो भवति । नतु शंकुमात्रम् । अत्रोपपत्तिः । त्रिभोनलग्नस्य दृग्ज्यानयनार्थं क्षेत्रम् । मध्यलग्नदृग्ज्याकर्ण-स्त्रिभोनलग्नस्य याम्योत्तरवृत्तात् प्रागपरस्थितत्वेन तत्खस्वस्तिकान्तरस्थितत-दीयदृग्वृत्ते प्रदेशांशज्या कोटिः । मध्यलग्नत्रिभोनलग्नास्तरांशज्याक्रान्ति-वृत्तस्थो भुजः । अत्र भुजानयनं चोदयलग्नस्थक्रांतिवृत्तप्रदेशः । प्राक्स्व-स्तिकात्तदग्रान्तरेणोत्तरदक्षिणो भवति एवमस्तलग्नप्रदेशः परस्वस्तिकाद्दक्षि-णोत्तरः । तदनुरोधेन च त्रिभोनलग्नप्रदेशक्रांतिवृत्तीययाम्योत्तरवृत्तरूपतद्-दृग्वृत्तं क्षितिजे याम्योत्तरवृत्तक्षितिजसम्पातात्तदाग्रान्तरेण लग्नमवश्यं भवति । अतस्त्रिज्यातुल्यमध्यलग्नदृग्ज्यया लग्नाग्रातुल्यो भुजस्तदाभीष्टतदृग्ज्यया कइत्यनुपातेन सफलसञ्ज्ञः । तद्वर्गोनान्मध्यलग्नदृग्ज्यावर्गान्मूलं त्रिभोनल-ग्नस्य दृग्ज्या दृक्क्षेपाख्या । एतद्वर्गोनात् त्रिज्यावर्गान्मूलं त्रिभोनलग्नशंकु-र्दृग्गतिसञ्ज्ञः । अत्रेदमवधेयम् । त्रिप्रश्नाधिकारोक्तप्रकारेण त्रिभोनलग्नस्य शंकुदृग्ज्ये दृग्गतिदृक्क्षेपतुल्ये न भवतः । किन्तु दृग्गतिदृक्क्षेपाभ्यां क्रमेण न्यूनाधिके भवतः सर्वदा धूलीकर्मणानुभवात् । अत आनीतोऽयं दृक्क्षेप-स्त्रिभोनलग्नदृङ्मण्डल स्थितोऽपि न त्रिज्यानुरुद्धः। किन्तु फलवर्गोनत्रिज्या-वर्गपदरूपविलक्षणवृत्तव्यासार्द्धप्रमाणेन सिद्ध इति गम्यते । अतो दृग्ज्या-यास्त्रिज्यानुरुद्धत्वेन त्रिज्यावृत्तपरिणतो दृक्क्षपस्त्रिभोनलग्नस्य दृग्ज्या-स्फुटदृक्क्षेपरूपा । अस्यास्तत्रिज्यावर्गेत्यादिना दृग्गतिः स्फुटा त्रिभोनलग्न-शंकुरूपा । एतदनुक्तिः स्वल्पान्तरत्वाद्गणितसुखार्थं कृपालुन कृता । त्रिप्रश्नक्रियागौरवमियैतन्मार्गान्तरं लाघवादुक्तमिति दिक् ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा० टी०–मध्यज्याको पहली कही हुई उदयज्यासे गुण करके त्रिज्यासे भाग करके वर्ग करता हुवा मध्यज्यावर्गसे वियोग करके मूल करनेसे दृक्क्षेप होगा, दृक्क्षे-पवर्ग और त्रिज्या वर्गका अन्तर शंकवर्ग है. तिसके मूलको दृक्गति कहते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ लाघवाद्दृक्क्षेपदृग्गती गणितसुखार्थं श्लोकार्धेनाह–

नतांशबाहुकोटिज्ये स्फुटे दृक्क्षेपदृग्गती ॥

दशमभावनतांशानां भुजकोटयोर्नतांशतदूननवतिरूपयोरनयोर्ज्ये क्रमेण दृक्क्षेपदृग्गती अस्फुटे स्थूले। यद्वा स्फुटे प्रागुक्ते दृक्क्षेपदृग्गती विहाय गणितलाघवार्थं दशमभावनतांशभुजकोटयोर्ज्ये तत्स्थानापन्ने ग्राह्ये। यत्तूदयज्याभावे नतांशबाहुकोटिज्ये दृक्क्षेपदृग्गती स्फुटे इति। तन्न। उक्तप्रकारेणैतत्सिद्धेस्तत्कथनस्य व्यर्थत्वात्। अत्रोपपत्तिः। त्रिभोनलग्नस्य दशमभावासन्नत्वेन दशमभावस्य याम्योत्तरवृत्तस्थत्वेन लाघवार्थं दशमभावमेव त्रिभोनलग्नं प्रकल्प्य तन्नतांशज्यामध्यज्यारूपा त्रिभोनलग्नदृक्क्षेपः। उन्नतज्याशंकुदृग्गतिः। इदमतिस्थूलम्। यैस्तु भगवतोक्तं मध्यलग्नं दशमभावपरतया व्याख्यातं तेषां मते एतदुक्तमिति सूक्ष्मम्। प्रयाससाधितदृक्क्षेपदृग्गती प्रागुक्ते सूक्ष्मे अप्यतिस्थूले इति ध्येयम्। भास्कराचार्यैस्तु। " त्रिभोनलग्नस्य दिनार्धजाते नतोन्नतज्ये यदि वा सुखार्थम् " इति यदुक्तं तदस्मात्सूक्ष्ममितिध्येयम्॥

भा० टी० -स्थूलपक्षमें दशम लग्नके नतांशकी बाहु और कोटिज्याको दृक्क्षेप और दृग्गति समझा जाता है॥

अथ लम्बनोपयुक्तच्छेदकथनपूर्वकं लम्बनानयनं सार्द्धश्लोकेनाह—

एकज्यावर्गतश्छेदो लब्धं दृग्गतिजीवया॥ ७॥
मध्यलग्नार्कविश्लेषज्याछेदेन विभाजिता॥
रवीन्दोर्लम्बनं ज्ञेयं प्राक्पश्चाद्घटिकादिकम्[1]॥ ८॥

एकराशिज्याया वर्गाद्दृग्गतिजीवया प्रागुक्तदृग्गत्या। दृग्गतेस्त्रिशंकुरूपत्वेन ज्यारूपत्वाज्जीवयेति स्वरूपप्रतिपादनम्। भागहरणेन लब्धं छेदसंज्ञं स्यात्। अथ मध्यलग्नं त्रिभोनलग्नं दर्शान्तकालिकं न तु दशमभावः तात्कालिकः सूर्यः अनयोरन्तरस्य त्रिभानधिकस्य ज्याछेदेन प्राक्साधितेन भक्ता फलं घटिकादिकं प्राक्पश्चात्त्रिभोनलग्नरूपमध्यलग्नस्थानात्पूर्वापरविभागयोः सूर्यचन्द्रयोस्तुल्यं लम्बनं ज्ञेयम्। अत्रोपपत्तिः। " त्रिभोनलग्नार्कविशेषशिञ्जिनीकृता हता व्यासदलेन भाजिता। हतात्फला द्वित्रिभलग्नशंकुना त्रिभो-

1 प्राक्पश्चाद्घटिकादितत्इति वा पाठः।

वयातं घटिकादिलम्बनम् ॥" इति सिद्धांतशिरोमणौ सूक्ष्मं लम्बनानयनमुक्तम् । तस्योपपत्तिस्तट्टीकायां सुप्रसिद्धा । मध्यलग्नस्य त्रिभोनपरत्वेन व्याख्यानान्मध्यलग्नार्कविश्लेषज्यात्रिभोनलग्नार्कविश्लेषशिञ्जिनीरूपा जाता। इयं चतुर्गुणा त्रिभोनलग्नशंकुरूपदृग्गत्या च गुण्या त्रिज्यावर्गेण भाज्येति लंबनानयनप्रकारेण सिद्धम् । तत्र चतुस्त्रिज्यावर्गयोर्गुणहरयोर्गुणापवर्त्तनेन हरस्थाने एको राशिज्यावर्गः सिद्धः । अत्रापि दृग्गत्यैकराशिज्यावर्गौ गुणहरौ गुणेनापवर्त्यहरस्थाने एकज्यावर्ग इत्यादिना छेद उपपन्नः । हरस्य च्छेदाभिधानात् । अतो मध्यलग्नार्केत्याद्युक्तमुपपन्नम् । लंबनघटीभिरुभयोश्चालनं वक्ष्यमाणगणित आवश्यकमिति सूचनार्थं रवीन्द्वोर्लंबनमित्युक्तम् । अन्यथा दर्शान्तकाले सूर्यगतभूपृष्ठसूत्राचन्द्रकक्षायां चन्द्रचिह्नस्य तद्घटीभिर्लंबितत्वाद्द्वयोरुक्त्यनुपपत्तिः । त्रिभोनलग्नसमेऽर्के लंबनाभावात्पूर्वापरविभागे सूर्ये सति लंबनं भवतीति प्राक्पश्चादित्युक्तम् । अत्रेदमवधेयम् । लम्बनानयने मध्यलग्नस्य त्रिभोनलग्नेत्यर्थे छेदःपूर्वसाधितसूक्ष्मदृग्गत्या सूक्ष्मो नतांशेत्यादिगृहीतस्थूलदृग्गत्या स्थूल इति । एवं मध्यलग्नेत्यस्य दशमभावार्थे तु विपरीतमिति । एतेन मध्यलग्नेत्यस्य दशमभावार्थः । तत्र प्रयाससाधितसूक्ष्मदृग्गत्या सूक्ष्मं लम्बनम् । नतांशेत्याद्युक्तस्थूलदृग्गत्या स्थूललम्बनमिति साम्प्रदायिकोक्तं निरस्तम् । युक्त्यभावात् । नचात्र मध्यलग्नरूपदशमभावगृहेऽपि गोलयुक्त्या प्रतिपादनस्य सत्त्वात्कथमादित्योक्तं मध्यलग्नमिति पदं सार्वजनीनदशमभावप्रत्यायकं त्रिभोनलग्नपरतया हठाद्व्याख्यातुं युक्तम् "नतांशबाहुकोटिज्ये स्फुटे दृक्क्षेपदृग्गती" इत्यत्र स्फुटे इत्यनेन भगवतस्तदाशयस्य व्यक्तीकृतत्वादिति वाच्यम् । तथापि गौरवसाधितदृक्क्षेपोक्तिर्भगवदाशयस्थितत्रिभोनलग्नग्रहणं व्यनक्ति। अन्यथा प्रयाससाधितदृक्क्षेपस्य वैयर्थ्यापत्तेरिति सुधियावलोक्यमित्यलं विस्तरेण ॥ ७ ॥ ८ ॥

भा० टी०-एकराशिज्यावर्गको दृग्गति (ज्या) द्वारा भाग करनेसे छेद होगा । मध्यलग्न और तिस कालका सूर्यका अन्तर करके ज्या करे, तिसको छेदसे भाग करनेपर मध्यलग्नसे पूर्वापर विचार करके रविसे चंद्रमाके लम्बन दण्डादि स्थिर होंगे ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ मध्यग्रहणकालज्ञानार्थं तिथौ लम्बनसंस्कारं तदसकृत्साध्यमिति चाह-

मध्यलग्नाधिके भानौ तिथ्यन्तात्प्रविशोधयेत् ॥
धनमूनेऽसकृत्कर्म यावत्सर्वं स्थिरीभवेत् ॥ ९ ॥

सूर्ये मध्यलग्नं त्रिभोनलग्नं तस्मादधिके सति तिथ्यन्तादृशतिथ्यन्त-कालादागतं लम्बनं शोधयेत् । सूर्ये त्रिभोनलग्नान्न्यूने सति तिथ्यन्तकाले लम्बनं धनं युतं कार्यम् । एवं कर्मगणितमसकृन्मुहुः कार्यम् । अयमर्थः । तिथ्यन्तकालिकः सूर्यो लम्बनघटीभिः क्रमेण पूर्वाग्रिमकाले चाल्पो लम्बनसंस्कृततिथ्यन्तेऽर्को भवति । तस्माल्लम्बनसंस्कृततिथ्यन्तकाले लग्न-दशमभावौ प्रसाध्य पूर्वोक्तरीत्या लम्बनं साध्यम् । इदमपि केवलति-थ्यन्ते संस्कार्योक्तरीत्या लम्बनं केवलं तिथ्यन्ते संस्कार्यम् । अस्मा दपि लम्बलं तिथ्यन्ते संस्कार्यमित्यसकृदिति । गणितावधिमाह—यावदिति । सर्वं गणित लम्बनादि यावद्यत्परिवर्तावधि स्थिरीभवेत् । अविलक्षणं—याव-द्विशेष इत्यर्थः । अत्रोपपत्तिः । दर्शान्तकाले रविगतभूपृष्ठसूत्राच्चन्द्रस्याधो-लम्बितत्वेन त्रिभोनलग्नादूनेरवौ क्रान्तिवृत्ते पूर्वापरान्तराभावैकसूत्रस्थित-त्वरूपयुतिर्दर्शान्तकालाल्लम्बनकालेनाग्रे भवति । शीघ्रगचन्द्रस्य मन गरवितः पृष्ठे स्थितत्वात् । अधिके रवौ चन्द्रस्य पुरः स्थितत्वेन दर्शान्तकाला-ल्लम्बनकालेन पूर्वं युतिर्भवति । अतो दर्शान्तकालो लम्बन संस्कृतो मध्य-ग्रहणकालः स्यात् । युतिकालस्य मध्यग्रहणकालत्वात् । परन्तु तावता लम्बनकालेन सूर्यस्यापि क्रान्तिवृत्ते चलनाल्लम्बनसंस्कृतदर्शान्तकाले रवि-गतभूपृष्ठसूत्राच्चन्द्रस्य लम्बितत्वं स्यादेवेति मध्यग्रहणकालस्त्वसिद्धः । नहि सूर्यो धनलम्बनऋणलम्बने चन्द्रश्च लम्बनकाले स्थिरौ येन तयोर्युतिः सङ्गता स्यात् । अतस्तादृशकालात्पुनस्तात्कालिकं लम्बनं प्रसाध्य दर्शान्ते पुनः संस्कार्यम् । मध्यकालः स्यात् । एवं तादृशलम्बनसंस्कृतदर्शान्तेऽपि तयोर्भूपृष्ठसूत्रस्थत्वाभावात्पुनर्लम्बनं साध्यम् । तत्संस्कृतो दर्शान्तो मध्य-ग्यसकृद्विधिना यदालम्बनं पूर्वलम्बनतुल्यं सिध्यति तदावश्यं तादृश-

लम्बनसंस्कृतदर्शान्तरूपमध्यग्रहणकाले भूपृष्ठसूत्रे तयोः सन्निवेशः । यतस्तदा सूर्यगतभूपृष्ठसूत्रचन्द्रयोरन्तराभावेन पूर्वागतलम्बनतुल्यलम्बनस्य पुनः सिद्धेः । अन्यथा तुल्यलम्बनानुपपत्तेः । तस्मान्मध्यकालोऽसकृद्यावद्विशेषः साध्यइत्युपपन्नं मध्यलग्नेत्यादि ॥ ९ ॥

भा० टी०-मध्यलग्नसे सूर्य अधिक हो तो तिथ्यन्तसे काल-लम्बन अलग करे, नहीं हो अन्यथा योग करे । प्राप्त समयके ऊपर फिर लम्बन साधन करके तिथ्यन्तमें संस्कार करे । जबतक स्थिर न हो तबतक ऐसाही करे ॥ ९ ॥

अथ नतिसाधनमाह-

दृक्क्षेपः शीततिग्मांशोर्मध्यभुक्त्यन्तराहतः ॥
तिथिघ्नात्रिज्यया भक्तो लब्धं सावनतिर्भवेत् ॥ १० ॥

दृक्क्षेपः प्रागानीतः शीततिग्मांशोश्चन्द्रार्कयोर्मध्यगती कलात्मके तयोरन्तरेण गुणि तया त्रिज्यया भक्तः फलं सा देशकालविशेषाख्या या गोले सिद्धा भवति सैवात्र गणिते नतिर्भवेत् । अत्रोपपत्तिः । यदा क्रांतिवृत्तं दृग्वृत्ताकारं तदा नत्यभाव इति प्रागुक्तम् । तत्र त्रिभोनलग्नस्य खमध्यस्थत्वेन दृक्क्षेपाभावः । यत्र च षट्चक्षांशास्तत्र देशे त्रिभोनलग्नस्य क्षितिजस्थत्वेन परमा नतिः । परमास्तु नतिकलाभूगर्भक्षितिजाद्भूपृष्ठाक्षितिजस्य भूव्यासार्धान्तरेणोच्छ्रितत्वाद्गतियोजनैर्गत्यन्तरकला लभ्यन्ते तदा भूव्यासार्धयोजनैः का इत्यनुपातेन तत्र मध्यगतियोजनानां भूव्यासार्धस्य च नियतत्वाद्भूव्यासार्धेनापवर्तः कृतः । तेन मध्यगत्यन्तरकलानां स्वल्पान्तरेण पञ्चदशांशः परमा नतिकलाः । अत एव षष्टिघटिकानां पञ्चदशांशो घटिकाचतुष्टयं परमं लम्बनं सिद्धम् । आभिस्त्रिज्यातुल्यदृक्क्षेपे सूर्यगतभूपृष्ठसूत्राच्चन्द्रस्य दक्षिणोत्तरेणावलम्बनं भवति । अतस्त्रिज्यातुल्यदृक्क्षेपेण मध्यगत्यन्तरपञ्चदशांशो नतिस्तदेष्टदृक्क्षेपेण केत्यनुपाते गत्यन्तरगुणोदृक्क्षेपो हरघातेन पञ्चदशगुणितत्रिज्यात्मकेन भक्तो नतिकला इत्युपपन्नम्॥ १० ॥

भा० टी०-दृक्क्षेपको रविचन्द्रमध्यभुक्त्यन्तरसे गुण करके १५ गुणित-त्रिज्यासे भाग करनेपर अवनति स्थिर होगी ॥ १० ॥

अथ प्रकारान्तराभ्यां नतिसाधनं लाघवादाह—

दृक्क्षेपात्सप्ततिहृताद्भवेद्वावनतिः फलम् ॥
अथवा त्रिज्यया भक्तात्सप्तसप्तकसङ्गुणात् ॥ ११ ॥

सप्तत्या भक्ताद्दृक्क्षेपात्फलं कलादिका नतिः प्रकारान्तरेण भवेत्। अथवा प्रकारान्तरेण सप्तसप्तकसंगुणात्सप्तानां सप्तकं सप्तवारमावृत्तिर्वर्ग एकोनपञ्चाशदित्यर्थः। तेन गुणिता दृक्क्षेपात्त्रिज्यया भक्तात्फलं कलादिका नतिः। अत्रोपपत्तिः। दृक्क्षेपस्य गत्यन्तरकलामित ७३। २७ गुणकपञ्चदशगुणितत्रिज्यामितहरौ ५१५७० प्रथमप्रकारे गत्यन्तरापवर्तितौ हरस्थाने सप्ततिः। द्वितीयप्रकारे पञ्चदशभिरपवर्त्य गुणस्थाने स्वल्पान्तरादेकोनपञ्चाशद्धरस्थाने त्रिज्येत्युपपन्नम् ॥ ११ ॥

भा० टी०—अथवा दृक्क्षेपको ७० से भाग करनेपर वही होगा; या ४९ से गुण करके त्रिज्यासे भाग करनेपर भी होजायगा ॥ ११ ॥

अथ नतेर्दिग्ज्ञानं स्पष्टविक्षेपं चाह—

मध्यज्यादिग्वशात्सा च विज्ञेया दक्षिणोत्तरा ॥
सेंदुविक्षेपदिक्साम्ये युक्ता विश्लेषितान्यथा ॥ १२ ॥

सावनतिर्मध्यज्याया दिगनुरोधाद्दक्षिणोत्तरा मध्यज्या चेद्दक्षिणा तदा नतिरपि दक्षिणा चेदुत्तरा तदोत्तरा ज्ञेया। चः समुच्चये। तेन मध्यज्यानतांशदिकेति। सा दक्षिणोत्तरा नतिश्चन्द्रविक्षेपदिक्समत्वे। तयोरेकदिक्त्वे इत्यर्थः। युक्ता विक्षेपेण युतेत्यर्थः। अन्यथा तयोर्भिन्नदिक्त्वे विक्षेपेणान्तरिताशेषदिक्का विक्षेपसंस्कृता नतिः स्पष्टशररूपा स्यात्। अत्र चन्द्रविक्षेपो मध्यग्रहणकालिक इति ध्येयम्। अत्रोपपत्तिः। नतांशदिक्मध्यज्यावशाद्दृक्क्षेपस्योत्पन्नत्वात्तदुत्पन्ननतेस्तद्दिक्त्वं युक्तमेव। अथ रविगतभूपृष्ठसूत्राच्चन्द्राकाशगोले क्रांतिवृत्तावधि याम्योत्तरांतरस्य नतित्वात्क्रांतिमण्डलाच्चंद्रबिम्बावधि विक्षेपत्वाद्रविगतभूपृष्ठसूत्राच्चंद्रबिम्बावधि याम्योत्तरान्तरस्य सूर्यग्रहणोपयुक्तनतिसंस्कृतविक्षेपरूपस्पष्टविक्षेपत्वादेकदिशि योगो भिन्नदिश्यन्तरमित्युपपन्नम् ॥ १२ ॥

साध्यः। ततः प्रथमकालिकस्पष्टशरात्स्थित्यर्धमनेन पूर्वं तिथ्यन्तकालिकग्रहा-न्प्रचाल्योक्तरीत्या स्पष्टशरं प्रसाध्य स्थित्यर्धं साध्यम्। एवमसकृत्स्पर्श-स्थित्यर्धम्। एवमेव द्वितीयकालिकस्पष्टशरात्स्थित्यर्धमनेनाग्रे तिथ्यन्तकालि-कग्रहान्प्रचाल्योक्तरीत्या स्पष्टशरं प्रसाध्य स्थित्यर्धं साध्यम्। एवमसकृन्मो-क्षस्थित्यर्धमिति। अथाभ्यां स्पर्शमोक्षस्थित्यर्धाभ्यां क्रमे हीनयुताद्दर्शान्त-कालातु प्राग्दुक्तरीत्या लम्बनं पुनरसकृद्ग्रासमोक्षोद्भवं स्पर्शमोक्षकालिकं कार्यम्। तथाहि। स्पर्शस्थित्यर्धहीनात्तिथ्यन्तात्तात्कालिकसूर्याल्लग्नदशम-भावौ प्रासाध्योक्तरीत्यास्माल्लम्बनं साध्यम्। तेन स्पर्शस्थित्यर्धोनतिथ्यन्तं संस्कृत्यास्माल्लम्बनमनेनापि स्पर्शस्थित्यर्धोनतिथ्यन्तं संस्कृत्यास्माल्लम्बनमे-वमसकृत्स्पर्शकालिकं लम्बनम्। एवमेव मोक्षस्थित्यर्धयुतात्तात्कालिकसूर्या-ल्लग्नदशमभावौ प्रसाध्योक्तरीत्या लंबनं साध्यम्। तेन मोक्षस्थित्यर्धयुतति-थ्यन्तं संस्कृत्यास्माल्लंबनमनेनापि मोक्षस्थित्यर्धयुततिथ्यन्तं संस्कृत्यास्माल्ल-म्बनमेवमसकृन्मोक्षकालिकं लंबनमिति। प्राक्कपाले त्रिभोनलग्नात्पूर्वभागे त्रिभोनलग्नाधिके रवौ मध्यान्मध्यकालिकात्। अग्रोक्तलंबनस्य विभक्ति-विपरिणामादन्येन लंबनात्प्रग्रहणं। प्रग्रहणं स्पर्शः। स्पर्शकालिकम्। अत्रापि लम्बनमित्यस्यान्वयः। लम्बनं चेदधिकं स्यात्। मौक्षिकं मोक्ष-कालसंबन्धि लंबनं न्यूनं स्यात्। पश्चार्द्धे त्रिभोनलग्नात्पश्चिमभागे त्रिभो-नलग्नाद्धीने रवौ। तुकारः समुच्चयार्थकचकारपरः। विपर्यय उक्तवैपरीत्यम्। मध्यकालिलम्बनात्स्पर्शकालिकं लम्बनं न्यूनं मोक्षकालिकं लम्बनमधिकमि-त्यर्थः। तदा तर्हि तन्मध्यहरीजान्तरम्। तयोः स्पर्शमोक्षकालिकलंबनेन प्रत्येकमन्तरं मोक्षस्थित्यर्धे योज्यम्। प्राग्रहणे स्पर्श स्थित्यर्धे तथा देयम्। मोक्षमध्यकालिकलंबनयोरन्तरं मोक्षस्थित्यर्धे योज्यम्। स्पर्शमध्यकालिक-लम्बनयोरन्तरं स्पर्शस्थित्यर्धे योज्यमित्यर्थः। यत्र यस्मिन्काले विपर्यय उक्तवैपरीत्यं प्राक्कपाले मध्यकालिकलंबनात्स्पर्शकालिकलंबनं न्यूनं मोक्ष-कालिकलंबनमधिकं पश्चिमकपाले तु मध्यकालिकलम्बनात्स्पर्शकालिकलं-बनमधिकं मोक्षकालिकलंबनं न्यूनं भवतीत्यर्थः। तत्रैतन्मोक्षस्पर्शमध्यकालिकं

हरिजान्तरकं लम्बनान्तरं मोक्ष स्थित्यर्धे मध्यमोक्षकालिकलंबनयोरन्तरं स्पर्शस्थित्यर्धे मध्यस्पर्शकालिकम्बनयोरन्तरमित्यर्थः। शोध्यं हीनं कुर्यात्। एतल्लम्बनांतरं योज्यं शोध्यं वा कपालैक्ये द्वयोः स्पर्शमध्ययोर्मध्यमोक्षयोर्वैक-कपाले स्वस्वकालिकत्रिभोनलग्नात्स्वकालिकसूर्य उभयत्राधिके न्यूनेवेत्यर्थः। उक्तं कथितम्। तद्भेदे तयोः स्पर्शमध्योर्मध्यमोक्षयोश्च भेदे कपालभेदे स्पर्श-कालिकत्रिभोनलग्नात्तात्कालिकसूर्यस्याधिक्ये मध्यकालिकत्रिभोनलग्ना-त्तात्कालिकार्कस्य न्यूनत्वे मध्यकालिकत्रिभोनलग्नात्तात्कालिकार्कस्याधि-कत्वे मोक्षकालिकत्रिभोनलग्नात्तात्कालिकार्कस्य न्यूनत्व इत्यर्थः। लम्बनै-कता लम्बनैक्यम्। स्पर्शमध्ययोर्भेदे तात्कालिकलम्बनयोर्योगः। मध्यमोक्ष-योर्भेदात्तात्कालिकलम्बनयोर्योग इत्यर्थः। स्वकीये स्वकीये स्थित्यर्द्धे संयुक्ता कार्या। स्पर्शस्थित्यर्द्धे स्पर्शमध्यकालिकलम्बनयोर्योगो योज्यः। मोक्षस्थि-त्यर्द्धे मोक्षमध्यकालिकलम्बनयोर्योगो योज्य इत्यर्थः। स्पर्शस्थित्यर्धं मोक्ष-स्थित्यर्धं च स्फुटं भवति। आभ्यां चन्द्रग्रहणोक्तदिशा मध्यग्रहणकालात्पूर्व-मपरत्र क्रमेण स्पर्शमोक्षकालौ स्त इत्यर्थसिद्धम्। अथोक्तरीत्या विमर्दार्धेपि स्पष्टत्वनतिदिशति–विमर्दार्ध इति। स्पर्शमर्दार्द्धमोक्षमर्दार्धे चन्द्रग्रहणाधिका-रोक्तरीत्या स्पष्टशरेण सकृत्साधिते उक्तवत्। स्थित्यर्धेनाधिकात्प्राग्वत्तिथ्यं-तालंबनं पुनः ' इत्याद्युक्तरीत्या स्थित्यर्धस्थाने मर्दार्धग्रहणेन ग्रासमोक्षोद्भव-मित्यत्र संमीलनोन्मीलनोद्भवमिति ग्रहणेन प्राग्ग्रहणमित्यत्र संमीलनग्रहणेन मौक्षिकमित्यत्रोन्मीलनग्रहणे स्फुटे साध्ये। अपिः समुच्चये। चाकारात्ता-भ्यां सम्मीलनोन्मीलनकालौ मध्यग्रहणकालात्पूर्ववत्साध्यावित्यर्थः। अत्रो-पपत्तिः। स्थित्यर्धोनयुतो मध्यग्रहणकालः स्पर्शमोक्षकालः। मध्यकालि-कलम्बनसंस्कारात्। स्पर्शमोक्षकालिकलम्बनसंस्कारस्यापेक्षितत्वाच्च। नहि यः कालो लम्बनसंस्कृतः स्फुटः स त्वभिन्नकालिकलम्बनसंस्कृतः स्फुटः स्यात्सम्बन्धाभावात्। पूर्वस्पर्शमोक्षकालयोरज्ञानात् तात्का-लिकलम्बन ज्ञानाभावाच्च। अतो मध्यकालज्ञानार्थं यथा तिथ्यन्तादसकृ-ल्लम्बनं प्रसाध्य तिथ्यन्ते संस्कृत्य मध्यकालस्तथा स्पर्शमोक्षस्थित्यर्धहीन-

युक्ततिथ्यन्तकालाभ्यां स्पर्शमोक्षतिथ्यन्तरूपाभ्यां प्रत्येकं लम्बनमसकृत्प्रसाध्य स्वस्वतिथ्यन्ते संस्कृत्य स्पर्शमोक्षकालौ स्फुटौ तन्मध्यकालयोरन्तरं स्फुटं स्थित्यर्धम् । तत्रर्णलम्बनेन स्पर्शमध्यमोक्षोत्पत्तौ यदा मध्यलम्बनादधिकं स्पर्शलम्बनं मोक्षलंबनं चान्यूनं तदा स्पर्शस्थित्यर्धोनतिथ्यन्तस्याधिकलम्बनोनितस्य स्पर्शकालत्वान्न्यूवलम्बनोनितस्य तिथ्यन्तस्य मध्यकालत्वात्तयोरन्तरे तिथेः समत्वेन नाशात्स्पर्शस्थित्यर्धं स्पर्शकालिकलम्बनेन युतं मध्यकालिक लम्बनेन हीन मिति लम्बनयोरन्तरं तत्र धनं योज्यम् । एवं मोक्षस्थित्यर्धयुततिथ्यन्तस्य यूनलम्बनोनितस्य मोक्षकालत्वान्मध्यमोक्षकालयोरन्तरे पूर्वरीत्या मध्यमोक्षकालिकयोर्लम्बनयोरंतरं धनं मोक्षस्थित्यर्धेयोज्यम्। यदा तु मध्यलम्बानाद्धीनं स्पर्शलंबनं मोक्षलंबनं चाधिकं तदा न्यूनलम्बहीनस्य स्पर्शकालत्वादधिकं लंबनम् । हीनस्य मध्यकालत्वादुक्तरीत्या तदन्तरे स्पर्शस्थित्यर्धे लंबनान्तरं हीनम् । एवमधिकलंबनहीनस्य मोक्षकालत्वान्मध्यमोक्षयोरन्तरे मोक्षस्थित्यर्धे लंबनान्तरं हीनम् । धनलंबनेन स्पर्शमध्यमोक्षोत्पत्तौ तु यदा मध्यलंबनान्न्यूनं स्पर्शलंबनं मोक्षलंबनं चाधिकं तदा स्पर्शस्थित्यर्धोनतिथ्यन्तस्य न्यूनलंबनाधिकस्य स्पर्शकालत्वादधिकलंबनाधिकस्य तिथ्यन्तस्य मध्यकालत्वात्तयोरन्तरे लंबनान्तरं स्पर्शस्थित्यर्धे योज्यम् । एवं मोक्षस्थित्यर्धयुता तिथ्यन्तस्याधिकलंबनाधिकस्य मोक्षकालत्वान्मध्यमोक्षयोरन्तरे लंबनान्तरं मोक्षस्थित्यर्धे पूर्वरीत्या योज्यम् । यदा तु मध्यलंबनादधिकं स्पर्शलंबनं मोक्षलंबनं च न्यूनं तदा अप्यधिकलंबनाधिकस्य स्पर्शकालात्वाद्धीनलंबनाधिकस्य मध्यकाल त्वात्तयोरन्तर उक्तरीत्या स्पर्शस्थित्यर्धे लंबनान्तरं हीनमिति सिद्धम् । नन्वयं लंबनान्तरहीनपक्षो न संगतः । बाधात् । तथाहि । ऋणलंबनस्य क्रमेणापचयात्स्पर्शमध्यमोक्षकालानां यथोत्तरं सम्भवाच्च मध्यकालिकलंबनात्स्पर्शमोक्षकालिकलंबनयोः क्रमेण न्यूनाधिकत्वमसिद्धम् । एवं धनलंबनस्य क्रमेणोपचयान्मध्यलंबनात् । स्पर्शमोक्षकालिकलंबनयोः क्रमेणाधिकन्यूनत्वमसिद्धम् । नहि कदा-न्मध्यकालात्स्पर्शमोक्षकालक्रमेणाग्रिमपूर्वकालयोः सम्भवतो येनोक्तं यु-

क्रम् । बाधात् । तथा च लंबनान्तरं योज्यमित्यस्यैवोपपन्नत्वे महतैवावता प्रपंचेन । "हरिजान्तरकं शोध्यं यत्रैतत्स्याद्विपर्ययः" इति सर्वज्ञभगवदुक्तं कथं निर्वहतीति चेत् । मैवम् । लंबनसंस्कृतस्पर्शमोक्षकालयोः स्फुटयोर्वस्तुभूतयोः सर्वदा मध्यकालात्क्रमेण पूर्वोत्तरावश्यंभावित्वेऽपि लंबनासंस्कृतयो स्थित्यर्धोन युततिथ्यन्तरूपस्पर्शमोक्षकालयोः पारिभाषिकत्वेनावास्तवयोः कदाचिन्मध्यकालर्णधनलंबनाभ्यां स्पर्शस्थित्यर्धमोक्षस्थित्यर्धयोः क्रमेण न्यूनत्वं मध्यकालदग्रिमपूर्वकालयोः क्रमेण संभवात्स्फुटोनिर्वाहः । परन्मृहणलंबने धनलंबने च मध्यलंबनात्क्रमेण मोक्षस्पर्शलंबनयोरधिकत्वासंभवः । मध्यकालात्पूर्वाग्रिमकालयोर्मोक्षस्पर्शयोः पारिभाषिकयोः क्रमेणासंभवात् । अतः साक्षात्काण्ठोक्तेरभावाद्विपर्यय इत्यनेन विपर्ययविशेषस्यैव विवक्षितत्वम् । पूर्वं तु साधारण्याच्छब्दस्य साधारण्येन व्याख्यानं कृतमित्यदोषः। ननु तथाप्यसकृल्लंबनसाधने लंबनस्य स्पष्टस्पर्शमोक्षकालाभ्यां सिद्धत्वेनर्णलंबनात्स्पर्शलंबनं न्यूनं भवत्येव । धनलंबने मोक्षलंबनं न्यूनं न भवत्येव। मध्यकालाद्वास्तवस्पर्शमोक्षकालयोः क्रमेणाग्रिमपूर्वकालयोरसंभवनिर्णयात् । अन्यथा स्थिरलंबनासंभवात् । किञ्चासकृल्लंबनसाधनेनयत्कालात्स्थिरलंबनं सिद्धं तत्कालस्य सूक्ष्मस्पर्शमोक्षकालत्वात्स्फुटस्थित्यर्धसाधनं व्यर्थम् । तस्य तज्ज्ञानार्थमेवावश्यकत्वात् । नच चन्द्रग्रहणरीत्या स्पर्शमोक्षकालयोर्ज्ञानार्थं स्फुटस्थित्यार्धोक्तिरिति वाच्यम् । गौरवाद्व्यर्थत्वाद्धरिजांतरकं शोध्यमित्यस्यानुपपत्तेश्चेति चेन्न । लंबनयोरसकृत्साधनस्यानंगीकारात् । सकृत्साधितलंबनस्य सांतरत्वेऽपि भगवता स्वल्पांतरेणांगीकाराच्च । अतएव लंबनं पुनरित्यत्र पुनरित्यस्य व्याख्यान मसकृदिति पूर्वमुक्तं न युक्तम् । किंतु मध्यकालार्थं लंबनस्य साधनात्स्पर्शमोक्षकालार्थमपि द्वितीयवारं लंबनं साध्यमिति व्याख्यानम् । पुनरिति वाक्यलंकरणं वा युक्ततरमिति । अथ यदा स्थूलस्पर्शकालर्णलंबने धनलम्बने च मध्यकालस्तदा स्पर्शस्थित्यर्धोनतिथ्यंतस्य लंबनहीनस्य स्पर्शकालत्वाल्लंबनाधिकतिथेर्मध्यकालत्वा तदन्तरे स्पर्शस्थित्यर्धं तात्कालिकलंबनयोर्योगेन युक्तमित्युक्तरीत्योपप-

ध्यते । एवं यदा मध्यकालर्णलंबने स्थूलमोक्षकालश्च धनलंबने तदा लंबनहीनतिथ्यंतस्य मध्यकालत्वात्मोक्षस्थित्यर्धयुततिथ्यंतस्य लंबनाधिकस्य मोक्षकालत्वात्तदंतरे मोक्षस्थित्यर्धं लंबनयोगयुक्तमित्युपपन्नम् । नचासकृल्लंबनसाधनेन सूक्ष्मस्पर्शमोक्षयोः सिद्धौ सकृल्लंबनांगीकारेणोक्तरीतेः सांतरत्वात्कथं भगवतः सर्वज्ञस्यास्यां रीत्यामभिनिवेश इति वाच्यम् । असकृल्लंबनसाधने प्रयासाधिक्यभयाद्भगवता सर्वज्ञेन स्वल्पांतरांगीकाराल्लाघवाच्च चंद्रग्रहणोक्तरीत्यानुगमार्थं स्फुटस्थित्यर्धसाधनस्यैवोक्तेरिति दिक् । वस्तुतस्तु सूर्योदयाद्यत्र प्राक्स्पर्शोऽनंतरं मध्यकालस्तदा मध्यलंबनात्स्पर्शलंबनं सत्रिभलग्नचतुर्थभावसाधितं कदाचिन्न्यूनं भवति । यत्र चोदयात्पूर्वं मध्यः परतो मोक्षस्तत्र कदाचित्सत्रिभलग्नचतुर्भावानीतमध्यकाललंबनात्मोक्षकाललंबनमधिकं भवति । यत्र चास्मात्पूर्वं स्पर्शः परतो मध्यस्तदा मध्यकाललंबनाद्रात्रिसंबंधात्स्पर्शकाललंबनं कदाचिदधिकं भवति । यत्र चास्मात्पूर्वं मध्यकालः परतो मोक्षस्तदापि मध्यकाललंबनान्मोक्षकाललंबनं रात्रिसंबद्धं न्यूनं न भवति । कदाचिदिति । ग्रस्तोदमग्रस्तास्तयोः । कदाचिद्विपर्ययसंभवाद्धरिजांतरकं शोध्यमित्यस्य नाप्रसिद्धिः । एतेन लंबनमसकृन्न साध्यं विपर्यय इति विपर्यय विशेष इति चोक्तं समाधानं निरस्तमिति तत्त्वम् । विमर्दार्धेऽप्युक्तरीतिस्तुल्येति । सर्वमुपपन्नम् भास्कराचार्यैस्तु " तिथ्यन्ताद्गणितागतात् स्थितिदलेनोनाधिकाल्लम्बनं तत्कालोत्थनतीषु संस्कृतिभवस्थित्यर्धहीनाधिके । दर्शान्ते गणितागते धनमृणं यद्वा विधायासकृज्ज्ञेयौ प्रग्रहमोक्षसञ्ज्ञसमयावेवं क्रमात्स्फुटौ ॥ तन्मध्यकालान्तरयोः समाने स्पष्टे भवेतां स्थितिखंडके च । दर्शान्ततो मर्ददलोनयुक्तात्सम्मीलनोन्मीलनकाल एवम् ॥" इत्यनेन भगवदुक्तादतिसूक्ष्ममुक्तामित्यलं पल्लवितेन॥१४–१७॥

भा० टी०–तिथ्यन्तमें स्थित्यर्द्धहीन या योगकाके असकृत कर्मके द्वारा स्पर्श और मोक्षकालके लंबसाधन करो । मध्यलग्नके पूर्वमें रवि होनेपर स्पर्शकालीन लंबन मध्यकालीनकी अपेक्षा और वह मोक्षकी अपेक्षा अधिक होगा । पश्चिम दिशामें होनेसे उलटा होता है । तिसकाल मध्यलग्नके पूर्व होनेसे मोक्षलंबन और मध्यलंबनके अन्तर मोक्षस्थित्यर्द्ध योग और स्पर्शलंबन और मध्यलंबनके अन्तर स्पर्श-

स्थित्यर्द्ध योग, अन्यथा विपरीत करनेसे स्पष्टस्थित्यर्द्ध होगा । स्पर्श और मध्य या मध्य और मोक्ष यदि मोक्षरेखाके दोनों ओर हों, तो लंबनयोग करना चाहिये और स्थितिदलमें योग करना होगा । इस प्रकार विमर्दार्द्ध स्थिरकरे ॥ १४--१७ ॥

अथाग्रिमग्रंथस्यासङ्गतित्वनिरासार्थमधिकारसमाप्तिं फक्किकयाह । इति सूर्यग्रहणाधिकारः । इतिस्पष्टम् । रंगनाथेन रचिते सूर्यसिद्धान्तटिप्पणे । सूर्यग्रहाधिकारोऽयं पूर्णो गूढप्रकाशके ॥ इति श्रीसकलगणकसार्वभौमबल्लालदैवज्ञात्मजरंगनाथगणकविरचिते गूढार्थप्रकाशके सूर्यग्रहणाधिकारः संपूर्णः ॥

इति पंचमोऽध्यायः समाप्तः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

अथ परिलेखाधिकारो व्याख्यायते । तत्र तं सप्रयोजनं प्रतिजानीते–

न च्छेद्यकमृते यस्माद्भेदा ग्रहणयोः स्फुटाः ॥
ज्ञायन्ते तत्प्रवक्ष्यामि च्छेद्यकज्ञानमुत्तमम् ॥ १ ॥

यस्मात्कारणाद्ग्रहणयोश्चन्द्रसूर्यग्रहणयोः । द्विवचनेन ग्रहणत्वेन पूर्वाधिकारयोरेकाधिकारत्वं निरस्तम् । भेदाः कस्यां दिशि स्पर्शमोक्षौ सम्मीलनोन्मीलने ग्रस्तोंऽशः कियानित्यादिभेदाः । स्फुटा गोलस्थितिसिद्धा वास्तवाः । छेद्यकं गोलस्थितिप्रदर्शकः कल्पितः प्रकारश्छेद्यकपदवाच्यस्तम् । ऋते विना । छेद्यकव्यतिरकेणेत्यर्थः । न ज्ञायन्ते । तत्तस्मात्कारणात् । ग्रहणभेदज्ञानार्थमित्यर्थः । उत्तमं सूक्ष्मं तद्भेदज्ञानसाधकं छेद्यकज्ञानम् । ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानं परिलेखसाधकग्रन्थं सूर्यांशपुरुषोऽहं प्रवक्ष्यामि कथयामि ॥ १ ॥

भा० टी०–छेदकके विना दोनों ग्रहणोंकी स्पर्शमोक्षादिक् या परिमाणभेद स्पष्ट नहीं होता इससे इस समय छेदकज्ञान कहता हूं ॥ १ ॥

तत्र प्रथमं वलवृत्तं लिखेदित्याह–

सुसाधितायामवनौ विन्दुं कृत्वा ततो लिखेत् ॥
सप्तवर्गाङ्गुलेनादौ मण्डलं वलनाश्रितम् ॥ २ ॥

आदौ प्रथमं सुसाधितायां जलवत्समीकृतायामवनौ पृथिव्यामभीष्टस्थाने बिन्दुं वृत्तमध्यज्ञापकचिह्नं कृत्वा ततश्चिन्हात्सप्तवर्गांगुलमितेन व्यासार्धेन मण्डलं वृत्तं वलनाश्रितं प्रागुक्तस्फुटवलनमाश्रितं यंत्र वलनाश्रयीभूतं वलनदानार्थं वृत्तं मित्यर्थः । लिखेद्ग्रहणभेदज्ञानेच्छुर्गणक उल्लिखेत् । अत्रोपपत्तिः प्रागुक्ता ॥ २ ॥

भा० टी०—साधितसमतल भूमिमें बिन्दुचिह्न करके ४९ अंगुली व्यासार्द्ध परिमित वलनाश्रयके लिये वृत्त रचना करे ॥ २ ॥

अथ द्वितीयतृतीयवृत्ते आह—

ग्राह्यग्राहकयोगार्धसम्मितेन द्वितीयकम् ॥
मण्डलं तत्समासाख्यं ग्राह्यार्धेन तृतीयकम् ॥ ३ ॥

ग्राह्यग्राहकबिम्बमानांगुलयोर्योगार्धमितेगांगुलात्मकव्यासार्धेन द्वितीयमेव द्वितीयकं द्वितीयवृत्तं लिखेत् । तद्वृत्तं समाससञ्ज्ञं योगोत्पन्नत्वात् । तृतीयकं वृत्तं ग्राह्यबिम्बांगुलार्धमितेन व्यासार्द्धेन लिखेत् । अत्रोपपत्तिः । ग्रहणे शरस्य मानैक्यखण्डन्यूनत्वाद्विक्षेपो मानैक्यखण्डवृत्त इति । विक्षेपदानार्थं मानैक्यखण्डवृत्तलेखनम् । तत्परिधिकेन्द्रग्राहकार्धव्यासार्धवृत्तेन ग्राह्यवृत्तेऽवश्यं योगात्समाससञ्ज्ञम् । ग्राह्यवृत्तं तु ग्रहण भेदज्ञानार्थमत्युपयुक्तं न हितद्वृत्तं विना तद्भेदज्ञानं संभवति ॥ ३ ॥

भा० टी०—ग्राह्यग्राहक बिम्बमानांगुलीका योगार्द्धपरिमित व्यासार्द्ध लेकर द्वितीय वृत्त (समासवृत्त) और ग्राह्यग्रहमानार्द्ध लेकर तीसरा वृत्त बनावे ॥ ३ ॥

अथ तद्वृत्तेषु दिक्साधनातिदेशं स्पर्शमोक्षवलनदानार्थं स्पर्शमोक्षदिङ्नियमं चाह—

याम्योत्तराप्राच्यपरासाधनं पूर्ववद्दिशाम् ॥
प्रागिन्दोर्ग्रहणं पश्चान्मोक्षोऽर्कस्य विपर्ययात् ॥ ४ ॥

दिशामष्टदिशां मध्ये याम्योत्तराप्राच्यपरासाधनं पूर्ववत् । 'शिलातलेऽम्बुसंशुद्धे' इत्यादित्रिप्रश्नाधिकारोक्तरीत्या. कार्यम् । तथाहि । द्वादशांगुलशङ्कोर्मध्यकेन्द्रस्थापितस्याद्यवृत्ते पूर्वाह्णे छायाप्रवेशोऽपराह्णे छायानिर्गमस्तचिह्नाभ्यां मत्स्यमुत्पाद्य रेखायाम्योत्तरा सा वृत्तबाह्येऽधिका सम्मार्ज-

नीया । तदितरभागे वृत्तमध्यपूरणी या वृत्ते याम्योत्तरा रेखा भवति । तदग्रमत्स्यात्पूर्वापरारेखा सोभयतो वृत्तवाह्ये सम्मार्जनीया । सा वृत्ते पूर्वापरारेखा भवतीति । चन्द्रस्य पूर्वदिशि ग्रहणं ग्रहणारंभः स्पर्श इति यावत् । पश्चिमदिशि मोक्षो ग्रहणान्तः । अर्कस्य विपर्ययात्स्पर्शमुक्ती ज्ञेयम् । ग्रहणादिरूपस्पर्शः पश्चिमायां ग्रहणान्तरूपमोक्षः प्राच्यामित्यर्थः । अत्रोपपत्तिः । वृत्ते दिक्साधनेन दिशः सममण्डलीयाङ्किताः । एतच्चिह्नाद्वलनान्तरेण क्रान्तिवृत्तादिशां सत्त्वात् । तत्र स्पर्शमोक्षदिङ्नियमार्थः क्रांतिवृत्तप्राच्यपरानुसारेण चन्द्रसूर्ययोः स्पर्शमोक्षौ निर्णेयौ । ग्रहभोगस्य तद्वृत्तानुसारित्वात् । शीघ्रगचन्द्रः सूर्यषड्भांतरितभूच्छायां सूर्यगत्यनुरुद्ध गमनां प्रति पश्चादागत्य मेलनारम्भं करोत्यतश्चन्द्रविम्बस्य पूर्वभागे स्पर्शः । भूभामतिक्रम्याग्रे चन्द्रो यदा गच्छति तदा चन्द्रस्य पश्चाद्भागे भूभावियोगोऽतः पश्चान्मोक्षः । सूर्यं चंद्रः पश्चादात्याच्छादयत्यतः सूर्यस्य पश्चिमभागे स्पर्शः पूर्वभागे मोक्ष इति ॥ ४ ॥

भा॰टी॰–पूर्ववत् दक्षिण उत्तर पूर्व पश्चिम चारों दिशामें गई रेखाको साधन करे । चन्द्रग्रहण पूर्वमें स्पर्श और पश्चिममें मोक्ष होता है । परन्तु सूर्यग्रहणसे इससे विपरीत होता है ॥ ४ ॥

अथ वलनवृत्ते वलनदानमाह–

यथादिशं प्राग्ग्रहणं वलनं हिमदीधितेः ॥
मौक्षिकं तु विपर्यस्तं विपरीतमिदं रवेः ॥ ५ ॥

चंद्रस्य ग्राह्यस्य स्पार्शिकं वलनं पूर्वचिह्नाद्यथादिशं दक्षिणं चेद्दक्षिणाभिमुखमुत्तरं चेदुत्तराभिमुखं पूर्वापरसूत्रादर्धज्यावद्वलनाश्रितवृत्ते देयम् । अतएव तद्वृत्तं वलनाश्रित मुक्तम् । मौक्षिकं मोक्षकालिकं तुकाराच्चन्द्रस्य वलनम् । विपर्यस्तं विपरीतं पश्चिमचिह्नात्पूर्वापरसूत्रादर्धज्यावद्दक्षिणं चेदुत्तरदिगभिमुखमुत्तरं चेद्दक्षिणदिगभिमुखं देयमित्यर्थः । सूर्यग्रहणे विशेषमाह । विपरीतमिति । सूर्यस्य ग्राह्यस्येदं स्पार्शिकं मौक्षिकं वलनं विपरीतं व्यस्तम् । मौक्षिकं वलनं पूर्वचिह्नात्पूर्वापरसूत्रादर्धज्यावद्दक्षिणं चेद्दक्षिणदिगभिमुख-

सुत्तरं चेदुत्तरदिगभिमुखं स्पार्शिकं वलनं पश्चिमचिह्नात्पूर्वापरसूत्रादर्धं ज्यावद्दक्षिणं चेदुत्तरदिगभिमुखमुत्तरं चेद्दक्षिणदिगभिमुखं देयमित्यर्थः। अत्रोपपत्तिः। चन्द्रस्य पूर्वभागे स्पर्श इति सममण्डलपूर्वचिह्नाद्वलनान्तरेण स्पर्श इति तद्वृत्ते यथाशं स्पार्शिक वलनं देयम्। पश्चिमोत्तराभिमुखस्य दक्षिणत्वाद्दक्षिणाभिमुखस्योत्तरत्वान्मौक्षिकं वलनं पश्चिमचिह्नाद्विपरीतं देयम्। सूर्यस्य तु पश्चिमभागे स्पर्शात्पश्चिमचिह्नात्स्पार्शिकं वलनं व्यस्तं देयम्। पूर्वभागे मोक्ष इति मौक्षिकं वलनं पूर्वचिह्नाद्यथाशं देयमिति ॥ ५ ॥

भा० टी०—वलनश्रयवृत्तके पूर्वभागमें चन्द्रग्रहणके स्थलमें स्पर्श वलनादिकके अनुसार ज्यारूपमें वलनकी रचना करे। परन्तु मोक्षकालमें वलनादिशाकी विपरीत दिशामें वृत्तके पश्चिमार्द्धमें ज्याकी रचना करे। सूर्यग्रहणमें इससे उलटा होगा ॥५॥

अथ द्वितीयवृत्ते स्पार्शिकमौक्षिकविक्षेपयोर्दानमाह—

वलनाग्रान्नयेन्मध्यं सूत्रं यद्यत्र संस्पृशेत् ॥
तत्समासे ततो देयौ विक्षेपौ ग्रासमौक्षिकौ ॥ ६ ॥

प्रथमवृत्ते यत्र स्पार्शिकवलनाग्रं यत्र च मौक्षिकवलनाग्रं ज्ञातं तस्माद्यत्प्रत्येकं सूत्ररेखामित्यर्थः। मध्यं वृत्तमध्यबिन्दुं केन्द्ररूपं प्रति नयेत्। तद्रेखात्मकं सूत्रं समासे समासाख्यद्वितीयवृत्तपरिधौ यत्र यस्मिन्प्रदेशे संस्पृशेत् स्पर्शं कुर्यात्ततस्तत्सूत्रादवधिरूपात्समासवृत्तेऽर्धज्यावद्यथादिशं स्पार्शिकमौक्षिकौ विक्षेपौ यथायोग्यं देयौ। अत्रोपपत्तिः। वलनाग्रसूत्रं मानैक्यखण्डवृत्ते यत्र लग्नं तत्रक्रान्तिवृत्तप्राच्यपरा वा ततः सूर्याच्चन्द्रस्य विक्षेपान्तरेण सत्त्वात्समासवृत्ते वलनाग्रसूत्राद्विक्षेपो देयो ग्राहकबिम्बकेन्द्रज्ञानार्थम्। परं सूर्यग्रहणे। चन्द्रग्रहणे तु चन्द्रस्य विक्षेपवृत्तत्वात्तदा नतिवलनदानादवगतवलनाग्ररेखामानैक्यखण्डवृत्तं यत्र लग्नात्तत्र क्रान्तिवृत्तानुसृतप्राच्यपराविक्षेपमण्डले तत्स्थाने छायाचन्द्राच्छादकः सूर्यो विक्षेपान्तरेण विक्षेपदिग्विपरीत दिशि भवतीति वलनाग्रसूत्रात्समासवृत्तेऽर्धज्यावच्छरो व्यस्तो देय इति सिद्धम् ॥ अत एव विपरीताः शशाङ्कस्येत्यग्र उक्तम् ॥ ६ ॥

भा० टी०-वलनाग्रसे मध्यबिन्दुतक सूत्र रचना करे । इस सूत्रने समास-वृत्तको

जहांपर स्पर्श किया है उसी सूत्रके ऊपर समास वृत्तमें स्पर्श और मोक्ष विक्षेपके परीमाणकी ज्यानिर्माण करे ॥ ६ ॥

अथ ग्राह्यवृत्ते स्पर्शमोक्षस्थानज्ञानमाह–

विक्षेपाग्रात्पुनः सूत्रं मध्यबिन्दुं प्रवेशयेत् ॥
तद्ग्राह्यबिन्दुसंस्पर्शाद्ग्रासमोक्षौ विनिर्दिशेत् ॥ ७ ॥

विक्षेपाग्रसमावृत्ते यत्र लग्नं तस्मात्सूत्रं रेखामित्यर्थः । अत्र रेखा सरला नायातीति शङ्कया प्रथमतोऽवधिद्वयान्तं सूत्रं धृत्वा तदनुसारेण रेखा कार्येति सूचनार्थं सूत्रोक्तिः सर्वत्रेति ध्येयम् । पुनर्द्वितीयवारं पूर्ववलनाग्राद्रेखाया मध्यकेन्द्रावधिकायाः कृतत्वात्तथैव विक्षेपाग्राद्रेखामित्यर्थः । वृत्तमध्यरूप-केन्द्रबिन्दुं प्रति गणकः प्रवेशयेत्प्रविष्टं कुर्यादित्यर्थः । तद्रेखाग्राह्यबिम्ब-वृत्तपरिध्योः संयोगाद्ग्रासमोक्षौ स्पर्शमोक्षौ गणको विनिर्दिशेत्कथयेत् । स्पार्शि-कशराग्रसूत्रं ग्राह्यवृत्ते यत्र लग्नं तत्र स्पर्शः । मौक्षिकशराग्रसूत्रं ग्राह्यवृत्ते यत्र लग्नंतत्र मोक्ष इत्यर्थः । अत्रोपपत्तिः । मानैक्यखण्डवृत्ते यत्र ग्राहकबिम्बकेन्द्रं तस्माद्ग्राहकार्धेन वृत्तं ग्राहकवृत्तं ग्राह्यवृत्ते यत्र लग्नं तत्र स्पर्शमौक्षौ भवतः । तत्र वृत्ताकरणलाघवाद्ग्राहककेन्द्राद्ग्राह्यकेन्द्रं यावत्सूत्रं मानैक्यखण्डमितं ग्राह्यवृत्ते यत्र लग्नं तत्र परिध्योः स्पर्शमोक्षौ स्वस्वव्यासार्धयोगात् ॥७॥

भा० टी०–समासवृत्तवाले विक्षेपाग्रसे मध्यबिन्दुगत सूत्रमें जहांपर ग्राह्यवृत्तको स्पर्श किया है, वही दोनों स्थान स्पर्श और मोक्षके स्थान हैं ॥ ७ ॥

अथ ग्रहणे विक्षेपस्य दिग्व्यवस्थां मध्यग्रहणज्ञानार्थं मध्यकालिकवल-नदानं च श्लोकाभ्यामाह–

नित्यशोऽर्कस्य विक्षेपाः परिलेखे यथादिशम् ॥
विपरीताः शशांकस्य तद्वशादथ मध्यमम् ॥ ८ ॥
वलनं प्राङ्मुखं देयं तद्विक्षेपैकता यदि ॥
भेदे पश्चान्मुखं देयमिन्दोर्भानोर्विपर्ययात् ॥ ९ ॥

अर्कस्य ग्रहणे चन्द्रविक्षेपाः परिलेखे ग्रहणभेददर्शनप्रकारेण यथादिशं यथास्थितदिशं नित्यशो नित्यं ज्ञेयाः । चन्द्रस्य ग्रहणे चन्द्रविक्षेपा विपरीताः

दक्षिणाश्चेदुत्तरा उत्तराश्चेद्दक्षिणा । एतदनुरोधेनैव स्पार्शिकमौक्षिकविक्षेपौ देयौ । न यथागतदिशा विति ज्ञेयम् । अथानन्तरं तद्वशान्मध्यग्रहणकालिकविक्षेपदिशःसकाशात्सूर्यग्रहणे मध्यग्रहणकालिकस्पष्टविक्षेपदिक्चिह्नाच्चन्द्रग्रहणे मध्यकालिकविक्षेपदिग्विपरीतदिक्चिह्नादित्यर्थः । यदि यहीत्यर्थः । तद्विक्षेपैकता तद्वलनं विक्षेपो मध्यग्रहणकालिकविक्षेपः । अनयोरेकतैक्यं दिक्सम्बन्धेनेति शेषः । एकदिशीत्यर्थः । अत्र चन्द्रविक्षेपदिग्यथास्थितैव च विपरीतदिगिति ध्येयम् । प्राङ्मुखं पूर्वचिह्नितं मुखम् । वलनाश्रितवृत्तेऽर्धज्यावच्चन्द्रस्य मध्यमं वलनं मध्यग्रहणकालिकं स्फुटं वलनं देयम् । भेदे वलनविक्षेपे दिशोर्भिन्नत्वे पश्चान्मुखम् । वलनाश्रित वृत्तेऽर्धज्यावन्मध्यग्रहणकालिकं चन्द्रस्य वलनं पश्चिमचिह्नसम्मुखं देयम् । सूर्यग्रहणे विशेषमाह--भानोरिति । सूर्यग्रहणे सूर्यस्य वलनं विपर्ययादुक्तवैपरीत्यात् । एकदिशि पश्चिमचिन्हसम्मुखं भिन्नदिशि पूर्वचिह्नसम्मुखं देयमित्यर्थः । फलितार्थस्तु चन्द्रग्रहणे मध्यकालवलनदिक्तत्कालविक्षेपयथागतदिशोर्दक्षिणत्वे उत्तरचिन्हाद्वलनाश्रित वृत्तेऽर्धज्यावन्मध्यवलनं पूर्वचिन्हाभिमुखं देयम् । तयोरुत्तरत्वे दक्षिणचिह्नात्पूर्वाभिमुखं वलनं देयम् । यदि दक्षिणवलनमुत्तरविक्षेपस्तदा दक्षिणदिक्चिह्नादर्धज्यावत्पश्चिमचिह्नाभिमुखं वलनं देयम् । यद्युत्तरं वलनं दक्षिणविक्षेपस्तदा वलनाश्रितवृत्तउत्तरचिह्नात्पश्चिमचिह्नाभिमुखं वलनमर्धज्यावद्देयम् । सूर्यग्रहणेतु द्वयोर्दक्षिणत्वे वलनाश्रितवृत्ते दक्षिणचिह्नात्पश्चिमचिन्हाभिमुखं वलनं देयम् । उत्तरत्वे उत्तरचिन्हात्पश्चिमाभिमुखं देयम् । यदि दक्षिणं वलनमुत्तरविक्षेपस्तदोत्तरचिन्हात्पूर्वाभिमुखम् । यद्युत्तरं वलनं दक्षिणविक्षेपस्तदा दक्षिणचिन्हात्पूर्वाभिमुखं देयमिति । भास्कराचार्यैस्त्वेतदुक्तफलितं लाघवेत दक्षिणोत्तरवलनं क्रमेण सव्यापसव्यं देयमित्युक्तम् । अत्रोपपत्तिः । प्रथमश्लोकोपपत्तिः स्पार्शिकमौक्षिकशरदानोपपत्तावुक्ता । ग्राह्यबिम्बकेन्द्राद्विक्षेपान्तरेण ग्राहकबिंबकेन्द्रं भवति । शरस्य कदम्बाभिमुखत्वेन केन्द्रात्कदम्बाभिमुखशर दानार्थं कदम्बज्ञानं वलनाश्रितवृत्तआवश्यकमतो वलनान्तरेण स्वदिग्भ्यः क्रान्तिवृत्तदिशां सत्त्वा-

दुत्तरदक्षिणदिग्भ्यां मध्यवलनान्तरेण क्रांतिवृत्तयाम्योत्तररूपकदंबौ दक्षिणोत्तरत इति पूर्वपश्चिमानुरोधेनैतद्दानं युक्ततरम् । यद्यपि चन्द्रग्रहणे शरस्य विपरीतदिक्त्वात्तच्छरदिग्ग्रहणेन सूर्यचन्द्रयोर्मध्यवलनदानमेकदिक्त्वे पश्चिमचिन्हाभिमुखं भिन्नदिक्त्वे पूर्वाभिमुखमित्येकोक्तिलाघवम् । तथापि सूर्यचन्द्रयोर्ग्रहणभेदादेकोक्तौ मन्दबुद्धीनां भ्रमसम्भवस्तद्वारणार्थं पृथगिवोक्तिः कृता । स्वतन्त्रेच्छस्य नियोगानर्हत्वाच्च ॥ ८ ॥ ९ ॥

भा० टी०—सूर्यग्रहणमें भी ऐसाही करे कि उन दोनों मत्स्योंके मुखसे व पूछसे निकली हुई दो रेखाओंको फैलाकर जो चन्द्रविक्षेप यथायोग्य दिशामें होगा। चन्द्रग्रहणके लिये विपरीत दिशामें ग्रहण करना चाहिये। मध्यग्रहणमेंभी विक्षेपका ऐसाही व्यवहार होता है ॥ ८ ॥ मध्य चन्द्रग्रहणमें वलन और विक्षेप एक दिशामें हो तो वलनका पूर्वमुखमें होना और दिशाभेद होनेसे पश्चिमपमुखमें होना कहा जायगा। विक्षेपके अनुसार उत्तर या दक्षिणमें होगा । परन्तु सूर्यग्रहणमें अदल बदल हो जाता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ मध्यग्रहणं श्लोकाभ्यां परिलेखे दर्शयति—

वलनाग्रात्पुनः सूत्रं मध्यबिन्दुं प्रवेशयेत् ॥
मध्यसूत्रेण विक्षेपं वलनाभिमुखं नयेत् ॥ १० ॥
विक्षेपाग्राल्लिखेद्वृत्तं ग्राहकार्धेन तेन यत् ॥
ग्राह्यवृत्तं समाक्रान्तं तद्ग्रस्तं तमसा भवेत् ॥ ११ ॥

वलनाग्रान्मध्यकालिकवलनाग्रात्पूर्वश्लोकोक्तात्सूत्रं रेखां मध्यबिन्दुं वृत्तमध्यचिह्नं प्रति पुनर्वारान्तरं पूर्वं स्पार्शिकमौक्षिकवलनाग्राभ्यां सूत्ररचना तथैवेत्यर्थः । प्रवेश येत् गणकाः प्रतिष्ठां कुर्यात् । मध्यसूत्रेणानेन मध्यकालिकविक्षेपं मध्यवलनाग्राभिमुखं नयेत् । वृत्तमध्यबिन्दोरित्यर्थसिद्धम् । तथाच वृत्तमध्यान्मध्यवलनाग्रसूत्रे विक्षेपांगुलानि गणयित्वा तदग्रे विक्षेपाग्रे चिह्नं कुर्यादित्यर्थः । अस्माद्विक्षेपाग्राद्ग्राहकबिम्बमानार्धेन वृत्तं गणको लिखेत् । तेन वृत्तेन यद्यन्मितं ग्राह्यवृत्तं समाक्रान्तं व्याप्तम् । यद्ग्राह्यवृत्तविभागरूपं तमसान्धकाररूपेण च्छादकेन ग्रस्तमाच्छादितं स्यात्तन्मितं विभागं मण्यादिना लिप्तं कुर्यादित्यर्थः । अत्रोपपत्तिः । वृत्ते मध्यसूत्रं

कदंवाभिमुखं तत्र ग्राह्यकेन्द्राच्छरान्तरेण ग्राहककेन्द्रं तस्माद्ग्राहकार्धेन वृत्तं ग्राहकबिम्बवृत्तं तेन ग्राह्यवृत्तं यावदाक्रान्तं तावन्मध्यकाले ग्रस्तमिति तद्भागस्य कृत्स्नत्वेनाकाशे दर्शनात्तमसा ग्रस्तमित्युक्तम् ॥ १० ॥ ११ ॥

भा० टी०-वलनाग्रसे मध्यबिन्दुतक सूत्र करे । इस सूत्रमें मध्यबिन्दुसे वलनाभिमुखमें विक्षेपका चिह्न (निशान) करे ग्राहकमानार्द्धपरिमित व्यासार्द्धके साथ विक्षेपाग्रके चारों ओर वृत्तकल्पना करनेसे जो वृत्त होगा वह वृत्त ग्राह्यवृत्तमें० जितना व्याप्तहो वही अन्धकारावृत है ॥ १० ॥ ११ ॥

ननु पूर्वकपाले ग्रहणयोः सम्भवे सर्वमुक्तमुपपन्नम् । पश्चिमकपाले ग्रहणसम्भवे परिलेखोक्तं वैपरीत्येन भवति । तथाहि । यस्यां दिशि परिलेखे स्पर्शो मोक्षो वा परकपाले तस्य पश्चिमाभिमुखत्वेन दर्शने दिग्वैपरीत्यं प्रत्यक्षमित्यत आह—

छेद्यकं लिखता भूमौ फलके वा विपश्चिता ॥
विपर्ययो दिशां कार्यः पूर्वापरकपालयोः ॥ १२ ॥

भूमौ फलके काष्ठपट्टिकायामित्यर्थः । वा विकल्पे । भूमौ लिखितस्य तेस्ततोनयनासम्भवात्फलक इत्युक्तिः । छेद्यकं प्रागुक्तं लिखता गणकेन विपश्चिता तत्त्वज्ञेन दिशां पूर्वादिदिशां पूर्वापरकपालयोर्विपर्ययोर्व्यत्यासः कार्यः । यथा पूर्वकपाले सव्यक्रमेण पूर्वादिलेखनं तथापरकपाले सव्यक्रमेण पूर्वादिलेखनं न कार्यम् । किन्तु पश्चिमस्थाने पूर्वा पूर्वस्थाने पश्चिमा । उत्तरदक्षिणादिग्भागे क्रमेणोत्तरदक्षिणे लेख्ये इत्यर्थः । तेन पश्चिमकपाले ग्रहणसम्भवेऽपि परिलेखोक्तं सम्भवत्येवेति भावः । अत्रोपपत्तिः । दिग्वैपरीत्यं भवतीति पूर्वमेव वैपरीत्येन दिशालेखने परिलेखो यथा स्थितो भवतीत्युक्तम् । भास्कराचार्यैस्तु नैतदुक्तम् । परिलेखेनामुक्यां दिश्यमुकं भवतीति ज्ञानस्यावश्यकत्वेन तस्य तत्राबाधात् । नहि यथाकाशे तथा दर्शनमपेक्षितम् । भूमौ फलके वाकाशादीनां वास्तवानामभावात् । अतएव किञ्चिन्न्यूनसादृश्येनादृष्टान्तत्वमिति ध्येयम् ॥ १२ ॥

भा० टी०—समतलभूमिमें या फलकमें छेदक लिखकर पूर्वापर कपालको वृत्तका (अर्द्धांश) अदल बदल करे ॥ १२ ॥

अथानादेश्यग्रहणमाह–

स्वच्छत्वाद्द्वादशांशोऽपि ग्रस्तश्चन्द्रस्य दृश्यते ॥
लिप्तात्रयमपि ग्रस्तं तीक्ष्णत्वान्न विवस्वतः ॥ १३ ॥

चन्द्रबिंबस्य द्वादशांशो ग्रस्त आच्छादितः । अपिशब्दादाच्छादनेन तेजोहीनतया दृश्यतासंभावनायामित्यर्थः । न दृश्यते । हेतुमाह–स्वच्छत्वादिति । तदतिरिक्तसंपूर्णं दृश्यभागस्य स्वच्छत्वाज्ज्योत्स्नावत्त्वात् । तथा च तज्ज्योत्स्नाधिक्येन ग्रस्तोऽप्यल्पोंऽशः स्वाकारेण न दृश्यते ज्योत्स्नावत्त्वेन दूरतया भासते । सूर्यस्य लिप्तात्रयं ग्रस्तमपि न दृश्यते । अत्र हेतुमाह–तीक्ष्णत्वादिति । सूर्यस्य तेजस्तैक्ष्ण्याल्लोकनयनप्रतिघाताहत्वाच्चेत्यर्थः । वृद्धवसिष्ठेन तु "ग्रस्तं शशांकस्य कलाद्वयं चेत्कलात्रयं भानुमतो न लक्ष्यम् । तत्किञ्चिदूनं ह्युदयास्तकाले लक्ष्यं यतस्तौ करगुल्फहीनौ ॥" इत्युक्तम् । अत उदयास्तकाले उक्तमदृश्यं दृश्यमिति ध्येयम् ॥ १३ ॥

भा० टी०–चंद्रमाकी स्वच्छताईके कारण द्वादशभागग्रहणभी दीख जाता है । सूर्यकिरणोंकी तेजीके मारे तीन कलाका ग्रहणभी नहीं दिखाई देता ॥ १३ ॥

अथेष्टग्रासपरिलेखार्थं ग्राहकमार्गज्ञानं श्लोकत्रयेणाह–

स्वसञ्ज्ञितास्त्रयः कार्या विक्षेपाग्रेषु बिन्दवः ॥
तत्र प्राङ्मध्ययोर्मध्ये तथा मौक्षिकमध्ययोः ॥ १४ ॥
लिखेन्मत्स्यौ तयोर्मध्यान्मुखपुच्छविनिःसृतम् ॥
प्रसार्य सूत्रद्वितयं तयोर्यत्र युतिर्भवेत् ॥ १५ ॥
तत्र सूत्रेण विलिखेच्चापं बिन्दुत्रयस्पृशा ॥
स पन्था ग्राहकस्योक्तो येनासौ सम्प्रयास्यति ॥ १६ ॥

विक्षेपाग्रेषु स्पार्शिकमौक्षिकमाध्यविक्षेपाणां पूर्वं स्वस्वस्थाने स्पर्शमोक्षमध्यग्रहणज्ञानार्थं दत्तानामग्रिमभागेषु स्वसंज्ञया सङ्केतिता बिन्दवस्त्रयः कार्याः स्पर्शशराग्रे स्पर्शचिह्नाङ्कितो बिन्दुर्मोक्षशराग्रे मोक्षचिह्नांकितो बिन्दुर्मध्यशराग्रे मध्यचिह्नांकितो बिन्दुरिति बिन्दवो गणकेन स्थाप्याः ।

---

१ तेन इति पाठान्तरम् ।

तत्रोपस्थितबिन्दुत्रयमध्ये प्राङ्मध्ययोः स्पर्श मध्यबिन्द्वोर्मध्येऽन्तराले मौक्षिकमध्ययोस्तत्संज्ञयोर्बिन्द्वोस्तथान्तराले प्रत्येकं मत्स्यं लिखेदित्यन्तरद्वये गणको मत्स्यौ लिखेत । तयोर्मत्स्ययोर्मध्याद्गर्भान्मुखपुच्छाभ्यां विनिःसृतं निष्कासितं प्रत्येकं सूत्रमिति सूत्रद्वितयम् । प्रसार्याग्रेऽपि स्वमार्गेण निःसार्य तयोः स्वस्वमार्गप्रसारितसूत्रयोर्यत्र प्रदेशे युतिर्योगः स्यात्तत्र प्रदेशे केंद्रं प्रकल्प्य सूत्रेण बिन्दुत्रयस्य स्पृशा प्रकल्पितकेंद्रबिन्दुत्रयान्यतमबिंद्वंतरसूत्रेण व्यासार्धरूपेणेत्यर्थः । चापं वृत्तैकदेशरूपं धनुर्बिंदुत्रयस्पृष्टं लिखेत । गणकः कुर्यादित्यर्थः । स चापात्मको वृत्तैकदेशो ग्राहकस्य पंथा मार्गः कथितः । येन मार्गेणासौ ग्राहकः सम्प्रयास्यति ग्रास्यबिम्बच्छादनार्थं गमिष्यति । परिलेखस्य ग्रहणकालपूर्वकालावश्यम्भावित्वात । अत्रोपपत्तिः । इष्टेऽह्नि मध्ये प्राक्पश्चादिति त्रिप्रश्नाधिकारांतर्गतश्लोकोपपत्तिः प्राक्प्रतिपादिता ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६

भा० टी०-स्पर्श मध्य और मोक्षगतविक्षेपाग्रमें (शराग्रमें) तीन चिह्नित बिंदु लिखेस्पर्श और मध्यबिन्दुके द्वारा और मोक्ष व मध्यबिन्दुके द्वारा दो मत्स्य अंकित बिन्दुमें संयुत होंगे तिसको केन्द्र करके पहले कहे हुए तीन बिन्दुको छूता हुआ एक धनुष बनावे । वह धनुही ग्राहकका मार्ग है; तिसको अवलम्ब करके गमन करता है ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथेष्टग्रासपरिलेखं श्लोकत्रयेणाह-

ग्राह्यग्राहकयोगार्धात् प्रोज्झ्येष्टग्रासमागतम् ॥
अवशिष्टांगुलप्रमां शलाकां मध्यबिन्दुतः ॥ १७ ॥
तयोर्मार्गोन्मुखो दद्याद्ग्रासतः प्राग्ग्रहाश्रिताम् ॥
विमुञ्चतो मोक्षदिशि ग्राहकाध्वानमेव सा ॥ १८ ॥
स्पृशेद्यत्र ततो वृत्तं ग्राहकार्धेन संलिखेत् ॥
तेन ग्राह्याद्यदाक्रान्तं तत्तमो ग्रस्तमादिशेत् ॥ १९ ॥

मानैक्यखण्डादिष्टकालिकाभीष्टग्रासमागतं चंद्रग्रहणाधिकारोक्तप्रकारागतं त्यक्त्वा अवशिष्टे यान्यंगुलानि तत्प्रमाणां शलाकां यष्टिं मध्यबिं-

१ तदा इति पाठान्तरम् ।

न्दुतो वृत्तत्रयमध्यकेंद्रबिंदोः सकाशात्तयोः स्पर्शमोक्षविक्षेपाग्रयोर्मार्गोन्मुखीसम्बद्धमार्गचापरेखाभिमुखीं मार्गरेखासक्तां दद्यात् । कथमित्यत आह । ग्रासत इति । मध्यग्रासतः प्राक्पूर्वकाले ग्रहाश्रितां ग्रहस्पर्शस्तच्छराग्रसंबन्धिमार्गचापरेखासक्तां शलाकाम् । विमुञ्चतो मुच्यमानान्तर्गताभीष्टग्रासस्य शलाकाम् । मोक्षदिशि । मोक्षविक्षेपाग्रसंबंधिमार्गचापरेखायां सक्तां दद्यात् । सा शलका ग्राहकाध्वाजां ग्राहकमार्गचापरेखां यत्र यस्मिन्भागे स्पृशेत्संलग्ना स्यात् । ततः स्थानात् । एवकारस्तदतिरिक्तव्यवच्छेदार्थः । ग्राहकमानार्धेन व्यासार्धेन वृत्त संलिखेत् । सम्यक्प्रकारेण कुर्यात् । तेन वृत्तेन ग्राह्याद्ग्राह्यवृत्ताद्यन्मितमेकदेशरूपं वृत्तमाक्रान्तं व्याप्तम् । तत्तन्मितग्राह्यवृत्तांशं तमोग्रस्तं छादकाच्छादितमभीष्टकाल आदिशेत्कथयेत् । अत्रोपपत्तिः । इष्टग्रासोनं मानैक्यखण्डं कर्णः । स तु ग्राह्यग्राहककेन्द्रान्तररूपः । अतोऽयं ग्राह्यकेन्द्रात्पूर्वज्ञातग्राहकमार्गरेखायां यत्र लग्नस्तत्राभीष्टसमये ग्राहककेन्द्रम् । तस्माद्ग्राहकवृत्तेन ग्राह्यवृत्तं यदाक्रान्तं तत्काले ग्रास इति सुगमा ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

भा० टी०—ग्राह्य और ग्राहकमानके योगार्द्धसे इष्टग्रास वियोग करके जो बचै उस परिमाणमध्याबिन्दुसे रेखा उसी मार्गके सामनेको खैंचे । मध्यग्रहणके पूर्व होनेपर स्पर्शदिशामें और पर होनेपर मोक्षाभिमुखमें रेखाको उतार ले । रेखान्त बिन्दुकेन्द्र करके ग्राहकमानार्द्ध अनुसार वृत्तरचना करे । वह वृत्त और ग्राह्यवृत्त दोनोंके अधिकृत अंशही तात्कालीन आच्छादित अंश हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ श्लोकाभ्यां निमीलनपरिलेखमाह—

मानांतरार्धेन मितां शलाकां ग्रासदिङ्मुखीम् ॥
निमीलनाख्यां दद्यात्सा तन्मार्गं यत्र संस्पृशेत् ॥
ततो ग्राहकखण्डेन प्राग्वन्मण्डलमालिखेत् ॥
तद्ग्राह्यमण्डलयुतिर्यत्र तत्र निमीलनम् ॥ २१ ॥

ग्राह्यग्राहकबिम्बमानयोरन्तरस्यार्धं तेन परिमितां शलाकां निमीलनसंज्ञां ग्रासदिङ्मुखीं स्पार्शिकशराग्रविभागाभिमुखीं मध्यबिन्दोः सकाशाद्दद्यात् । सा निमीलनसंज्ञा शलाका तन्मार्गं स्पार्शिकग्राहकमार्गं चापरेखाकारं यस्मि-

न्प्रदेशे संलग्ना स्यात्तत्स्थानाद्ग्राहकमानार्धेन प्रागवन्मध्याभीष्टग्रासज्ञानार्थं यथा तद्वृत्तं कृतं तथेत्यर्थः। वृत्तं कुर्यात्। तद्ग्राह्यमण्डलयुतिर्लिखितवृत्तग्राह्यवृत्तयोः संयोगो यत्र यस्यां दिशि तत्र तस्यां दिशि निमीलनं ग्राह्यविम्बस्य निमज्जनं स्यात्। अत्रोपपत्तिः। सम्मीलनकाले ग्राह्यग्राहककेन्द्रान्तरं मानार्धान्तरमितकर्णः। अन्यथा तदनुपपत्तेः। स ग्राह्यकेन्द्रात्स्पर्शमार्गे यत्र लग्नस्तत्र ग्राहककेन्द्रम् तस्माद्ग्राहकवृत्तं ग्राह्यमण्डलं यत्र स्पृशति तत्र निमीलनं स्पष्टम् ॥ २० ॥ २१ ॥

भा० टी०--ग्राह्यग्राहकमानद्वअन्तरार्द्ध परिमित शलाका ग्रासदिशामें उस मार्गपर स्थापन करे और तिसके अग्रभागको केन्द्र करके ग्राहक मानके अनुसार मण्डल लिखनेसे जहां पर वह मण्डलको स्पर्श करे तिसी दिशामें निमीलन आरम्भ होगा ॥ २० ॥ २१ ॥

अथोन्मीलनपरिलेखमाह--

एवमुन्मीलने मोक्षदिङ्मुखीं सम्प्रसारयेत् ॥
विलिखेन्मण्डलं प्रागवदुन्मीलनमथोक्तवत् ॥ २२ ॥

उन्मीलने उन्मीलनज्ञानार्थमित्यर्थः। एवं बिंबमानांतरार्धमितां शलाकां मोक्षदिङ्मुखीं मौक्षिकशराग्रविभागाभिमुखीं मध्यबिंदोः सकाशात्संप्रसारयेद्दद्यादित्यर्थः। प्राग्वत्संमीलनार्थं दत्तशलाकास्पार्शिकमार्गयोगस्थानाद्ग्राहकार्धेन वृत्तं कृतं तथेत्यर्थः। मौक्षिकमार्गदत्तशलाकायोगस्थानाद्ग्राहकवृत्तं कुर्यात्। अथानन्तरमुक्तवद्ग्राहकग्राह्यवृत्तयोगो यस्यां तस्यां दिशीत्यर्थः। उन्मीलनं ग्राह्यबिम्बस्योन्मज्जनं स्यात्। अत्रोपपत्तिः। उन्मीलनेऽपि ग्राह्यग्राहककेन्द्रांतरं मानार्धांतमितं कर्णः। परमपरमोक्षदिशीति युक्तिस्तुल्या ॥ २२ ॥

भा० टी०--इस प्रकारसे मोक्षदिशामें शलाका स्थापन करके जहांपर पूर्ववत् मण्डल स्पर्श करे सोही उन्मीलनदिक् होगी ॥ २२ ॥

अथ ग्रहणे चंद्रस्य वर्णानाह--

अर्धादूने स धूम्रं स्यात्कृष्णमर्धाधिकं भवेत् ॥
विमुञ्चतः कृष्णताम्रं कपिलं सकलग्रहे ॥ २३ ॥

अर्धादर्धबिम्बादूने न्यूने ग्रस्ते सति स धूम्रं ग्रासीयबिम्बं धूम्रवर्णं स्यात् । अर्धाधिकं ग्रस्तबिम्बं कृष्णं स्यात् । विमुञ्चत एतदनंतरं ग्रस्तमधिकमपि मुक्त्युन्मुखमिति मोक्षारंभोन्मुखस्य पादोनबिम्बाधिकग्रस्तस्यासंपूर्णस्येत्यर्थः । कृष्णताम्रं श्यामरक्तमिश्रवर्णः संपूर्णग्रहणे कपिलं पिशङ्गवर्णबिंबं स्यात् । अत्र भूभायास्तेजोऽभावतया चंद्राच्छादकत्वादेते वर्णाः संभवन्ति सूर्यस्य तु चंद्रो जलगोलरूप आच्छादकः स दर्शान्तदिवसेऽस्मद्दृश्यार्धे सदा कृष्ण एवेति कृष्ण एव सूर्यस्य ग्रस्तोंऽशः सर्वदा । अतएवाविकृतत्वाद्भगवता वर्णो नोक्तः ॥ २३ ॥

भा० टी०-चन्द्रग्रहण आधेसे कम होनेपर धूम्रवर्ण, अधिक होनेसे कृष्ण वर्ण है । पादोनार्द्ध होनेपर ताम्र, कृष्ण और संपूर्ण होनेसे कपिल रंगका होता है (सूर्यका ग्रस्तांश सदा काले रंगका रहता है) ॥ २३ ॥

अथोक्तच्छेद्यकस्य गोप्यत्वमाह-

रहस्यमेतद्देवानां न देयं यस्य कस्यचित् ॥
सुपरीक्षितशिष्याय देयं वत्सरवासिने ॥ २४ ॥

एतद्ग्रहणच्छेद्यकं देवतानां गोप्यं वस्तु । यस्य कस्यचिद्यस्मैकस्मचिदपरीक्षिताय न देयम् । कस्मैचिद्देयमित्यर्थागतं विवृणोति-सुपरीक्षितशिष्यायेति । सुपरीक्षित मित्यत्र हेतुगर्भं विशेषणमाह-वत्सरवासिन इति । वर्षपर्यंतं तत्संगत्या तस्य तत्त्वतया ज्ञानं भवत्येवेति भावः ॥ २४ ॥

भा० टी०-यह तत्व देवताओंके लियेभी रहस्य है । जिस किसको यह नहीं देना चाहिये एक वर्षतक भली भांतिसे जिसकी परीक्षा लेनी है, उस शिष्यकोही केवल यह बताना चाहिये ॥ २४ ॥

अथाग्रिमग्रन्थस्यासंगतित्वनिरासार्थमधिकारसमाप्तिं-फक्किकयाह-ग्रहणभेदज्ञापकपरिलेखप्रतिपादनं परिपूर्त्तिमाप्तमित्यर्थः । इदं दशभेदग्रहगणितमित्युक्त्या गणितक्रियाभावाद्ग्रहणाधिकारान्तर्गतं नाऽधिकारांतरम् । अत एवाधिकारं इत्युपेक्षाध्याय इत्युक्तम् ॥ रंगनाथेन रचिते सूर्यसिद्धान्त-

१ दातव्यं ज्ञानमुत्तमम् इति पाठान्तरम् ।

टिप्पणे ॥ छेद्यकं ग्रहणान्तं तु पूर्णं गूढप्रकाशके ॥ इति श्रीसकलगणकसार्वभौमबल्लालदैवज्ञात्मजरङ्गनाथगणकविरचिते गूढार्थप्रकाशके छेद्यकाध्यायः सम्पूर्णः ॥

इतिच्छेद्यकाध्यायः ॥

छठवां अध्याय समाप्त ।

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

अथ युत्याभासग्रहणनिरूपणेन संस्मृततयारब्धो ग्रहयुत्यधिकारो व्याख्यायते । तत्र युतिभेदानाह—

ताराग्रहाणामन्योन्यं स्यातां युद्धसमागमौ ॥
समागमः शशांकेन सूर्येणास्तमनं सह ॥ १ ॥

ताराग्रहाणां भौमादिपञ्चग्रहाणां परस्परं योगे युद्धसमागमौ वक्ष्यमाणलक्षणभिन्नौ स्तः । चंद्रेण सह पञ्चतारान्यतमस्य योगः समागमसंज्ञः । सूर्येण सह पंचताराणामन्यतमस्य चंद्रस्य वा योगस्तदस्तमनं पूर्णास्तङ्गततत्त्वम् । न त्वस्तमात्रम् । युत्यभावे प्रागपरकाले तस्य सत्त्वात् ॥ १ ॥

भा० टी०—ग्रहोंके परस्पर योगका नाम युद्ध या समागम है । चंद्रमाके सहित ग्रहोंके योगका नाम समागम है । सूर्यके साथ योगका नाम अस्तमन है ॥ १ ॥

अथ युतेर्गतैष्यत्वं सार्धश्लोकेनाह—

शीघ्रे मन्दाधिकेऽतीतः संयोगो भवितान्यथा ॥
द्वयोः प्राग्यायिनोरेवं वक्रिणोस्तु विपर्ययात् ॥
प्राग्यायिन्यधिकेऽतीतो वक्रिण्येष्यः समागमः ॥ २ ॥

ययोर्ग्रहयोर्योगोऽभिमतस्तयोर्ग्रहयोर्मध्ये यः शीघ्रगतिर्ग्रहस्तस्मिन्मन्दाधिके मन्दगतिग्रहादधिके सति तयोः संयोगो युतिसंज्ञो गतः । पूर्वं जात इत्यर्थः । अन्यथा मन्दगतिग्रहे शीघ्रगतिग्रहादधिके सतीत्यर्थः । तयोर्योगो भविता एष्यः । एवमुक्तं गतैष्यत्वम् । द्वयोर्ग्रहयोः प्राग्यायिनोः

पूर्वगतिकयोर्भवति । वक्रिणोर्वक्रगतिग्रहयोर्विपर्ययादुक्तवैपरीत्यात् । तुकाराद्गतैष्यो योगो भवति । शीघ्रगतिग्रहे मन्दगतिग्रहादधिक एष्यः संयोगो मन्दगतिग्रहे शीघ्रगतिग्रहादधिके गतः संयोग इत्यर्थः । अथैकस्य वक्रत्व आह-प्राग्यायिनीति । द्वयोर्मध्ये एकतरस्मिन्वक्रिणि सति तदा वक्रगतिग्रहात्पूर्वं गतिग्रहेऽधिके सति गतो योगः । यदा तु पूर्व-गतिग्रहाद्वक्रगतिग्रहेऽधिके सति समागमो योग एष्यः स्यात् । अत्रोपपत्तिः । पूर्वगत्योर्ग्रहयोर्मध्ये शीघ्रगत्याधिकत्वेऽग्रे योगासम्भवात्पूर्वयोगो जातः । मन्दगस्याधिकत्वे शीघ्रगस्य न्यूनत्वादग्रे योगो भविष्यति । वक्रिणोस्तु शीघ्रगत्याधिकत्वेऽग्रे तन्न्यूनत्वेन योगसम्भवादेष्यो योगो मन्दगस्याधिकत्वे शीघ्रगस्योत्तरोत्तरं न्यूनत्वसम्भवेनाग्रे योगासंभवाद्गतो योगः । अथ वक्रग-तिग्रहात्पूर्वगतिग्रहेऽधिक उत्तरोत्तरं योगासम्भवाद्गतो योगः । पूर्वगतिग्रहाद्वक्र-गतिग्रहेऽधिके वक्रगतिग्रहस्य न्यूनत्वेनाग्रे योगासम्भवादेष्यः संयोग इति ॥२

भा० टी०-शीघ्रगामी ग्रहस्पष्ट मन्दगामीकी अपेक्षा अधिक होनेपर समागम अतीत हो गया है अन्यथा भाव्य होता है । दोनोंके वक्री होनेसे विपर्यय होता है एकको वक्रगति होनेसे. सरलगति ग्रहस्पष्ट अधिक होनेपर योगगत और वक्र-गति ग्रहस्पष्ट अधिक होनेसे योग पीछे होगा ॥ २ ॥

अथ युतिकाले तुल्यग्रहयोरानयनं युतिकालस्य गतैष्यदिनाद्यानयनं च सार्धश्लोकत्रयेणाह-

ग्रहांतरकलाःस्वस्वभुक्तिलिप्तासमाहताः ॥ ३ ॥
भक्त्युत्तरेण विभजेदनुलोमविलोमयोः ॥
द्वयोर्वक्रिण्यथैकस्मिन् भुक्तियोगेन भाजयेत् ॥ ४ ॥
लब्धं लिप्तादिकं शोध्यं गते देयं भविष्यति ॥
विपर्ययाद्वक्रगत्योरेकस्मिंस्तु धनव्ययौ ॥ ५ ॥
समलिप्तौ भवेतां तौ ग्रहौ भगणसंस्थितौ ॥
विवरं तद्वदुद्धृत्य दिनादिफलमिष्यते ॥ ६ ॥

युतिसम्बन्धिनोर्ग्रहयोरभीष्टैककालिकयोरन्तरस्य कलाः पृथक्स्वस्वगति-

कलाभिर्गुणिताः कर्मद्वयोर्ग्रहयोरनुलोमविलोमयोर्मार्गगयोर्वक्रगयोर्वेत्यर्थः। स्फुटगत्यन्तरेण गणको भजेत् । विशेषमाह–वक्रिणीति । अथानन्तरं द्वयोर्मध्ये एकतरे वक्रिणि सति तयोर्गतियोगेन भजेत् । फलं कलादि स्वं स्वं गते योगे सति ग्रहयोर्मार्गगयोः शोध्यं भविष्यति । एष्ये योगे सति तयोर्देयं योज्यम् । द्वयोर्वक्रगत्योः स्वं स्वं फलं विपर्ययादुक्तवैपरीत्यात्कार्यम् । गते योगे योज्यम् । एष्ययोगे हीनमित्यर्थः । द्वयोर्मध्ये एकतरे तुकाराद्वक्रिणि सति तयोर्ग्रहयोर्वक्रमार्गगयोः स्वस्वकलात्मकफलाङ्कौ धनव्ययौ युतहीनौ कार्यौ । यथाहि । गतयोगे मार्गगग्रहे स्वफलं हीनं वक्रिणि ग्रहे योज्यम् । एष्ययोगे वक्रग्रहे शोध्यम् । मार्गगग्रहे योज्यमिति । एवंकृते तौ युतिसम्बन्धिनौ ग्रहौ भगणसंस्थौ भगणे राश्यधिष्ठितचक्रे संस्थितिर्ययोस्तौ राश्याद्यात्मकौ समलिप्तौ समकलौ स्तः लिप्तापदस्य भगणावयवोपलक्षणत्वेन समौ स्त इत्यर्थः । अथ युतिकालज्ञानमाह–विवरमिति । अभीष्टकालिकयोर्युतिसम्बन्धिनोर्ग्रहयोरन्तरं कलात्मकं तद्वत्समकलोपयुक्तफलाज्ञानार्थं यथा गतिगुणितमन्तरं गतियोगेन गत्यन्तरेण भक्तं तथेत्यर्थः । तेन हरेण भक्त्वा फलं दिनादिकं गतैष्ययुतिवशादभीष्टकलाद्गतैष्यमुच्यते । तत्समये तद्युतिकाले तौ ग्रहौ समौ स्त इत्यर्थः । अत्रोपपत्तिः । गत्यन्तरेण गतिकलास्तदा ग्रहान्तरकलाभिः का इति फले गतयुतौ ग्रहयोर्योज्ये । एष्ययुतौ शोध्ये । वक्रग्रहस्योत्तरोत्तरं न्यूनत्वात् । अथैको वक्री तदा तयोरन्तरं प्रत्यहं गतियोगेनोप चितम् । अतो गतियोगहरेणागतं फलं गतयोगे मार्गगग्रहे हीनं पूर्वं तस्य न्यूनत्वात् वक्रग्रहे योज्यम् । पूर्वं तस्याधिकत्वात् । एष्ययोगमार्गगग्रहे योज्यम् । उत्तरोत्तरमधिकत्वात् । वक्रग्रहे शोध्यम् तस्याग्रे न्यूनत्वात् । गतियोगेन गत्यन्तरेण वा दिनमेकं लभ्यते तदान्तरकलाभिः किमित्यनुपातेन गतैष्यदिनाद्यम् ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०टी०–दो ग्रहके अन्तरकी कला करके अलग २ तिन २ की गतिमे गुणकरके दोनोंके सरल या वक्री होनेपर गतियोगसे भाग करनेपर जो कलादिदो वह समागममें हो तो ग्रहसे दोनोंका समगतिमें वियोग, और वक्रमें योग करे । भावी

होनेसे वह स्पष्ट योग या वियोग करे । एककी वक्रगति हो तो गतमें वक्र योग और गम्यमें वियोग करना चाहिये । तो दोनों ग्रहकी भगणास्थित समकला होगी, समय जानना हो तो अन्तरकलाको पूर्वोक्त हारकद्वारा भागकरनेसे जो दिनादि होंगे वही समकलाकालसे इष्ट समयके अन्तर दिनादि है ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ दृक्कर्मार्थमुपकरणानि साध्यानीत्याह–

कृत्वा दिनक्षपामानं तथा विक्षेपलिप्तिकाः ॥
नतोन्नतं साधयित्वा स्वकालग्नवशात्तयोः ॥ ७ ॥

तयोः समयोर्ग्रहयोर्दिनक्षपामानं प्रत्येकं दिनमानं रात्रिमानं प्रसाध्य विक्षेपकलाः । तथा प्रसाध्येत्यर्थः । अत्र भगवता विक्षेपकलाः प्रसाध्येत्यस्य दिनरात्रिमानं प्रसाध्येत्येतदनन्तरमुक्तेर्दिनरात्रिमानं स्पष्टक्रान्तिजचरेण साध्यम् । किन्तु समग्रहीयशरासंस्कृतकेवलक्रान्तिजचरेण साध्यमिति सूचितम् । समग्रहयोः प्रत्येकं नतकालमुन्नतकालं प्रसाध्य । अत्र समुच्चयार्थकं तथेत्यन्वेति । एतदर्थमेव दिनरात्रिमानं प्रसाध्येति पूर्वमुक्तम् । समनन्तरोक्तं दृक्कर्मकार्यमिति वाक्यशेषः । ननु नतोन्नतं कथं साध्यं ग्रहोदयाज्ञानात्तदवधिकालमानज्ञानाभावात् । नहि ग्रहस्य दिनरात्रिगतकालज्ञानं विनापि केवलदिनरात्रिमानाभ्यां तत्सिद्धिरत आह–स्वकालग्नवशादिति यस्मिन्काले समौ ग्रहौ जातौ तात्कालिकलग्नं पूर्वोक्तप्रकारावगतं तद्वशात्तद्ग्रहणादित्यर्थः।स्वकात्समग्रहात्प्रत्येकमुन्नतनतकालौ साध्यावित्यर्थः। एतदुक्तं भवति। युतिकालिकलग्नमधिकसञ्ज्ञं प्रकल्प्य समग्रहन्यूनसञ्ज्ञं प्रकल्प्य। "भोग्यासूनूनकस्याथ भुक्तासूनधिकस्य च। सम्पीड्यान्तरलग्नासूनेवं स्यात्कालसाधनम् ॥" इति त्रिप्रश्नाधिकारोक्त्या ग्रहस्य दिनगतं रात्रिगतं प्रसाध्य दिने दिनगतशेषयो रात्रौ रात्रिगतशेषयोर्यदल्पं तदुन्नतम् । तेनोनं दिनार्धं रात्र्यर्धं वा ग्रहस्य नतम् । दिनक्षपामानं नतोन्नतमित्येकवचनेन समग्रहयोरभिन्नंदिनमानं रात्रिमानं नतमुन्नतं चेति सूचनादपि नोदयलग्नलग्नाभ्यान्तरकालः प्रत्येकं भिन्नः साध्यः । नवास्पष्टक्रान्तिजचरेण दिनरात्रिमाने प्रत्येकं पूर्वमुदयलग्नस्यैवासिद्धेरिति स्फुटीकृतम् । अत्रोपपत्तिः । तात्कालिकार्कलग्नाभ्यां यथा सूर्यस्योदयगतकालस्तथा तात्कालिकग्रह-

लग्नाभ्यां ग्रहोदयगतकालः सिद्धयति यद्यपि सूर्यस्य क्रान्तिवृत्तस्थत्वात्सूर्यस्य युक्तः कालः। ग्रहस्य तु क्रान्तिवृत्तस्थत्वानियमायुक्तरीत्यागतकालस्य क्रांतिवृत्तस्थग्रहचिह्नीयत्वेऽपि ग्रहबिम्बीयत्वाभावाददुक्तत्वम्। अतएव वक्ष्यमाणदृक्कर्मसंस्कृतगृहादानीतकालो ग्रहबिम्बीयस्तथापि वक्ष्यमाणदृक्कर्मार्थं ग्रहचिह्नीयस्यैवापेक्षितत्वान्न क्षतिः॥ ७॥

भा० टी०—समकलाकालीन तिनका दिनरात्रिमान साधन करे। तिनकी तात्कालिक विक्षेपकला निर्णय करके ग्रहस्थानगत लग्नसे नतोन्नत साधन करे॥ ७॥

अथाक्षदृक्कर्मतत्संस्कारं च ग्रहस्य श्लोकाभ्यामाह—

विषुवच्छाययाभ्यस्ताद्विक्षेपाद्द्वादशोद्धृतात्॥
फलं स्वनतनाडीघ्नं स्वदिनार्धविभाजितम्॥ ८॥
लब्धं प्राच्यामृणं सौम्याद्विक्षेपात्पश्चिमे धनम्॥
दक्षिणे प्राक्कपाले स्वं पश्चिमे तु तथा क्षयः॥ ९॥

अक्षभया गुणिताद्ग्रहविक्षेपादानीताद्द्वादशभक्ताद्यल्लब्धं तत्स्वनतनाडीघ्नं विक्षेपसम्बन्धिग्रहस्य नतघटीभिर्गुणितं तस्यैव दिनार्धेन भक्तं रात्रौ रात्र्यर्धेनेत्यर्थसिद्धम्। अत्र समग्रहयोः पूर्वोक्तप्रकारेण दिनमाननतयोरभिन्नत्वात्स्वशब्द उभयत्रानावश्यकोपि युतिव्यतिरिक्तदृग्ग्रहाणां प्रयोजनतया साधनवैयधिकरण्यावृत्त्यर्थं स्वपदं भगवता दत्तम्। वस्तुतस्तु दृग्ग्रहयोस्तुल्यत्वे भगवताग्रे युतेरुक्तत्वात्तात्कालिकयोः स्पष्टयोस्तुल्यत्वेन दृक्कर्मसाधनार्थः नतदिनमानयोस्तयोर्भिन्नत्वेन स्वपदं युक्तं प्रयुक्तम्। ननु स्पष्टक्रांतिजचरोत्पन्नदिनमानयोर्भेदान्नतभेदाच्च स्वमित्युक्तम्। तत्साधनस्य वैयधिकरण्येनाप्रसक्तेरिति ध्येयम्। उक्तरीत्योत्तराद्विक्षेपाल्लब्धतत्कलात्मकं प्राच्यां प्राक्कपाले ग्रहस्य हीनम्। पश्चिमकपाले योज्यम्। दक्षिणे तथा विक्षेपे। तुकारात्तदुत्पन्नं फलं प्राक्कपाले योज्यं पश्चिमकपाले हीनं कार्यम्॥ ८॥ ९॥

---

१ जिस अंशमें ग्रह स्थित है, तिसके उदय (लग्न) का समय स्थिर करके तिससे ग्रहका मध्योदय काल ग्रहका दिनार्द्धमान मिलातेही प्राप्त होजाताहै। मध्योदयकाल नियत होजानेपर इष्टदण्डकी पृथक्ताके द्वारा नतोन्नत सहजसे जाना जाता है।

भा० टी०-विक्षेपको विषुवच्छायासे गुणकरके १२ से भाग करनेपर जो हो तिसको स्वीयनतदण्डसे गुणकरके स्वीयदिनार्द्धमे भाग करनेपर अक्षदृक् कर्म होता है। उत्तर विक्षेप होनेसे मध्योदयके पूर्वमें अक्षदृक् ग्रहस्पष्टसे वियोग और परे योग करना चाहिये। विक्षेप दक्षिणमें हो तो मध्योदयके पूर्वमें योग और पीछे वियोग करना पडता है ॥ ९ ॥

अथायनदृक्कर्माह—

सत्रिभग्रहजक्रान्तिभागघ्नाः क्षेपलिप्तिकाः ॥
विकलाः स्वमृणं क्रान्तिक्षेपयोर्भिन्नतुल्ययोः ॥ १० ॥

विक्षेपकलाः पूर्वसाधिता राशित्रययुतग्रहोत्पन्नक्रांत्यंशैर्गुणिता विकला भवन्ति ताः अक्षदृक्कर्मसंस्कृतग्रहे विकलास्थाने क्रांतिक्षेपयोः सत्रिभग्रहस्य क्रान्तिर्ग्रहस्य विक्षेपः। अनयोर्भिन्नतुल्ययोर्भिन्नैकदिक्कयोः सतोः क्रमेण स्वमृणं कार्यं। अत्रोपपत्तिः। विक्षेपवृत्तस्य ग्रहबिम्बोपरि ध्रुवप्रोतश्लथवृत्तं स्पृष्ट्वा क्रान्तिवृत्ते ग्रहासन्ने यत्र लगति तस्य ग्रहचिह्नस्यान्तरे याः क्रान्तिवृत्ते कलस्ता आयनकलास्तदानयनार्थं क्षेत्रं ग्रहशरः कदम्बाभिमुखः कर्णः। तत्सम्बद्धद्युरात्रवृत्तप्रदेशध्रुवप्रोतश्लथवृत्तसम्पातयोरन्तरे द्युरात्रवृत्ते भुजः। ध्रुवप्रोतवृत्ते स्पष्टशरो ग्रहबिम्बतत्संपातान्तरे कोटिः। अतस्त्रिज्याकर्णेऽयनवलनज्याभुजस्तदा शरकर्णे क इत्यनुपातेन द्युरात्रवृत्ते द्युज्याप्रमाणेन भुजकलाः। ननु ग्रहचिह्नतद्वृत्तसम्पातान्तरे क्रान्तिवृत्ते भुजकलाः क्रान्तिवृत्तस्य तिर्यक्त्वेन तादृश क्रान्तिवृत्तप्रदेशस्य तिर्यक्त्वाद्भुजत्वासम्भवात्। अयनवलनज्याभुजस्त्रिज्याकर्णो यष्टिः कोटिस्तद्वर्गान्तरपदरूपेति क्षेत्रं गोले प्रत्यक्षम्। अतोऽनुपाते न क्षतिः। तत्र भगवता लोकानुकम्पया गणितसुखार्थं द्युरात्रवृत्तस्य भुजकला क्रान्तिवृत्तस्था अंगीकृता स्वल्पान्तरत्वात्। अतोऽयनवलज्याशरकलाभिर्गुण्यात्रिज्यया भाज्येति प्राप्ते भगवतायनवलनस्य सत्रिभग्रहक्रान्तिभागत्वेनांगीकारात्तद्भागा अष्टपञ्चाशता गुणनीया ज्या भवति। यतः परमाश्चतुर्विंशत्यंशा अष्टपञ्चाशता गुणिताः पंचोना परमक्रान्तिज्या जाता। इयं शरगुणात्रिज्याभक्तायनकलास्तत्र विकलात्मकफलार्थं षष्टिर्गुण इति सत्रिभग्रहक्रान्तिभागगुणितो ग्रहविक्षेपोऽ-

ष्टपञ्चाशत्षष्टिघातेन विंशत्यूनेन पञ्चत्रिंशच्छतेन गुण्य स्त्रिज्याभक्त इति सिद्धम् । अत्रापि लाघवाद्गुणस्य त्रिज्यामितत्वेन स्वल्पान्तरत्वादङ्गीकाराद्गुणहरयोर्नाश इत्युपपन्नं सत्रिभेत्यादि विकला इत्यन्तम् । भास्कराचार्यैस्तु– "आयनं वलनमस्फुटेषुणा संगुणं द्युगुणभाजितं हृतम् ॥ पूर्णपूर्णधृतिभीर्ग्रहाश्रितव्यक्षभोदयहृदायनाः कलाः ॥" इति सूक्ष्ममस्मादुक्तम् । धनर्णोपपत्तिस्तु मकराद्युत्तरायणे दक्षिणध्रुवाद्दक्षिणकदम्बोऽधः । उत्तरध्रुवादुत्तरकदम्ब ऊर्ध्वम् । तत्र शरो यदा तूत्तरस्तदा ग्रहबिम्बस्योत्तरकम्बोन्मुखत्वेनोत्तरध्रुवादुन्नतत्वात्क्रान्तिवृत्तस्य ग्रहचिह्नात्क्रान्तिवृत्तध्रुवप्रोतश्लथवृत्तसम्पात आयनग्रहचिह्नरूपः क्रान्तिवृत्ते पश्चाद्भवत्यत आयनविकलाः स्पष्टग्रह ऋणं कृताश्चेदायनग्रहभोगो ज्ञातः स्यात् । एवं दक्षिणशरे ग्रहबिम्बस्य दक्षिणकदम्बोन्मुखत्वेन ध्रुवोन्नतत्वात्क्रान्तिवृत्ते ग्रहचिह्नादायनग्रहचिह्नमग्र एव भवतीति धनमायनविकलाः । कर्कादिदक्षिणायने तु दक्षिणध्रुवाद्दक्षिणकदम्बऊर्ध्वमुत्तरध्रुवादुत्तरकदम्बोऽधः । तत्र यदि ग्रहशरो दक्षिणस्तथा ग्रहबिम्बस्य दक्षिणध्रुवादुन्नतत्वात्क्रान्तिवृत्ते ग्रहचिह्नादायनग्रहचिह्नं पश्चादत ऋणमायनम् । यद्युत्तरशरस्तदा ग्रहबिम्बस्योत्तरंध्रुवान्नतत्वाद्ग्रहचिह्नादायनग्रहचिह्नमग्रे क्रान्तिवृत्ते भवतीत्यायनं धनमिति गोलस्थित्यायनशरदिगैक्य ऋणमयनशरदिग्भेदे धनमिति सिद्धम् । तत्र ग्रहायनदिशः सत्रिभग्रगोलदिक्तुल्यत्वात्सत्रिभग्रहक्रान्तिग्रहशरयोरेकदिक्त्वे ऋणं भिन्नदिक्त्वे धनमित्युपपन्नम् । अथाक्षदृक्कर्मोपपत्तिः । भूगर्भक्षितिजयाम्योत्तरवृत्तसम्पातरूपसमप्रोतचलवृत्ते ग्रहबिम्बसक्ते क्रान्तिमण्डलस्य ग्रहासन्नो यत्र सम्पातस्तत्राक्षदृक्कलासंस्कृतो ग्रहस्तस्यायनग्रहस्य चान्तरे क्रान्तिवृत्तप्रदेश आक्षदृक्कलास्ताः । क्षितिजस्थग्रहबिम्बोपरमान्तरत्वात्परमा याम्योत्तरवृत्तस्थे ग्रहेऽयनग्रहचिह्नमेवाक्षदृक्कलासंस्कृतग्रहचिह्नं भवतीति तदभावः । अतः क्षितिजस्थे ग्रहबिम्बे चलवृत्तं याम्योत्तरक्षितिजसम्पातप्रोतक्षितिजवृत्ताभिन्नं तत्र ग्रहबिम्बसक्तं ध्रुवप्रोतचलवृत्तक्रान्तिवृत्तसम्पातोऽयनग्रहचिह्नरूपः क्षितिजस्थक्रान्तिवृत्तप्रदेशादूर्ध्वमधो वा याभिः कला-

भिरन्तरितस्ता अक्षदृक्कलाः । आसां ज्ञानार्थं तदन्तरप्रदेशीयद्युरात्रवृत्तखण्डप्रदेशस्थासवोऽक्षजाः साधिता । तथाहि । ध्रुवद्वयप्रोतग्रहबिम्बगतचलवृत्ते विषुवद्वृत्तग्रहबिम्बान्तरे स्फुटा क्रान्तिः । विषुवद्वृत्तक्रान्तिवृत्तस्यायनग्रहचिह्नान्तरे मध्यमाक्रान्तिरयनग्रहस्यायनग्रहचिह्नग्रहबिम्बान्तरे स्फुटशरः । द्वयोः क्रान्त्योरेकदिक्त्वे स्फुटक्रान्तिरधिका । तत्रोत्तरगोलेऽयनग्रहचिह्नक्षितिजादधः स्वद्युरात्रवृत्ते क्रान्त्योश्चरान्तरासुभिर्भवति । यतोऽयनग्रहचिह्नद्युरात्रवृतस्थोन्मण्डलक्षितिजान्तररूपचरा ग्रहबिम्बीयचरस्याधिकत्वेन मध्यमचरसम्बद्धक्षितिजवृत्तप्रदेशाद्ध्रुवाभिमुखसूत्रं ग्रहबिम्बीयचरसम्बद्धद्युरात्रवृत्तप्रदेशेयत्रलग्नं तत्क्षितिजान्तराले चरान्तरस्य सत्त्वेन स्पष्टशरचरान्तराभ्यां कोटिजात्यामायतचतुरस्रक्षेत्रस्य तद्द्युरात्रवृत्तयमध्ये स्फुटदर्शनम् । एवं दक्षिणगोलेऽयनग्रहचिह्नस्वद्युरात्रवृत्ते क्षितिजादूर्ध्वं क्रान्त्योश्चरान्तरासुभिरिति । क्रान्त्योर्भिन्नदिक्त्वे तु क्षितिजादयंनग्रहचिह्नस्वद्युरावृत्ते क्रांत्योश्चरतोस्तुल्यासुभिरध ऊर्ध्वम् । मध्यक्रांतिद्युरात्रवृत्तसुन्मण्डलात्स्पष्टक्रांतिचरतुल्यांतरेण दक्षिणोत्तरगोलयोरध ऊर्ध्वमयनग्रहचिह्नस्य सत्त्वात् । क्षितिजाचरांतरेणोद्वृत्तस्य तत्त्वाचेति । भास्कराचार्यैः "स्फुटास्फुटक्रांतिजयोश्चरार्धयोः सामान्यदिक्त्वेऽन्तरयोगजासवः । पलोद्भवाख्यभनभःसदाम्" इति सूक्ष्ममाक्षदृगसुज्ञानमुक्तम् । भगवता तु पूर्वोक्तरीत्या स्फुटास्फुटक्रांतिसंस्कारोत्पन्नस्फुटशररूपक्रांतिखण्डस्य स्वल्पांतरेण यथागतशरतुल्यस्य चरमाक्षदृगसव इत्यंगीकृत्य द्वादशकोटौ पलभाभुजस्तदा विक्षेपरूपक्रांतिकोटौ क इत्यनुपाताद्विक्षेपज्याफलधनुषोस्त्यागात्स्वल्पांतरेण कुज्याचरज्ययोरभिन्नत्वेनांगीकाराच्चरासव आक्षासव एता एव कला धृताः स्वल्पांतरत्वात् । क्षितिजातिरिक्तस्थग्रहबिम्बे त्वेताः कला अभीष्टनतकालपरिणता भवंतीति विषुवच्छाययेत्यादिस्वदिनार्धविभाजितमित्यंतम् । अत्र ग्रहे आयनं दृक्कर्म संस्कार्यं तस्माद्दिनरात्रिमानादिनतं साधयित्वाक्षदृक्कर्म क्रियते तदा किञ्चित्सूक्ष्ममिति सत्रिभग्रहज्येत्यादिश्लोकः सप्तमो यत्पुस्तके तत्र तूक्तं स्वतः सिद्धम् । नतानुपाते स्वादव्यर्थ प्रयोगशंकानवकाशश्च समग्रहयोरायनदृक्कर्मसंस्कारेण भिन्नत्वसम्भ-

वात्तयोर्दिनमाननतयोरपि भिन्नत्वसिद्धेरित्यवधेयम् । धनर्णोपपत्तिस्तु समप्रोतचलवृत्तं ग्रहाबिम्बोपरिगं यत्र क्रांतिवृत्ते लगति स राश्यादिभोग आक्षदृक्कर्मसंस्कृत इति प्रागुक्तम् । तत्र पूर्वकपाले तस्माद्ग्रहादायनग्रहचिह्नं क्रांतिवृत्त उत्तरशरेऽग्रिमभागे भवति दक्षिणशरे पश्चाद्भवतीति क्रमेणर्णधनमुक्तम् । पश्चिमकपालेतूत्तरशरे पश्चाद्दक्षिणशरेऽग्रिमभाग इति क्रमेणायनग्रहे धनर्णं दृक्कर्मद्वयसंस्कृतो ग्रहसिद्धो भवतीत्युपपन्नं सर्वम् ॥ १० ॥

भा० टी०–त्रिराशियुत ग्रहस्पष्टके अनुसार लाये हुये क्रांत्यंश करके विक्षेपकलाको गुणा करनेसे अयनदृक्कर्मविकला होगी । पूर्वोक्त क्रान्ति और विक्षेप भिन्नदिक्स्थ होनेपर ग्रहमें योग और नहीं तो वियोग करे ॥ १० ॥

अथ प्रसंगाद्दृक्कर्मसंस्कारस्थलान्याह–

नक्षत्रग्रहयोगेषु ग्रहास्तोदयसाधने ॥
शृंगोन्नतौ तु चन्द्रस्य दृक्कर्मादाविदं स्मृतम् ॥ ११ ॥

अत्र निमित्तसप्तमी । ग्रहनक्षत्राणां बहुत्वाद्बहुवचनम् । नक्षत्रग्रहयोर्युत्यर्थं नक्षत्रग्रहयोरिदं द्वयं दृक्कर्मस्मृतं प्रागुक्तम् आदौ प्रथमं कार्यम् । ताभ्यामनन्तरं क्रिया कार्येत्यर्थः । अत्र नक्षत्रध्रुवकाणामायनदृक्कर्मसंस्कृतानामेवोक्तत्वादायनं दृक्कर्म न कार्यमितिध्येयम् । ग्रहाणामस्तोदयौ नित्यास्तोदयौ सूर्यसान्निध्यजनितास्तोदयौ च । ग्रहाणामुपलक्षणत्वान्नक्षत्राणामपि । तयोः साधननिमित्तं ग्रहस्य नक्षत्रस्य वा देयम् । अत्राक्षदृक्कर्मार्थं केवलं शरः साध्यः । नतुः दिनमानरात्रिमाननतोन्नते साध्ये । क्षितिजसंबन्धेन दृग्ग्रहरूपोदयास्तलग्नस्यावश्यकत्वेन क्षितिजातिरिक्तनतपरिणामस्य व्यर्थत्वात् । युतौ तु समप्रोतचलवृत्ते युगपद्दर्शनार्थं तत्परिणामस्यावश्यकत्वात् । शृंगोन्नतिनिमित्तं चंद्रस्य । तुकारः समुच्चयार्थकचकारपरः । अत्रापि श्लोके पूर्वार्धोक्तमासदृक्कर्मसंस्कारमिति ध्येयम् ॥ ११ ॥

भा० टी०--नक्षत्रग्रहयोगमें ग्रहके उदयास्त निरूपणमें, चन्द्रमाकी शृंगोन्नतिमें पहलेही ऐसा दृक्कर्मसाधन करे ॥ ११ ॥

अथ दृक्कर्मसंस्कृतग्रहयोर्युतिकालं तात्कालिकतद्विक्षेपाभ्यां ग्रहयोर्याम्योत्तरान्तरं चाह–

तात्कालिकौ पुनः कार्यौ विक्षेपौ च तयोस्ततः ॥
दिक्तुल्ये त्वन्तरं भेदे योगः शिष्टं ग्रहान्तरम् ॥ १२ ॥

पुनर्द्वितीयवारं तादृशग्रहाभ्यां शीघ्रे मन्दाधिकेऽतीत इत्यादिना युतेर्गतैष्यत्वं ज्ञात्वा ग्रहान्तरकला इत्यादिना दृक्कर्मसंस्कृतौ समौ स्वयुतिसमये भवतः। विवरं तद्वद्युक्त्यैत्यादिना समस्पष्टग्रहकालादृक्कर्मसंस्कृतसमग्रहकालो युत्याख्यो ज्ञेयः । तस्मिन् काले साधितौ तौ ग्रहौ स्फुटावसमौ तात्कालिकौ मध्यस्पष्टादिक्रियया कार्यौ । तयोः साधितग्रहयोर्विक्षेपौ । चः समुच्चये । कार्यौ एतौ ग्रहौ दृक्कर्मसंस्कृतौ समौ भवत इति प्रतीतिः । नोचेत्तस्मादप्युक्तरीत्या मुहुः कालं स्थिरं कृत्वा प्रतीतिर्द्रष्टव्या । ततः सूक्ष्मयुतिसमये ग्रहयोर्विक्षेपसाधनानन्तरम् । दिक्तुल्य एकदिक्त्वे तुकाराद्विक्षेपयोरन्तरं कार्यम् । भेदे भिन्नदिक्त्वे विक्षेपयोर्योगः । शिष्टं संस्कारोत्पन्नं ग्रहान्तरम् । युति संबंधिनोर्ग्रहबिम्बकेंद्रयोरन्तरालं याम्योत्तरं भवति । अत्रोपपत्तिः । दृक्कर्मसंस्कृतग्रहयोः पूर्वापरान्तराभावः समप्रोतचलवृत्त इति तयोः समत्वम् । विक्षेपाग्रे ग्रहबिम्बकेन्द्रत्वादेकदिशि विक्षेपयोरन्तरं ग्रहबिम्बकेन्द्रयोर्याम्योत्तरमन्तरं समप्रोतचलवृत्ते भिन्नदिशि शरयोर्योग एव ग्रहबिम्बकेन्द्रयोर्याम्योत्तरमन्तरं तद्वृत्ते भास्कराचार्यैस्तु " " एवं लब्धैर्ग्रहयुतिदिनैश्चालितौ तौ समौ स्तस्ताभ्यां सूर्यग्रहणवदिषू संस्कृतौ स्वस्वनत्या । तौ च स्पष्टौ तदनु विशिखौ पूर्ववत्संविधेयौ दिक्साम्ये या वियुतिरनयोः संयुतिर्भिन्नदिक्त्वे ॥" इत्यनेन सूक्ष्ममुक्तम् । भगवताकृपालुना तदुपेक्षितम् । स्वल्पान्तरत्वात् ॥ १२ ॥

भा० टी०–तिससे फिर समकला और कालनिर्णय करे । और जबतक समकला स्थिर न होवे तबतक वारम्वार साधन करे, स्थिर हो जानेपर दोनों ग्रहोंका विक्षेप निर्णय करे । एक दिशामें होनेसे वियोग और भिन्नदिशामें होनेसे योग करनेपर ग्रहान्तर सिद्ध होगा ॥ १२ ॥

अथ पञ्चताराणां बिम्बमानकलानयनं श्लोकाभ्यामाह–

कुजार्किज्ञामरेज्यानां त्रिंशदर्धार्धवर्धिताः ॥
विष्कंभाश्चन्द्रकक्षायां भृगोः षष्टिरुदाहृताः ॥ १३ ॥

त्रिचतुष्कर्णयुक्त्याप्तास्ते द्विघ्नास्त्रिज्यया हृताः ॥
स्फुटाः स्वकर्णास्तिथ्याप्ता भवेयुर्मानलिप्तिकाः ॥ १४ ॥

त्रिंशदर्धार्धवर्धितास्त्रिंशतोऽर्धं पंचदश तदर्धं सार्धसप्तैरुत्तरोत्तरं युक्तास्त्रिंशत्क्रमेण भौमशनिबुधबृहस्पतीनां चन्द्रकक्षायां चन्द्राकाशगोले चन्द्रकक्षाप्रमाणेन स्वकक्षाप्रमाणेनेत्यर्थः । विष्कम्भा बिम्बव्यासायोजनात्मका उक्ताः । भौमस्य त्रिंशत् । शनेः सार्धसप्तत्रिंशत् । बुधस्य पञ्चचत्वारिंशत् । गुरोः सार्द्धद्विपञ्चाशत् । अनेनैव क्रमेण शुक्रस्य षष्टिः । भृगोः षष्टिरित्यनेनार्धार्धेत्यस्य प्रत्येकमर्धयुक्ता इत्यर्थो निरस्तः स्वाभिमतार्थो व्यक्तीकृतश्च । ते उक्ता विष्कंभा द्विगुणास्त्रिज्यया गुणितास्त्रिचतुष्कर्ण युक्त्याप्ताः । तृतीयकर्मणि चतुर्थकर्मणि च यौ कर्णौ मन्दकर्णशीघ्रकर्णौ तयोर्योगे न भक्ता इतिसांप्रदायिकव्याख्यानम् । नव्यास्तु तृतीयकर्मणि कर्णानुपातानुक्तेस्तृतीयकर्णस्य मन्दकर्णस्याप्रसिद्धेरुपपत्तिविरोधाच्च पूर्व्वव्याख्यामुपेक्ष्य त्रिशब्देन त्रिज्याचतुष्कर्णश्चतुर्थकर्मणि शीघ्रकर्णस्तयोर्योगेन भक्ता इत्यर्थं कुर्वन्ति । स्पष्टाः स्वकर्णाः स्वबिम्बव्यासा भवन्ति । पञ्चदशभक्ता बिम्बमानकला भवेयुः । अत्रोपपत्तिः । स्वस्वकक्षायां स्थिताः पञ्चताराग्रहा दूरत्वाल्लोकैश्चन्द्राकाशस्थिता इव दृश्यन्ते । अतस्तेषां वास्तवबिम्बव्यासयोजनानि स्वयं ज्ञातानि यथा सूर्यबिम्बव्यासयोजनान्युक्तानि चन्द्रग्रहणाधिकारे रवेः स्वभगणाभ्यस्त इत्यादिना चन्द्रकक्षायां साधितानि तथा स्वभगणानुसारेणोक्तप्रकारेण चन्द्रकक्षायां साधितानि । च शाकल्यसंहितायाम्—"अन्तरुन्नतवृक्षांश्च वनप्रांते स्थिताइव । दूरत्वाच्चन्द्रकक्षायां दृश्यन्ते सकल ग्रहाः ॥ व्यर्धाष्टवर्धितास्त्रिंशद्विष्कम्भाः शास्त्रदृष्टतः ॥" इत्येतानि त्रिज्यातुल्यशीघ्रकर्ण उक्तानि । अतः शीघ्रकर्णेऽधिके न्यूनं बिम्बग्रहस्योच्चासन्नत्वादल्पे तु नीचासन्नत्वादधिकं बिम्बमिति त्रिज्ययोक्तानि बिम्बानि तदिष्टशीघ्रकर्णेन कानीति व्यस्तानुपातेन युक्तमपि भगवतोपलब्धा त्रिज्यातोऽधिकन्यूनकर्णयोः क्रमेण व्यस्तानुपातागतादधिकं न्यूनं च बिम्बं दृष्टमतः कर्ण एव त्रिज्याशीघ्रकर्णयोगार्धमितः क्रमेण न्यूनाधिको गृहीतः ।

अत्र च्छेदं लवं च परिवर्त्यहरस्येत्यादिना द्विघ्ना स्त्रिज्यागुणिता विष्कंभा स्त्रिज्याशीघ्रकर्णयोगभक्ता इत्युपपन्नम् ॥ " त्रिचतुष्कर्णयोगार्धं स्फुटकर्णोऽयमस्तके । त्रिज्याघ्नाः स्फुटकर्णाप्ता विष्कम्भास्ते स्फुटाः स्मृताः ॥" इति शाकल्योक्तेश्च । अत एव विम्वस्य द्राङ्नीचोच्चमण्डलस्थत्वेन शीघ्रकर्णस्यैव भूगर्भाद्बिंबे सम्बन्धान्मन्दकर्णसम्बन्धस्त्वयुक्तः । नहि छेद्यके मन्दकर्णार्धाच्छीघ्रकर्णार्धे ग्रहबिम्बमस्तीति प्रतिपादितम् । येन मन्दशीघ्र कर्णयोर्योगार्धं कर्णः सूपपन्नः । शीघ्रफलानयने तथाङ्गीकारापत्तेः । भास्कराचार्यैस्तु–व्यङ्ग्रीषवः सचरणा ऋतवस्त्रिभागयुक्ताद्रयो नव च सत्रिलवेषवश्च । स्युर्मध्यमास्तनुकलाः क्षितिजादिकानां त्रिज्या सुकर्णविवरेण पृथग्विनिघ्नाः ॥ त्रिज्यानि जान्त्यफलमौर्विकया विभक्ताः लब्धेन युक्तरहिताः क्रमशः पृथक्स्थाः । ऊनाधिके त्रिभगुणाच्छ्रवणे स्फुटाः स्युः ॥" इत्युपलब्ध्योक्तम् । भास्करानुवर्तिनस्तु त्रिचतुष्कर्णयुक्त्याप्ता इत्यस्य त्रिज्याशीघ्रकर्णयोर्योगार्धेन भक्ता इत्यर्थं वदंति ॥ १३ ॥ १४ ॥

भा० टी०–चन्द्रकक्षामें मंगलके ३०, शनि ३७ है बुध ४९, बृहस्पति ५२ है शुक्रके ६० विम्ब व्यास हैं । इन विम्बव्यासोंको द्विगुणित त्रिज्यासे गुणकरके त्रिज्या और चतुर्थकर्मगत (स्पष्टानयनमें) कर्णके योगफलसे भाग करनेपर स्पष्ट बिम्बव्यास होगा। स्पष्टव्यासको १९ से भाग करनेपर कलादिमान होगा। १३-१४

अथ युतिसंबन्धिनौ ग्रहौ युतिसमये दर्शनीयावित्याह–

छायाभूमौ विपर्यस्ते स्वच्छायाग्रे तु दर्शयेत् ॥
ग्रहः स्वदर्पणान्तस्थः शंक्वग्रे सम्प्रदृश्यते ॥ १५ ॥

छायाभूमौ छायादानार्थं योग्यायां जलवत्समीकृतायां पृथिव्याम् । विपर्यस्ते वैपरीत्येन दत्ते स्वच्छायाग्रे ग्रहच्छायाग्रस्थाने । तुकारोऽन्ययोगव्यवच्छेदार्थेवकारपरः । स्वदर्पणान्तस्थः स्वस्य यो दर्पण आदर्शस्तत्र स्थापितस्तन्मध्यस्थितो ग्रहो ग्रहप्रतिबिम्बः स्यात् । तद्गणकः शिष्याय दर्शयेत् । एतदुक्तं भवति । समभूमौ दिक्साधनं कृत्वा दिक्सम्पातस्थानाद्युतिकालिकच्छायांगुलानि पूर्वापरसूत्राद्भुजविपरीतदिशि भुजान्तरेण ग्रहाधिष्ठितपूर्वापरे कपालदिशि दत्त्वा तत्रादर्शः स्थाप्यस्तत्र प्रतिबिम्बं ग्रहस्य

दिक्संपातस्थो गणकः शिष्याय दर्शयेदिति । अत्रोपपत्तिः । ग्रहबिम्बादवलम्बसूत्रं महाशङ्कुरूपं यत्र भूमौ पतति तत्र ग्रहबिम्बप्रतिबिम्बो भवति । तज्ज्ञानं तु समध्याद्ग्रहबिम्बपर्यन्तं तनांशा आकाशे तथा भूमौ दिक्सम्पातस्थानान्महाशङ्कुकोटौ दृग्ज्याभुजस्तदा द्वादशांगुलशङ्कुकोटौ कौ भुज इत्यनुपातानीतच्छायामितान्तरे ग्रहाधिष्ठितकपाले भवति । यथा दृक्सम्पातस्थद्वादशांगुलशंकोश्छाया ग्रहाधिष्ठितकपाले भवति । तथा ग्रहप्रतिबिम्बस्थानस्थद्वादशांगुलशंकोश्छायादिक्सम्पाते भवति । अतो दिक्संपातस्थानाच्छाया ग्रहाधिष्ठितकपाले दत्ता तदग्रे ग्रहप्रतिबिम्बस्थानं ज्ञातं भवतीत्युपपन्नं छायाभूमावित्यादि स्वदर्पणान्तस्थ इत्यन्तम् । अथ ग्रहाधिष्ठितकपालान्यकपाले छायासद्भावनियमाद्ग्रहाधिष्ठितकपाले कथं छायादानं युक्तं व्याघातादिति मन्दाशङ्का स्वरसादाह—शङ्क्वग्र इति । दिक्सम्पातस्थापितशंकोरग्रे मस्तक आकाशे ग्रहो दृश्यते गणकेनेति शेषः ॥ १५ ॥

भा० टी०—बराबर करी हुई भूमिमें शंकु स्थापन करके दूसरी दिशामें ग्रहकी दृग्ज्यासे छायाग्र निर्देश करे। छायाग्रमें दर्पणरखनेसे दर्पणान्तरस्थितग्रह और शङ्क्वग्र समसूत्रमें दिखाई देगा ॥ १५ ॥

ननु कथं दृश्यत इत्यतः प्रकृतग्रहयोर्युतिसम्बन्धिनोर्दर्शनप्रकारं सार्द्धश्लोकाभ्यामाह—

पञ्चहस्तोच्छ्रितौ शंकू यथा दिग्भ्रमसंस्थितौ ॥
ग्रहान्तरेण विक्षिप्तावधो हस्तनिखातगौ ॥ १६ ॥
छायाकर्णौ ततो दद्याच्छायाग्राच्छंकुमूर्धगौ ॥
छायाकर्णाग्रसंयोगे संस्थितस्य प्रदर्शयेत् ॥
स्वशंकुमूर्धगौ व्योम्नि ग्रहौ दृक्तुल्यतामितौ ॥ १७ ॥

ग्रहयुतिसम्बधिनोर्ग्रहयोरायनदृक्कलाश्लोकपूर्वार्धोक्ताक्षदृक्कलाभ्यां संस्कृतयोस्तुल्येऽल्पान्तरेणासन्ने वोदयलग्ने स्तः। पद्भयुतयोर्ग्रहयोरायनाक्षदृक्कलासंस्कृतयोस्तुल्ये स्वल्पान्तरेणासन्ने वास्तलग्ने भवतः। यस्मिन् काले ग्रहौ द्रष्टुमभिमतौ तात्कालिकलग्नाद्यावौ यदुदयास्तलग्ने क्रमेण न्यूनाधिके

यदि भवतस्तौ सूर्यसान्निध्यजनितास्ताभावे दर्शनयोग्यौ । तदा पञ्चहस्तो च्छ्रितौ । चतुर्विंशत्यंगुलो हस्तः । एवं पञ्चहस्तप्रमाणदीर्घौ शङ्कू काष्ठघटितसरलदण्डौ यथादिग्भ्रमसंस्थितौ युतिकाले ग्रहयोर्यादृशं दिग्भ्रमणम् । ग्रहौ प्रवहभ्रमेण पूर्वकपाले पश्चिमकाले वा यत्र संस्थितौ स्वाधिष्ठितस्थानाद्ग्रहाधिष्ठितकपालदिशि स्थाप्यौ न ग्रहानधिष्ठितकपालदिशि । ग्रहान्तरेण दिक्तुल्ये त्वन्तरं भेदे योग इत्यादिना ज्ञातयाम्योत्तरग्रहन्तरेण कालात्मकेन विक्षिप्तौ याम्योत्तरान्तरितौ स्थाप्यौ । अत्र सोन्नतमित्यादिना ग्रहंविक्षेपावंगुलात्मकौ कृत्वा दिक्तुल्ये त्वन्तरमित्यादिना ग्रहान्तरं ज्ञेयम् । अधो भूमेरन्तः । हस्तनिखातगौ हस्तवेधप्रमाणा या गर्ता तत्र स्थितौ भूम्यां शङ्कोर्हस्तमात्रं रोपयित्वा भूमेरूर्ध्वंशङ्कू चतुर्हस्तप्रमाणदीर्घौ स्यातामित्यर्थः । ततः शंकुमूलाभ्यां प्रत्येकं यच्छायाग्रं ग्रहानधिष्ठितकपालदिशि तस्मात्प्रत्येकमित्यर्थः । छायाकर्णौ स्वकीयौ शंकुमूर्धगौ निजशंक्वग्ररूपमस्तकप्रापिणौ गणको दद्यात् । एतदुक्तं भवति । युतिसमये लग्नं कृत्वा तात्कालिकोदयलग्नेष्टलग्नाभ्यां पूर्ववदन्तरकालो ग्रहोदयाद्गतकालः सावनः । एवं ग्रहयोर्युतिसमये स्वदिनतात्त्रिप्रश्नाधिकारोक्तविधिना स्पष्टकान्त्या छाया साध्या । ततो यो ग्रहो दक्षिणोत्तरयोर्मध्ये यद्दिशि तच्छाया तद्दिक्स्थाशङ्कोर्मूलाद्ग्रहानधिष्ठितकपालदिशि पूर्वापरसूत्राद्भुजान्तरेण भुजदिशि देया । परमानीतच्छाया द्वादशांगुलशङ्कोरिति चतुर्हस्तशंकुप्रमाणेन प्रसाध्य रेखा तन्मिता समशंकुमूलात्कार्या । रेखाग्र छायाग्रे ज्ञापकं चिह्नं कार्यम् । तत्र कीलादिना सूत्रं बध्वा शङ्क्वग्रसक्तं प्रसार्यमिति । छायाकर्णाग्रसंयोगे छायाग्रं कर्णस्य मूलरूपमग्रं तयोः सम्पाते संस्थितस्य छायाग्रस्थानकृतगर्तौ प्रविष्टशिष्यस्य गणको ग्रहावाकाशे स्वेशङ्कुमूर्धगौ निजशङ्क्वग्ररूपमस्तकसमसूत्र स्थितौ द्व ल्यतां दृष्टिगोचरतामितौ प्राप्तौ प्रदर्शयेत्सन्दर्शयेत् । अत्रोपपत्तिः । उच्चतया दर्शनार्थं पञ्चहस्तप्रमाणौ शङ्कू कृतौ । तत्रैकहस्तस्य भूमिगुप्तत्वं शङ्कुदृढत्वार्थं कृतम् । बहिः पुरुषप्रमाणौ चतुर्मितहस्ताविशिष्टौ शङ्कोः पुरुषपर्यायेणाभिधानाच्च । शंकुसूत्रस्य ग्रहबिम्बसक्तत्वाद्यथा दिग्भ्रमसंस्थि-

तावित्युक्तम् । शङ्क्वग्रसमसूत्रेण ग्रहबिम्बावस्थाननियमाद्ग्रहान्तरेण याम्योत्तरान्तरितौ स्थापितौ । अत्र यद्यपि स्वस्वस्पष्टक्रान्त्यग्रां प्रसाध्य ततः कर्णाग्रां प्रसाध्योक्तदिशा पलभासंस्कारेण स्वस्वभुजं प्रसाध्य ताभ्याम् "दिश्ये त्वन्तरं भेदे योगः शिष्टं ग्रहान्तरम्" इत्युक्तरीत्या ग्रहान्तरं शङ्क्वोरन्तर युक्तम् । तथापि भगवता स्वल्पान्तरेण गणित श्रमापनोपदार्थमाकाशस्थितदृष्टान्तरमेव धृतम् । शङ्कोश्छायाग्राच्छायाकर्णसूत्रं ग्रहबिम्बदर्शनसूत्र मतः कर्णमूलदृशा पुरुषेण ग्रहबिम्बं द्रष्टव्यमेवेति दिक् ॥ १६ ॥ १७ ॥

भा० टी०—पांच हाथके परिमाणवाले यथादिक् दो शंकु याम्योत्तर रेखामें अंगुलात्मक अन्तरमें स्थापन करके एक हाथके परिमाणमें प्रोथित करे । छायाग्रसे शंकु ऊर्ध्वाग्रतक दो छायाकर्णनिर्णय करे । छायाकर्णाग्ररेखामें स्थित मनुष्यको ग्रहदर्शन करावे, वहभी शंकुके आगेमें ग्रह देखेगा ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ श्लोकाभ्यां पञ्चताराणां प्राक्प्रतिज्ञातौ युद्धसमागमावाह—

उल्लेखं तारकास्पर्शाद्भेदभेदः प्रकीर्त्यते ॥ १८ ॥
युद्धमंशुविमर्दाख्यमंशुयोगे परस्परम् ।
अंशादूनेऽपसव्याख्यं युद्धमेकोऽत्र चेदणुः ॥
समागमोंऽशादधिके भवतश्चेद्बलान्वितौ ॥ १९ ॥

भौमादिपञ्चताराणां मध्ये द्वयोर्युतौ तारकास्पर्शाद्बिम्बनेम्योः स्पर्शमात्रादुल्लेखसंज्ञं युद्धं वदंति यतिभेदज्ञाः । इदं तु द्वयोर्मानैक्यखण्डतुल्ययाम्योत्तरान्तरे भेदे मण्डलभेदे भेदो भेदसंज्ञो युद्धावान्तरभेदो युद्धभेदतत्त्वज्ञैः कथ्यते । अयं भेदो मानैक्यखण्डादूने द्वयोर्याम्योत्तरान्तरे । अत्र भास्कराचार्यैस्तु "मानैक्यार्धाद्द्युचरविवरेऽल्पे भवेद्भेदयोगः कार्यं सूर्यग्रहवदखिलं लम्बनाद्यं स्फुटार्थम् । कल्प्योऽधःस्थः सुधांशु स्तदुपरिग इनो लंबमानाप्रसिद्ध्यै किं त्वर्कादेव लग्नं ग्रहयुतिसमये कल्पितार्कोत्र साध्यम् ॥ सप्रागवलंबनेन ग्रहयुतिसमयः संस्कृतः प्रस्फुटः स्यात् खेटौ तौ दृष्टियोग्यौ ग्रहयुतिसमये कार्यमेवं तदैव । याम्योदक्स्थद्युचरविवरं भेदयोगे स बाणो ज्ञेयः सूर्याद्भवति च यतः शीतगुः सा शराशा ॥ मंदाक्रान्तोऽनृजुरपि नताधःस्थितः

स्यात्तदेन्द्यां स्पर्शो मोक्षोऽपरदिशि तदापरिलख्येऽवगम्यः ॥" इति विशेषोऽभिहितः । भगवता तु सूक्ष्मबिम्बयोराकाशे दूरतो विविक्तदर्शनासम्भवाद्व्यर्थप्रयासादुपेक्षितमिति ध्येयम् । युतावन्योन्यं किरणयोगे सत्यंशुमर्दाख्यं किरणसंघट्टनसंज्ञं युद्धं स्यात् । द्वयोर्याम्योत्तरान्तरेंऽशात् षष्टिकलात्मकैकभागादूनेऽनधिके सत्यपसव्यसंज्ञं युद्धं भवति । अत्र विशेषमाह—एक इति । अत्रापसव्ययुद्ध एको द्वयोरन्यतरोऽणुरणुबिम्बश्चेत्स्यात्तदाऽपसव्यं युद्धं व्यक्तं स्यादन्यथा त्वव्यक्तं युद्धं स्यात् । एषां चतुर्णां फलम् । "अपसव्ये विग्रहं ब्रूयात्संग्रामं रश्मिसंकुले । लेखनेऽमात्यपीडा स्याद्भेदने तु धनक्षयः ॥" इति भार्गवीयोक्तं ज्ञेयम् । युद्धभेदानुक्त्वा समागममाह—समागम इति । द्वयोर्याम्योत्तरान्तरे षष्टिकलात्मकैकभागादभ्यधिके सति समागमो योगो भवति । अत्रापि विशेषमाह । भवत इति । युतिविषयकौ ग्रहौ बलान्वितौ बलेन । "स्थानादिबलचिन्तात्र व्यर्था केनापि न स्मृता ॥ प्रश्नत्रयेऽथवाप्यस्मिन् स्थौल्यसौक्ष्म्यबले स्मृतम् ॥" इति ब्रह्मसिद्धान्तवचनात् । स्थूलमण्डलतयान्वितौ युक्तौ स्थूलबिम्बौ समावित्यर्थः । चेतस्तस्तदा समागमस्तयोर्व्यक्तः स्यात् । अन्यथा त्वव्यक्तः समागमः "द्वावपि मयूखयुक्तौ विपुलौ स्निग्धौ समागमे भवतः । अत्रान्योऽन्यं प्रीतिर्विपरीतावामात्मपक्षघ्नौ ॥ युद्धं समागमो वा यद्यव्यक्तौ तु लक्षणैर्भवतः । भुवि भूभृतामपि तथा फलमव्यक्तं विनिर्दिष्टम् ॥" इत्युक्तेः । "भेदोल्लेखांशुसम्मर्दा अपसव्यस्तथापरः । ततो योगो भवेदेषामेकशांकसमापनात् ॥" इति काश्यपोक्तेश्च सर्वं निरवद्यम् ॥ १८ ॥ १९ ॥

भा०टी०—ताराओंके परस्पर स्पर्शको उल्लेख कहते हैं, बिम्बभेद होजाय तो भेद युद्ध कहते हैं । परस्परकी किरण मिल जानेसे अंशुविमर्द नाम होता है । एक अंशका अनधिक पार्थक्य होवे तो अपसव्य युद्ध होता है, तिनमें एकतारा छोटा हो तो प्रकाश युद्ध होता है, ऐसा नहो अर्थात् दोनों एकसे हों तो अप्रकाश युद्ध होता है । एकांशमें अधिक पृथक्ता होनेसे दोनों ग्रहोंके बलवान् होनेपर समागम कहा जाता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

तावित्युक्तम् । शङ्क्वग्रसमसूत्रेण ग्रहबिम्बावस्थाननियमाद्ग्रहान्तरेण याम्योत्तरान्तरितौ स्थापितौ । अत्र यद्यपि स्वस्वस्पष्टक्रान्त्यग्रां प्रसाध्य ततः कर्णाग्रां प्रसाध्योक्तदिशा पलभासंस्कारेण स्वस्वभुजं प्रसाध्य ताभ्याम् "दिक्ये त्वन्तरं भेदे योगः शिष्टं ग्रहान्तरम्" इत्युक्तरीत्या ग्रहान्तरं शङ्क्वोरन्तर युक्तम् । तथापि भगवता स्वल्पान्तरेण गणित श्रमापनोपदार्थमाकाशस्थितदृष्टान्तरमेव धृतम् । शङ्कोश्छायाग्राच्छायाकर्णसूत्रं ग्रहबिम्बदर्शनसूत्र मतः कर्णमूलदृशा पुरुषेण ग्रहबिम्बं द्रष्टव्यमेवेति दिक् ॥ १६ ॥ १७ ॥

भा० टी०—पांच हाथके परिमाणवाले यथादिक् दो शंकु याम्योत्तर रेखामें अंगुलात्मक अन्तरमें स्थापन करके एक हाथके परिमाणमें प्रोथित करे । छायाग्रासे शंकु ऊर्ध्वाग्रतक दो छायाकर्णनिर्णय करे । छायाकर्णाग्ररेखामें स्थित मनुष्यको ग्रहदर्शन करावे, वहभी शंकुके आगेमें ग्रह देखेगा ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ श्लोकाभ्यां पञ्चताराणां प्राक्प्रतिज्ञातौ युद्धसमागमावाह—

उल्लेखं तारकास्पर्शाद्भेदे भेदः प्रकीर्त्यते ॥ १८ ॥
युद्धमंशुविमर्दाख्यमंशुयोगे परस्परम् ।
अंशादूनेऽपसव्याख्यं युद्धमेकोऽत्र चेदणुः ॥
समागमोंऽशादधिके भवतश्चेद्बलान्वितौ ॥ १९ ॥

भौमादिपञ्चताराणां मध्ये द्वयोर्युतौ तारकास्पर्शाद्बिम्बनेम्योः स्पर्शमात्रादुल्लेखसंज्ञं युद्धं वदंति यतिभेदज्ञाः । इदं तु द्वयोर्मानैक्यखण्डतुल्ययाम्योत्तरान्तरे भेदे मण्डलभेदे भेदो भेदसंज्ञो युद्धावान्तरभेदो युद्धभेदतत्त्वज्ञैः कथ्यते। अयं भेदो मानैक्यखण्डादूने द्वयोर्याम्योत्तरान्तरे । अत्र भास्कराचार्यैस्तु "मानैक्यार्धोद्द्युचरविवरेऽल्पे भवेद्भेदयोगः कार्यं सूर्यग्रहवदखिलं लम्बनाद्यं स्फुटार्थम् । कल्प्योऽधःस्थः सुधांशु स्तदुपरिग इनो लंबमानाप्रसिद्ध्यै किं त्वर्कादिव लग्नं ग्रहयुतिसमये कल्पितार्कोऽत्र साध्यम् ॥ सप्राग्वल्लंबनेन ग्रहयुतिसमयः संस्कृतः प्रस्फुटः स्यात् खेटौ तौ दृष्टियोग्यौ ग्रहयुतिसमयं कार्यमेवं तदैव । याम्योदक्स्थद्युचरविवरं भेदयोगे स बाणो ज्ञेयः सूर्याद्भवति च यतः शीतगुः सा शराशा ॥ मंदाक्रान्तोऽनृजुरपि तदाधःस्थितः

क्रान्तौ । दीप्तौ प्रभायुक्तौ चेत्स्यातां तदा बलान्विताविति समागमलक्षणैक देशसद्भावात्समागमाख्यं युद्धम् । द्वावपि ग्रहौ स्वल्पौ सूक्ष्मबिम्बौ विध्वस्तौ । द्वावपि पराजयलक्षणाक्रान्तौ स्यातां तदा क्रमेण कूटविग्रहसंज्ञकौ युद्धभेदौ स्याताम् ॥ २२ ॥

भा० टी०-दोनोंही ग्रह दीप्तिमान् होकर निकट आजाय तो समागम होता है। जो दोनोंही स्वल्पदीप्ति और विध्वस्त हों तो कूटविग्रह कहा जाता है ॥ २२ ॥

अथोत्सर्गेनः शुक्रस्य जयलक्षणाक्रान्तत्वमस्तीति वदन् समागमः शशांकेनेतिप्राक् प्रतिज्ञातसमागम उक्तप्रकारमतिदिशति-

उदक्स्थो दक्षिणस्थो वा भार्गवः प्रायशो जयी ।
शशाङ्केनैवमेतेषां कुर्यात्संयोगसाधनम् ॥ २३ ॥

इतरग्रहापेक्षयोदक्स्थो दक्षिणदिक्स्थो वोभयदिशीत्यर्थः । शुक्रः प्रायश उत्सर्गतो जयलक्षणाक्रान्तत्वेन जयी । कदाचित्पराजयलक्षणाक्रान्तौ भवतीति तात्पर्यार्थः । एतेषां भौमादिपञ्चताराणां चन्द्रेण सह संयोगसाधनं युतिसाधनमेषामुक्तरीत्या गणकः कुर्यात् । अत्र विशेषार्थकम् ॥ "अवनत्या स्फुटो ज्ञेयो विक्षेपः शीतगोर्युतौ" इत्यर्धं कचित्पुस्तके दृश्यते न सर्वत्रेति क्षिप्तं मत्त्वोपेक्षितम् । अधिकारस्यापूर्णश्लोकत्वापत्तेश्च । एतदुक्त्यान्ययोगे नतिसंस्कारनिषेधस्य सिद्धेस्तस्यायुक्तत्वमिति तदनुक्तौ सूर्यग्रहणोक्तरीत्या साधारण्येन सर्वत्र तद्विशेषोक्तिरर्थसिद्धेरिति ध्येयम् ॥ २३ ॥

भा०टी०-उत्तरमें हो या दक्षिणमें हो बहुधा शुक्र जयही पाता है । पूर्वनियमके द्वारा ग्रहोंके साथ चंद्रमाका संयोगकाल निर्णय करे ॥ २३ ॥

नन्वेषां ग्रहाणां दूरान्तरेण सदोर्ध्वाधरान्तरसद्भावात्परस्परं योगासम्भवेन कथं युतिः संगतेत्यत आह-

भावाभावाय लोकानां कल्पनेयं प्रदर्शिता ॥
स्वमार्गगाः प्रयान्त्येते दूरमन्योन्यमाश्रिताः ॥ २४ ॥

एते ग्रहाः स्वमार्गगाः स्वस्वकक्षास्था अन्योन्यमाश्रिता युतिकाल ऊर्ध्वाधरान्तराभावेन संयुक्ताः सन्तः प्रयांति गच्छंति । इति दूरं दूरान्तरेण

अथ युद्धे पराजितस्य ग्रहस्य लक्षणमाह-

अपसव्ये जितो युद्धो पिहितोऽणुरदीप्तिमान् ॥
रूक्षो विवर्णो विध्वस्तो विजितो दक्षिणाश्रितः ॥ २० ॥

द्वयोर्मध्ये यस्तदितरेण विध्वस्तो हतः स विजितो ज्ञेयः । हतस्य लक्षणमाह-अपसव्य इति । अपसव्ये युद्धे योऽजितो जयलक्षणैर्विवर्जितः एतेनोल्लेखा दित्रये संज्ञाफलं न पराजितस्य फलमिति सूचितम् । पिहि आच्छादितोऽव्यक्त इति यावत् । अणुरितरग्रहबिम्बादल्पबिम्बः । अदीप्तिमान् प्रभारहितः । रूक्षोऽस्निग्धः । विवर्णः वर्णेन स्ववर्णेन स्वाभाविके रहित इत्यर्थः । दक्षिणाश्रित इतरग्रहापेक्षया दक्षिणदिशि स्थितः । "श्यामे वा व्यपगतरश्मिमण्डलो वा रूक्षो वा व्यपगतरश्मिवान् कृशो वा । अक्रान्ते विनिपतितः कृतापसव्यो विज्ञेयो हत इति ग्रहेण ॥" इति भार्गवीयोक्तेः ॥२०॥

भा० टी०-अपसव्य युद्धमें थोडी प्रभावाला ढकाहुआ छोटे बिम्बवाला ग्रही हार जाता है । ग्रह रूखा, विरूप और दक्षिणस्थ होता है ॥ २० ॥

अथ श्लोकार्धेन जयिनो ग्रहस्य लक्षणमाह-

उदक्स्थो दीप्तिमान् स्थूलो जयी याम्येऽपि यो बली ॥ २१ ॥

इतरग्रहापेक्षयोत्तरदिक्स्थः । दीप्तिमान् प्रभायुक्तः स्थूल इतरग्रहबिम्बापेक्ष या पृथुबिम्बः । जयी जययुक्तः स्यात् । अथोत्तरदक्षिणदिक्स्थत्वक्रमेण जयपराजयौ न स्त इत्याह-याम्य इति । दक्षिणदिशि यो ग्रहो बली दीप्तमान् पृथुबिम्बो भवति स जयी । अपिशब्द उत्तरदिशा समुच्चयार्थकः । तथा च जयपराजयलक्षणयोर्दिग्दानमनुपयुक्तमिति भावः ॥ २१ ॥

भा० टी०-दीप्तिमान् ग्रह उत्तर दिशामें स्थित, स्थूलबिम्ब औ जयी होता है । दक्षिणमें रहकरभीबली होनेसे जयी होता है ॥ २१ ॥

अथ युद्धे विशेषमाह-

आसन्नावप्युभौ दीप्तौ भवतश्चेत्समागमः ॥
स्वल्पौ द्वावपि विध्वस्तौ भवेतां कूटविग्रहौ ॥ २२ ॥

उभौ द्वौ । आसन्नावेकभागान्तरगतान्तरितौ । अपिशब्दादुक्तलक्षणा-

अथ प्रतिज्ञाता नक्षत्रभोगलिप्ता उत्तराषाढाभिजिच्छ्रवणधनिष्ठाव्यतिरिक्तानां तेषां ध्रुवकान्नक्षत्रशरांश्चाष्टश्लोकैराह–

अष्टार्णवाः शून्यकृताः पञ्चषष्टिर्नगेषवः ॥
अष्टार्था अब्धयाऽष्टांगा अङ्गागा मनवस्तथा ॥ २ ॥
कृतेषवो युगरसाः शून्यबाणा वियद्रसाः ॥
खवेदाः सागरनगा गजागाः सागरर्तवः ॥ ३ ॥
मनवोऽथ रसा वेदा वैश्वमाप्यार्धभोगगम् ॥
आप्यस्यैवाभिजित्प्रान्ते वैश्वान्ते श्रवणस्थितिः॥ ४ ॥
त्रिचतुःपादयोः सन्धौ श्रविष्ठा श्रवणस्य तु ॥
स्वभोगतो वियन्नागाः षट्कृतिर्यमलाश्विनः ॥ ५ ॥
रंध्राद्रयः क्रमादेषां विक्षेपाः स्वापदक्रमात् ॥
दिङ्मासविषयाः सौम्ये याम्ये पञ्चदिशो नव ॥ ६ ॥
सौम्ये रसाः खं याम्ये गाः सौम्ये खार्कास्त्रयोदश ॥
दक्षिणे रुद्रयमलाः सप्तत्रिंशदथोत्तरे ॥ ७ ॥
याम्येऽध्यर्धत्रिककृता नवसार्धशरेषवः ॥
उत्तरस्यां तथा षष्टिस्त्रिंशत्षट्त्रिंशदेव हि ॥ ८ ॥
दक्षिणे त्वर्धभागस्तु चतुर्विंशतिरुत्तरे ॥
भागाः षड्विंशतिः खं च दस्रादीनां यथाक्रमम् ॥ ९ ॥

अश्विन्यादिनक्षत्राणां क्रमाद्भोगा एते । तत्राश्विन्याम् अष्टचत्वारिंशत्कलाः भरण्याश्चत्वारिंशत् कृत्तिकायाः कलाः पंचषष्टिः । रोहिण्याः सप्तपञ्चाशत्कलाः । मृगशिरसोऽष्टपञ्चाशत्ः आर्द्रायाश्चत्वारः । अत्राब्धय इत्यत्र गोऽब्धयोगोभय इति वा पाठस्त्वयुक्तः । शाकल्यसंहिताविरोधात् । एतेन सौरोक्तरुद्रभस्यांशास्त्र्यद्रयोऽगाब्धयः कला इति नार्मदोक्तं दशकलोनपञ्चदशभागा मिथुने सर्वजनाभिमतध्रुवको दशकलायुतत्रयोदशभागाः पर्वताभिमतध्रुवकश्च निरस्तः । पुनर्वसोरष्टसप्ततिः । पुष्यस्य षट्सप्ततिः । आश्लेषायाश्चतुर्दश । तथेति छन्दःपूरणार्थम् । मघायाश्चतुः । पंचाशत् ।

दर्शनादियं ग्रहयुतिकल्पनाकल्पनात्मिका वास्तवा प्रदर्शिता पूर्वोक्तग्रन्थेन कथिता । नन्ववस्तुभूना किमर्थमुक्तेत्यतः प्रयोजनमाह । भावाभावायेति । लोकानां भूस्थप्राणिनां भावः शुभफलमभावोऽशुभफलं तस्मै शुभाशुभफलादेशायावस्तुभूतापि युतिरुक्तेति भावः ॥ २४ ॥

भा० टी०—ग्रहगण परस्पर, दूरस्थित अपनी २ कक्षामें चलते हैं । इकट्ठे दिखाई देनेके कारण मनुष्यके शुभाशुभ फलके लिये युत्यादि कहा जाता है ॥ २४ ॥

अथाग्रिमग्रंन्थस्यासंगतित्वनिरासार्थमधिकारसमाप्तिं फक्किकयाह—स्पष्टम् । रंगनाथेन रचिते सूर्यसिद्धान्तटिप्पणे । ग्रहयुत्यधिकारोऽयं पूर्णो गूढप्रकाशके ॥ इति श्रीसकलगणकसार्वभौमबल्लालदैवज्ञात्मजरंगनाथगणकविरचिते गूढार्थप्रकाशके ग्रहयुत्यधिकारः सम्पूर्णः ।

इतिग्रहयुत्यधिकारः । सातवां अध्याय समाप्त ।

अष्टमोऽध्यायः ।

अथ प्रसंगारदारब्धो नक्षत्रग्रहयुत्यधिकारो व्याख्यायते तत्र प्रथमं नक्षत्राणां ध्रुवज्ञानमाह—

प्रोच्यन्ते लिप्तिका भानां स्वभोगोऽथ दशाहतः ॥
भवन्त्यतीतधिष्ण्यानां भोगालिप्तायुता ध्रुवाः ॥ १ ॥

भानामश्विन्यादिनक्षत्राणामुत्तराषाढाभिजिच्छ्रवणधनिष्ठावर्जितानां लिप्तिका भोगसंज्ञाः कला प्रोच्यन्ते समनन्तरमेव कथ्यन्ते । अथानन्तरं स्वभोगः स्वाभीष्टनक्षत्रभोगः कलात्मको वक्ष्यमाणो दशभिर्गुणितः कार्यः । तत्र स्वाभीष्टनक्षत्रगतनक्षत्राणामश्विन्यादीनां भोगलिप्ताः । भभोगोऽष्टशतीलिप्ता इत्युक्ताष्टशतकलाशतकलाः प्रत्येकं युताः । अश्विन्याद्यतीतनक्षत्रसङ्ख्यागुणितकलाष्टशतं युतमित्यर्थः । ध्रुवा नक्षत्राणां भवन्ति ॥ १ ॥

भा० टी०—नक्षत्रोंके स्वभोगको १० से गुणकरके गतनक्षत्रकी भोगकला (प्रत्येककी ८०० करके) योग करनेसे नक्षत्रोंका ध्रुव होगा ॥ १ ॥

अथ प्रतिज्ञाता नक्षत्रभोगलिप्ता उत्तराषाढाभिजिच्छ्रवणधनिष्ठाव्यतिरिक्तानां तेषां ध्रुवकान्नक्षत्रशरांश्चाष्टश्लोकैराह—

अष्टार्णवाः शून्यकृताः पञ्चषष्टिर्नगेषवः ॥
अष्टार्था अब्धयाऽष्टांगा अङ्गागा मनवस्तथा ॥ २ ॥
कृतेषवो युगरसाः शून्यबाणा वियद्रसाः ॥
खवेदाः सागरनगा गजागाः सागरर्तवः ॥ ३ ॥
मनवोऽथ रसा वेदा वैश्वमाप्यार्धभोगगम् ॥
आप्यस्यैवाभिजित्प्रान्ते वैश्वान्ते श्रवणस्थितिः॥ ४ ॥
त्रिचतुःपादयोः सन्धौ श्रविष्ठा श्रवणस्य तु ॥
स्वभोगतो वियन्नागाः षट्कृतिर्यमलाश्विनः ॥ ५ ॥
रंध्राद्रयः क्रमादेषां विक्षेपाः स्वापदक्रमात् ॥
दिङ्मासविषयाः सौम्ये याम्ये पञ्चदिशो नव ॥ ६ ॥
सौम्ये रसाः खं याम्ये गाः सौम्ये खार्कास्त्रयोदश ॥
दक्षिणे रुद्रयमलाः सप्तत्रिंशदथोत्तरे ॥ ७ ॥
याम्येऽध्यर्धत्रिककृता नवसार्धशरेषवः ॥
उत्तरस्यां तथा षष्टिस्त्रिंशत्षट्त्रिंशदेव हि ॥ ८ ॥
दक्षिणे त्वर्धभागस्तु चतुर्विंशतिरुत्तरे ॥
भागाः षड्विंशतिः खं च दस्रादीनां यथाक्रमम् ॥ ९ ॥

अश्विन्यादिनक्षत्राणां क्रमाद्भोगा एते। तत्राश्विन्याम् अष्टचत्वारिंशत्कलाः भरण्याश्चत्वारिंशत् कृत्तिकायाः कलाः पंचषष्टिः। रोहिण्याः सप्तपञ्चाशत्कलाः। मृगशिरसोऽष्टपञ्चाशत्ः आर्द्रायाश्चत्वारः। अत्राब्धय इत्यत्र गोऽब्धयोगोभय इति वा पाठस्त्वयुक्तः। शाकल्यसंहिताविरोधात्। एतेन सौरोक्तरुद्रभस्यांशास्त्र्यद्रयोऽगाब्धयः कला इति नार्मदोक्तं दशकलोनपञ्चदशभागा मिथुने सर्वजनाभिमतध्रुवको दशकलायुतत्रयोदशभागाः पर्वताभिमतध्रुवकश्च निरस्तः। पुनर्वसोरष्टसप्ततिः। पुष्यस्य षट्सप्ततिः। आश्लेषायाश्चतुर्दश। तथेति छन्दःपूरणार्थम्। मघायाश्चतुः। पंचाशत्।

पूर्वाफाल्गुन्याश्चतुःषष्टिः । उत्तराफाल्गुन्याः पञ्चाशत् । हस्तस्य षष्टिः । चित्रायाश्चत्वारिंशत् । स्वात्याश्च चतुःसप्ततिः । विशाखाया अष्टसप्ततिः । अनुराधायाश्चतुःषष्टिः । ज्येष्ठायाश्चतुर्दश । अनन्तरं मूलस्य षट् । पूर्वाषाढायाश्चत्वारः । उत्तराषाढाया ध्रुवकमाह-वैश्वमिति । उत्तराषाढा योगतारानक्षत्रम् । आप्यार्धभोगगम् आप्यस्य पूर्वाषाढानक्षत्रस्यार्धभोगः । धनुराशेर्विंशतिभागस्तत्रस्थितं ज्ञेयम् । अष्टौ राशयो विंशतिभागा उत्तराषाढाया ध्रुव इत्यर्थः । एतेन पूर्वाषाढायोगतारायाः सकाशादुत्तराषाढायोगताराविंशतिकलोनसप्तभागान्तरिता । तेन पूर्वाषाढाध्रुवकोऽष्टराशयश्चतुर्दशभागा विंशतिकलोनसप्तभागैर्युत उत्तराषाढाया ध्रुवश्चत्वारिंशत्काधिकोक्त ध्रुव इति पर्वतोक्तमपास्तम् । ब्रह्मसिद्धांतविरोधात् । अभिजिद्ध्रुवकमाह-आप्यस्येति । पूर्वाषढाया अवसाने धनुराशेर्विंशतिकलोनसप्तविंशतिभागेऽभिजिद्योगतारा ज्ञेया । चत्वारिंशत्कलाधिकषड्विंशतिभागाधिका अष्टौ राशयोऽभिजितो ध्रुव इत्यर्थः । एवकारोऽन्ययोगव्यवच्छेदार्थः । ते संहितासम्मतं श्रवणपंचदशांशस्थानं विंशतिविकलात्युतत्रयोदशकलायुतश्चतुर्दशभागादिकनवराशयो निरस्तम् । श्रवणस्य ध्रुवकमाह-वैश्वान्त इति । उत्तराषाढाया अवसाने श्रवणयोगतारायाः स्थानं ज्ञेयम् । नवराशयो दश भागाः श्रवणध्रुवक इत्यर्थः । धनिष्ठाया ध्रुवकमाह—त्रिचतुःपादयोरिति । श्रवणस्य तृतीयचतुर्थचरणयोः क्रमेणान्तादिसन्धौ मकराशेर्विंशतिभागे श्रविष्ठाधनिष्ठा ज्ञेया । नवराशयो विंशतिभागा धनिष्ठाध्रुव इत्यर्थः । तुकारात्क्षेत्रान्तर्गत-

तन्नक्षत्राभावाद्भोगयोजनाभावः। अतोऽश्विन्याः कलात्मको ध्रुवः। ४८०। राश्याद्यस्तु। ८। भरण्याभोगः। ४०। दशा हतः। ४००। अतीतनक्षत्रस्यैकत्वादष्टशतयुतो भरण्याः। परिभाषया राश्याद्यो ध्रुवः। ०। २०। एवमार्द्राभोगः। ४। दशहतः। ४०। अतीतनक्षत्राणां पञ्चतया पञ्चगुणिताष्टशतेन। ४०००। चतुःसहस्रात्मकेन युतः कलाद्यो ध्रुवः। ४०४०। राश्याद्यस्तु। २। ७। २०। एवं पूर्वाषाढाया दशगुणितो भोगः। ४०। एकोनविंशतिगुणिताष्टशतेन। १५२००। युतः परिभाषया राश्याद्यो ध्रुवः। ८। १४। शततारााया दशगुणितो भोगः। ८००। त्रयोविंशतिगुणिताष्टशतेन। १८४००। युतश्चतुर्विंशतिगुणिताष्टशतरूपो। १९। २००। जातो ध्रुवो राश्याद्यः। १० । २०। पूर्वाभाद्रपदाया दशगुणितो भोगः। ३६०। चतुर्विंशतिगुणिताष्टशतेन। १९२००। युतो। १९५६०। जातो ध्रुवो राश्याद्यः। १०। २६। उत्तराषाढाभिजिच्छ्रवणधनिष्ठानां स्वभोगस्थानात्पश्चात्स्थितत्वेनोक्तरीत्यसम्भवाद्भिन्नरीत्या ध्रुवका उक्ताः। स्वादिस्थानाद्योगतारा यदन्तरकलाभिस्थितास्ता लाघवादशापवर्तिता भोगसंज्ञा उक्ताः। तथाच ब्रह्मसिद्धान्ते। "अष्टौ विंशतिरष्टौ नगजाग्निर्व्यर्धखेषवः। त्रितर्काः सत्रिभागाद्रिरसाद्व्यङ्काश्च षट्शतम् ॥ नगांशा नवसूर्याश्च वेदेन्द्राः शरबाणभूः। खात्यष्टिः खधृतिर्गोऽतिधृतिर्विंश्वाश्विनस्तथा ॥ वेदाकृतिर्गोदृग्घस्नाः कृश्विहस्ता युगार्थदृक् ॥ खोत्कृतिस्त्र्यंशहीनाश्वरसहस्ताः खहस्तिदृक् ॥ खगोऽश्विनः खदन्ताः षड्दन्ताः शैलगुणाग्नयः। मेषाद्यश्यादिमध्यांशाः षड्शोनाः खषड्गुणाः॥" इति। अथ नक्षत्राणां विक्षेपभागानाह–एषामिति। उक्तध्रुवकसम्बन्धिनामश्विन्यादिनक्षत्राणां यथाक्रमं क्रमादित्यर्थः। स्वात्स्वकीयापक्रमात्क्रान्त्यग्रात्क्रान्तिवृत्तस्थध्रुवकस्थानादित्यर्थः। विक्षेपा विक्षेपभागा दक्षिणा उत्तरा वा भवन्ति तत्रोत्तरदिश्यश्विन्यादित्रयाणां दिङ्मासविषयाः क्रमेण दशद्वादशपञ्चेत्यर्थः। दक्षिणदिशि रोहिण्यादित्रयाणां पञ्चदश नव उत्तरस्यां पुनर्वसोः षड्भागाः। पुष्यस्यखं विक्षेपाभावः। अत्र पञ्चमाक्षरस्य गुरुत्वेन छन्दोभङ्ग आर्षत्वान्न दोषः। दक्षिणस्यामाश्लेषायाः सप्त। उत्तरस्यां मघा-

पूर्वाफाल्गुन्याश्चतुःषष्टिः । उत्तराफाल्गुन्याः पञ्चाशत् । हस्तस्य षष्टिः । चित्रायाश्चत्वारिंशत् । स्वात्याश्च चतुःसप्ततिः । विशाखाया अष्टसप्ततिः । अनुराधायाश्चतुःषष्टिः । ज्येष्ठायाश्चतुर्दश । अनन्तरं मूलस्य षट् । पूर्वाषाढायाश्चत्वारः । उत्तराषाढाया ध्रुवकमाह-वैश्वमिति । उत्तराषाढा योगतारानक्षत्रम् । आप्यार्धभोगगम् आप्यस्य पूर्वाषाढानक्षत्रस्यार्धभोगः । धनुराशेर्विंशतिभागस्तत्रस्थितं ज्ञेयम् । अष्टौ राशयो विंशतिभागा उत्तराषाढाया ध्रुव इत्यर्थः । एतेन पूर्वाषाढायोगतारायाः सकाशादुत्तराषाढायोगताराविंशतिकलोनसप्तभागान्तरिता । तेन पूर्वाषाढाध्रुवकोऽष्टराशयश्चतुर्दशभागा विंशतिकलोनसप्तभागैर्युत उत्तराषाढाया ध्रुवश्चत्वारिंशत्काधिकोक्त ध्रुव इति पर्वतोक्तमपास्तम् । ब्रह्मसिद्धांतविरोधात् । अभिजिद्ध्रुवकमाह-आप्यस्येति । पूर्वाषढाया अवसाने धनुराशेर्विंशतिकलोनसप्तविंशतिभागेऽभिजिद्योगतारा ज्ञेया । चत्वारिंशत्कलाधिकषड्विंशतिभागाधिका अष्टौ राशयोऽभिजितो ध्रुव इत्यर्थः । एवकारोऽन्ययोगव्यवच्छेदार्थः । ते संहितासम्मतं श्रवणपंचदशांशस्थानं विंशतिविकलात्युतत्रयोदशकलायुतश्चतुर्दशभागादिकनवराशयो निरस्तम् । श्रवणस्य ध्रुवकमाह-वैश्वान्त इति । उत्तराषाढाया अवसाने श्रवणयोगतारायाः स्थानं ज्ञेयम् । नवराशयो दश भागाः श्रवणध्रुवक इत्यर्थः । धनिष्ठाया ध्रुवकमाह—त्रिचतुःपादयोरिति । श्रवणस्य तृतीयचतुर्थचरणयोः क्रमेणान्तादिसन्धौ मकराशेर्विंशतिभागे श्रविष्ठाधनिष्ठा ज्ञेया । नवराशयो विंशतिभागा धनिष्ठाध्रुव इत्यर्थः । तुकारात्क्षेत्रान्तर्गतनिष्ठास्थानं कुम्भस्य विंशतिकलोनसप्तभागानिरस्तम् । शततारायां भोगमाह-स्वभोगत इति । धनिष्ठामात्कुंभस्य विंशतिकलोनसप्तभागावर्धैरित्यर्थः । शततारायां अशीतिर्भोगः । अतः प्राग्वद्ध्रुवा इति ज्ञापनार्थं स्वभोगत । इत्युक्तम् । शततारायाः स्थानं शततारकाध्रुव इतिपर्यवसन्नम् अवशिष्टनक्षत्राणां भोगानाह । षट्कृतिरिति । पूर्वाभाद्रपदायाः षट्त्रिंशत्कलाभोगः । उत्तराभाद्रपदाया द्वाविंशतिः । रेवत्या एकोनाशीतिः । अथ ध्रुवकानयनं तथा । अश्विन्या भोगः । ४८ । दशगुणितः । ४८० । अती-

पूर्वाषाढा	४	८।१४	५३६
उत्तराषाढा पू-आमध्य		८।२०	५६
अभिजित् पू-आशेष-।		६।२६।४०	६०३
श्रवण ३ आशेष		९।१०।०	३०६
धनिष्ठा श्रवणकी. त्रिचतुष्पदसन्धिमें		९।२०	३६३
शतभिषा	८०	१०।२०	३६
पूर्व भाद्रपद	३६	१०।२६	२४३
उत्तर भाद्रपद	२२	११।७	२६३
रेवती	७९	११।२९।५०	०

अथागस्त्यलुब्धकवह्निब्रह्महृदयताराणां ध्रुवकविक्षेपांस्तदुपपत्तिं श्लोकत्रयेणाह--

अशीतिभागैर्याम्यायामगस्त्यो मिथुनान्तगः ॥
विंशे च मिथुनस्यांशे मृगव्याधो व्यवस्थितः ॥ १० ॥
विक्षेपो दक्षिणे भागैः खार्णवैः स्वादपक्रमात् ॥
हुतभुग्ब्रह्महृदयौ वृषे द्वाविंशभागगौ ॥ ११ ॥
अष्टाभिस्त्रिंशता चैव विक्षिप्तावुत्तरेण तौ ॥
गोलं बध्वा परीक्षेत विक्षेपं ध्रुवकं स्फुटम् ॥ १२ ॥

स्वकीयात्क्रान्तिविभागस्थानाद्दक्षिणस्यामशीत्यंशैस्तारात्मकोऽगस्त्यो मिथुनान्तगः कर्कादिभागे स्थितः। अगस्त्यनक्षत्रस्य राशित्रयं ध्रुवकाः। दक्षिणविक्षेपोऽशीतिरित्यर्थः। मृगव्याधो लुब्धको मिथुनराशेर्विंशतिभागे स्थितः। चकारः समुच्चये। लुब्धकनक्षत्रस्य राशिद्वयं विंशतिभागा ध्रुवक इत्यर्थः। दक्षिणस्यां चत्वारिंशता भागैः परिमितस्तस्य च क्रान्तिवृत्तस्थानाद्विक्षेपः। वृषराशौ वह्निब्रह्महृदयौ द्वाविंशभागास्थितौ वह्निब्रह्महृदयनक्षत्रयोर्द्वाविंशतिभागाधिकैकराशिर्ध्रुवकः। तौ वह्निब्रह्महृदयौ। अष्टाभिस्त्रिंशता। चकारः क्रमार्थे। एवकारो न्यूनाधिकव्यवच्छेदार्थः। उत्तरेणोत्तरस्यामित्यर्थः। विक्षिप्तौ विक्षेपवन्तौ। वह्नेर्विक्षेपोऽष्टभाग उत्तरः। ब्रह्महृदयस्योत्तरो विक्षेपस्त्रिंशदित्यर्थः। नन्वेते ध्रुवा विक्षेपाश्च कालक्रमेण नियता अनियता वेत्यत आह—गोलमिति। गोलं वक्ष्यमाणं बध्वा वंश-

शलाकादिभिर्निबध्य स्फुटं विक्षेपं क्रांतिसंस्कारयोग्यं ध्रुवाभिमुखं ध्रुवकं स्फुटमायनदृक्कर्मसंस्कृतं परीक्षेत । स्वस्वकाले दृग्गोचरसिद्धमंगीकुरुत । तथा च क्रांतिसंस्कारयोग्यविक्षेपायनसंस्कृतध्रुवकयोरयनांशवशादस्थिरत्वादपि मयेदानीन्तनसमयानुरोधेन लाघवार्थमायनदृक्कर्मसंस्कृता ध्रुवाः क्रांतिसंस्कारयोग्यविक्षेपाश्च नियता उक्ताः । कालान्तरे गोलयन्त्रेण वेधसिद्धा ज्ञेयाः । नैत इति भावः । गोलयन्त्रेण वेधस्तु गोलबन्धोक्तविधिना गोलयन्त्रं कार्यम् । तत्र खगोलस्योपरि भगोलमाधारवृत्तस्योपरि विषुवद्वृत्तम् । तत्र यथोक्तं क्रान्तिवृत्तं भगणांशाङ्कितं च बध्वा ध्रुवयष्टिकीलयोः प्रोतमन्यच्चलं भवेधवलयम् । तच्च भगणांशाङ्कितं कार्यम् । ततस्तद्गोलयन्त्रं सम्यग्ध्रुवाभिमुखयष्टिकं जलसमक्षितिजवलयं च यथा भवति तथा स्थिरं कृत्वा रात्रौ गोलमध्याच्छिद्रगतया दृष्ट्या रेवतीतारां विलोक्य क्रांतिवृत्ते मीनान्तादृशकलान्तरितपश्चाद्भागे रेवतीतारायां निवेश्य मध्यगतयैव दृष्ट्याश्विन्यादेर्नक्षत्रस्य योगतारां विलोक्य तस्या उपरि तद्वेधवलयं निवेश्यम् । एवं कृते सति वेधवलयस्य क्रांतिवृत्तस्य च यः सम्पातः स मीनान्तादग्रतो यावद्भिरंशैस्तावन्तस्तस्य नक्षत्रस्य ध्रुवांशा ज्ञेयाः । वेधवलये तस्यैव सम्पातस्य योगतारायाश्च यावन्तोऽन्तरेंऽशास्तावन्तस्तस्य विक्षेपांशा दक्षिणा उत्तरा वा वेद्याः । अथ कदम्बप्रोतवेधवलयेन वेधे तु सदा स्थिरा ध्रुवका आयनदृक्कर्मासंस्कृताः । परन्तु कदम्बतारयोरभावादशक्यमिति यथोक्तवेधेनैवायनदृक्कर्म संस्कृता ध्रुवाः शराश्च ध्रुवाभिमुखाः स्फुटाः सिद्धा भवन्तीति दिक् ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

भा० टी०—अगस्त्यका ध्रुव ३।० विक्षेपांश ८०६ । मृगव्याध ध्रुव २ । २० वि ४० । ६ अग्नि ध्रुव १ । २२ वि० ८३ ब्रह्महृदय ध्रुव १ । २२ वि ३०३ । गोल बनानेमें स्पष्टविक्षेप और समस्त ध्रुवोंकी परीक्षा करे ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ रोहिणीशकटभेदमाह—

वृषे सप्तदशे भागे यस्य याम्योंऽशकद्वयात् ॥
विक्षेपोऽभ्यधिको भिन्द्याद्रोहिण्याः शकटं तु सः ॥ १३ ॥

वृषराशौ सप्तदशेऽशे यस्य ग्रहस्य भागद्वयाधिको विक्षेपो दक्षिणः स ग्रहोण्याः शकटं शकटाकारसन्निवेशं भिद्यात्। तन्मध्यगतो भवेदित्यर्थः। तुकाराद्ग्रहविक्षेपो रोहिणीविक्षेपादल्प इति विशेषार्थकः। विक्षेपस्य दक्षिणस्य रोहिणीविक्षेपादधिकत्वे शकटाद्बहिर्दक्षिणभागे ग्रहस्य स्थितत्वेन तद्भेदकत्वाभावात्। अत्र शकटाग्रिमनक्षत्रस्य ध्रुव एकराशिः सप्तदशांशाः। दक्षिण शरो भागद्वयमिति वेधसिद्धा स्पष्टा युक्तिः॥ १३॥

भा० टी०—रोहिणीका शकटभेदकारी ग्रह वृषके १७ अंशमें, और दो अंश दक्षिण विक्षेप स्थित हैं॥ १३॥

अथ भग्रहयोगसाधनार्थं योगसाधनरीतिमाह—

ग्रहवद्द्युनिशे भानां कुर्याद्दृक्कर्म पूर्ववत्॥
ग्रहमेलकवच्छेषं ग्रहभुक्त्या दिनानि च॥ १४॥

ग्रहवद्द्युनिशे ग्रहाणां यथा दिनरात्रिमाने आक्षदृक्कर्मार्थं कृते तथा दिनमानरात्रिमाने भानां नक्षत्रध्रुवकाणाक्षदृक्कर्मार्थं गणकः कुर्यात्। तदनन्तरं पूर्ववन्नक्षत्रनित्योदयास्तौ साधयित्वाऽभीष्टकाले दिनगतशेषाभ्यां नतं कृत्वा विषुवच्छायायाभ्यस्तावित्यादिनेत्यर्थः। दृक्कर्म कुर्यात्। अत्र नक्षत्रध्रुवके पर्वतेनायनदृक्कर्माप्युदाहरणे कृतम् तदयुक्तम्। तस्य ध्रुवके स्वतः सिद्धत्वात्। तदनन्तरं शेषं नक्षत्रहयुतिसाधनं ग्रहध्रुवतुल्यतां रूपं ग्रहमेलकवद्ग्रहयोगसाधनरीत्या ग्रहान्तरकला इत्यादिना कार्यम्। ननु तत्र "ग्रहान्तरकलाः स्वस्वभुक्तिलिप्तासमाहताः। भुक्त्यन्तरेण विभजेत्" इत्युक्तेर्नक्षत्रस्य का गतिर्ग्राह्येत्यत आह—ग्रहभुक्त्येति। केवलया ग्रहगत्या ग्रहस्य फलं ग्रहध्रुवान्तररूपग्रहे संस्कार्यं ध्रुवसमो ग्रहो भवति। नक्षत्रस्य पूर्वगत्यभावाद्ध्रुवो यथास्थित इत्यर्थः। ननु तथापि ग्रहनक्षत्रयुतिकालसाधनं भुक्त्यन्तरासम्भवात्कथं कार्यमिति मन्दाशङ्केत्यत आह—दिनानीति। अभीष्टसमयाद्विवरमित्यादिना केवलया ग्रहगत्या ग्रहनक्षत्रयुतिदिनानि साध्यानि। चः समुच्चये। नक्षत्राणां गत्यभावात्॥ १४॥

भा०टी०—ग्रहकी समान नक्षत्रोंके दिवारात्रिमानानुयायी दृकर्म साधनकरे। और समस्तग्रह युति समानकरे। भुक्त्यन्तर स्थानमें ग्रहभुक्तिके ग्रहण करनेसे सब ठीक होजायगा १४

अथाभीष्टकालाद्ग्रहनक्षत्रयुतिकालस्य गतैष्यत्वमसम्भ्रमार्थं पुनराह—

एष्यो हीने ग्रहे योगो ध्रुवकादधिके गतः ॥
विपर्ययाद्वक्रगते ग्रहे ज्ञेयः समागमः ॥ १५ ॥

नक्षत्रध्रुवादुक्ताद्ग्रह आयनदृक्कर्मसंस्कृतग्रह आक्षदृक्कर्मसंस्कृतनक्षत्रध्रुवकात् । दृक्कर्मद्वयसंस्कृतग्रह इति विवेकार्थः । न्यूने सति योगो नक्षत्रग्रहयोगः स्वाभीष्टसमयाद्भावी । अधिके सति पूर्वं जातः वक्रगते ग्रहे विपर्ययादुक्तवैपरीत्यात्समागमो नक्षत्रग्रहयोगो ज्ञेयः । हीने ग्रहे गतोऽधिके ग्रह एष्यो योगः । अत्रोपपत्तिर्नक्षत्रस्य गत्यभावेन सदास्थिरत्वाद्ग्रहगमनेनैव योगसम्भवादिति सुगमतरा ॥ १५ ॥

भा० टी०—नक्षत्र ध्रुवसे संस्कृत ग्रह न्यून होनेसे योग पीछे होगा, अधिक होनेसे पहले होगया है । वक्रगति ग्रहका यह समागमविपरीत होता है ॥ १५ ॥

अथाश्विन्यादिनक्षत्रस्य बहुतारात्मकत्वात्कस्यास्ताराया एते ध्रुवका इत्यस्य योगताराया ध्रुवं किमित्युत्तरं मनसि धृत्वाऽश्विन्यादिनक्षत्राणां योगतारां विवक्षुः प्रथममेषां नक्षत्राणां योगतारामाह—

फाल्गुन्योर्भाद्रपदयोस्तथैवाषाढयोर्द्वयोः ॥
विशाखाश्विनिसौम्यानां योगतारोत्तरा स्मृता ॥ १६ ॥

एषामुक्तनक्षत्राणां प्रत्येकं स्वतारासु योत्तरदिक्स्था तारा सा योगतारा गोलतत्त्वज्ञैरुक्ता ॥ १६ ॥

भा० टी०—दोनो फाल्गुनी, दोनों भाद्रपद, और पूर्वाषाढ, उत्तराषाढा, विशाखा, अश्विनी और मृगशिर, इनके उत्तर स्थित ताराओंको योगतारा कहते हैं ॥ १६ ॥

अथान्ययोरनयोराह—

पश्चिमोत्तरतारा या द्वितीया पश्चिमे स्थिता ॥
हस्तस्य योगतारा सा श्रविष्ठायाश्च पश्चिमा ॥ १७ ॥

हस्तनक्षत्रं पञ्चतारात्मकं हस्तपञ्चाङ्गुलिसन्निवेशाकारम् । तत्र नैर्ऋत्यदिगाश्रितपश्चिमावस्थितताराया उत्तरदिगवस्थितताराया द्वितीया पूर्वोक्ता-

तिरिक्ता पश्चिमे वायव्याश्रिते स्थिता सा हस्तस्य योतारा ज्ञेया। उत्तर-तारासन्ना पश्चिमाश्रिता तारा हस्तस्य योगतारेति फलितार्थः। धनिष्ठाया योगतारामाह-श्रविष्ठाया इति। धनिष्ठायास्तारासु या पश्चिमदिक्स्था सा तस्या योगतारा। चः समुच्चये ॥ १७ ॥

भा० टी०-पंचतारात्मक हस्तनक्षत्रके पश्चिमोत्तर तारेके पश्चिममें स्थित हुआ तारा हस्तका योग ताराहै और धनिष्ठाके पश्चिम स्थिततारा धनिष्ठाका योगतारा है ॥ १७ ॥

अथान्येषामेषामाह-

ज्येष्ठाश्रवणमैत्राणां बार्हस्पत्यस्य मध्यमा ॥
भरण्याग्नेयपित्र्याणां रेवत्याश्चैव दक्षिणा ॥ १८ ॥

ज्येष्ठाश्रवणानुराधानां पुष्यस्य च प्रत्येकं तारात्रयात्मकत्वान्मध्यतारा योगतारास्यात्। भरणीकृत्तिकामघानां रेवत्याः। चः समुच्चये। प्रत्येकं स्वतारासु या दक्षिणदिक्स्था सा योगतारा ॥ १८ ॥

भा० टी०-ज्येष्ठा, श्रवण, अनुराधा, और पुष्यका मध्यतारा, भरणी, कृत्तिका मघा और रेवतीके दक्षिणस्थित तारेही योगतारे हैं ॥ १८ ॥

अथान्येषामेषामवशिष्टानां चाह-

रोहिण्यादित्यमूलानां प्राची सार्पस्य चैव हि ॥
यथा प्रत्यवशेषाणां स्थूला स्याद्योगतारका ॥ १९ ॥

रोहिणीपुनर्वसुमूलानामाश्लेषायाश्च प्रत्येकं स्वतारासु पूर्वदिक्स्था सैव योगतारेत्यैवद्धोरर्थः। प्रत्यवशेषाणामवशिष्टनक्षत्राणामार्द्राचित्रास्वात्यभि-जिच्छततारार्णां स्वतारासु याऽत्यन्तं स्थूला महती सा योगतारा स्यात् ॥ १९ ॥

भा० टी०-रोहिणी, पुनर्वसु, मूल व श्लेषाके पूर्वस्थिततारे और बाकी नक्षत्रोंके स्थूल (उज्ज्वल) ताराही योगतारा है ॥ १९ ॥

अथ ब्रह्मसंज्ञकनक्षत्रावस्थानमाह-

पूर्वस्यां ब्रह्महृदयादंशकैः पञ्चभिः स्थितः ॥
प्रजापतिर्वृषान्तेऽसौ सौम्येऽष्टत्रिंशदंशकैः ॥ २० ॥

ब्रह्महृदयस्थानात्पूर्वभागे पञ्चभिरंशैः प्रजापतिस्तारात्मको ब्रह्माक्रान्तिवृत्ते स्थितः । कुत्रेत्यत आह—वृषान्त इति । वृषान्तनिकटे । एकराशिः सप्तविंशत्यंशा ब्रह्मध्रुवक इत्यर्थः । अस्य विक्षेपमाह—असाविति । ब्रह्मा उत्तरस्यामष्टात्रिंशद्भागैः स्थितः । अष्टत्रिंशद्भागा अस्य विक्षेप इत्यर्थः ॥२०॥

भा० टी०-प्रजापति ब्रह्महृदयके ५ अंश पूर्वमें स्थित हैं । इसका ध्रुव वृषान्तमें अर्थात् १ । २७ और विक्षेप ३ । ८३ ॥ २० ॥

अथापांवत्सापयोस्तारयोरवस्थानमाह—

अपांवत्सस्तु चित्रायामुत्तरेंऽशैस्तु पञ्चभिः ॥
बृहत् किञ्चिदतो भागैरापः षड्भिस्तथोत्तरे ॥ २१ ॥

चित्रायाः सकाशादपांवत्ससंज्ञकस्तारात्मकः पञ्चभिर्भागैरुत्तरस्यां स्थितः। प्रथमतुकारश्चित्राध्रुवतुल्यध्रुवकार्थकः। द्वितीयतुकारश्चित्राविक्षेपस्य दक्षिणभागद्वयात्मकत्वादपांवत्सविक्षेप उत्तरस्त्रिभाग इति स्फुटार्थकः । अतोऽपांवत्सात् किञ्चिदल्पान्तेरण बृहत्स्थूलतारात्मक आपसंज्ञकः । तथापांवत्सात्षड्भिरंशैरुत्तरस्यां स्थितश्चित्राध्रुवक एवापस्य ध्रुवको विक्षेप उत्तरो नवांशा इत्यर्थः ॥ २१ ॥

भा०टी०-चित्राके ५ अंश उत्तरमें अपांवत्स अवस्थित, अप तिसकी अपेक्षा कुछ बडा है. सो अपांवत्सके ६ अंश उत्तरमें स्थित हैं ॥ २१ ॥

अथाग्रिमग्रन्थस्यासंगतित्वनिरासार्थमधिकारसमाप्तिं फक्किकयाह— स्पष्टम् । रंगनाथेन रचिते सूर्यसिद्धान्तटिप्पणे । ग्रहर्क्षैक्याधिकारोऽयं पूर्णो गूढप्रकाशके ॥ इति श्रीसकलगणकसार्वभौमबल्लालदैवज्ञात्मजरंगनाथगणकविरचिते गूढार्थप्रकाशके नक्षत्रग्रहयुत्यधिकारः संपूर्णः ॥

इति नक्षत्रग्रहयुत्यधिकारः । आठवां अध्याय समाप्त ॥

नवमोऽध्यायः ।

अथोदयास्ताधिकारो व्याख्यायते । ननु सूर्येणास्तमनं सहेति प्रागुक्तेर्ग्रहयुत्यधिकारानन्तरं नक्षत्रग्रहयुत्यधिकारात्प्रागेवोदयास्ताधिकारो निरूप-

णीय इत्यतोऽत्र तत्संगतिप्रदर्शनार्थमादौ तदधिकारं प्रतिजानीते-

अथोदयास्तमययोः परिज्ञानं प्रकीर्त्यते ॥
दिवाकरकराक्रान्तमूर्तीनामल्पतेजसाम् ॥ १ ॥

अथ नक्षत्रग्रहयुत्यधिकारान्तरं सूर्यकिरणाभिभूता मूर्तिर्बिंबं येषां तेषां चन्द्रादिषड्ग्रहाणां नक्षत्राणां च । अत एवाल्पतेजसां न्यूनप्रभावतामुदयास्तमययोः । अग्रिमकाले सूर्यादधिकासन्निहितसन्निहितत्वसम्भावनया क्रमेणोदयास्तयोः सूर्यान्निस्सृतस्य यस्मिन्काले यदन्तरेण प्रथमादर्शनं सम्भावितं स उदयः । सूर्याद्दूरस्थितस्य यस्मिन् काले यदन्तरेण प्रथमदर्शनं सम्भावितं सोऽस्तः । अनेन नित्योदयास्तव्यवच्छेदस्तयोरित्यर्थः । परिज्ञानं सूक्ष्मज्ञानप्रकारः प्रकीर्त्यते । अतिसूक्ष्मत्वेन मयोच्यत इत्यर्थः । तथाच ग्रहइत्युद्देशेऽस्तमनमुद्दिष्टमपि तस्य पूर्वमेव सूर्यासमत्व एव सम्भवात्तद्विलक्षणतया ग्रहयुतिप्रसंगेनोक्तम्। नक्षत्रग्रहयुतिस्तु ग्रहयुतिवदिति तदनन्तरमुक्ता । अतः प्रतिबन्धकजिज्ञासापगमेऽवश्यवक्तव्यत्वादस्यावसरसंगतित्वात्। तत्संगत्या नक्षत्रग्रहयुत्यधिकारानन्तरं प्रागुद्दिष्टमस्तमनं तत्प्रसंगादुदयश्च प्रतिपाद्यत इति भावः ॥ १ ॥

भा० टी०-अब उदयास्तपरिज्ञान कहा जाता है । अल्प (थोडे) तेजवाले ग्रह सूर्यकी किरणोंसे आक्रान्त होकर आस्तमन होजाते हैं ॥ १ ॥

तत्र प्रथमं पञ्चताराणां पश्चिमास्तपूर्वोदयावाह-

सूर्यादभ्यधिकाः पश्चादस्तं जीवकुजार्कजाः ॥
ऊनाः प्रागुदयं यान्ति शुक्रज्ञौ वक्रिणौ तथा ॥ २ ॥

वक्रगती शुक्रबुधौ तथा सूर्यादधिकौ पश्चिमास्तं गच्छतः सूर्यादल्पौ पूर्वोदयं प्राप्नुतः । शेषं स्पष्टम् ॥ २ ॥

भा० टी०-सूर्य स्पष्टकी बनिस्वत ग्रहस्पष्ट अधिक होनेसे बृहस्पति, मंगल और शनि पश्चिममें अस्त होते हैं । तिनके स्फुट सूर्यकी अपेक्षा कम होनेसे पूर्वमें उदय होते हैं । वक्री शुक्र और बुधभी वैसाही है ॥ २ ॥

अथ चंद्रबुधशुक्राणां पूर्वास्तपश्चिमोदयवाह-

ऊना विवस्वतः प्राच्यामस्तं चन्द्रज्ञभार्गवाः ॥

व्रजन्त्यभ्यधिकाः पश्चादुदयं शीघ्रयायिनः ॥ ३ ॥

शीघ्रयायिनः सूर्यगत्यधिकगतयः इत्यर्थः । एते बुधशुक्रावर्कगत्यल्पगती सूर्यादल्पौ पूर्वास्तमधिकौ च पश्चिमोदयं न प्राप्नुत इत्युक्तम् । शेषं स्पष्टम् । अत्रोपपत्तिः । रविगतितोऽल्पगतिर्ग्रहोऽर्कादूनश्चेत्प्राच्यां दर्शनयोग्यो भवितुमर्हति । यतः सूर्यस्याधिकत्वेन बहुगतित्वाच्चोत्तरोत्तरमधिकविप्रकर्षात्प्रवहवशेन न्यूनस्य पूर्वमुदयादधिकस्यानन्तरमुदयानियमाद्ग्रहबिम्बस्य प्राक् क्षितिजसंलग्नताकालानन्तरं यावत्सूर्यस्य तादृशः कालस्तावत्पर्यन्तं विप्रकर्षे दर्शनसम्भवात् । एवं यदाल्पगतिः सूर्यादधिकस्तदा प्रवहवशेनार्कस्य पूर्वमुदयादनन्तरमुदितग्रहस्य दर्शनासम्भवात्प्रवहवशेनादौ न्यूनार्कस्यास्तसम्भवादनन्तरमधिकग्रहस्यास्तसम्भवात्सूर्यास्तानन्तरं पश्चिमभागे ग्रहदर्शनसम्भवेऽप्यधिकगतिसूर्यस्य पृष्ठस्थितत्वेनोत्तरोत्तरमधिकसन्निकर्षात्पश्चिमायामदर्शनं सम्भवत्येव । ते तु भौमगुरुशनयः। वक्रत्वे न्यूनगतित्वाद्बुधशुक्रौ चेति । अथार्कगतितोऽधिकगतिग्रहः सूर्यादूनस्तदोक्तरीत्योत्तरोत्तरमधिकसन्निकर्षात् पूर्वस्मिन्नदर्शनं याति यदा सूर्यादधिकस्तदोक्तरीत्योत्तरोत्तरमधिकाविप्रकर्षात् पश्चिमायामुदयः । ते तु शीघ्राश्चन्द्रबुधशुक्रा इत्युपपन्नमुक्तम् ॥ ३ ॥

भा० टी०—चन्द्र, बुध और शुक्र यह शीघ्रयायी तीन ग्रह सूर्यकी अपेक्षा कम स्थानमें स्थित हों तो पूर्वमें अस्त और अधिक होनेसे पश्चिममें उदय होता है ॥ ३॥

अथाभीष्टदिन आसन्ने सूर्योदयास्तकालिकौ सूर्यदृग्ग्रहौ तत्कालज्ञानार्थं कार्यावित्याह—

सूर्यास्तकालिकौ पश्चात्प्राच्यामुदयकालिकौ ॥
दिवा चार्कग्रहौ कुर्याद्दृक्कर्माथ ग्रहस्य तु ॥ ४ ॥

पश्चात्पश्चिमास्तोदयासाधनेऽभीष्टदिने आसन्ने सूर्यग्रहौ सूर्यास्तकालिकौ कुर्याद्गणकः । पूर्वास्तोदयसाधने सूर्योदयकालिकौ कुर्यात् । दिनेऽभीष्टकाले कुर्यात् । चकारो विकल्पार्थकः । अनन्तरं ग्रहस्य दृक्कर्म । आयनाक्षदृक्कर्मद्वयं कुर्यात् । तुकार आक्षदृक्कर्मश्लोकपूर्वार्धोक्तमिति विशेषार्थकः । अत्रो-

पपत्तिः। पश्चादस्तोदयसाधने पश्चिमायां तद्दर्शनमिति सूर्यास्तकालिकौ सूर्य ग्रहाविष्टकालांशसाधनार्थं सूक्ष्मौ। पूर्वोदयास्तसाधने पूर्वदिशि तद्दर्शमिति सूर्योदयकालिकौ। सूर्यग्रहाविष्टकालांशसाधनार्थं सूक्ष्मावन्यकाले तु किञ्चित्स्थूलावपि कृतौ दृक्कर्मसंस्कृतग्रहस्य सूर्यवत् क्षितिजसंलग्नतायोग्यत्वाद्दृक्कर्मसंस्कृतो ग्रहः कार्य इति ॥ ४ ॥

भा० टी०-पश्चिममें होनेसे सूर्यास्तकालका और पूर्वमें होनेसे सूर्योदयकालका ग्रह और सूर्यस्पष्ट निर्णय करना चाहिये। तदुपरान्त ग्रहका दृक्कर्म साधन करे ॥४॥

अथेष्टकालांशानयनमाह-

ततो लग्नान्तरप्राणाः कालांशाः षष्टिभाजिताः ॥
प्रतीच्यां षड्भयुतयोस्तद्वल्लग्नान्तरासवः ॥ ५ ॥

ततस्ताभ्यां सूर्यदृग्ग्रहाभ्यां लग्नान्तरप्राणाः भोग्यासूनूनकस्याथेत्युक्तप्रकारेणान्तरकालासवः षष्टिभक्ता इष्टाः कालांशा भवन्ति। प्रागुदयास्तसाधने प्रतीच्यां पश्चिमो दयास्तसाधने षड्भयुतयोः षड्राशियुतयोः सूर्यदृग्ग्रहयोर्लग्नान्तरासवः। अन्तरासवस्तद्वत् षष्टिभक्ता इष्टकालांशा भवन्तीत्यर्थः। अत्रोपपत्तिः। दृग्ग्रहसूर्याभ्यामन्तरकालो ग्रहस्य सूर्योदयकाले दिनगतं पूर्वोदयास्तनिमित्त मुपयुक्तम्। एवं पश्चिमोऽस्यास्तनिमित्तं सूर्यदृग्ग्रहाभ्यामस्तकालासुभिरन्तरकालः सूर्यास्तकाले ग्रहस्य दिनशेषकाल उपयुक्तः। तत्रास्तकालानामनुक्तेरुदयासुभीः साधनार्थः सषड्भौ सूर्यदृग्ग्रहौ कृतौ स कालोऽस्वात्मकः। अहोरात्रासुभिश्चक्रकलातुल्यैश्चक्रांशा लभ्यन्ते तदेष्टासुभिः कइत्यनुपाते प्रमाणफलयोः फलापवर्तनेन हरस्थाने षष्टिः। अतोऽस्वात्मकान्तरकालः षष्टिभक्त इष्टकालांशा इत्युपपन्नमुक्तम्। अत्रेदमवधेयम्। सूर्योदयकालिकाभ्यामर्कदृग्ग्रहाभ्यामानीतेन दिनगतेन पूर्वं चाल्यो दृग्ग्रहः। सूर्यास्तकालिकाभ्यां सषड्भाभ्यामर्कदृग्ग्रहाभ्यामानीतेन दिनशेषेणाग्रे चाल्यः सषड्भो दृग्ग्रहः क्रमेण ग्रहोदयास्तकाले प्राक्पश्चिमदृग्ग्रहौ भवतः। ताभ्यां सूर्यसषड्भसूर्याभ्यां च क्रमेण पूर्वरीत्यान्तरकालो ग्रहस्य सूर्योदयास्तकाले

१ द्वयोर्लग्नान्तरप्राणाः इति वा पाठः।

क्रमेण दिनगतशेषौ नाक्षत्रौ षष्टिभक्तौ कालांशाविष्टौ सूक्ष्मौ अथेष्टकालिकायामानतिकालेन पूर्ववच्चलिताभ्यां प्राक्पश्चिमदृग्ग्रहाभ्यां सूर्यसषड्भसूर्याभ्या चानीतकालो नाक्षत्रोऽपि सूक्ष्मासन्न। सूर्योदयास्तसम्बन्धाभावात्तदुत्पन्नाः कालांशा अपि तथा। अथ सूर्योदयास्तकालिकाभ्यामानीतैकवारं कालात्कालांशाः स्थूला इष्टकालिकाभ्यामानीतैकवारकालात्कालांशा अतिस्थूला उभयत्र कालस्य सावनत्वात्। नहि सावनषष्टिघटीभिश्चक्रपरिपूर्तिर्येन सूक्ष्माः सिध्यन्तीति ॥ ५ ॥

भा० टी०—प्राक्कालमें सूर्य और ग्रहके स्फुटसे लग्नान्तर प्राण निर्णय करके ६० से भाग करनेपर कालांश होगा। पश्चिमकालमें ६ राशियुक्त दो स्पष्टके लग्नान्तर प्राणनिर्णय करे ॥ ५ ॥

अथ यैः कालांशैरुदयोऽस्तो वा भवति तान् विवक्षुः प्रथमं गुरुशनिभौमानां कालांशानाह—

एकादशामरेज्यस्य तिथिसंख्यार्कजस्य च ॥
अस्तांशा भूमिपुत्रस्य दश सप्ताधिकास्ततः ॥ ६ ॥

तत इष्टकालांशावगमानन्तरमस्तांशाः। अस्तो यैरंशैर्भवति तेंऽशा अस्तोपलक्षणादुदयांशा ज्ञेयाः। अमरेज्यस्य गुरोरेकादश कालांशाः। शनेः पंचदशसंख्याः कालांशाः। चः समुच्चये। भौमस्य सप्ताधिका दश सप्तदश कालांशा इत्यर्थः ॥ ६ ॥

भा०टी०—बृहस्पति ११ शनि १५ मंगल १७, यही तिनके अस्तांश (कालांश) हैं ॥ ६ ॥

अथ शुक्रस्याह—

पश्चादस्तमयोऽष्टाभिरुदयः प्राङ्महत्तया ॥
प्रागस्तमुदयः पश्चादल्पत्वाद्दशभिर्भृगोः ॥ ७ ॥

शुक्रस्य महत्तया वक्रत्वेन नीचासन्नत्वात्स्थूलबिम्बतया पश्चिमायामस्तोऽष्टाभिः कालांशैः प्राच्यामुदयश्च तैः। नाधिकैः प्राच्यां शुक्रस्याल्पत्वादणुबिम्बत्वाद्दशभिः कालांशैरस्तं गणकः कुर्यात्। नाल्पैः। पश्चिमायामुदयस्तस्याणुबिम्बस्य दशभिः कालांशैरवे ज्ञेयः ॥ ७ ॥

भा० टी०-स्थूलताके हेतुसे शुक्रका पश्चादस्त ८ कालांश में होता है और पूर्वोदय होता है । किन्तु प्रागस्त और पश्चादुदयमें बिम्बके छोटे होनेसे १० अंश लेने पडते है ॥ ७ ॥

अथ बुधस्याह-

एवं बुधो द्वादशभिश्चतुर्दशभिरंशकैः ॥
वक्री शीघ्रगतिश्चार्कात्करोत्यस्तमयोदयौ ॥ ८ ॥

वक्री शीघ्रगतिः । च समुच्चये । बुधः सूर्याद्द्वादशभिश्चतुर्दशभिश्च कालांशैरस्तोदयौ । एवं शुक्ररीत्या करोति । पश्चादस्तं प्रागुदयं च द्वादशभिः कालांशैर्महाबिम्बतया बुधः करोति । प्रागस्तं पश्चादस्तं च चतुर्दशभिः कालांशैरणुबिम्बत्वाद्बुधः करोतीत्यर्थः ॥ ८ ॥

भा० टी०-इस प्रकारसे बुध वक्री होनेपर सूर्यसे १२ अंश शीघ्रगति होनेपर १४ कालांशमें उदयास्त लाभ करता है ॥ ८ ॥

अथ प्रोक्तेष्टकालांशाभ्यामस्तस्योदयस्य वा गतैष्यत्वज्ञानमाह-

एभ्योऽधिकैः कालभागैर्दृश्या न्यूनैरदर्शनाः ॥
भवन्ति लोके खचरा भानुभाग्रस्तमूर्तयः ॥ ९ ॥

एभ्य एकादशामरेज्यस्येति श्लोकत्रयोक्तेभ्योऽधिकैरिष्टकालांशैर्दृश्या दर्शनयोग्या अभीष्टकाले ग्रहा भवन्ति । तथा चास्तसाधने दृश्यत्वे अस्त एष्यः । उदयसाधने दृश्यत्व उदया गत इति भावः । अल्पैरिष्टकालांशैर्ग्रहा लोके भूलोके अदर्शना न विद्यते दर्शनं दृष्टिगोचरता येषां ते । अदृश्या अभीष्टकाले भवन्ति । नन्वदृश्याः कुतो भवन्तीत्यत आह-भानुभाग्रस्तमूर्तये इति । सूर्यासन्नत्वेन सूर्यकिरणदीप्त्या ग्रस्ता अभिभूता सूर्यकिरणप्रतिहतलोकनयनाविषया मूर्तिर्बिम्बस्वरूपं येषां त इत्यर्थः । तथा चास्तसाधन अदृश्यत्वेऽस्तो गतः । उदयसाधनेऽदृश्यत्व उदय एष्य इति भावः । अत एव " उक्तेभ्य ऊनाभ्यधिका यदीष्टाः खेटोदयो सम्यगतस्तदा स्यात् । अतोऽन्यथा चास्तमयोऽवगम्यः " इति भास्कराचार्योक्तं संगच्छते । अत्रोपपत्तिः । उक्तकालांशे यत्काले ग्रहौ साधितौ

---

१ वक्रशीघ्रगतिश्चार्कात् इति वा पठान्तरम् ।

तत्काल एव ग्रहस्योदयोऽस्तो वार्कतः। उक्तकालांशानां सूर्यसान्निध्यजनितात्यन्तग्रहादर्शने हेतुत्वप्रतिपादनात्। तथा चेष्टकालांशा उक्तेभ्योऽल्पास्तदा ग्रहस्यास्तंगतत्वमेवेत्युदयसाधइष्टकालांशा उक्तेभ्योऽल्पास्तदेष्टकालादग्रे ग्रहस्योदयः। यदीष्टकालांशा उक्तेभ्योऽधिकास्तदेष्टकालाद्ग्रहस्योदयः पूर्वं जातः। एवमस्तसाधन इष्टकालांशा अधिकास्तदेष्टकालादग्रे ग्रहास्तः। यदीष्टकालांशा न्यूनास्तदेष्टकालात्पूर्वं ग्रहास्तो जात इत्युपपन्नमुक्तम् ॥ ९ ॥

भा० टी०-सूर्यसे उत्तर कहे हुए कालांशकी अपेक्षा अधिकदूरमें स्थित होनेपर दृश्य होता है, कम होनेपर जब सूर्यके तेजसे बिम्ब घिरजाता है तब लोगोंको ग्रह दिखाई नहीं देते ॥ ९ ॥

अथोदयास्तयोर्गतैष्यदिनाद्यानयनमाह-

तत्कालांशान्तरकला भुक्त्यन्तरविभाजिताः ॥
दिनादितत्फलं लब्धभुक्तियोगेन वक्रिणः ॥ १० ॥

उक्तेष्टकालांशयोरन्तरस्य कलाः सूर्यग्रहयोर्गत्योः कलात्मकान्तरेण भक्ताः। दिनादिकमुदयास्तयोः फलमुदयास्तयोर्गतैष्यदिनाद्यं भवतीत्यर्थः। वक्रगतिग्रहस्य विशेषमाह। लब्धमिति। वक्रिणो वक्रग्रहस्य भुक्तियोगेन सूर्यग्रहयोः कलात्मगतियोगेन भक्ताः फलं गतैष्यदिनाद्यं ज्ञेयम्। अत्रोपपत्तिः। सूर्यग्रहयोर्गत्यन्तरकलाभिरेकं दिनं तदेष्टप्रोक्तकलांशयोरन्तरकलाभिः किमित्यनुपातेनोदयास्तयोरभीष्टकालाद्गतैष्यदिनाद्यवगमः। वक्रग्रहे तु सूर्यग्रहयोर्गतियोगेन प्रत्यहमन्तरवृद्धेर्गतियोगादनुपात उपपन्न इत्युपपन्नमुक्तम् ॥ १० ॥

भा० टी०-अपने २ कलांशसे इष्टकालांश अलग करके कला बनाय भुक्त्यन्तरसे भागकरनेपर दिनादि फल होंगे वक्री होनेपर भुक्तियोग ग्रहण करना चाहिये ॥ १० ॥

अथ ग्रहगतिकलयोः क्रांतिवृत्तस्थत्वात्कालांशान्तरस्याहोरात्रवृत्तस्थत्वाच्चानुपातः प्रमाणेच्छयोर्वैजात्येनायुक्त इति मनसि धृत्वा तयोरेकजातित्वमुत्पादनार्थं ग्रहगत्योरिच्छाजातीयत्वं वदंस्तदन्तरेणानुपातस्तु युक्तएवेत्याह-

तल्लग्नासुहते भुक्ती अष्टादशशतोद्धृते ॥
स्यातां कालगती ताभ्यां दिनादिगतगम्ययोः ॥ ११ ॥

भुक्ती रविग्रहयोर्गती कलात्मके तल्लग्नासुहते कालसाधनार्थं ग्रहस्य यो राश्युदयो गृहीतस्तेनास्वात्मकोदयेन गुणिते अष्टादशशतेन भक्ते फले सूर्यग्रहयोः कालांशवत्काल गती स्याताम्। ताभ्यां गतिभ्यां गतगम्ययोरुदयास्तयोर्दिनापूर्वोक्तप्रकारेण साध्यम्। ननु पूर्वोक्तप्रकारेण यथास्थितगतिभ्यां स्थूलत्वापत्तेः। अत्रोपपत्तिः। एकराशिकलाभी राश्यदयासवस्तदा गतिकलाभिः कइत्यनुपातेनाहोरात्रवृत्ते गत्यसवः कलासमा इत्युपपन्नमुक्तम् ॥ ११ ॥

भा० टी०-दो भुक्तियोंको उस लग्नप्रमाणसे गुणकरके १८०० से भाग करनेपर काल गति होगी · तिससे (१० श्लोकोक्त) गत और गम्यदिनादिनिर्णय करे ॥११॥

अथ नक्षत्राणां सूर्यसान्निध्यवशादस्तोदयज्ञानार्थं कालांशान् विवक्षुः प्रथममेषामाह-

स्वात्यगस्त्यमृगव्याधचित्राज्येष्ठाः पुनर्वसुः ॥
अभिजिद्ब्रह्महृदयं त्रयोदशभिरंशकैः ॥ १२ ॥

मृगव्याधो लुब्धकः। त्रयोदशभिः कालांशैर्दृश्यानि नक्षत्राणि भवन्ति। शेषं स्पष्टम् ॥ १२ ॥

भा० टी०-स्वाती, अगस्त्य, मृगव्याध, चित्रा, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, अभिजित्, ब्रह्महृदय इनका कालांश १३ अंश हैं ॥ १२ ॥

अथान्येषामेषामाह-

हस्तश्रवणफाल्गुन्यः श्रविष्ठारोहिणीमघाः ॥
चतुर्दशांशकैर्दृश्या विशाखाश्विनिदैवतम् ॥ १३ ॥

फाल्गुनी पूर्वोत्तराफाल्गुनीद्वयम्। अश्वितिदैवतमश्विनीकुमारो दैवतं स्वामी यस्येत्याश्विनीनक्षत्रम्। दृश्या उपलक्षणाददृश्या अपि। लिंगपरिणामश्च यथायोग्यं बोध्यः। शेषं स्पष्टम् ॥ १३ ॥

भा० टी०-हस्त, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाफाल्गुनी, धनिष्ठा, रोहिणी, मघा, विशाखा और अश्विनी, इनका कालांश १४ अंश हैं ॥ १३ ॥

अथान्येषामेषामाह—

कृत्तिकामैत्रमूलानि सार्पं रौद्रर्क्षमेव च ॥
दृश्यन्ते पञ्चदशभिराषाढाद्वितयं तथा ॥ १४ ॥

कृत्तिकानुराधामूलनक्षत्राणि पञ्चदशभिः कालांशैर्दृश्यन्ते । उपलक्षणान्न दृश्यन्तेऽपि । एवकारो न्यूनाधिकव्यवच्छेदार्थः । आश्लेषार्द्रा । चः समुच्चये । आषाढाद्वितयं पूर्वोत्तराषाढाद्वयं तथा पञ्चदशकालांशैर्दृश्यन्त इत्यर्थः ॥ १४ ॥

भा०टी०—कृत्तिका, अनुराधा, मूल, आश्लेषा, आर्द्रा, और पूर्वाषाढ व उत्तराषाढ इनके १५ अंश हैं ॥ १४ ॥

अथान्येषामवशिष्टानां चाह—

भरणीतिष्यसौम्यानि सौक्ष्म्यात्त्रिःसप्तकांशकैः ॥
शेषाणि सप्तदशभिर्दृश्यादृश्यानि भानि तु ॥ १५ ॥

तिष्यः पुष्यः सोमदैवतं मृगशिरोनक्षत्रमेतानि नक्षत्राणि सौक्ष्म्यादणुविम्बत्वात् त्रिःसप्तकांशकैरेकविंशतिकालांशैर्दृश्यादृश्यानि । उदितान्यस्तंगतानि च भवन्तीत्यर्थः । शेषाणि पूर्वाधिकारोक्तनक्षत्रेषूक्तातिरिक्तानि शततारा पूर्वोत्तराभाद्रपदारेवतीसंज्ञानि । वह्निब्रह्मापांवत्सापसञ्ज्ञानि च सप्तदशभिः कालांशैर्दृश्यादृश्यानि भवन्ति । तुकारो दृश्यादृश्यानीत्यत्र समुच्चयार्थकः ॥ १५ ॥

भा० टी०—भरणी, पुष्य, और मृगशिरा इनके सूक्ष्म होनेसे २१ अंशमें, व और सब नक्षत्र १७ अंशमें दिखाई देते हैं ॥ १५ ॥

अथ दिनाद्यानयनार्थमिच्छाया एव प्रमाणजातीयकरणत्वमाह—

अष्टादशशताभ्यस्ता दृश्यांशाः स्वोदयासुभिः ॥
विभज्य लब्धाः क्षेत्रांशास्तैर्दृश्यादृश्यताथवा ॥ १६ ॥

दृश्यांशाः कालांशा अष्टादशशतगुणितास्तान्स्वोदयासुभिर्ग्रहराश्युदयाभिर्भक्त्वा लब्धाः क्षेत्रांशाः क्रान्तिवृत्तस्थांशास्तैरंशैर्दृश्यादृश्यता। उदयास्तौ प्रकारान्तरेणोक्तरीत्या ज्ञेयौ । कलांशाभ्यां क्षेत्रांशावानीय तदन्तरकला यथास्थितगत्योरंतरेण योगेन वा भक्ताः फलमुदयास्तयोर्गतैष्यादिनाद्यं पूर्वागत-

मेव स्यादित्यर्थः । अत्रोपपत्तिः । राश्युदयासुभिरेकराशिकलास्तदा कालांशकलातुल्यासुभिः का इति क्रांति वृत्ते कालास्ताः षष्टिभक्ता अंशा इति पूर्वमेवेच्छास्थाने कलांशा एव धृता लाघवात् । इत्युक्तमुपपन्नम् ॥ १६ ॥

भा० टी०-कालांशको १८०० से गुणकरके लग्नप्रमाणसे भागकरनेपर क्रांतिवृत्तका क्षेत्रांश होता है । तिससे उदयास्तनिर्णय करे ॥ १६ ॥

ननु ग्रहाणाममुकदिश्यस्तोऽमुकदिश्युदय इत्युक्तम् । तथा नक्षत्राणांनोक्तम् । गत्यभावाद्वियोगयोगासम्भवेन गतैष्यदिनाद्यानयनासम्भवश्चेत्यत आह-

प्रागेषामुदयः पश्चादस्ता दृक्कर्मपूर्ववत् ॥
गतैष्यदिवसप्राप्तिर्भानुभुक्त्या सदैव हि ॥ १७ ॥

एषां नक्षत्राणां प्राच्यामुदयः प्रतीच्यामस्तो गत्यभावादल्पगतिग्रहवत् । एषां नक्षत्राणां दृक्कर्माक्षदृक्कर्म पूर्ववत्पूर्वप्रकारेण कार्यम् । परन्तु श्लोकपूर्वार्धोक्तमिति ध्येयम् । सदा नित्यम् । एवकारात्कदाचिदप्यन्यथा नेत्यर्थः । हि निश्चयेन । रविगत्या गतैष्यदिवसानां लब्धिः स्यात् । नक्षत्रगत्यसम्भवात् । योग ग्रहगतिवत् ॥ १७ ॥

भा०टी०-नक्षत्रोंका उदय पूर्वदिशामें और अस्त पश्चिममें होता है । पूर्वानुसार अक्षदृक्कर्मसंस्कार करके सदा रविगति (१० श्लोकमें) से दिवसादिनिर्णय करे ॥ १७

अथ कतिपयानां नक्षत्राणां सूर्यसान्निध्यवशादस्तो नास्तीत्याह-

अभिजिद्ब्रह्महृदयं स्वातीवैष्णववासवाः ॥
अहिर्बुध्न्यमुदक्स्थत्वान्न लुप्यन्तेऽर्करश्मिभिः ॥ १८ ॥

अभिजित् । ब्रह्महृदयम् । अनेनैकदेशस्य ब्रह्मणोऽपि ग्रहणम् । स्वातीश्रवणधनिष्ठाः । अहिर्बुध्न्यमुत्तराभाद्रपदा । एतानि नक्षत्राण्युत्तरदिक्स्थत्वादुत्तरविक्षेपाधिक्यादित्यर्थः । सूर्यकिरणैर्न लुप्यन्ते । अस्तं न यांतीत्यर्थः । अत्रोपपत्तिः । "यस्योदयार्कादधिकोऽस्तभानुः प्रजायते सौम्यशरातिदैर्घ्यात् । तिग्मांशुसान्निध्यवशेन नास्ति धिष्ण्यस्य तस्यास्तमयः कथञ्चित् ॥" इति भास्कराचार्योक्त्या । परमिदमुक्तमष्टाक्षभायाम् । अन्यथा पूर्वाभाद्रपदाया अपि तथात्वापत्तेरिति दिक् ॥ १८ ॥

भा० टी०—अभिजित् ब्रह्महृदय, स्वाती, श्रवण धनिष्ठा, उत्तरभाद्रपदा, यह अधिक उत्तरमें स्थिति होनेके कारण सूर्यकिरणसे कभी कभी लुप्त नहीं होते ॥ १८॥

अथाग्रिमग्रन्थस्यासङ्गतित्वनिरासार्थमधिकारसमाप्तिं फक्किकयाह—नक्षत्रग्रहयोरस्तोदयनिरूपणात्साधारण्येनोदयास्ताधिकार इत्युक्तम् । रंगनाथेन रचिते सूर्यसिद्धान्त टिप्पणे । उदयास्ताधिकारोयं पूर्णो गूढप्रकाशके ॥ इति श्रीसकलगणकसार्वभौमबल्लालदैवज्ञात्मजरंगनाथगणकविरचिते गूढार्थप्रकाशके उदयास्ताधिकारः पूर्णः ॥ १९ ॥

इत्युदयास्ताधिकारः । नवम अध्याय समाप्त ॥

दशमोऽध्यायः ।

अथ भौमादीनां सूर्यसान्निध्योदयास्तासन्ने दीप्त्या सकलबिम्बदर्शनं तथा चन्द्रस्य स्वोदयास्तकाले सकलबिम्बदर्शनं शुक्लत्वेन न भवति । किन्तु बिम्बैकदेश एव शुक्लत्वेन न दृश्यत इति भौमादिविसदृशत्वं चन्द्रस्य कुत इत्याशङ्कायाः पूर्वाधिकारे समुपस्थितेस्तदुत्तरभूतशृंगोन्नमनाधिकारोऽवश्यमुपस्थित आरब्धो व्याख्यायते । तत्र शृङ्गोन्नतेरुदयकालात्पूर्वकालेऽस्तकालानन्तरकाले चासन्नकतिपयदिवसेषु दर्शनात्पूर्वाधिकारे चन्द्रस्य कालांशानुक्त्या तदुदयास्तानुक्तेश्च प्रथममुपस्थितचन्द्रोदयास्तयोः साधनमतिदिशति—

उदयास्तविधिः प्राग्वत्कर्त्तव्यः शीतगोरपि ॥
भागैर्द्वादशभिः पश्चाद्दृश्यः प्राग्यात्यदृश्यताम् ॥ १ ॥

चन्द्रस्य अपिशब्दः पूर्वाधिकारोक्तैर्ग्रहनक्षत्रैः समुच्चयार्थकः । उदयास्तविधिरुदयास्तयोः साधनप्रकारः प्राग्वत्पूर्वाधिकारोक्तरीत्या गणकेन कार्यः । ननु कालांशानां पूर्वमनुक्तेः कथं तत्सिद्धिः । अत आह—भागैरिति । द्वादशभिरंशैश्चंद्रः पश्चिमायां दृश्य उदितो भवति । प्राच्यामदृश्यतामस्तं प्राप्नोति । अत्र पश्चात्प्रागिति पुनरुक्तमपि पूर्वं बुधशुक्रयोः साहचर्येण चन्द्रोदयास्तदिगुक्त्या तत्साहचर्येण चन्द्रस्य पश्चिमास्तपूर्वोदयो वर्तत इति कस्यचिन्मन्दबुद्धेर्भ्रमस्य वारणायेति ध्येयम् ॥ १ ॥

भा०टी०-चन्द्रमाकाभी पहले कही रीतिके अनुसार उदयास्तसाधन करना चाहिये १२ अंश दूर होनेसे पश्चिममें दिखाता है और पूर्वमें १२ अंश होनेसे अदृश्य होता है ॥ १ ॥

अथोदयास्तप्रसङ्गेन स्मृतयोश्चन्द्रनित्यास्तोदययोः साधनं विवक्षुः प्रथमं श्लोकत्रयेणेन्दोर्नित्यास्तसाधनमाह-

रवीन्द्वाः षड्भयुतयोः प्राग्वल्लग्नान्तरासवः ॥
एकराशौ रवीन्द्वोश्च कार्या विवरलिप्तिकाः ॥ २ ॥
तन्नाडिकाहते भुक्ती रवीन्द्वोः षष्टिभाजिते ॥
तत्फलान्वितयोर्भूयः कर्त्तव्या विवरासवः ॥ ३ ॥
एवं यावत्स्थिरीभूता रवीन्द्वोरन्तरासवः ॥
तैः प्राणैरस्तमेतीन्दुः शुक्केऽर्कास्तमयात्परम् ॥ ४ ॥

शुक्ले शुक्लपक्षाभीष्टदिने सूर्यास्तकाले स्पष्टौ सूर्यचन्द्रौ साध्यौ । चन्द्रस्य दृक्कर्मद्वयं संस्कार्यम् । तत्राक्षदृक्कर्म श्लोकपूर्वार्धोक्तमेव । तयोः सूर्यचंद्रयोः षड्राशियुतयोर्लग्नान्तरासवोऽन्तरकालासवः प्राग्वल्लग्यासून्नकस्येत्यादिना साध्याः । तौ सषड्भार्कचन्द्रावेकराशावभिन्नराशौ चेत्स्तस्तदा सषड्भयोस्तयोः सूर्यचन्द्रयोरन्तरकलाः कार्याः चकारो विषयव्यवस्थार्थकः । तयोरसुकलयोर्घटिकाभिरसवः षष्ट्यधिकशतत्रयेण भाज्याः । घटिकाः कला उदयासुगुणिता एकराशिकलाभिर्भक्ता असवस्ते षष्ट्यधिकशतत्रयेण भाज्याः । घटिकाः । आभिः सूर्येन्द्वोर्गतीकलात्मके गुण्ये षष्टिभक्ते तत्फलान्वितयोः स्वस्वफलयुक्तयोः सषड्भसूर्यचन्द्रयोर्भूयः पुनर्विवरासवोऽन्तरप्राणाः पूर्वरीत्या कर्त्तव्याः । एवं तद्घटिकाभिः सूर्यास्तकालिकौ सषड्भसूर्यदृक्कर्मसंस्कृतचन्द्रौ प्रचाल्य तयोर्विवरासव इति यावत्स्थिरीभूता अभिन्नास्तावत्साध्याः । तैरभिन्नैरसुभिः सूर्यास्तादनन्तरं चन्द्रोऽस्तं प्राप्नोति । अत्रोपपत्तिः । सूर्यास्तकाले सषड्भार्को लग्नं दृक्कर्मसंस्कृतश्चन्द्रः षड्भयुतश्चन्द्रास्तकाले लग्नम् । परन्तु सूर्यास्तकालिकं न स्वास्तकालिकम् । पश्चिमदृग्ग्रहः सूर्यास्तकालिक इति तत्त्वम् । तदन्तरासवः साधनाश्चन्द्रस्य

सूक्ष्मा दिनशेषाः । परन्तु परिभाषया नाक्षत्रज्ञानसम्भवान्नाक्षत्राः साध्या इति चन्द्रस्ताभिश्चाल्यः स्वास्तकाले सषड्भो लग्नमस्मात्सूर्यास्तकालिकसषड्भसूर्याच्चान्तरासवो नाक्षत्राः सूक्ष्मा अपि भगवतैकरीतिप्रदर्शनार्थं भिन्नकालिकाभ्यां सूर्यचन्द्राभ्यां कथं सूक्ष्मसमयसिद्धिरिति मन्दाशङ्कापनोदार्थं च सषड्भः सूर्योऽपि साधितश्चन्द्रास्तकाले । ताभ्यामन्तरासवो नाक्षत्रा अपि सूर्यास्तकालिकलग्ना ग्रहादसूक्ष्मा इत्यसकृत्सूक्ष्मा इत्युक्तमुपपन्नम् । वस्तुतस्तु सावनाभ्युपगमे "रवीन्द्वोः षड्भयुतयोः प्राग्वल्लग्नान्तरासवः । तैःप्राणैरस्तमेतीन्दुः शुक्लेऽर्कास्तमनात्परम् ॥" इत्येक एव सूर्यसिद्धांते श्लोकः । श्लोकमध्य एकराशावित्यादिरवीन्द्वोरित्यन्तरासव इत्यन्तं श्लोकद्वयं केनचिन्मन्दमतिना समयोऽसकृदेव साध्य इति शिष्यधीवृद्धिदतन्त्रोक्तं सुबुद्धिमन्येनायुक्तमपि युक्तियुक्तं मत्वा निक्षिप्तम् । कथमन्यथा भगवतः सर्वज्ञस्य शुद्धसावनघटीज्ञानानन्तरमसकृत्साधनोक्तिः सङ्गच्छते । किंच 'एकराशौ रवीन्द्वोश्च कार्या विवरलिप्तिकाः' इत्यर्धस्य त्रिप्रश्नाधिकारे भोग्यासूनूनकस्येत्यादिश्लोकाभिपेक्षितत्वेनात्रानपेक्षितत्वम् । प्राग्वल्लग्नान्तरासव इत्यनेनैवात्र तत्सिद्धेरिति । अथ नाक्षत्राभ्युपगमे तु चन्द्रस्य सावनघटी भिश्चालनं स्वास्तकालिकसिद्ध्यर्थमावश्यकं नतु सूर्यस्य प्रयोजनाभावात् । नहि चन्द्रास्तकालसाधितसषड्भसूर्यैः सूर्यास्तकालिकं लग्नं येन सूर्यचालनं युक्तम् । अपिच एकस्य चन्द्रस्य चालनेन पुनरेकवारेणैव सूक्ष्मनाक्षत्रकालसिद्धौ द्वयोश्चालनोक्त्या नाक्षत्रास्यासकृत्क्रियानयनमतत्त्वं गौरवं सर्वज्ञेन कथमुक्तम् । असकृत्साधनेन सूक्ष्मनाक्षत्रसिद्धौ युक्तभावश्च । अत एव "ज्ञातुं यदाभाभिमता ग्रहस्य तत्कालखेटोदयलग्नलग्ने । साध्येनयोरन्तरनाडिकायास्ताः सावनः स्युर्द्युगता ग्रहस्य ॥" इति भास्कराचार्योक्तं सङ्गच्छत इति तत्त्वम् ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

भा० टी०—शुक्लपक्षमें सन्ध्याकालको दृक्कर्मसंस्कृत चन्द्रमें और सूर्यमें ६ राशि मिलाकर पूर्वानुसार लग्नान्तर प्राणस्थिर करे । सूर्यास्तके पीछे उक्त-प्राणसंख्यक कालके गत होनेपर चंद्रमा अस्त होगा ॥ २ ॥ रविस्पष्टमें ६ राशि मिलाकर चन्द्रसे अन्तरप्रमाणको निर्णय करे । वही सूर्यास्तके पीछे कृष्णपक्षमें ६ चन्द्रो-

दयका काल है ॥ ३ ॥ एकदिशामें होनेपर सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्तिज्या अनंतर (दूर) करके अन्यथा योग करे। प्राप्तफल सूर्यसे चन्द्रमाके संस्थानादिकके अनुसार दक्षिण और उत्तरा संज्ञा होगी ॥ ४ ॥

अथोदयासाधनमाह—

भगणार्धं रवेर्दत्त्वा कार्यास्तद्विवरासवः ॥
तैः प्राणैः कृष्णपक्षे तु शीतांशुरुदयं व्रजेत् ॥ ५ ॥

कृष्णपक्षे भगणार्धं सषड्राशीन् सूर्यस्य दत्त्वा संयोज्य। तुकाराच्चन्द्रस्यादत्त्वेत्यर्थः। तद्विवरासवस्तयोर्दृक्कर्मसंस्कृतचन्द्रसषड्भसूर्ययोरन्तरासवः। प्रागुक्तप्रकारेण साध्याः। तैः साधितैरसुभिश्चन्द्रः सूर्यास्तानन्तरमुदयं गच्छेत्। अत्रोपपत्तिः। सूर्यास्तकाले सषड्भार्कस्य लग्नत्वात्सूर्ये षड्राशियोजनमुदयासाधनार्थम्। प्राग्दृग्ग्रहस्यापेक्षितत्वाच्चंद्रो दृक्कर्मसंस्कृतो यथास्थितो न षड्राशियुक्तः। तद्विवरासुभिश्चन्द्रस्य सूर्यास्तानन्तरमुदयः सावनैस्तच्चालितचन्द्रात्सूर्यास्तकालिकसषड्भार्काच्च विवरासवो नाक्षत्रा इति। शृङ्गोन्नातिसाधनार्थं दृश्यकाले सूर्यचन्द्रौ साध्याविति ज्ञापनार्थं चन्द्रस्य नित्योदयास्तावुक्तावन्येषां ग्रहनक्षत्रादीनां प्रयोजनाभावादनुक्तौ चंद्रोपलक्षणादुक्तौ वा तत्र शुक्लकृष्णपक्षविवेको नेति ध्येयम् ॥ ५ ॥

भा० टी०—तिसकालकी स्वमत्स्यरेखागत-चन्द्रच्छाया कर्णको ऊपर कहेहुए फलसे गुणाकरे। गुणनफल दक्षिण होनेपर द्वादशगुणित अक्षज्यामें योग उत्तर होनेपर वियोग करना चाहिये ॥ ५ ॥

अथ प्रकृतं विवक्षुः प्रथमं तदुपयुक्तभुजकोटिकर्णात्मकं क्षेत्रं श्लोकत्रयेणाह—

अर्केन्द्वोः क्रान्तिविश्लेषो दिक्साम्ये युतिरन्यथा ॥
तज्ज्येन्दुरर्काद्यत्रासौ विज्ञेया दक्षिणोत्तरा ॥ ६ ॥
मध्याह्नेंदुप्रभाकर्णसंगुणा यदि सोत्तरा ॥
तदार्कघ्नाक्षजीवायां शोध्या योज्या च दक्षिणा ॥ ७ ॥
शेषं लम्बज्यया भक्तं लब्धो बाहुः स्वदिङ्मुखः ॥
कोटिः शंकुस्तयोर्वर्गयुतेर्मूलं श्रुतिर्भवेत् ॥ ८ ॥

सूर्यचन्द्रयोः स्पष्टक्रान्त्योर्दिगैक्येऽन्तरम् । अन्यथा दिग्भेदे योगः । अत्र क्रान्तिशब्दः क्रांतिज्यापरो ज्ञेयः । उपपत्त्यविरोधात् । तज्ज्या साचासौ ज्या च संस्कारसिद्धाङ्कमिता ज्येत्यर्थः । अर्काच्चन्द्रो यत्र यस्यां दिशि तद्दिका दक्षिणोत्तरावासौ ज्या ज्ञेया । एकदिशि रविक्रांतिश्चन्द्रक्रांतेरधिकत्वे सूर्याच्चन्द्रस्य क्रांतिदिक्स्थत्वेन ज्याकान्तिदिक् । ऊनत्वेऽर्कात्क्रांतिदिग्विपरीतदिक्स्थत्वेन क्रांतिभिन्नदिक् । भिन्नदिशि चन्द्रक्रांतिदिग्ज्या ज्ञेयेत्यर्थः । सा ज्या मध्याह्नेन्दुप्रभाकर्णसंगुणा यत्काले चन्द्रशृंगोन्नत्यर्थं साधितस्तत्काले मध्याह्नच्छायाकर्णवच्छायाकर्णश्चन्द्रस्य साध्यः । सत्वक्षांशचन्द्रस्पष्टक्रान्त्योरुत्तरदिशि वियोगो दक्षिणदिशि योगस्तदूननवत्यंशज्यया भक्ता द्वादशगुणितत्रिज्येति । उपपत्त्यनुरोधेन तु मध्याह्नपदं तत्कालपरम् । यत्काले चन्द्रस्तत्काले चन्द्रस्य द्युगतं दिनशेषं वा प्रसाध्य त्रिप्रश्नाधिकारविधिना शंकुं प्रसाध्य च्छायाकर्णः साध्यः । अह्नोऽहोरात्रस्य मध्यं सूर्यास्तस्तत्कालिकः चन्द्रस्य च्छायाकर्णो वाऽयमेव भगवदभिप्रेतः । कथमन्यथा चन्द्रस्य शृंगोन्नतौ दृक्कर्मद्वयसंस्कारः शृंगोन्नतौ शशाङ्कस्येति प्रागुक्तः संगच्छते । दिनार्धातिरिक्तच्छाया साधनार्थमेव दृक्कर्मणोरुपयोगादन्यत्र शृंगोन्नतिगणित उपयोगाभावात् । स्पष्टकान्त्यैव च्छायाकर्णसिद्धेः । अत्रापि श्लोकपूर्वार्धोक्तमेवाक्षदृक्कर्मसंस्कार्यम् । तेन च्छायाकर्णेन गुणितेत्यर्थः । सा तादृशी ज्या यद्युत्तरा तदा द्वादशगुणितायामक्षज्याधिका तादृशी ज्या । तदापि विपरीतशोधने न क्षतिः । यदि दक्षिणा तदा तस्यामेव युक्ता कार्या । चो व्यवस्थार्थकः । शेषं संस्कारजं स्वदेशलम्बज्यया भक्तं फलं भुजः प्राप्तः । स्वदिङ्मुखः स्वशब्देन संस्कारस्तस्य दिक्तस्यां मुखमग्रं यस्यासौ । संस्कारादिक इत्यर्थः । भुजस्य कोटिकर्णसापेक्षत्वात्तावाह—कोटिरिति । शंकुर्द्वादशांगुलः कोटिः । तयोर्भुजकोट्योर्वर्गयोर्योगात्पदं कर्णः स्यात् । अत्रोपपत्तिः । "स्वाग्रास्वशंकुतलयोः समभिन्नदिक्त्वे योगोन्तरं भवति दोरिनचन्द्रदोष्णोः । तुल्यांशयोर्विवरमन्यदिशोस्तु योग स्पष्टो भुजो भवति चन्द्रभुजांश इन्दोः ॥

शुद्धे भुजे रविभुजाद्विपरीतदिक्कः ॥ " इति सूक्ष्मभुजसाधनं भास्कराचार्येण सिद्धान्तशिरोमणावुक्तम् । दद्दुपपत्तिस्तु तट्टीकायां व्यक्ता । अनया रीत्या भुजसाधनार्थं क्रांतिज्ययोरग्रेसाध्ये । लम्बज्याकोटौ त्रिज्याकर्णस्तदा-क्रांतिज्याकोटौ कः कर्ण इत्यनुपातेन । तत्स्वरूपं तु प्रत्येकं सूर्यचन्द्रयोः सूर्यक्रांतिज्यात्रिज्यागुणालम्बज्याभक्ता { सू. क्रां. ज्या. त्रि १ / लं १ }

चन्द्रस्पष्टक्रांतिज्यात्रिज्यागुणालवया भक्ता { चं.क्रां.ज्या.त्रि. १ / लं. १ } अनयोः स्वं स्वं शंकुतलं संस्कार्यम् । तत्र शृंगोन्नत्यर्थं सूर्येण भगवता सूर्योदयास्त-कालिकगणितस्यैवाभ्युपगमात् । तत्र सूर्यशंकोरभावात्तच्छंकुतलाभावाच्च सूर्याग्रैव सूर्यभुजः सिद्धः । चन्द्रस्य तु तदा शंकोः सद्भावच्छंकुतलमुत्पद्यते तत्तु लम्बज्याकोटावक्षज्याभुजस्तदा शंकुकोटौ को भुज इत्यनुपातेन तात्कालि-कचन्द्रोन्नतोन्नतकालसाधितत्रिप्रश्नाधिकारोक्तचन्द्रमहाशंकुगुणिताक्षज्याल-म्बज्याभेक्तति दक्षिणमेव शंकुतलस्वरूपम् { अक्षज्या. चं. शं. १ / लं. १ } इदं

चन्द्रदक्षिणाग्रायां योज्यम् । चन्द्रस्य दक्षिणो भुजः । चन्द्रोत्तराग्रायां तु हीनचन्द्रस्योत्तरो भुजः । चन्द्रोत्तराग्रया हीनमिदं चन्द्रस्य दक्षिणो भुजः । यथा दक्षिणो भुजः { चं.क्रां.ज्या त्रि.अक्षज्या.चं.शं. १ / लं. १ } { वा } चं.क्रां

ज्यात्रि. १ अक्षज्या.चं शं १ / लं १ } उत्तरोभुजः { चं.क्रा.ज्या.त्रि. १ आक्षज्या.

चं.शं. १ / लं १ } अयं चन्द्रभुजः सूर्याग्रयैकदिश्यंतरितो भिन्नदिशि युक्तः स्पष्टः शृंगोन्नत्युपक्तो भुजः । यथा सूर्यस्य दक्षिणगोले { सू.क्रां.ज्या.त्रि. १ चं.

क्रां.ज्या.त्रि. १ अक्षज्या. चं.शं. १ / ल. १ } { सू.क्रां.ज्या.त्रि.१ चं.क्रां.ज्या-त्रि.

१ अक्षज्या.चं.शं. १ / लं. १ } इदं भुजद्वयं स्पष्टो भुजो भवति चन्द्रभुजांश इत्युक्त-

दक्षिणम् । सूर्यभुजस्य न्यूनत्वेन शोध्यात् । सूर्यभुजस्याधिकत्वे तु
{ सू.क्रां.ज्या.त्रि. १ चं.क्रां.ज्या.त्रि १ अक्षज्या.चं.शं. १ / लं. १ } { सू.क्रां.ज्या.
त्रि. १ चं.क्रां.ज्या.त्रि. १ अक्षज्या.चं.शं. १ / लं. १ } इदं भुजद्वयमुत्तरम् । इन्दोः
शुद्धे भुजे रविभुजाद्विपरीतदिक्क इत्युक्तेः । योगतूत्तरो भुजः { सू.क्रां.ज्या.
त्रि. १ चं.क्रां.ज्या.त्रि. ३.अक्षज्या. चं.शं. १ / लं. १ } सूर्योत्तरगोलेऽपि { सू.क्रां.
ज्या.त्रि. १ चं.क्रां.ज्या.त्रि १ अक्षज्या,चं.शं. १ / लं. १ } { सू.क्रां.ज्या.त्रि. १ चं.
क्रां.ज्या.त्रि १ अक्षज्या.चं.शं. १ / लं १ } इदं भुजद्वयं दक्षिणम् । अन्तरे तु सूर्यभु-
जस्य न्यूनत्वे उत्तरो भुजः { सू.क्रां.ज्या.त्रि. १ चं.क्रां.ज्या.त्रि. १ अक्षज्या.
चं.शं. १ / लं. १ } सूर्यभुजस्याधिकत्वे तु { सूर्यक्रां.ज्या.त्रि १ चं.क्रां.ज्या.त्रि १ अक्षज्या
चं.शं. १ / लं. १ } दक्षिणोऽयं भुजः । इन्दोः शुद्धेः भुज इत्युक्तत्वात् । अत्र नवसु पक्षेषु

प्रथमपक्षे सूर्यचन्द्रक्रान्तिज्ययोरेकदिशयोरन्तरं त्रिज्यागुणितं तत्सूर्यक्रा-न्तिसम्बद्धं चेत्तेनोनाक्षज्येन्दुशंकुघातो लम्बज्याभक्त इति । चंद्रक्रान्तिस-म्बद्धं चेत्तेन युतस्तद्घातो लम्बज्याभक्त इति सिद्धम् । तत्राक्षांशानां दक्षिणत्वेनैकदिशि योगार्थं चन्द्रशेषे दक्षिणत्वं सूर्यशेषे उत्तरत्वं भिन्नदिशि वियोगार्थं कल्पितम् । युक्तं चैतत् । सूर्यक्रान्त्यधिकत्वे सूर्याच्चान्द्रस्योत्त-रत्वात् । शृंगोन्नतौ चन्द्रस्येव प्राधान्याच्च । द्वितीयपक्षे क्रान्तिज्ययोर्भि-न्नदिशयोर्योगेन तादृशेन तद्घातमूनं कृत्वा लम्बस्यया भजेदित्यत्रापि योग-स्याग्रेऽन्तरार्थमुत्तरदिक्त्वं चन्द्रक्रान्तेरुत्तरत्वेन दक्षिणस्थसूर्याच्चन्द्रस्य युत-

रामुत्तरत्वाच्च। तृतीयपक्षे क्रान्तिज्ययोरेकदिशयोरन्तरे सूर्यसंबद्ध एव तादृशे तद्वध ऊन इति वियोगार्थमन्तरस्योत्तरदिक्त्वम्। द्वयोर्दक्षिणगोलस्थत्वेऽप्यधिकसूर्यान्न्यूनचन्द्रस्योत्तरत्वात्। चतुर्थपक्षे भिन्नदिशयोः क्रान्तिज्ययोर्योगे तादृशे तद्वध ऊन इति वियोगार्थं योगस्योत्तरदिक्त्वम्। चन्द्रस्योत्तरदिक्स्थत्वात्। पञ्चमपक्षे तु चतुर्थपक्षोक्तं तुल्यत्वात्। षष्ठपक्षे क्रान्तिज्ययोर्भिन्नदिशयोर्योगो दक्षिणस्तद्वध योगार्थं चन्द्रस्य दक्षिणगोलस्थत्वात्। सप्तमपक्षे क्रान्तिज्ययोरेकदिशयोरन्तरं सूर्यसम्बद्धं तदा तद्वधे योज्यमित्यन्तरं दक्षिणम्। द्वयोरुत्तरगोलस्थत्वेऽपि चन्द्रस्य न्यूत्वेनार्काद्दक्षिणस्थत्वात्। अधिकत्वे तूत्तरं तद्वधे हीनमिति। अष्टमपक्षे क्रान्तिज्ययोरेकदिशयोरन्तरे चन्द्रसम्बद्ध उत्तरे तद्वध ऊनः। चन्द्रस्याधिकत्वेनोत्तरस्थत्वात्। अन्त्यपक्षे तु समदिशयोः क्रांतिज्ययोरन्तरं सूर्यसम्बद्धं तद्वधे योज्यमिति दक्षिणम्। चन्द्रस्य न्यूनत्वेन दक्षिणस्थत्वादित्युपपन्नं प्रथमश्लोकोक्तम्। अत्र केनचित् क्रान्तिशब्देन चापात्मकक्रान्ती गृहीत्वा तत्संस्कारः कृतस्तस्य ज्या कार्येति व्याख्यातम्। तदुपपत्तिविरुद्धम्। नहि भुजसाधने चापात्मकक्रान्ती प्रयोजकत्वेनोपपन्ने। येन व्याख्योक्ता युक्ता। नवा क्रांतिज्यायोगवियोगाभ्यां चापात्मकक्रान्तियोगवियोगयोर्ज्ये तुल्ये येनोक्तं संगतं स्यात्। अन्यथाक्षांशक्रान्त्यंशसंस्करांशज्यां विनापि क्रान्तिज्याक्षज्ययोः संस्कारेण नतांशज्यायाः साधनापत्तेरिति दिक्। अथायं भुजस्त्रिज्यावृत्त इति लाघवात्तात्कालिके चन्द्रच्छायाकर्णमितवृत्ते स्वेच्छया साधितस्त्रिज्यावृत्तेऽयं भुजस्तदा चन्द्रच्छायाकर्णवृत्ते क इत्यनुपाते तेन क्रांन्तिज्ययोः संस्कारमितमाद्यं खण्डं चन्द्रच्छायाकर्णगुणमिति सिद्धम्। त्रिज्यामितपूर्वगुणस्येदानीन्तनत्रिज्यामितहरस्य तुल्यत्वेन द्वयोर्नाशाच्च। अथापरखण्डं चन्द्रशङ्क्वक्षज्याघातात्मकं चन्द्रच्छायाकर्णगुणं त्रिज्याभक्तं कार्य्यम्। तत्र त्रिज्याद्द्वादशघातस्य चन्द्रशंकुभक्तस्य छायाकर्णत्वाच्छङ्कुत्रिज्यामितयोर्गुणहरयोः प्रत्येकं नाशादक्षज्याद्वादशगुणेत्यपरं खण्डं सिद्धम्। द्वयोरेकेदिशि योगो भिन्नदिश्यन्तरमिति संस्कारो लम्बज्याभक्तो भुजः संस्कार-

दिक्कः सिद्धः । शंकुः कोटिरिति चन्द्रच्छाया कर्णवृत्ते भुजसाधनात् । तद्वृत्ते कोटिरपि साध्या । सातु नियता द्वादश । नियतकोटयर्थमेव भुजश्च-न्द्रच्छायाकर्णवृत्ते साधितः सूर्योदयास्तयोः सूर्य्यशंकोरभावात्सूर्य्य शंकु-संस्काराभावः । तदितरकाल उक्तक्रियया न निर्वाहः । कोटिभुजयोर्वर्गयो-गान्मूलं कर्ण इत्युपपन्नं मध्याह्नेत्यादि श्लोकद्वयोक्तम् ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

भा० टी०-यह शेषलब्धफल लंबज्यासे भाग करनेपर स्वादिग्सूचक बाहु होगा। चंद्रमाके शंकुको कोटिज्ञानकरके दोनोंका वर्गयोग करके मूल करनेसे कर्ण होगा ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ शुक्लानयनमाह-

सूर्योनशीतगोर्लिप्ताः शुक्लं नवशतोद्धृताः ॥
चन्द्रबिम्बाङ्गुलाभ्यस्तद्धृतं द्वादशभिः स्फुटम् ॥ ९ ॥

सूर्योनितचन्द्रस्य कलां नवशतभक्ताः फलं शुक्लम् । तच्चन्द्रग्रहणा-धिकारोक्तप्रकारेणागतचन्द्रबिम्बाङ्गुलैर्गुणितं द्वादशभिर्भक्तं फलं स्फुटं शुक्लं स्यात् । अत्रोपपत्तिः । दर्शान्ते सूर्यचन्द्रयोरन्तराभावादस्मद्दृश्यार्धे चन्द्र-गोले सूर्यकिरणप्रतिफलनाभावाच्छौ क्ल्याभावः । ततो यथायथार्काच्चन्द्रः पूर्वतोऽन्तरितस्तथातथा चन्द्रगोलास्मद्दृश्यार्धे चन्द्रपश्चिमभागक्रमेण शौक्ल्यवृद्धिः । एवं षड्राश्यन्तरे पौर्णमास्यन्ते चन्द्रगोलास्मद्दृश्यार्धं सम्पूर्णं श्वेतं भवति । इतः षड्राशिकलाभिः खखाष्टदिग्भिर्द्वादशाङ्गुलव्यासबिम्बं श्वेतं तदेष्टेन सूर्योनचन्द्रकलागणेन किमित्यनुपाते प्रमाणफलयोः फलापव-र्त्तनेन प्रमाणस्थाने नवशतम् । अतः सूर्य्योनचन्द्रस्य कला नवशतभक्ताः शौक्ल्यमिदं द्वादशांगुलव्यासप्रमाणेन सिद्धम् । अतो द्वादशांगुलप्रमाणेनेदं तदाभिमतचन्द्रबिम्बांगुलव्यासप्रमाणेन किमित्यनुपातेनोक्तमुपपन्नम् । अनेन प्रकारेण त्रिभान्तरे चन्द्रगोलास्मद्दृश्यार्धमर्धं श्वेतं भवतीति सिद्धम् । भास्कराचार्यैस्तु "कक्षाचतुर्थस्तरणेर्हि चन्द्रः कर्णान्तरे तिर्यगिनो यतोऽब्जात् । पादोनषट्काष्टलवान्तरेऽतो दलं नृदृश्यं दलमस्य शुक्लम् ॥" इति शृंगोन्नतिवासनायामुक्तम् । शृंगोन्नत्यधिकारे । "चन्द्रस्य योजनमयश्रवणेन

त्रिघ्नो व्यर्केन्दुदोर्गुण इनश्रवणेन भक्तः । तत्कार्मुकेण सहितः खलु शुक्लपक्षे कृष्णोऽमुना विरहितः शश भृद्विधेयः ॥" इति तदभिप्रेतश्चेतानयनोपयुक्तश्चन्द्रः साधित इत्यलम् ॥ ९ ॥

भा० टी०-चंद्रमासे सूर्यको अलग करके कला करता हुआ ९०० से भाग करनेपर शुक्लांश होगा । चन्द्रबिम्बांगुलीसे गुणकरेक १२ से भाग करनेपर स्फुट शुक्ल होगा ॥ ९

अथ श्लोकचतुष्टयेन शृंगोन्नतिपरिलेखमाह-

दत्त्वार्कसञ्ज्ञितं बिन्दुं ततो बाहुं स्वदिङ्मुखम् ॥
ततः पश्चान्मुखीं कोटिं कर्णं कोट्यग्रमध्यगम् ॥ १० ॥
कोटिकर्णयुताद्विन्दोर्बिम्बं तात्कालिकं लिखेत् ॥
कर्णसूत्रेण दिक्सिद्धिं प्रथमं परिकल्पयेत् ॥ ११ ॥
शुक्लं कर्णेन तद्बिम्बयोगादन्तर्मुखं नयेत् ॥
शुक्लाग्रयाम्योत्तरयोर्मध्ये मत्स्यौ प्रसाधयेत् ॥ १२ ॥
तन्मध्यसूत्रसंयोगाद्बिन्दुत्रिस्पृग्लिखेद्धनुः ॥
प्राग्बिम्बं यादृगेव स्यात्तादृक्तत्र दिने शशी ॥ १३ ॥

समभूमावभीष्टस्थाने दिक्साधनं कृत्वा पूर्वापरा दक्षिणोत्तरा च रेखा कार्या। तत्र दिक्सम्पातेऽर्कसञ्ज्ञितमर्कसञ्ज्ञा सञ्जाता यस्येत्येतादृशमर्कसञ्ज्ञं बिन्दुं चिह्नं दत्त्वा कृत्वेत्यर्थः । ततो बिन्दोः सकाशाद्भुजं पूर्वसाधितं स्वदिङ्मुखं स्वदिशा दक्षिणोत्तरान्यतरातदभिमुखं दत्त्वा भुजांगुलानि गणयित्वा चिह्नं कृत्वा ततो भुजाग्रचिह्नात्पश्चान्मुखीं पश्चिमदिक्समसूत्राभिमुखाग्रां कोटिं द्वादशांगुलात्मिकां दत्त्वा कर्णं पूर्वसाधितं कोट्यग्रमध्यगकोट्यग्रचिह्नं मध्यं सूर्यसञ्ज्ञचिह्नं तयोर्गतं स्पृष्टम् । तदन्तराले कर्णांगुलानि दत्त्वेत्यर्थः । कोटिकर्णरेखासंयोगे मध्यं प्रकल्प्य तात्कालिकं सूर्यास्तोदयकालिकं चन्द्रस्य साधितं मण्डलं लिखेत् । तत्र लिखितचन्द्रबिम्बे कर्णसूत्रेण कर्णरेखया प्रथममादौ दिक्सिद्धिं दिशानिष्पत्तिं परिकल्पयेत् कुर्यात् । चन्द्रमण्डलं कर्णरेखायां यत्र लग्नं तत्र चन्द्रवृत्ते पूर्वा । कर्णरेखा स्वमा-

र्गेणाग्रे निःसार्य चन्द्रवृत्तपरिधौ यत्र कर्णरेखापरभागे लग्ना तत्र पश्चिमा। तन्मत्स्याभ्यां रेखा दक्षिणोत्तरा चन्द्रवृत्ते यत्र लग्ना तत्र दक्षिणोत्तरेति फलितार्थः। शुक्लं पूर्वसाधितं कर्णेन कर्णरेखामार्गेण तद्बिम्बयोगात्कर्णरेख चन्द्रमण्डलपरिध्योः सम्पातादपूर्वा। अन्तर्मुखं चन्द्रवृत्तकेन्द्राभिमुनयेत् शुक्लाग्रचिह्नं कुर्यात्। चन्द्रवृत्तान्तः कर्णरेखायां पश्चिमचिह्नाच्छुक्लांगुलानि गणयित्वा कुर्यादित्यर्थः। शुक्लाग्रयाम्योत्तरयोश्चन्द्रवृत्तान्तर्यत्र शुक्लाग्रचिह्नं यत्र च चन्द्रवृत्तपरिधौ दक्षिणोत्तरयोश्चिह्नं तयोरित्यर्थः। मध्येऽन्तराले मत्स्यौ प्रत्येकं साधयेत्। शुक्लाग्रदक्षिणचिह्नाभ्यां मत्स्यशुक्लाग्रोत्तरचिह्नाभ्यां मत्स्यश्चेति पूर्णोक्तरीत्या मत्स्यौ कुर्यादित्यर्थः। तन्मध्यसूत्रसंयोगात्। तयोर्मत्स्ययोर्मध्यसूत्रं मुखपुच्छस्पृग्गर्भसूत्रं प्रत्येकं तयोर्यत्र चन्द्रमण्डलान्तस्तद्बहिर्वा कद्रशुक्लाग्रस्य पश्चिमत्वे पूर्वभागे संयोगः। पूर्वत्वे पश्चिमभागे संयोगः। स्वस्वमार्गेण प्रसारितयोस्तयोः सम्पातस्तस्मात्स्थानात्। बिन्दुत्रिस्पृक् शुक्लाग्रबिन्दुर्याम्योत्तरयोश्चिह्नबिन्दुरिति बिन्दुत्रितयस्पर्शिधनुर्वृत्तैकदेशात्मकं लिखेत्। सूत्रसम्पातशुक्लाग्रबिन्द्वन्तरालांगुलव्यासार्धेन सम्पातस्थानाद्बिन्दुत्रयस्पष्टवृत्तपरिध्येकदेशात्मकं चन्द्रमण्डलान्तश्चापं कुर्यादित्यर्थः। प्राक्पूर्वकाले लिखितं चन्द्रबिम्बम्। यादृक्। लिखितचापच्छेदेन यादृशं पश्चिमभागे भवति तादृशः। एवकारस्तद्भिन्ननिरासार्थकः। तस्मिन् दिने। शृंगोन्नतिगणिताश्रयीभूतसन्ध्यासमये चंद्र आकाशस्थो भवति। अत्रोपपत्तिः। भुजस्तु सूर्याच्चन्द्रे यावतान्तरेण तद्रूप इति सूर्यस्थानं प्रकल्प्य तस्माद्यथादिग्भुजो देयस्तस्माच्छुक्लपक्षे पश्चिमदिक्स्थस्य चन्द्रस्य शृंगोन्नतिर्भवतीति सूर्यचन्द्रयोरूर्ध्वाधरान्तरं कोटिर्दत्ता। सूर्यचन्द्रयोरन्तरं तिर्यक्कर्ण इति कोट्यग्रसूर्यबिम्बान्तराले कर्णो दत्तः। कर्णदानं कोटेः सरलत्वसिद्ध्यर्थम्। तत्र कोटिकर्णयोगे चन्द्रावस्थानाच्चन्द्रवृत्तं तन्मध्यत्वेन लिखितम्। कर्णमार्गेण शुक्लदर्शनाच्चन्द्रबिम्बे कर्णसूत्रानुरुद्धा पूर्वापरा तदनुरुद्धा दक्षिणोत्तरा च। शुक्लपक्षे चन्द्रपश्चिमभागेऽर्काभिमुखत्वेन शौक्ल्यात्पश्चिमस्थानात्कर्णरेखायां चन्द्रवृत्तान्तः श्वेतं दत्तम्।

त्तत्र चन्द्रमण्डले याम्योत्तरचिह्नावधिकवृत्तैकदेशरूपं धनुः शुक्लाग्रबिन्दुस्पृष्टं चन्द्राकृतिदर्शनार्थं कार्यम्। अतो बिन्दुत्रयस्पृग्वृत्तस्य केन्द्रज्ञानार्थं प्रागुक्तरीत्या बिन्दुत्रयेभ्यो मत्स्यौ प्रसाध्य तत्सूत्रयुतिः केन्द्रमस्माचापं तथैव भवतीति चन्द्राकृतिः प्रत्यक्षा ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

भा० टी०—अर्कसंज्ञक बिन्दु अंकित करके अपनी दिशाके अनुसार बाहुपरिमाणकी रेखा खेंचे। रेखाके अग्रभागमें पश्चिम मुखगामी कोटीके परिमाणसे रेखा खेंचे। कोटिके अग्रसे मध्यबिन्दुतककी रेखाही कर्ण होगी। जिस बिंदुमें कोटि और कर्ण लगा है तिसके चारों ओर बिम्बके अनुसार वृत्त खेंचे। कर्णसूत्र जिस दिशामें हो, वह दिशाही पूर्व समझले। जहां बिम्बवृत्त और कर्णरेखाका संयोग है, उस स्थानसे बिम्बमध्याभिमुखमें कर्णरेखाके ऊपर शुक्लपरिमित दूरपर बिंदुस्थापन करे। वह बिंदु और बिम्बोत्तर बिंदु और वह बिंदु और बिंब दक्षिण बिंदुमध्यमें दो मत्स्य बनाकर तिनके मुख व पूछमे निकली हुई रेखाके संयोगको केंद्रकरता हुआ त्रिबिन्दु स्पृक्धनुरचना करो। पूर्वकालमें चन्द्रबिंब जैसाही उस दिन वैसाही चंद्रमा दिखाई देगा ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

ननु यदर्थमयमुद्योगस्तस्याः शृङ्गोन्नतेर्ज्ञानं नोक्तमत आह—

कोट्या दिक्साधनात्तिर्यक्सूत्रान्ते शृङ्गमुन्नतम् ॥
दर्शयेदुन्नतां कोटिं कृत्वा चन्द्रस्य सा कृतिः ॥ १४ ॥

कोट्या कोटिरेखया चन्द्रवृत्ते कर्णरेखावद्दिक्साधनात्परिलेखे शुक्लधनुषः कोटिमग्रभागात्मिकमुन्नतामुच्चां कृत्वा दृष्ट्वा। तिर्यक्सूत्रान्ते दक्षिणोत्तररेखाया अन्ते अवसाने। उन्नतमुच्चं शृङ्गं दर्शयेत्। सा परिलेखसिद्धा। आकृतिः स्वरूपम्। चन्द्रस्य आकाशस्थचन्द्रस्य भवति परिलेखसिद्धरूपमाकाशस्थचन्द्रप्रत्यक्षमित्यर्थः। अत्रोपपत्तिः। यथा चन्द्रवृत्ते कर्णरेखया चन्द्रदिशस्तथा कोटिरेखया चन्द्रवृत्ते सूर्यदिशस्तयोरन्तरं भुजचन्द्रवृत्तपरिणतः। अथ चन्द्रदक्षिणोत्तरयोर्धनुष्यकोट्योः संलग्नत्वात्सूर्यदक्षिणोत्तराभ्यां कोटिरूपशृङ्गेण नतोन्नते भवतस्तत्र भुजदिक्कं शृङ्गं नतम्। तदितरदिक्कं शृङ्गमुन्नतम्। अतएव भास्कराचार्यैरुक्तम् 'स्यात्तुङ्गशृंगं वलनान्यदिक्स्थम्' इति ॥ १४ ॥

भा० टी०-कोटिमे दिक्साधन करके दक्षिणोत्तर तिर्यकसूत्रके शेषभागमें चन्द्रमाका ऊंचा शृंग दिखावै। सोही आकाशके चन्द्रमाका आकार है ॥ १४ ॥

ननु सूर्योनचन्द्रस्य षड्भादिकत्व उक्तप्रकारेण चंद्रबिम्बाग्र्यधिकं शुक्लमायाति तत्कथं युक्तं व्याघातादित्यतस्तदुत्तरं विशेषं चाह-

कृष्णे षड्भयुतं सूर्यं विशोध्येन्दोस्तथासितम् ॥
दद्याद्वामं भुजं तत्र पश्चिमं मण्डलं विधोः ॥ १५ ॥

कृष्णपक्षे षड्राशिभिः सहितमर्कं चन्द्राद्विशोध्य। तथा लिप्ता नवशतभक्ता इति पूर्वप्रकारेण असितं श्याममानेयम्। तथा च पूर्वोक्तं शुक्लानयनं शुक्लपक्ष एव चन्द्रशौक्ल्यवृद्धिज्ञानार्थम्। कृष्णपक्षे तु शौक्ल्यह्रासात्कृष्णतावृद्धेः कृष्णानयनं युक्तं न शुक्लानयनम्। अतएव दर्शान्तमासस्य शुक्लकृष्णौ द्वौ पक्षाविति भावः। अथ कृष्णपरिलेखार्थं पूर्वोक्ते विशेषमाह-दद्यादिति। तत्र कृष्णपरिलेखविषये वाम विपरीतं भुजं प्रागुक्तं दद्यात्। अर्कचिह्नादुत्तरं भुजं दक्षिणतो दक्षिणं भुजमुत्तरतो गणको दद्यात्। चन्द्रस्य मण्डलं पश्चिमं दर्शयेत्। यथा शुक्लपक्षे चन्द्रमण्डलस्य पश्चिमभागे शौक्ल्यं तथा कृष्णपक्षे चन्द्रमण्डलस्य पश्चिमभागे कृष्णाभिवृद्धिं दर्शयेदित्यर्थः। अत्रोपपत्तिः। कृष्णपक्षारम्भे सूर्यचन्द्रयोः षड्राश्यन्तरम्। ततः षड्राशिपर्यन्तं कृष्णाभिवृद्धिः। अतः षड्राशियुतसूर्येण वर्जितचन्द्रात्पूर्वप्रकारेण कृष्णानयनं युक्तम्। अथ शुक्लशृङ्गं यत्र नतं तत्र कृष्णशृंगमुन्नतं यत्र चोन्नतं तत्र नतम्। अतः कृष्णपरिलेखार्थं भुजो विपरीतो देयः। तदपि कृष्णं पश्चिमभागादेवाभिवृद्धम्। अतः कर्णरेखायां चन्द्रबिम्बान्तः पश्चिमस्थानाद्देयम्। ततः प्राग्वत्कृष्णशृङ्गोन्नतिरिति ॥ १५ ॥

भा० टी०-कृष्णपक्षमें चन्द्रस्पष्टमे ६ राशियुक्त सूर्य अलग करके शुक्लकी नाईं असित निर्णय करे राहुकी दिशाको बदलकर चंद्रमण्डलकी पश्चिम ओर असित दिखावे ॥ १५ ॥

अथाग्रिमग्रन्थस्यासंगतित्वनिरासार्थमधिकारसमाप्तिं फक्किकयाह-चन्द्रार्कयोस्तयोः शृङ्गोन्नतिविषयत्वेनोक्तत्वदस्यामेवान्तर्भावो न स्वतन्त्राधिकार-

वमन्यथा ग्रहोदयास्ताधिकारे तदुक्त्यापत्तेः । एतेन चन्द्रोदयास्तयोः पौर्णमास्यधिकारत्वं पर्वतोक्त निरस्तम् । तत्संज्ञायां प्रमाणाभावादन्यथा-मावास्याधिकारत्वस्यैव सुवचत्वापत्तेरितिध्येयम् ॥ रंगनाथेन रचिते सूर्यसिद्धांतटिप्पणे ॥ शृङ्गोन्नत्यधिकारोऽयं पूर्णो गूढप्रकाशके ॥ इति श्रीसकलगणकसार्वभौमबल्लालदैवज्ञात्मजरंगनाथगणकविरचिते गूढार्थप्रका-शके शृङ्गोन्नत्यधिकारः संपूर्णः ॥ १० ॥

इति शृङ्गोन्नत्यधिकारः ॥ दशवां अध्याय समाप्त ।

एकादशोऽध्यायः ।

अथ पाताध्यायो व्याख्यायते । तत्र भेदद्वयात्मकपातस्य सम्भवं विवक्षुः प्रथमं वैधृतसंज्ञापातस्य सम्भवमाह—

एकायनगतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा ॥
तद्युतौ मण्डले क्रान्त्योस्तुल्यत्वे वैधृताभिधः ॥ १ ॥

सूर्यचन्द्रौ ॥ "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्" इतिश्रुत्युक्त-प्रयोगः । एकायनगतौ । अभिन्नदक्षिणोत्तरान्यतरायनस्थौ भवतस्तत्र यदा यस्मिन् काले तद्युतौ सूर्यचन्द्रयोर्भाग्योर्योगे मण्डले द्वादशराशिमिते सति तदा तयोः क्रान्त्योः समत्वे महापातरूपे वैधृतसंज्ञः पातो भवति ॥ १ ॥

भा० टी०—सूर्य और चन्द्रमा जब एक अयनमें होते हैं और दोनोंका स्पष्ट योग १२ राशिके प्रमाणका होता है और क्रान्तिकी समता होती है, तब वैधृतिपात होता है ॥ १ ॥

अथ व्यतीपातसंज्ञपातस्य सम्भवमाह—

वीपरीतायनगतौ चन्द्रार्कौ क्रान्तिलिप्तिकाः ॥
समास्तद्वा व्यतीपातो भगणार्धे तयोर्युतौ ॥ २ ॥

चन्द्रार्कौ विपरीतायनगतौ भिन्नायनस्थौ भवतस्तत्र यदा तयोः सूर्य-चन्द्रयोर्भाग्योर्योगे भगणार्धे राशिषट्के सति तयोः क्रान्तिकलास्तुल्या भवन्ति तदा तस्मिन् काले व्यतीपातसंज्ञकः पातो भवति । अत्रोपपत्तिः ।

समक्रान्तिकालो महापातकालः । तत्र स्पष्टक्रान्त्योरतिवैलक्षण्योपचयापचययोर्नियमाभावाच्च समकालो दुर्लक्ष्य इति मध्यमक्रान्त्योः समत्वकालात्पूर्वमपरत्र वा शरवशेन शरसंस्कृतक्रान्तिसमत्वं भवतीति निश्चित्यवस्तुभूततत्कालज्ञानार्थंप्रथमं तदासन्नकालस्थमध्यमक्रांतितुल्यस्य ज्ञानमावश्यकं तच्च सूर्यचन्द्रयोः क्रांतिसमत्वं भुजतुल्यत्वे सम्भवति भुजोत्पन्नत्वात् । भुजसमत्वं सूर्यचन्द्रयोः षड्राशिमितियोगे द्वादशराशिमितयोगे वा षड्राशिमितान्तरेऽन्तराभावे वा कुत एवमितिचेच्छृणु । तत्रान्तराभावे द्वयोस्तुल्यत्वेन भुजसाम्ये विवादाभावः । एवं षड्भान्तरेऽपीतरयोर्विषमपदस्थयोः समपदस्थयोर्वा क्रमेण पदगतैष्ययोस्तुल्ययोर्भुजत्वमित्यविवादः। षड्द्वादशराशियोगे तु तयोर्विषमसमपदस्थत्वात् क्रमेण तुल्यगतैष्यत्वेन भुजतुल्यत्वम् । रविगोलायनसन्धिस्थयोस्तु क्रांतिपरमभावत्व इति तत्रापि तदन्तरयोगयोः षड्द्वादशराश्योर्यथायोग्यसत्त्वात्क्रांतिसाम्यं महजत एव । अत एकायनस्थयोर्भिन्नगोलस्थयोर्द्वादशराशियोग एकगोलायनस्थयोरन्तराभावे क्रांतिसाम्यम् । एवं भिन्नायनस्थयोरेकगोलस्थयोः षड्राशियोगे गोलभेदस्थयोः षड्राश्यन्तरे क्रांतिसाम्यमिति युतावित्युपलक्षणादन्तर इत्यपि ज्ञेयम् । नतु तद्युतौ मण्डले भगणार्धे तयोर्युतावित्युक्तेन क्रमेण गोलभेदैक्ययोरन्तरनिरासार्थकोक्तिस्तत्रापि क्रांतिसाम्यत्वेनानिवार्यत्वात् । अत्रैकायनगताविति विपरीतायनगताविति च स्वरूपोक्तिरनावश्यकीति ध्येयम् । वस्तुतस्तु सूर्यचन्द्रयोर्द्वादशमिते योगेऽन्तरे वा वैधृताख्यक्रांतिसाम्यम् । षड्राशिमिते तयोर्योगेऽन्तरे वा व्यतीपाताख्यं क्रांतिसाम्यमिति तात्पर्योक्तिः । अत एवाग्रे भास्करेन्द्वोरित्याद्युक्तं युक्तमिति तत्त्वम् ॥ २ ॥

भा॰टी॰-विपरीत अयनमें गईहुई चन्द्रमा और सूर्यकी क्रांतिकला समान होनेपर और तिनका स्पष्ट योग ६ राशिके प्रमाणका होनेपर व्यतीपात पात होता है ॥२॥

ननु क्रांत्योः साम्ये कथं पातो भवतीत्यत आह—

तुल्यांशुजालसंपर्कात्तयोस्तु प्रवहावृतः
तद्दृक्क्रोधभवो वह्निर्लोकाभावाय जायते ॥ ३ ॥

तयोश्चन्द्रसूर्ययोः । तुकारात्क्रांतिसाम्यकालिकयोः तुल्यांशुजालसम्पर्कात्समकिरणानां जालं समूहस्तयोरन्योन्याभिमुखयोः सम्पर्कात् । एकीभावापन्नत्वात् । तादृक्क्रोधभवः सूर्यचन्द्रयोरन्योन्याभिमुखयोर्दृक्क्रोधो बिम्बकेन्द्रयोर्दृग्रूपयोः क्रोधः परस्पराभिमुखेन दीप्त्याधिक्यं तदुत्पन्नोऽग्निः प्रवहावृतः प्रवहवायुप्रज्वलितः। लोकाभावाय जनानामशुभफलाय जायते॥ ३॥

भा० टी०-दोनोंकी किरणों मिलनेसे दृग्रूप क्रोधसे उत्पन्न अग्नि प्रवह वायुद्वारा प्रज्वलित होकर मनुष्योंको अशुभ फल देता है ॥ ३ ॥

अथायं वह्निर्व्यतीपाताख्यो वैधृताख्यो वेत्यत आह-

विनाशयति पातोऽस्मिँल्लोकानामसकृद्यतः ॥
व्यतीपातः प्रसिद्धोऽयं संज्ञाभेदेन वैधृतिः ॥ ४ ॥

अस्मिन्क्रांतिसाम्यकाले । प्रसिद्धः पूर्वश्लोकोक्तस्वरूपः । पातो वह्निः । यतः कारणात् । असकृत्स्वसम्भवेन वारंवारम् । लोकानां विनाशयति नाशं करोति । अतः कारणादयं वह्निर्व्यतीपातसंज्ञोऽयमेवाग्निः संज्ञाभेदेन नामान्तरेण वैधृतिसंज्ञः तथा चोभयत्र पाताख्यो वह्निर्भवतीति भावः ॥ ४ ॥

भा० टी०-क्रान्ति साम्यकालमें सदा पातवह्नि (अग्नि) लोगोंका नाश करती है इस कारण तिसको व्यतीपात कहते हैं, अथवा वैधृति संज्ञा होती है ॥ ४ ॥

अथ तत्स्वरूपमाह-

स कृष्णो दारुणवपुर्लोहिताक्षो महोदरः ॥
सर्वानिष्टकरो रौद्रो भूयोभूयः प्रजायते ॥ ५ ॥

स क्रांतिसाम्यकालोत्पन्न उभयसंज्ञकः पाताख्योऽग्निपुरुषः कृष्णः श्यामः । दारुणवपुः कठिनशरीरः लोहिताक्षः आरक्तनेत्रः । महोदरः पृथूदरः । अतएव सर्वानिष्टकरः सर्वलोकानामशुभकारकः । रौद्रः क्षयकारकः । भूयोभूयोऽनेकवारम् । प्रजायते प्रत्येकं क्रांतिसाम्यकालः उत्पन्नो भवतीत्यर्थः ॥ ५ ॥

भा० टी०-पीत, कृष्णवर्ण, कठिन शरीर, लाल नेत्र महोदर, सब लोगोंका अशुभ करनेवाला, क्षयकारी और अनेकवार होता है ॥ ५ ॥

अथ स्पष्टकालज्ञानं विवक्षुः प्रथमं तादृशयोः सूर्यचन्द्रयोः सायनांशयोः क्रांतिसाध्ये इत्याह-

भास्करेन्द्वोर्भचक्रान्तश्चाक्राधावधिसंस्थयोः ॥
दृक्तुल्यसाधितांशादियुक्तयोः स्वावपक्रमौ ॥ ६ ॥

सूर्यचन्द्रयोर्दृक्तुल्यसाधितांशादियुक्तयोः ' प्राक्चक्रं चलितं हीने छायार्कात्करणागते ' इत्यादिना दृग्गोचरीभूतं साधितमंशादिकं तेन संस्कृतयोरित्यर्थः । एतेन पूर्वसाधारणोक्तिरपि स्पष्टीकृता क्रांत्योः सायनोत्पन्नत्वात् । भचक्रान्तर्भचक्रं द्वादशराशयस्तन्मध्ये संस्थयोः स्थितयो ययोर्योगो द्वादशराशयस्तयोरित्यर्थः । चक्रार्धावधिसंस्थयोः । चक्रार्धं राशिषट्कं तदवधि तदन्तः स्थितयोर्ययोर्योगो राशिषट्कं तयोरित्यर्थः । स्वौ स्वकीयौ । अपक्रमौ साध्यौ । सूर्यस्य क्रांतिः साध्या चंद्रस्य विक्षेपसंस्कृता क्रांतिः साध्येत्यर्थः ॥ ६ ॥

भा० टी०--दृक् तुल्य साधित अंशादि--संस्कृत (अयनांश--संस्कृत) चंद्र सूर्यका स्पष्ट योग जिस समयमें १२ में या ६ राशिके निकट होगा, तिस समयके अपक्रम (क्रांति) को निर्णय करना चाहिये ॥ ६ ॥

अथ साधितक्रांतिभ्यां स्वकालात्स्पष्टपातकालस्य गतैष्यत्वं विशेषं च श्लोकाभ्यामाह-

अथौजपदगस्येन्दोः क्रान्तिर्विक्षेपसंस्कृता ॥
यदि स्यादधिका भानोः क्रान्तेः पातो गतस्तदा ॥ ७ ॥
ऊना चेत्स्यात्तदा भावी वामं युग्मपदस्य च ॥
पदान्यत्वं विधोः क्रान्तिर्विक्षेपाच्चेद्विशुद्ध्यति ॥ ८ ॥

अथ सूर्यचन्द्रयोः क्रांतिसाधनानन्तरम् । चन्द्रस्य विषमपदस्थस्य । विक्षेपसंस्कृता क्रांतिः । स्पष्टक्रांतिरित्यर्थः । यदि यर्हि । सूर्यस्य विषमसमान्यतरपदस्थस्य साधितक्रान्तेः सकाशादधिका स्यात् । तदा तर्हि । पात स्पष्टक्रान्तिसाम्यात्मकः । गतः । साधितक्रान्तिकालात्पूर्वकाले जात इत्यर्थः । चेद्यर्हि । सूर्यक्रांतेर्विषमपदस्थचन्द्रस्पष्टक्रान्तिर्न्युना भवति तदा तर्हि स्पष्ट-

कान्तिसाम्यरूपपातः । भावी । साधितक्रान्तिकलादुत्तरकाले भवतीत्यर्थः । ननु विषमपदे चन्द्रो न भवति तदा गतैष्यत्वज्ञानं कथं स्यादतआह— वाममिति । युग्मपदस्य । समपदस्यचन्द्रस्येत्यर्थः । चकारात्स्पष्टक्रान्तिः सूर्यक्रान्तेः सकाशादधिकोना वा स्यात्तर्हीनात्यर्थः । वामम् । उक्त गतै ष्यक्रमेण वैपरीत्यम् । एष्यगतत्वं पातस्य भवतीत्यर्थः अथ चन्द्रस्य विशेषमाह । पदान्यत्वमिति । चंद्रस्य स्पष्टक्रान्तिक्रियायाम् । चेद्यर्हि । चंद्रस्य विक्षेपसंस्कृतकेवलक्रांतिर्विक्षेपाद्भिन्नादिकाद्विशुध्यति हीना भवति । क्रांतिवर्जितविक्षेपरूपास्पष्टक्रान्तिर्यदि स्यात्तदेत्यर्थः । पदान्यत्वं राश्याचंद्राधिष्ठितपदभिन्नपदस्थत्वं चन्द्रस्य ज्ञेयम् । सायनराश्यादिना समपदस्थस्य चन्द्रस्य विषमपदस्थत्वम् । सायनराश्यादिना विषमपदस्थस्य चन्द्रस्य समपदस्थत्वं तत्पदसम्बंधात्स्पष्टा क्रांतिर्ज्ञेयेत्यर्थः । अत्रोपपत्तिः । विषमपदे क्रांतिरुपचिता समपदेऽपचिता । अतः सूर्यक्रांतेर्विषमपदस्थेंदुक्रान्तिरधिका तदाग्रे सुतरामधिकत्वाद्रविक्रान्त्युपचयस्याल्पत्वाच्च न्यूनया रविक्रात्या चंद्रक्रांते समत्वमग्रिमकाले न भवति । अतः पूर्वकाले चंद्रक्रान्तेर्न्यूनत्वाद्रविक्रांत्यपचयस्यान्यत्वाच्च तक्रांतिसाम्यं जातमित्यनुमितम् । एवं समपदस्थेन्दुक्रांतिरूना तदाग्रे सूर्यक्रान्तेर्न्यूना तदाग्रे सुरतां न्यूनत्वात्तत्साम्याभावः । पूर्वं त्वधिकत्वात्तत्समत्वं जातमिति ज्ञातम् । यदा तु सूर्यक्रांतेर्विषमपदस्थेंदुक्रान्त्यधिकत्वेन तत्क्रान्तिसाध्यं भवति पूर्वं तन्न्यूनत्वे तदभावात् । एवं सूर्यक्रांतेः समपदस्थेंदुक्रांतिरधिका तदाग्रे न्यूनत्वेन तत्साम्य भवति । अत एव तत्तुल्यत्वे वर्तमान इति । अत्र चंद्रस्य विक्षेपवृत्तं विषुवद्वृत्ते लग्नं यत्र तत्र स्पष्टक्रांतेरभावाद्गोलसंधिः । तस्मात् त्रिभांतरे विक्षेपवृत्तेऽयनसंधिः । स्पष्टक्रांतिस्तदंतराल उपचितापचितायनसंधिस्थक्रांत्यनधिका । यदा चन्द्रक्रांतिर्मध्यमा शरभिन्नदिका शरादल्पा तदा शराच्छोधनेन स्पष्टक्रांतिर्मध्यमक्रांतिसम्बंधपदभिन्नपदसंबंधा भवति । अतः "पदान्यत्वं विधोः क्रांतिर्विक्षेपाचेद्विशुध्यति" । इति सम्यगुक्तम् भास्कराचार्योक्तं च "चक्रे चक्रार्धे च व्ययनांशेऽर्कस्य गोलसंधि स्यात् । एवं

त्रिभे च नवभेऽयनसंधिर्व्ययनतभागेऽस्य ॥ अयनांशोनितपाताद्दोः कोटिज्ये लघुज्यकोत्थेये । ते गुणसूर्यैरश्वैर्गुणिते भक्ते कृतैः सूर्यैः अयनांशोनितपाते मृगकर्क्यादिस्थिते हि षड्रामैः । कोटिफलयुतविहीनैर्बाहुफलं भक्तमामांशैः ॥ मेषादिस्थे गोलायनसंधी भास्करस्योनौ । तौ चन्द्रस्य स्यातां तुलादिपट्कस्थिते तु संयुक्तौ ॥ गोलायनसंध्यन्तं पदं विधोरत्र धीमता ज्ञेयम् । रविगोल वदस्पष्टस्पष्टाक्रांतिः स्वगोलदिक्छशिनः ॥" इति पदज्ञानम् । अनेनैव प्रकारेण चंद्रस्पष्टक्रांतेः पदं ज्ञेयं विक्षेपवृत्तसम्बंधत्वात् । न साधारणपदज्ञानेन स्पष्टक्रांतेः क्रांतिवृत्तसंबंधाभावात् अन्यथा पदज्ञानासम्भवापत्तेः । एतदङ्गीकारे पदान्यत्वमित्याद्यर्धं व्यर्थमपि भगवता तदर्थेनैतादृशं पदं ज्ञापितमन्यथा तदनुक्त्यापत्तेरिति दिक् ॥ ७ ॥ ८ ॥

भा० टी० -ओजपदमें स्थित चंद्रमाकी विक्षेप-संस्कृत क्रांति रविक्रांतिसे अधिक होनेपर पात गत हुआ है । अल्प होनेपर भावी है । युग्मपदमें तिससे विपरीत है । जो विक्षेपसे क्रांति अलग करनी हो चन्द्रमा और पदको प्राप्त करता है॥७·८

अथ गतैष्यकालानयनं विवक्षुः प्रथमं स्पष्टक्रांतिसाम्यानयनप्रकारं श्लोकत्रयेणाह—

क्रान्त्योर्ज्ये त्रिज्यया भिन्ने परक्रान्तिज्ययोद्धृते ॥
तच्चापान्तरमर्धं वा योज्यं भाविनि शीतगौ ॥ ९ ॥
शोध्यं चन्द्राद्गते पाते तत्सूर्यगतिताडितम् ॥
चन्द्रभुक्त्याहृतं भानौ लिप्तादि शशिवत्फलम् ॥ १० ॥
तद्वच्छशाङ्कपातस्य फलं देयं विपर्ययात् ॥
कर्मैतदसकृत्तावद्यावत्क्रान्ती समे तयोः ॥ ११ ॥

सूर्यचन्द्रयोः साधितक्रांत्योर्ज्ये कार्ये ते त्रिज्यया गुणिते । परक्रांतिज्यया परमा परमज्या तु सप्तरंध्रगुणेंदवः इति पूर्वोक्तपरमक्रांतिज्ययेत्यर्थः । भक्ते । तयोः फलयोर्धनुषी कार्ये । चंद्रस्य यदा त्रिज्याधिकं फलं तदोक्तप्रकारेणाधनुषोऽसंभवात्त्रिज्यया नवत्यंशास्तदेष्टज्यया कइत्यनुपातेन धनुः कार्यम् अथवा त्रिज्यातो यदधिकं तदुक्तक्रमधनुषा युक्ताश्चतुःपञ्चा-

शच्छतकला धनुः स्यादिति ध्येयम् । तयोरन्तरमर्धम् अन्तरार्धम् । वा विकल्पार्थकः । अथवा विषयव्यवस्थार्थकः । सा तु यदान्तरमल्पं तदान्तरम् । यदा तु बह्वन्तरं तदान्तरार्धं ग्राह्यमिति । भाविनि भविष्यत्पाते । चन्द्रे राश्यात्मके । तत्कलात्मकं युक्तं कार्यम् । गते पाते सति चन्द्राद्धीनं कार्यं चन्द्रः स्यात् । सूर्यसाधनमाह—तदिति । चन्द्रसम्बन्धिसंस्कृतफलम् । स्पष्टसूर्यगत्या गुणितं स्पष्टचन्द्रगत्या भक्तं फलं कलादिकं चन्द्रवत् । चन्द्रयुतहीनक्रमेण सूर्ये युतहीनं कार्यं सूर्यः स्यात् । चन्द्रपातसाधनमाह—तद्वदिति । चन्द्रपातस्य फलं कलादिकम् । तद्वत् । चन्द्रफलं पातगत्या गुणितं स्पष्टचन्द्रगत्या भक्तं विपर्ययात् व्यत्यासात् । देयं संस्कार्यम् । चन्द्रयुतहीनक्रमेण चन्द्रपाते हीनयुतं कार्यम् । चन्द्रपातः स्यात् । उक्तक्रियातिदेशमाह—कर्मेति । एतत् उक्तं कर्म गणितक्रियारूपम् । असकृत् अनेकवारम् । साधितसूर्यात् । सूर्यक्रान्तिं प्रसाध्य साधितचन्द्रपाताभ्यां चन्द्रस्पष्टक्रान्तिं प्रसाध्य ताभ्यां क्रान्तिभ्यां क्रान्त्योर्ज्य इत्यादिना चापान्तरं तदर्धं वा तत्क्रान्तिभ्यामवगतगतैष्यपातलक्षणवशात् द्वितीयचन्द्रे हीनयुतं तृतीयचन्द्रः स्यात् । आद्यसूर्यचन्द्रगतिभ्यामवगतसूर्यपातफलं द्वितीयसूर्यपातयोर्यथोक्तं संस्कृतं तृतीयसूर्यपातौ । एभ्यः सूर्यचन्द्रपातेभ्यः सूर्यचन्द्रक्रांतिभ्यां साधिताभ्यां चापान्तरं तदर्धं वा तृतीयचन्द्रे तत्क्रान्त्यवगतगतैष्यपातवशात्संस्कृतं चतुर्थचन्द्रः स्यात् । आद्यसूर्यचन्द्रगत्यवगतस्वफलं संस्कृतौ तृतीयसूर्यपातौ चतुर्थसूर्यपातौ स्तः एवमेभ्यः पंचमाश्चन्द्रसूर्य पाता उक्तरीत्या साध्या इत्युत्तरोत्तरं मुहुः साध्या इत्यर्थः । अवधिमाह—तावदिति यावद्यदवधि तयोः सूर्यचन्द्रयोः क्रान्ती स्पष्टक्रान्तितुल्ये स्तस्तावत्तदवधिक्रिया व वत्यर्थः । अत्रोपपत्तिः । मध्यमक्रान्तिसाम्यरूपपातकालिकस्पष्टक्रान्तिभ्यां स्पष्टक्रांन्तिसाम्यरूपं वस्तुभूतपातकालो गतैष्यत्वेन ज्ञातोऽपि विशेषतस्तत्कालज्ञानार्थं सूर्यचन्द्रयोः क्रान्तीसमे स्पष्टे उपपन्ने कार्ये । तत्र मध्यपातकालाद्गतैष्यपातवशादभीष्टकाले चन्द्रसूर्यपातान्प्रसाध्य तयोः क्रान्ती साध्ये । एवं साधितक्रान्त्योर्यदैवातुल्यत्वं तदैव

स्पष्टपातः । अथानियमात्प्रथमं पूर्वाग्रिमकाले चन्द्रसाधनार्थं चन्द्रस्येष्टांशाहीना योज्याश्चेति नियता भागा उक्तप्रकारानीता एवेष्टाः कल्पिताः । तथाहि । सूर्यक्रान्तिज्यातः परक्रांतिज्यया न्यूनया चतुर्दशशतमितया त्रिज्यातुल्या दोर्ज्या तदिष्टक्रांतिज्यायाः क्रेत्यभीष्टदोर्ज्यायाश्चापं सायनसूर्यभुज एव। एवं चंद्रस्पष्टाक्रांतिज्यातश्चापं सायनसूर्यभुजान्न्यूनमधिकं भवति । क्रांतिसमत्वाभावात् । यद्यपि न्यूनचतुर्दशशताधिकस्पष्टक्रांतिरुक्तरीत्या भुजज्यायास्त्रिज्याधिकत्वेन चापाकरणमशक्यं तथापि "त्रिज्याधिकस्य क्रमचापलिप्ताः खखाब्धिबाणा धनुरुत्क्रमात्स्यात्" इति सिद्धान्तशिरोमण्युक्तवैपरीत्येन त्रिज्यातो यदधिकं तदुत्क्रमचापयुक्ताश्चतुःपञ्चाशच्छतकलाइत्यनेन चापोत्पत्तौ न क्षतिः । एतेन चापासम्भवशङ्कया सार्धाष्टविंशत्यंशानां ज्यापरमक्रांतिज्येति । स्वायनसन्धिस्थस्पष्टक्रांतिज्या चेति च निरस्तम् । ग्रन्थे ययोः परमक्रांतिज्यात्वानुक्तेः । स्पष्टक्रान्तिसाम्यानन्तरमप्युक्तरीत्या कर्मान्तरनिवारणानुपपत्तेश्च । क्रान्त्योस्तुल्यत्वेऽपि हरभेदात्तच्चापान्तरसद्भावेन क्रियाकुण्ठनासम्भवात् । नह्यसंकृत्कर्माणि स्वाभीष्टसिद्ध्यनन्तरं कर्मांतरं सम्भवति । अप्रसिद्धेः स्वरूपव्याघाताच्च । तच्चापयोरन्तरमिष्टांशाश्चन्द्रस्य गतैष्यपातवशाद्धीनयुता अभीष्टचन्द्रो भवति । तदिष्टांशानां बहुत्वे बहुपरिवर्तैरभीष्टसिद्धिरतोऽल्पपरिवर्तैरभीष्टसिद्ध्यर्थं तदर्धमिष्टांशा इति । अथैते चन्द्रस्येष्टांशा इत्यभ्यश्चन्द्रगतिप्रमाणेनैते तदा सूर्यपातगतिभ्यां क इत्यनुपातेन तयोश्चन्द्रकालिकत्वसिद्ध्यर्थमिष्टांशा एते सूर्यस्य संस्कृताश्चन्द्रवदभीष्टसूर्यो भवति । पातस्य तु चक्रशुद्धत्वेन विपरीतत्वात्पातेष्टांशाः पातस्य व्यस्तं संस्कार्या अभीष्टपातो भवति । एभ्यः सूर्यचन्द्रयोः स्पष्टक्रांती साध्ये । तयोरसमत्व उक्तरीत्या चंद्र स्येष्टांशा एतत्साधितचंद्रे संस्कार्याः । न प्रथमचन्द्रे । तत्क्रान्तिजत्वाभावात् । अन्यथा समक्रान्त्यनन्तरमपि तयोरिष्टांशाभावे प्रथमचन्द्रसूर्यपातानां तत्संस्कृतेऽप्यविकारात्तत्क्रांत्योर्द्वितीयपरिवर्तक्रान्तिसमत्वेन कर्मान्तरसम्भवात् क्रियाकुण्ठनत्वानुपपत्तेः । अव्यवहितपूर्वग्रहयोजने त्वन्यकर्मण एव सिद्धेः । कर्मान्तरासम्भवाच्च । सूर्यपातयो-

गैरिष्टांशास्तु पूर्वचन्द्रसूर्यस्पष्टगतिभ्यामेव स्वल्पान्तरात्कार्याः । अव्यवहित-पूर्वकाले स्पष्टगत्यज्ञानात् । एवमसकृत्करणेन क्रान्त्योः साम्यमुत्तरोत्तरपरि-वर्तान्तरे भवत्येवेत्युपपन्नं क्रान्त्योर्ज्येत्यादिश्लोकत्रयम् ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

भा०टी०-दोनोंकी क्रान्तिज्या, त्रिज्यासे गुणकरके परमक्रान्तिज्यासे भाग कर-नेपर जो दो ज्या हों तिनके धनका अन्तर तिससे आधागत भावी होनेपर चंद्रमामें योगकरे । पातगत होनेपर सो चन्द्रमासे वियोगकरे । ऊपर कहा हुआ फल सूर्यग-तिसे भागकरके जो होगा तिसको चन्द्रमाकी नाई सूर्यमें संस्कार करे सूर्यकी रीतिके अनुसार पातस्पष्टमें विपरीतरूपसे संस्कार करे । इस प्रकार संस्कार क्रान्ति की समता न होनेतक असकृत् साधन करे ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ क्रान्तिसाम्यं पात इति स्पष्टं कथयंस्तत्कालज्ञानार्थं साधितक्रा-न्तिसाम्यसम्बन्धिचन्द्रासन्नार्धरात्रात्पातकालय गतगम्यत्वमाह-

क्रान्त्योः समत्वे पातोऽथ प्रक्षिप्तांशोनिते विधौ ॥
हीनेऽर्धरात्रिकाद्यातो भावी तत्कालिकेऽधिके ॥ १२ ॥

सूर्यचन्द्रयोः स्पष्टक्रान्त्योः साम्ये स्पष्टः पातः स्यात् । अथानन्त-रम् । स्पष्टपातसम्बन्धी साधितचन्द्रः पूर्वानुसन्धानेनापाततो यद्द्वितीयो भवति तदासन्नार्धरात्रकाल स्पष्टचन्द्रो मध्यस्पष्टाधिकरोक्तप्रकारेण साध्यः । तस्मादर्धरात्रकालिकाच्चन्द्रात्प्रक्षिप्तांशोनिते क्रान्तिचापान्तरेण तदर्धेन वा युतोनिते चन्द्रे स्पष्टक्रान्तिसाम्यसम्बद्धसाधितचन्द्रे न्यूने सति तदर्धरात्रका-लात्पातकालो गतः । तात्कालिके क्रांतिसाम्यकालिकसाधितचन्द्रेऽर्धरात्र-कालिकचन्द्राद्धिके सति तदर्धरात्रकालात्पातकाल एष्य इत्यर्थः । अत्रो-पपत्तिः । यद्यपि स्पष्टक्रांन्तिसाम्यसम्बद्धचन्द्रमध्यक्रांतिसाम्यकालिकच-न्द्राभ्यां वक्ष्यमाणप्रकारेण पातकालस्य मध्यक्रांतिसाम्यकालाद्गतैष्यघट्या-दिज्ञानं भवतीति निकटार्धरात्रिकचन्द्रात्सत्साधनं पुनस्तद्गतैष्यकथनं च गौर-वम् । आर्धरात्रिकस्पष्टचन्द्रसाधनक्रियाधिक्यात् । तथापि चन्द्रगतेरति-महत्त्वेन प्रतिक्षणं गतेर्बह्वन्तरेणान्यादृशत्वाद्बहुकालान्तरे बहुकालान्तरि-तस्पष्टगत्यानीतघट्यात्मकस्यातिस्थूलत्वादासन्नकाले स्वल्पान्तराच्चासन्नार्ध-रात्रिकः स्पष्टचन्द्रो ग्रंथोक्तः स स्पष्टगतिकोऽवश्यमपेक्षितः । अतस्तस्माच्च-

न्द्रात्स्पष्टक्रांतिसाम्यसम्बद्धचन्द्रस्य न्यूनाधिकत्वे क्रमेण तदर्धरात्रात्स्पष्टपातो गतैष्य इति सम्यगुक्तम् । अतएव " समीपतिथ्यन्तसमीपचालनं विधोस्तु तत्कालजयैव युज्यते " इति भास्कराचार्योक्तं संगच्छते ॥ १२ ॥

भा० टी०-सूर्य और चन्द्रपाके क्रांतियोंकी समताही पात है प्रक्षिप्तांश संस्कृत चन्द्र मध्यरात्रिक चन्द्रसे हीन होनेपर मध्यरात्रमें पातगत और तिस कालका चन्द्रमा अधिक होनेसे पातभावी होता है ॥ १२ ॥

अथ स्पष्टपातकालज्ञानमाह--

स्थिरीकृतार्धरात्रेन्द्वोर्द्वयोर्विवरलिप्तिकाः ॥
षष्टिघ्नाश्चन्द्रभुक्त्याप्ताः पातकालस्य नाडिकाः ॥ १३ ॥

स्थिरीकृतार्धरात्रेन्द्वोः स्पष्टक्रांतिसाम्यसम्बद्धसाधिता सकृत्क्रिया नियतचन्द्रस्तदासन्नार्धरात्रिकस्पष्टचन्द्रः । तयोरुभयोः । अत्र द्वयोरिति पूर्वपदार्थव्यक्तीकरणाय अन्यथैकवचनप्रमादाद्याकुलतापत्तेः । अन्तरकलाः षष्ट्या गुणिता अर्धरात्रिकचन्द्रस्पष्टकलात्मकगत्या भक्ताः फलम् । पातकालस्यार्ध रात्राद्गतैष्यस्पष्टक्रांतिसाम्यस्य घटिका भवंति । अर्धरात्राद्गतैष्यक्रमेण फलघटीभिः पूर्वमुत्तरत्र स्पष्टक्रांतिसाम्यरूपपातः स्यादित्यर्थः । अत्रोपपत्तिः । चन्द्रस्पष्टगत्या षष्टिसावनघटिकास्तदा स्वाभीष्टार्धरात्रकालिकक्रांतिसाम्यकालिकस्पष्टचन्द्रयोरंतरकलाभिः का इत्युपपन्नमुक्तम् । साधितसूर्यस्य प्राथमिकचन्द्रगतिग्रहणेन स्थूलत्वादर्धरात्रिकस्पष्टसूर्याद्युक्तरीत्या पातकालानयनं स्थूलं नोक्तमिति ध्येयम् ॥ १३ ॥

भा० टी०-क्रांतिसाम्यगत चन्द्रमा और मध्यरात्र चन्द्रमाकी अन्तरकला ६० से गुणकरके चन्द्रभुक्तिद्वारा भागकरनेपर मध्यरात्रसे पातालके स्पष्टका अन्तर होगा ॥ १३ ॥

रवीन्दुमानयोगार्धं षष्ट्या संगुण्य भाजयेत् ॥
तयोर्भुक्त्यन्तरेणाप्तं स्थित्यर्द्धं नाडिकादि तत् ॥ १४ ॥

सूर्यचन्द्रयोश्चन्द्रग्रहणाधिकारोक्तप्रकारेण ये बिम्बमानकले । स्वस्वगतिकलोत्पन्ने तयोरैक्यस्यार्धं षष्ट्या गुणयित्वा सूर्यचन्द्रयोः कलात्मकस्पष्टगत्योरन्तरेण भजेत् । यल्लब्धं तद्घटिकादिकं स्थित्यर्धं पातकालात्पूर्व-

मपरत्र च स्थित्यर्धकालपर्यन्तं पातस्यावस्थानमित्यर्थः। अत्रोपपत्तिः। सूर्यचन्द्रविम्बकेंद्रयोरेकद्युरात्रवृत्तस्थत्वे विषुवद्वृत्तादुभयतस्तुल्यान्तरत्वे वा पातमध्यं केंद्रसाम्याद्विषुवद्वृत्तात्क्रान्तिसूत्रस्थो मण्डलपरिधिप्रदेशो य आसन्नः स विम्बपृष्ठप्रान्तः। दूरस्थस्तु विम्बाग्रप्रांतः याम्योत्तरगमनेन पातस्योक्तेः। तत्र शीघ्रविम्बाग्रप्रान्तमन्दपृष्ठविंबप्रांतयोस्तथात्वे पातारम्भः। सूर्यविम्बाग्रप्रांतचन्द्रविम्बपृष्ठप्रांतयोस्तथात्वे पातान्तः। अत आद्यंतकालाभ्यां क्रमेण पूर्वोत्तरकालयोश्चन्द्रार्कविम्बांतर्गतप्रदेशानां केषामप्युक्तरूपस्थितित्वाभावेन सूर्यचन्द्रयोस्तथाभावात्पाताभाव इत्यादिकालमारभ्यांतकालपर्यंतं सूर्यचन्द्रयोस्तथात्वात्पातस्थितिः पातमध्यकाले क्रान्त्यन्तराभावः पाद्यन्तकालयोर्मानैक्यार्धतुल्यं क्रांत्यन्तरम्। तेन तत्तुल्यांतरस्यापचयकाल उपचयकालश्चाद्यंतस्थित्यर्धे। तत्र तत्कालानयनं सूर्यचन्द्रगत्यन्तरेण षष्टिघटिकास्तदा मानैक्यखण्डकलाभिः का इत्यनुपातेनोक्तमुपपन्नम्। यद्यपि प्रमाणेच्छयोः समजातित्वाभावादनुपातोऽसंगतः क्रांतेर्दक्षिणोत्तरांतरस्योपचयापचययोः सूर्यचन्द्रगत्यन्तरस्य पूर्वपरांतरस्योपचयापचयाभ्यामतिविलक्षणत्वात्। तथापि गणितलाघवार्थं भगवता स्वल्पांतरत्वेनानुपातो लोकानुकम्पयांगीकृत इत्यदोषः। भास्कराचार्यैस्तु—"मानैक्यार्धं गुणितं स्पष्टघटीभिर्विभक्तमाद्येन। लब्धघटीभिर्मध्यादादिः प्रागग्रतश्च पातान्तः॥" इति युक्तमुक्तम्। केचित्तु षष्टिघटिकाभिर्ग्रहान्प्रचाल्य क्रांतिः स्पष्टा साध्या। प्रत्येकं ययोरंतरं योगो वा गत्यन्तरमिति भास्कराभिमतमाहुः॥ १४॥

भा० टी०—सूर्य और चंद्रमाके मान योगार्द्धको ६० से गुणकरके तिसके भुक्त्यन्तरसे भाग करनेपर स्थित्यर्द्ध दण्ड होगा॥ १४॥

अथ पातस्यादिमध्यांतकालानाह—

पातकालः स्फुटो मध्यः सोऽपि स्थित्यर्धवर्जितः॥
तस्य सम्भवकालः स्यात्तत्संयुक्तोऽन्त्यसंज्ञितः॥ १५॥

स्थिरीकृतार्धरात्रेत्यादिना स्पष्टः पातकालः क्रांतिसाम्यस्य काल

आनीतो मध्यसञ्ज्ञो ज्ञेयः । स मध्यकाल आनीतस्थित्यर्धेन हीनस्तस्य पातस्य सम्भवकाल आरम्भकालः । अपिः समुच्चये । तत्संयुक्तः स्थित्यर्धयुक्तो मध्यकालोऽन्त्यसञ्ज्ञितः पातो भवति । पातस्यान्तकालो भवतीत्यर्थः । अत्रोपपत्तिश्चन्द्रग्रहणस्पर्शमोक्षवत्स्पष्टा । स्वरूपं तु प्राग्व्यक्तीकृतम् ॥ १५ ॥

भा० टी०—पातकालही मध्य है । तिससे स्थित्यर्द्ध वियोग करनेपर पातका सम्भवकाल और स्थित्यर्द्ध योग करनेसे अन्त्यकाल होता है ॥ १५ ॥

अथैतज्ज्ञानस्य प्रयोजनं किमित्यतः पातस्थितिकालो मंगलकृत्ये निषिद्ध इत्याह—

आद्यन्तकालयोर्मध्यः कालो ज्ञेयोऽतिदारुणः ॥
प्रज्वलज्ज्वलनाकारः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥ १६ ॥

पातस्यारम्भसमाप्तिसमययोरंतरालवर्ती समयः अत्यंत कठिनः । सर्वेषु मंगलकृत्येषु निंदितो ज्ञेयः । अत्र हेतुगर्भं विशेषणमाह—प्रज्वलज्ज्वलनाकार इति । देदीप्यमानाग्निस्वरूपः । तथाच कृप मंगलकृत्यं भष्मावशेषं स्यादिति भावः ॥ १६ ॥

भा० टी०—सम्भवकालसे अन्त्यतक काल अतिदारुण है, सो देदीप्यमान अग्निस्वरूप और समस्त शुभकर्मोंमें निंदित है ॥ १६ ॥

ननु पातस्य क्रांतिसाम्यत्वेन सूक्ष्मकालरूपत्वादागतमध्यकाल एव सूक्ष्मः शुभकर्मसु निंदितो न पातस्थित्यात्मकस्थूलकालः क्रांतिसाम्याभावादित्यत आह—

एकायनगतं यावदर्केन्द्वोर्मण्डलान्तरम् ॥
सम्भवस्तावदेवास्य सर्वकर्मविनाशकृत् ॥ १७ ॥

सूर्यचंद्रयोर्मण्डलांतरं प्रत्येकं बिम्बैकदेशरूपं यावद्यत्कालपर्यंतमेकायनगतं तुल्यमार्गस्थितं भवति । तावत्तत्कालपर्यंतम् । एवकारो न्यूनाधिक्यव्यवच्छेदार्थकः । अस्य पातस्य । सकलशुभकर्मणामाचरितानां नाशकारी । सम्भव उत्पत्तिः । स्थितिरिति यावत् । न क्रांतिसाम्यमात्रं स्थितिरलक्ष्य-

१ एककाष्ठागतम् इति पाठांतरम् ।

त्वात् । तथा च विषुवद्वृत्तादुभयत एकतो वा चंद्रार्कबिम्बैकदेशयोः कयोरपि तुल्यान्तरेण यावदवस्थानं केंद्रावस्थानाभावेऽपि बिम्बसम्बन्धात्पातस्थितिः । अतएव "तावत्समत्वमेव क्रांत्योर्विवरं भवेद्यावत् । मानैक्यार्धादूनं साम्याद्बिम्बैकदेशजक्रांत्योः ॥" इति भास्कराचार्योक्तं युक्ततरमितिभावः ॥ १७ ॥

भा० टी०-जितनी देरतक सूर्य और चंद्रमण्डलका कोई अंश एकस्थानमें हो तो कर्म विनाशकारी इस पातका सम्भव होता है ॥ १७ ॥

नन्वयं केवलं मंगलनाशको न शुभकारक इत्यत आह-

स्नानदानजपश्राद्धव्रतहोमादिकर्मभिः[१] ॥
प्राप्यते सुमहच्छ्रेयस्तत्कालज्ञानतस्तथा ॥ १८ ॥

व्रतं स्वाभिमतदेवताराधनम् । आदिपदाद्धर्मांतरम् । इत्यादि पुण्यक्रियाभिस्तत्कालकृताभिः । सुतरामुत्कृष्टं कल्याणं मनुष्यैर्लभ्यते । तस्य पातस्य स्थित्यादिकालज्ञानात् । तथा समुच्चये । तेन महच्छ्रेयः प्राप्यत इत्यर्थः ॥ १८ ॥

भा० टी०-पातकालको जानकर स्नान, दान, जप, श्राद्ध, व्रत होमादि कार्य करनेसे महान् श्रेष्ठफल प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

अथ पातविशेषमाह-

रवीन्द्वोस्तुल्यता क्रान्त्योर्विषुवत्सन्निधौ यदा ॥
द्विर्भवेद्धिस्तदा पातः स्यादभावो विपर्ययात् ॥ १९ ॥

यदा यस्मिन्काले विषुवन्निकटे क्रान्त्यभावासन्ने । अत्र चंद्रस्य स्पष्टक्रांत्यभावासन्नत्वं ध्येयम् । सूर्यचन्द्रयोः क्रांत्योः समता भवति । तदा तस्मिंस्तदासन्नकाले स्थूलरूपे क्रांत्यभावादुभयत्र द्विर्भूतव्यतीपातभेदद्वयात्मकः पातः । द्विः प्रत्येकं द्विधा वारद्वयं भवेत् । विपर्ययादुक्तव्यत्यासात् । चांद्रायणसन्निधिनिकटे तयोः क्रांत्योस्तुल्यत्व इत्यर्थः । अत्रातुल्यत्वं सूर्यक्रांतितश्चन्द्रस्पष्टक्रांतेर्न्यूनत्वमेव नाधिकत्वमिति ध्येयम् । अभावः क्रांति-

१ कर्मसु इतिवापाठः ।

साम्परूपपातस्य तस्मिन् स्थूलकाले किञ्चिन्मितेऽनुत्पत्तिः स्यात् । एतेन "स्वायनसन्धाविन्दोः क्रांतिस्तत्कालभास्करक्रांतेः । ऊना यावत्तावत्क्रांत्योः साम्यं तयोर्नास्ति ॥ " इतिभास्कराचार्योक्तं संगच्छते । तत्साधनं तु प्रथमागतचापान्तरादिष्टांशाश्चन्द्रे युता हीना इति प्रत्येकमसकृत्क्रियया द्विधापातकालस्य ज्ञेयम् । अत्रोपपत्तिः । व्यतीपाते विषुवद्वृत्तादुभयस्तुल्यान्तरेण सूर्यचंद्रयोरवस्थितिकालेऽपि पातत्वम् । क्रांतिसाम्यादेव वैधृतेऽप्येकाहोरात्रवृत्तस्थत्वकाले पातत्वम् । एवमेव वियोगव्यतीपातवैधृतयोरप्येकाहोरात्रवृत्तस्थत्वे विषुद्वृत्तादुभयतस्तुल्यान्तरावस्थितौ च पातत्वम् । क्रांतिसाम्यादियुक्तगोलसिद्धं चंद्रगोलसन्धिनिकटे प्रत्यक्षम् । अभावोपपत्तिस्तु । चंद्रस्य स्वायनसन्धौ तत्स्पष्टक्रांतितुल्यं परमं विषुवद्वृत्ताद्दक्षिणोत्तरं गमनं भवत्यस्मादग्रे पृष्ठे वा विक्षेपवृत्तेर्भ्रमतश्चन्द्रस्य क्रांतिर्न्यूनैव सम्भवत्यतः स्वायनसन्धिस्थचन्द्रकालिकसूर्यक्रांतिः स्वायनसंधिस्थचंद्रस्पष्टक्रांतेरधिका तदेष्टचंद्रक्रांतेर्न्यूनत्वेनाधिकसूर्येष्टक्रांत्या समत्वानुत्पत्तिः । सूर्यस्य चंद्राल्पगमनत्वात् क्रांत्यपचयस्यापि चंद्रक्रांत्यपचयाल्पत्वसम्भवात् । सूर्यक्रांत्युपचये तु सुतरां तदसम्भवः । एवं तत्रत्यसूर्यक्रांतिर्न्यूना तदापचयाधिक्याचन्द्रस्पष्टक्रांतिस्तत्समा तदुत्तरपूर्वकाले सम्भवति । सूर्यक्रांत्युपचये तु सुतराम् । तथाच द्वितीयरविगोलसन्ध्यासन्नचंद्रपाते स्वायनसंध्यासन्ने सूर्ये च तदसम्भवः कियंति चिद्दिनानीति यावत्तावदुक्तमन्यत्र सत्सम्भावना भवतीति गोलयुक्त्या फलितम् । अथासम्भवलक्षणेऽपि क्रांत्यंतरस्य मानैक्यखण्डादल्पत्वे " एकायनगतं यावदर्केन्द्वोर्मण्डलांतरम् " इति पूर्वोक्तेन पातसम्भवः । तत्र पातमध्यं तस्मिन्नेव काले स्थित्यर्धं तु " रवींदुमानयोगार्धम् " इत्युक्तरीत्या मानयोगार्धमितिस्थाने क्रांत्यंतरमानैक्यखण्डयोरंतरं गृहीत्वा साध्यमिति ध्येयम् ॥ १९ ॥

भा० टी०—विषुवत् निकटके चंद्रमा सूर्यकी क्रान्तिकी तुल्यता होनेपर दो पात दो वार होते हैं, नहीं तो दोनों काही अभाव होता है ॥ १९ ॥

अथ शुभकार्ये महापातस्य निषिद्धत्वोक्तिप्रसंगात्पञ्चांगांतर्गतयोगांतर्गत-व्यतीपातस्यैव ज्ञानमाह-

शशांकार्कयुतेर्लिप्ता भभोगेन विभाजिताः ॥
लब्धं सप्तदशान्तोऽन्यो व्यतीपातस्तृतीयकः ॥ २० ॥

अयनांशसंस्कृतयोश्चंद्रसूर्ययोर्योगस्य राश्यादेः कला अष्टशतेन भक्ताः फलं सप्तदशांतः । सप्तदशमध्ये षोडशानंतरं सप्तदशपर्यंतमित्यर्थः । तदापि व्य-तीपातः । अन्य एतदधिकारपूर्वोक्तातिरिक्तः । तृतीय एव तृतीयकः । सूर्यचंद्रयोगांतराभ्यां व्यतीपातद्वैविध्यात् । एवमुपलक्षणादुक्तरीत्या फलं षड्विंशत्यनंतरं सप्तविंशतिस्तदा तृतीयो वैधृतिः । तत्सञ्ज्ञपातस्यापि योगांत-राभ्यां द्वैविध्यादिति । अत्रोपपत्तिः । विष्कम्भा दिर्व्यतीपातः सप्तदशो योग इति ॥ २० ॥

भा० टी०-चन्द्रमा और सूर्यकी कला मिलाकर ८०० से भाग करनेपर भागफ-ल १७ अन्तमें (निकट) होनेपर व्यतीपात नामक तीसरा पात होता है ॥ २० ॥

अथ प्रसंगादेतत्तुल्यनिषिद्धे गण्डांतभसन्धी विवक्षुस्तयोः स्वरूपज्ञानमाह-

सार्पेन्द्रपौष्णधिष्ण्यानामन्त्याः पादा भसन्धयः ॥
तदग्रभेष्वाद्यपादो गण्डान्तं नाम कीर्त्यते ॥ २१ ॥

आश्लेषाज्येष्ठारेवतीनक्षत्राणामंत्याश्चतुर्थाश्चरणाः नक्षत्रसंधयो भवंति । तदग्रभेषुतेषामाश्लेषाज्येष्ठारेवतीनक्षत्राणामग्रिमनक्षत्रेषु मघामूलाश्विनीनक्षत्रे-ष्वित्यर्थः । प्रथमचरणो गण्डांतं नाम प्रसिद्धमुच्यते । यद्यप्याश्लेषाज्येष्ठा-रेवतीनक्षत्राणामंतिमं घटिकाद्वयं मघामूलाश्विनीनक्षत्राणामादिमं घटिकाद्व-यमिति चतस्रोंतरघटिका गंडांतम् । एतदतिरिक्तो नक्षत्रसंधिः पूर्वनक्षत्रां-तरघटिकोत्तरनक्षत्रादिमघटिकेत्यंतरालघटिकाद्वयं चंद्रमण्डलसंबंधेन घटिकाः सार्द्धद्वयमिति संहिताविरुद्धं तथापि सूर्योक्तस्य स्वतःप्रामाण्यान्न क्षतिः । अथवैकवाक्यतार्थंपादशब्दः करनेत्रा दिवद्द्विसंख्यावाचकः । घटिका इत्य-ध्याहारश्च । तथा च द्विसंख्यामिता अंत्यघटिका नक्षत्रसंधयः । प्रथमद्वि-घटिकामितः कालो गण्डांतमित्यर्थः । अत्रापि गण्डांतत्वाद्भसंधिकथनमयु-

नं गण्डांतस्य तदन्तरालरूपत्वात्तथापि तत्कालस्य निषिद्धत्वोक्तितात्पर्याद्वि-भागद्वयेनोक्तावपि तदन्तरालकाल उत्तरोत्तरं कालस्यातिनिषिद्धत्वसूचनान्न क्षतिः ॥ २१ ॥

भा० टी०-आश्लेषा, ज्येष्ठा, रेवतीका चौथा चरण भसन्धि और अश्विनी मघा और मूलक आदिपाद गण्डान्त है ॥ २१ ॥

अथैतदधिकारोक्तानां तुल्यनिषिद्धत्वमाह-

व्यतीपातत्रयं घोरं गण्डान्तत्रितयं तथा ॥
एतद्भसन्धित्रितयं सर्वकर्मसु वर्जयेत् ॥ २२ ॥

व्यतीपातानां त्रयं योगवियोगात्मकौ क्रांतिसाम्यरूपौ द्वौ व्यतीपातौ । विषुवत्सन्निधौ क्रांतिसाम्यांतरेण व्यतीपातस्तयोरेव भेदः । न पृथक् । पञ्चांगांतर्गतयोगान्तर्गतव्यतीपातश्चेति त्रयं स्पष्टम् । उपलक्षणाद्वैधृतित्रयमपि । योगवियोगात्मकौ क्रांतिसाम्यरूपौ द्वौ वैधृतिसञ्ज्ञौ । विषुवत्सन्निधौ क्रांतिसाम्यांतरेण । वैधृतिसञ्ज्ञस्तु तयोरंतर्गतः । पृथक् । पञ्चांगांतर्गतयोगांतर्गतवैधृतियोगश्चेति स्पष्टं त्रयम् । केचित्तु व्यतीपातवैधृतिसञ्ज्ञं व्यतीपातद्वयं संज्ञाभेदेन वैधृतिरिति पूर्वमुक्तेः पञ्चांगांतर्गतयोगांतर्गतव्यतीपातश्चेति व्यतीपातत्रयमिति यथाश्रुतमाहुः । घोरं दुष्टं गण्डांतत्रयम् । तथा घोरं नक्षत्रसंन्धित्रयम् । एतत्पूर्वोक्तघोरम् । अतः कारणात्सर्वमांगल्यकर्मसु शुभेच्छरे तद्दुष्टं जह्यादित्यर्थः ॥ २२ ॥

भा० टी०-तीन, व्यतीपात तीन गण्डान्त, और तीन सन्धिगतकाल अतिदूषित हैं । इन्हें सब कर्मोंमें त्यागै ॥ २२ ॥

अथार्कांशपुरुषः शिष्टावशिष्टं स्ववाक्यमुपसंहरति-

इत्येतत्परमं पुण्यं ज्योतिषां चरितं हितम् ॥
रहस्यं महदाख्यातं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ २३ ॥

हे मय तुभ्यमिति । एवमेतत् । शृणुष्वैकमना इत्यादिसर्वकर्मसु वर्जयेदित्यंतं ज्योतिषां ग्रहनक्षत्रादीनां चरितं माहात्म्यं गणितादिज्ञानमिति यावत् हितमिह लोके कीर्तिकरं । परमं पुण्यं परत्र लोके उत्कृष्टं धर्म्यम् ।

अतएव महद्रहस्यम् । अतिगोप्यामाख्यातं मया कथितम् । अथ स्वोक्तयुक्त्यप्रतिपादितमेतस्य मनसि निश्चितार्थे 'नागतमिति तदधरोष्ठस्फुरणदर्शनादनुमितं चास्मै मत्संकोचेन स्वाशंकोद्घाटनाशक्तायैतं प्रश्नप्रतीक्षावसाने मया युक्त्यापि वक्तव्यमित्याशयेनाह-किमिति । अतःपरं त्वमन्यदुक्तातिरिक्तं किं कतरत् श्रोतुं ज्ञातुमिच्छसि । तथा च मया तुभ्यं पूर्वमुक्तं तत्र यत्रयत्र तव संशयस्तत्रतत्र मत्सङ्कोचमुपक्ष्य मां प्रति प्रश्नस्त्वया कार्यः । तव समाधानं करिष्यामीति भावः ॥ २३ ॥

भा० टी०-इस समय परमपवित्र ज्योतिष्क वर्गका महान् और हितकर रहस्य कहा। अब क्या श्रवण करना चाहते हो ॥ २३ ॥

अथाग्रिमग्रन्थस्य प्रतिपादिताधिकारासंगतित्वपरिहारायारब्धाधिकारसमाप्तिं फक्किकयाह-इति स्पष्टम्। दशभेदं ग्रहगणितामिति दशाधिकारात्मकग्रन्थपूर्वार्धे पाताधिकारसमाप्त्यासमाप्तामिति तु पाताधिकारान्तस्थेनत्येतत्परमं पुण्यमित्यादिश्लोकेनैव सूचितम् । रंगनाथेन रचिते सूर्यसिद्धांतटिप्पणे । पाताधिकारः पूर्णोऽयं तद्गूढार्थप्रकाशके । सूर्यसिद्धांतगूढार्थप्रकाशकमिदं दलम् । रंगनाथकृतं दृष्ट्वा लभन्तां गणकाः सुखम् ॥

इति श्रीसकलगणकसार्वभौमबल्लालदैवज्ञात्मजरंगनाथगणक
विरचिते गूढार्थप्रकाशके पूर्वखण्डं परिपूर्तिमगमत् ।

इति सूर्यसिद्धान्ते पाताधिकारः एकादश अध्याय समाप्त ।

इति पूर्वखण्डम् ।

अथोत्तरखण्डे द्वादशोऽध्यायः।

महादेवं वक्रतुण्डं वाणीं सूर्यं प्रणम्य च। कृष्णं गुरुं रङ्गनाथो व्याख्याम्युत्तरखण्डकम् ॥ अथमुनीन्प्रति सूर्यांशपुरुषवचनमनुवाद्यानन्तरं मयासुरेण सूर्यांशपुरुषः पृष्ट इत्याह—

अथार्कांशसमुद्भूतं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥
भक्त्या परमयाभ्यर्च्य पप्रच्छेदं मयासुरः ॥ १ ॥

अथ सूर्यांशपुरुषवचनश्रवणानन्तरं मयासुरो मयनामा श्रोता दैत्यः कृताञ्जलिः रचितहस्ताग्राञ्जलिपुटः। अर्कांशसमुद्भूतं सूर्यांशोत्पन्नं पुरुषं स्वाध्यापकं गुरुं परमयोत्कृष्टया भक्त्या। आराध्यत्वेन ज्ञानरूपया। अभ्यर्च्य सम्पूज्य। प्रणिपत्य नमस्कृत्य। समुच्चयार्थश्चकारोऽत्रानुसन्धेयः। इदं वक्ष्यमाणं पप्रच्छ पृष्टवान् १ ॥

भा०टी०—इसके उपरांत मयासुरने सूर्यके अंशसे उत्पन्न हुए पुरुषको हाथ जोड परमभक्तिसहित प्रणाम करके यह पूछा ॥ १ ॥

अथ किं पप्रच्छेत्यतस्तत्प्रश्नानुवादे प्रथमं तत्कृतं भूप्रश्नमाह—

भगवन् किम्प्रमाणा भूः किमाकारा किमाश्रया ॥
किंविभागा कथं चात्र सप्त पातालभूमयः ॥ २ ॥

हे भगवन् भूर्भूमिः किम्प्रमाणा कियत्प्रमाणं यस्याः सा। किमाकारा कथमाकारः स्वरूपं यस्याः सा। किमाश्रया क आश्रयो यस्याः सा। किंविभागा कथं विभाग विभक्तांशा यस्याः सा। अत्र भूम्यां पातालभूमयः पातालविभागरूपा आश्रयाः सप्तसंख्याकाः कथं तिष्ठन्ति। चः समुच्चयार्थः। किमाकारेत्यादौ प्रत्येकमन्वेति। अयमभिप्रायः। योजनानि शतान्यष्टौ' इत्यादिनावगतभूमानं पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णेति सर्वजनावगतभूमानाद्भिन्नमिति त्वदुक्तभूमाने संशयात्किम्प्रमाणेति प्रश्नः। अन्यथा पूर्वं भूमानकथनात्। प्रश्नवैयर्थ्यापत्तेः उक्तश्रुतत्वापत्तेश्च। एवं लम्बज्याघ्न इत्यादिना स्पष्टपरिध्यन्तरसम्भवात्सर्वजनावगतादर्शाकारतायां भूमौ तदस-

म्भवेन भवदभिमतत्वाकारस्तदतिरिक्त इति किमाकारेति प्रश्नः । एवं तेन देशान्तराभ्यस्तेत्यादिना ग्रहाणां भूम्यभितो भ्रमणसूचनादाधारे शेषादौ तेषामभितो भ्रमणासम्भवेनाधारे संशयात्किमाश्रयेति प्रश्नः । निराधारायां अवस्थानासम्भवात् । एतेन सर्वजनावगतभूस्वरूपातिरिक्तभूस्वरूपेणोत्तरार्धप्रश्नावपि प्रसङ्गादुक्तो सङ्गताविति ॥ २ ॥

भा०टी-हे भगवन् ! इस पृथ्वीका परिमाण क्या है ? आकार कैसा है ? किसके आश्रयसे टिकी है ? क्या २ विभाग हैं । और किस प्रकारसे इसमें सप्तपाताल और भूमि है ॥ २ ॥

अथ किमाश्रयेतिप्रश्नकारणे भूम्यभितो ग्रहभ्रमणे सूर्यस्योपलक्षणत्वेन प्रश्नावाह-

अहोरात्रव्यवस्थां च विदधाति कथं रविः ॥
कथ पर्येति वसुधां भुवनानि विभावयन् ॥ ३ ॥

सूर्यः । अहोरात्रव्यवस्थां दिनरात्र्योर्विवेकं कथं केन प्रकारेण विदधाति करोति । अयं भावः । आदर्शाकारभूम्या मध्ये मेरुस्तदभितो भूम्युपरि प्रदक्षिणतया सूर्यभ्रमणेन स्वदृश्यविभागे सूर्ये दिनं स्वादृश्यविभागे रात्रिरिति सर्वजनावगताद्भवदभिप्रेतं सूर्यभ्रमणं भिन्नम् तर्हि त्वन्मते सूर्यो दिनं रात्रिं च व्यवधायकाव्यवधायकौ विना कथं करोति । अन्ये ग्रहा अपि कथं स्वदिनं स्वरात्रिं च कुर्वंति । सूर्योपलक्षणत्वादिति । अथ भूम्यभिमितो भ्रमणांगीकारे भूरेव व्यवधायिकेत्यहोरात्रव्यवस्था युक्तैवेत्यतः प्रश्नान्तरमाह-कथमिति । सूर्यो भुवनानि वक्ष्यमाणस्वरूपाणि विभावयन् प्रकाशयन् सन्वसुधां पृथ्वीं कथं केन प्रकारेण पर्येति प्रदक्षिणतया भ्रमति । भूमेनराधारावस्थानासम्भवेन साधारत्वे भूम्यभितो ग्रहणभ्रमणमाधारे बाधितमितिभावः ॥ ३ ॥

भा० टी०-और सूर्यनारायण किस प्रकारसे दिनरातकी व्यवस्था करते हैं ? भुवनगणप्रकाश करके पृथ्वीपर कैसे पर्यटन करते हैं ? ॥ ३ ॥

प्रश्नावाह—

देवासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात ॥
किमर्थं तत्कथं वा स्याद्भानोर्भगणपूरणात् ॥ ४ ॥

पूर्वार्धं पूर्वार्धे व्याख्यातम् । किमर्थं कोऽर्थोऽभिप्रायो यस्य तदित्यहोरात्रविशेषणम् । देवासुरयोर्दिनं रात्रिश्चाभिन्ना कथं नोक्ता व्यत्यासे नियामकाभावादिति भावः । तद्देवासुरयोरहोरात्रं सूर्यस्य द्वादशराशिभोगादित्यर्थः । कथं कुतः । वाकारः समुच्चये भवति । उभयत्र नियामकाभावादुभयत्र मम सन्देहः । दिनरात्र्योः सूर्यदर्शनादर्शननियामकत्वाद्यत्र सूर्यं षण्मासावधि देवाः पश्यंति तत्रासुरा न पश्यंति । यत्र देवाः षण्मासावधि न पश्यन्ति तत्रासुराः पश्यंतीत्यह भगवता बोधनीय इति भावः ॥ ४ ॥

भा० टी०—देवता व असुरोंके दिनरात परस्पर विपरीत क्यों है ? और यह क्यों सूर्यकी १२ राशियोंके भ्रमणकी समान हैं ॥ ४ ॥

अथ प्रश्नांतरे पूर्वोक्तश्लोकद्वयस्य तात्पर्यं प्रश्नं चाह—

पित्र्यं मासेन भवति नाडीषष्ट्या तु मानुषम् ॥
तदेव किल सर्वत्र न भवेत्केन हेतुना ॥ ५ ॥

पितॄणामिदमहोरात्रं मासेन वर्षादधिकचांद्रमासेन केन हेतुनेत्यस्य प्रत्येकं समन्वयात् । केन कारणेन भवति । अन्यथा प्रश्नानुपपत्तेः । सावनघटीषष्ट्या मानुषं मनुष्याणामहोरात्रं केन कारणेन भवतीत्यर्थः । न च यथा दिव्य तदहरुच्यते इत्युक्तं तथा पूर्वोक्ते पित्र्यमानुपाहोरात्रयोरनुक्तेः प्रश्नावसंगताविति वाच्यम् । 'दिव्यं तदहरुच्यते' इत्यनेनैव पूर्वोक्तसावनाहोरात्रचान्द्रमासयोस्तदहोरात्रसूचनात् । दिव्यमित्यत्र पितॄणामनुक्तेः सूर्यसावनाहोरात्रस्य मानुषाहोरात्रत्वेन तेषामपि प्रत्यक्षत्वाच्च परिशेषान्मासस्यैव पित्र्याहोरात्रत्वसिद्धेः । ननु तथापि प्रत्यक्षसिद्धमानुपाहोरात्रे प्रश्नोऽनुपपन्न एवेत्यतस्तात्पर्यप्रश्नमाह—तदेवेति । तन्मानुपाहोरात्रम् । एवकारस्तदन्यनिरासार्थकः । सर्वत्र सर्वलोके किल निश्चयेन केन कारणेन न स्यात् । पितृदेवदैत्यानामप्रत्यक्षमहोरात्रं कथमंगीकृतम् । कथं च मानुषाहोरात्रं प्रत्यक्षसिद्धं तेषामपि नोक्तमित्यर्थः ॥ ५ ॥

भा० टी०-पितृदिन एकमासका, और मनुष्योंका ६० घडीका दिन होता है, दिनगत सबके लिये एकसे क्यों नहीं होते ? दिन, अब्द, मास और होराके अधिपति एकप्रकारके क्या नहीं होते ॥ ५ ॥

अथाहर्गणादवगतदिनमासवर्षेश्वरेषु तत्प्रसंगाद्धोरेश्वरं प्रश्नं 'पश्चाद्व्रजन्तोऽतिजवात्' इत्यत्र प्रश्नद्वयं चाह-

दिनाब्दमासहोराणामधिपा न समाः कुतः ॥
कथ पर्येति भगणः स ग्रहोऽयं किमाश्रयः ॥ ६ ॥

दिनवर्षमासहोराणां स्वामिनोऽभिन्नाः कुतः कस्मान्न भवंति । यथा दिनाधिपतित्वं सूर्यादीनां क्रमेण तथा प्रथमादिमासवर्षक्रमेण सूर्यादीनां क्रमेण मासवर्षाधिपत्वं युक्तम् । आनयने युक्त्यप्रतिपादनादिति भावः । यद्यपि पूर्वं होरेश्वरानयनं नोक्तमिति तत्प्रश्नोऽसंगतस्तथापि लोके प्रसिद्धतरो होरेश्वरस्त्वया किमर्थं नोक्त इति तत्प्रश्नतात्पर्यमिति ध्येयम् । द्युगणो नक्षत्रसमूहसग्रहो ग्रहसहितः कथं केन प्रकारेण पर्येति भ्रमति । नक्षत्राणि ग्रहाश्च केन प्रयुक्ताः सन्तो भूम्यभितो भ्रमन्तीत्यर्थः । अथैषामन्तरिक्षावस्थानेपि प्रश्नमाह-अयमिति । सग्रहो भगणो दृश्यमानः किमाश्रयः कः आधारो यस्येति । विनाधारमन्तरिक्षावस्थानं न सम्भवतीत्यर्थः ॥ ६ ॥

भा० टी०-भगण किस प्रकारसे ग्रहादिके साथ प्रदक्षिणा करते हैं और उनका आश्रय क्या है ? ॥ ६ ॥

ननु कक्षा एवाधाराः पूर्वं तत्रैव स्वमार्गगा इत्युक्तेरित्यतः कक्षाणां प्रश्नचतुष्टयमाह-

भूमेरुपर्युपर्यूर्ध्वाः किमुत्सेधाः किमन्तराः ॥
ग्रहर्क्षकक्षाः किम्मात्राः स्थिताः केन क्रमेण ताः ॥ ७ ॥

भूमेः सकाशादूर्ध्वमुच्चाग्रहर्क्षकक्षाग्रहनक्षत्राणामाकाशे मार्गाः किमुत्सेधाः कियानुत्सेध उच्चता यासां ताः । भूमेः सकाशाद्ग्रहनक्षत्रमार्गकक्षाः कियदन्तरेण संतीत्यर्थः । किमन्तराः कियदन्तरालं यासां ताः । उत्तरोत्तरमुच्चा अपि परस्परं तासां कियदन्तरालमित्यर्थः । किम्मात्राः किमात्मिकाः ।

किंस्वरूपाः किंप्रमाणा वा । ता ग्रहनक्षत्रकक्षाः केन क्रमेणाधिष्ठिताः संति । पूर्वं कस्तदुत्तरं क इत्यादिक्रमो न ज्ञात इत्यर्थः ॥ ७ ॥

भा० टी०—पृथिवीसे ग्रहोंकी कक्षा कितनी ऊंची है ? परस्परमें अन्तर कितना है ? परिमाण क्या है ? और वह किस प्रकारसे स्थित हैं ? ॥ ७ ॥

अथानुभवप्रश्नं तत्प्रसंगात्सूर्यकिरणप्रचारप्रश्नं च पूर्वोक्तमानानां प्रश्नद्वयं चाह—

ग्रीष्मे तीव्रकरो भानुर्न हेमन्ते तथाविधः ॥
कियती तत्करप्राप्तिर्मानानि कति किंच तैः ॥ ८ ॥

ग्रीष्मर्तौ सूर्यो यथा तीक्ष्णकिरण उष्णकिरणस्तथाविधस्तादृशो हेमन्ते न भवतीति किम् । सूर्यस्य किरणानां प्राप्तिर्गमनपद्धतिः कियती कियत्प्रमाणा । मानानि नाक्षत्रसावनचान्द्रसौरादीनि पूर्वोक्तानि कति कियंति । उपक्रम । एव संक्षेपेण मानान्युक्तानीति तत्तत्त्वं सम्यङ्न ज्ञातमित्यर्थः । तैर्मानैः किं प्रयोजनम् । चः समुच्चयार्थः । प्रत्येकमन्वेति ॥ ८ ॥

भा० टी०—ग्रीष्ममें सूर्यकी किरणें तीव्र होती हैं; और हेमन्तमें तैसी नहीं होती; तिनकी कर प्राप्तिका नियम क्या है ? कितने प्रकारके मान हैं ? और तिनका प्रयोजन क्या है ? ॥ ८ ॥

अथास्य प्रश्नमुपसंहरति—

एतं मे संशयं छिन्धि भगवन् भूतभावन ॥
अन्यो न त्वामृते छेत्ता विद्यते सर्वदर्शिवान् ॥ ९ ॥

हे भगवन् षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न । सर्वबोधकेति तात्पर्यार्थः । भूतभावन भूतस्यातीतकालस्य भावना विचारो यस्य । भूतस्योपलक्षणाद्वर्तमानभविष्यतोरपि कालज्ञेति सिद्धोऽर्थः । त्वं मे मम । एतमुक्तं संशयम् । जात्यभिप्रायेणैकवचनम् । तेन मत्कृतान् प्रश्नानित्यर्थः । छिंधि छेदय । नन्वहमिदानीमेतदुक्त्यै वक्तुं न शक्नोम्यन्यस्मात्संशयान् दूरीकुर्वित्यत आह—अन्य इति । त्वामृते विना । अन्यः सर्वदर्शिवान् सर्वद्रष्टा । सर्वज्ञ इत्यर्थः । छेत्ता संशयापनोदकः । न विद्यते नास्ति । तथा चैतावत्कालपर्यंतं यथोक्तं तथान्यदपि कृपया वक्तव्यमिति भावः ॥ ९ ॥

भा० टी०-हे भूतभावन भगवन् ! मेरे यह समस्त सन्देह दूर कीजिये आपके सिवाय सर्वदर्शी और संशयका छेदन करनेवाला कोईभी नहीं है ॥ ९ ॥

अथ मुनीन्प्रति मुनिर्मयासुरोक्तप्रश्नानुवादं कृत्वा सूर्यांशपुरुषो मयासुरं प्रति पुनर्वदति । स्मेत्याह-

इति भक्त्योदितं श्रुत्वा मयोक्तं वाक्यमस्य हि ॥
रहस्यं परमध्यायं ततः प्राह पुनः स तम् ॥ १० ॥

स सूर्यांशपुरुषः । इति पूर्वोक्तम् भक्त्याराध्यज्ञानेन । उदितमुत्पन्नम् । मयेन कथितं वचनं श्रुत्वाऽऽकर्ण्य । पुनर्द्वितीयवारं ततः पूर्वार्धोक्त्यनन्तरं तं मयासुरं तं मयासुरं प्रति परं द्वितीयमध्यायं ग्रंथम् । ग्रन्थस्योत्तरखण्डमित्यर्थः । अस्य ग्रन्थपूर्वखण्डस्य हि निश्चयेन रहस्यं गोप्यत्वेन तत्त्वभूतं प्राह । प्रकर्षेणावददित्यर्थः ॥ १० ॥

भा० टी०-भक्तिभावसे कहे हुए मयके वचन सुनकर सूर्यांश पुरुष फिर परमध्यायरहस्य कहते हुए ॥ १० ॥

अथ सूर्यांशपुरुषवचनानुवादे सूर्यांशपुरुषो मयासुरं प्रति मदुक्तं सावधानतया श्रोतव्यमित्याह-

शृणुष्वैकमना भूत्वा गुह्यमध्यात्मसञ्ज्ञितम् ॥
प्रवक्ष्याम्यतिभक्तानां नादेयं विद्यते मम ॥ ११ ॥

यतः कारणात् । अतिभक्तानामत्यन्तमङ्गजनकारकाणां भवादृशां मम सूर्यस्य पुरुषस्य । अदेयमदातव्यं वस्तु न विद्यते । अतः कारणादहं त्वां प्रति गुह्यं गोप्यमध्यात्मसंज्ञितमध्यात्मज्ञानसञ्ज्ञं यत्प्रवक्ष्यामि कथयिष्यामि तत्त्वमेकमना एकस्मिन्मदुक्ते मनो विद्यते यस्यासौ भूत्वा शृणुष्व श्रोत्रद्वारात्मनः संयोगेन प्रत्यक्षं कुर्वित्यर्थः ॥ ११ ॥

भा० टी०-अच्छा तो गुप्त अध्यात्मतत्त्वको कहता हूं तुम एकान्तचित्तसे श्रवण करो । ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो हम अतिभक्तोंको न देसकें ॥ ११ ॥

गुह्यं वक्ष्यामीति यदुक्तं तदाह-

वासुदेवः परं ब्रह्म तन्मूर्तिः पुरुषः परः ॥
अव्यक्तो निर्गुणः शान्तः पञ्चविंशात्परोऽव्ययः ॥ १२ ॥

वसत्यस्मिञ्जगत्समस्तमसो वा जगति समस्ते वसतीति वसतेरुणि वासुः। देवनाद्द्योतनाद्देवः। वासुश्चासौ देवश्चेति वासुदेवः। तथा चोक्तम् "सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः। अतोऽसौ वासुदेवाख्यो विद्वद्भिः परिगीयते॥" इति। ननु वसुदेवस्यापत्यमिति विग्रहः। तस्य जगत्कारणतानिरूपणावसरेऽनुपयोगात्। अस्मत्पक्षे पुनरुपादाने कार्यस्याधारतया कार्येवोपादानस्यानुस्यूततया वा स उपयुक्त एव तथा चोक्तं श्रुतौ 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' इत्यादि। भागवते च। "अजनि च यन्मयं तदविमुच्यमियं नृभवेत्" इति। जीवानामपि ब्रह्मात्मकतया तद्वारणाय परमिति सर्वोत्तममित्यर्थकम्। "यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः। अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥" इति स्मृतेः। तन्मूर्त्तिस्तस्य वासुदेवस्य मूर्तिरंशः। इदं विशेषणं संवक्ष्यमाणस्य सङ्कर्षणस्य। चिन्मूर्तिरिति पाठस्तु प्रामादिकः। वासुदेवः सङ्कर्षण इत्यस्माद्वासुदेवात्सङ्कर्षण इत्यस्यार्थस्य विवक्षितस्याप्रतीतेः। अव्यक्त इत्यतीन्द्रिय इत्यर्थः। तथा च श्रुतिः। "न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव। नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति॥ न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् इति। अव्यक्तत्वे हेतुर्निर्गुण इति। शान्तः षडूर्मिरहितत्वात्। पंचविंशात्परः। षोडशविकृतयः सप्त प्रकृतिविकृतयो मूलप्रकृतिश्चेति चतुर्विंशतितत्त्वानि पञ्चविंशस्तु जीवस्तस्मात्पर इत्यर्थः। पञ्चविंशात्मक इतिपाठे जगदात्मक इति॥ १२॥

भा० टी०—वासुदेव, परब्रह्म, तन्मूर्त्ति परमपुरुष, अव्यक्त, निर्गुण, शान्त, अव्यय और पच्चीसवां वस्तुओंसे परे है॥ १२॥

शुद्धस्य ब्रह्मणो जगत्कारणत्वासम्भवादाह—

प्रकृत्यन्तर्गतो देवो बहिरन्तश्च सर्वगः॥
सङ्कर्षणोऽयं सृष्ट्वादौ तासु वीर्यमवासृजत्॥ १३॥

प्रकृत्यन्तर्गतो मायोपहितो बहिरन्तश्च सर्वगो जगदुपादानत्वात्। एतानि सर्वाणि विशेषणानि संकर्षणस्य वासुदेवांशस्यापि वासुदेवात्मकतावमानेन

चोध्यानि। वासुदेवांशात्मकः सङ्कर्षणः प्रथमं जलानि निर्माय । तास्वप्सु वीर्यं शक्तिविशेषम् । अवासृजच्चिक्षेप ॥ १३ ॥

भा० टी०-जगत्के उपादानरूपसे प्रकृतिके अन्तर्गत हैं, संङ्कषण बहि और अन्तस्थ व सर्व गत हैं, यह सृष्टिकी आदिके समय एकार्णवादिमें अपने वीर्यको विक्षेप करते हैं ॥ १३ ॥

ततः किमत आह-

तदण्डमभवद्धैमं सर्वत्र तमसा वृतम् ॥
तत्रानिरुद्धः प्रथमं व्यक्तीभूतः सनातनः ॥ १४ ॥

तत्तच्छक्तिमिलितं जलं हैमं सौवर्णमण्डं गोलाकारं सर्वत्र बहिरन्तश्चान्धकारेणावृतमभवत् । अंधकारसहिताकाशे सुवर्णाण्डमजनीत्यर्थः । तत्र सुवर्णाण्डे आदावनिरुद्धः सनातनो नित्यो वासुदेवांशसंकर्षणोंऽशरूपत्वाद्व्यक्तीभूतोऽभिव्यक्तः । नतूत्पन्नः । सत्कार्यवादाभ्युपगमात् । यथा तिलेभ्यस्तैलं सदेवाभिव्यक्तं न तूत्पन्नम् ॥ १४ ॥

भा० टी० वह जल अन्धकारसे छाये हुए सुवर्णका अंडरूप बनगया । तिसमें प्रथम सनातन अनिरुद्ध व्यक्तहुए ॥ १४ ॥

अथास्याभिधान्तराणि लोकसुज्ञानार्थमाह-

हिरण्यगर्भो भगवानेष च्छन्दसि पठ्यते ॥
आदित्यो ह्यादिभूतत्वात्प्रसूत्या सूर्य उच्यते ॥ १५ ॥

एष संकर्षणांऽशोऽनिरुद्धभगवान् षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नश्छन्दसि वेदे हिरण्यगर्भः सुवर्णाण्डमध्यरूपगर्भे स्थितत्वात्पठ्यते निरूप्यते । वेदेऽस्य हिरण्यगर्भ इति प्रसिद्धिमाभिधान्तरमित्यर्थः । हि निश्चयेनादित्यः प्रथममभिव्यक्तत्वादुच्यते । प्रसूत्या अस्माज्जगतोऽभिव्यक्ततयायमनिरुद्धः सूर्य उच्यते । "हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्" इति श्रुतिः ॥ १५ ॥

भा० टी०-वेदमें इनको हिरण्यगर्भ कहते हैं, आदिमें थे इसलिये आदित्य और सृष्टिके अर्थ होनेके कारण सूर्य कहते हैं ॥ १५ ॥

अस्य रूपं स्थितिं चाह-

परं ज्योतिस्तमःपारे सूर्योऽयं सवितेति च ॥
पर्येति भुवनान्येव भावयन्भूतभावनः ॥ १६ ॥

अयमनिरुद्धः सूर्यनामकः सविता । इति नाम्ना । चः समुच्चये । प्रसिद्धः । तमःपारेऽन्धकारस्य विरामे परमुत्कृष्टं ज्योतिस्तेजोरूपम् । अंधकारनाशक इति तात्पर्यार्थः । आदित्यवर्णं तमसस्तु पारे " इतिश्रुतिः । एष सविता भूतभावनः प्राण्युत्पत्तिस्थितिसंहारकारको भुवनानि वक्ष्यमाणानि भावयन्प्रकाशयन्पर्येति । सुवर्णाण्डमध्ये सदा भ्रमति ॥ १६ ॥

भा० टी०-यह अनिरुद्धही परम ज्योतिष्मान् सविता हैं । अन्धकारस्थानको लांघकर भूतभावन सूर्यकिरणसे समस्त भुवनोंमें घूमते हैं ॥ १६ ॥

अथ परं ज्योतिरिति पादं विवृण्वन्नन्यदप्येतत्स्वरूपं श्लोकाभ्यामाह-

प्रकाशात्मा तमोहन्ता महानित्येष विश्रुतः ॥
ऋचोऽस्य मण्डलं सामान्युस्रा मूर्तिर्यजूंषि च ॥ १७ ॥
त्रयीमयोऽयं भगवान्कालात्मा कालकृद्विभुः ॥
सर्वात्मा सर्वगः सूक्ष्मः सर्वमस्मिन्प्रतिष्ठितम् ॥ १८ ॥

प्रकाशरूपोऽन्धकारनाशकोऽत एवैष अनिरुद्धाख्यः सूर्यो महान्महत्तत्त्वमिति । एवं विश्रुतो वेदपुराणादौ निरुक्तोऽस्य निरुक्तस्य सूर्यस्य । ऋचः ऋग्वेदमन्त्रा मण्डलं सामानि सामवेदमंत्रा उस्राः किरणाः यजूंषि यजुर्वेदमंत्रा मूर्तिं स्वरूपम् । चः समुच्चये । अतएवायं निरुक्तो भगवान् षाड्गुण्यैश्वर्यसम्पन्नः । त्रयीमयो वेदत्रयात्मकः । कालरूपः कालस्य कारणम् । विभुर्जगदुत्पत्तिस्थितिनाशाय समर्थः । अतएव सर्वात्मा जगत्स्वरूपः सर्वगः सर्वत्र स्थितो व्यापकः सूक्ष्मोऽव्यापकमूर्तिधारी । अस्मिन्निरुक्तसूर्ये सर्वं जगत्प्रतिष्ठितम् । एतेन व्यापकाव्यापकत्वयोरत्राविरोधः ॥ १७ ॥ १८ ॥

भा० टी०-प्रकाशरूप, तमोनाशक, और महान् शब्दसे सूर्य ख्यात हैं । ऋग्वेद इनका मण्डल, सामवेद किरण, और यजुर्वेद तिनकी मूर्ति हैं । वेदत्रयात्मक यह भगवान् कालात्मा, कालकर्त्ता, अणिमादिगुणयुक्त, सर्वात्मा सर्वग, सूक्ष्म हैं और इन्होंमें समस्त प्रतिष्ठित हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ पर्येति भुवनान्येषेत्यर्धं विवृणोति—

रथे विश्वमये चक्रं कृत्वा संवत्सरात्मकम् ॥
छन्दांस्यश्वाः सप्त युक्ताः पर्यटत्येष सर्वदा ॥ १९ ॥

त्रिलोक्यात्मके रथे संवत्सरात्मकं द्वादशमासात्मकं वर्षचक्रं नियोज्य सप्तच्छन्दांसि गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपंक्तिष्टुब्जगत्योऽश्वाः युक्ताः संयोजिताः कृत्वा। छन्दांस्यश्वास्तत्र युक्तेति पाठे सप्ताश्वान् रथे नियोज्येत्यर्थः। सर्वदा नित्यमेषोऽनिरुद्धनामा पर्यटति भ्रमति ॥ १९ ॥

भा० टी०—विश्वमय रथपर संवत्सर चक्रके द्वारा छन्दोंको सात घोडे बनाकर यह सदा भ्रमण करते हैं ॥ १९ ॥

अथास्य स्वरूपं ब्रह्मण उत्पत्तिं चाह—

त्रिपादममृतं गुह्यं पादोऽयं प्रकटोऽभवत् ॥
सोऽहंकारं जगत्सृष्ट्यै ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः ॥ २० ॥

अस्य वेदात्मनस्त्रिपादं चरणत्रयममृतं दिवि ज्ञेयम्। अत एव गुह्यमगम्यमिदम्। पादश्चतुर्थचरणः। अयं स्थावरजंगमात्मकजगद्रूपः प्रकटः प्रत्यक्षोऽभवत्। "त्रिपादूर्ध्वं उदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः" इति श्रुतिरपि व्यक्ता। सोऽनिरुद्धनामा प्रभुरुत्पत्तिसमर्थः। अहंकारतत्त्वरूपं ब्रह्माणं पुरुषं जगत्सृष्ट्यै जगत्सर्जननिमित्तमसृजदुत्पादयामास ॥ २० ॥

भा० टी०—अमृतकी समान उनके तीन पाद छिपे रहते हैं। चतुर्थपादमेंही प्रगट जगत् हैं। उस प्रभानें अहंकाररूप ब्रह्माको संसारकी सृष्टिके लिये उत्पन्न किया ॥२०॥

अथोत्पादितब्रह्मपुरुषं जगत्सर्जनार्थं नियुज्य स्वयं भ्रमन्नवतिष्ठत इत्याह—

तस्मै वेदान्वरान्दत्त्वा सर्वलोकपितामहम् ॥
प्रतिष्ठाप्याण्डमध्येऽथ स्वयं पर्यैति भावयन् ॥ २१ ॥

अथ ब्रह्मोत्पादनानन्तरं स्वयमनिरुद्धनामा। तस्मै उत्पादितब्रह्मपुरुषाय। वरानुत्कृष्टान्वेदान्दत्त्वा वेदोक्तमार्गेण सृष्टिसर्जनार्थं सर्वलोकानां पितामह-

---

१ पर्येत्येपवशी सदा इति पाठान्तरम्।

रूपं तं ब्रह्माणं सुवर्णाण्डमध्ये प्रतिष्ठाप्य निधाय । चोऽत्रानुसन्धेयः । भावयवन्प्रकाशयन् सन्पर्येति भ्रमति ॥ २१ ॥

भा० टी०-तिस ब्रह्मको सर्वोत्तम वेद देकर सर्वलोकके पितामहरूपसे अण्डमें स्थापित करके स्वयंप्रकाशित होकर भ्रमण करते हैं ॥ २१ ॥

अथ जातसृष्टीच्छो ब्रह्मा चन्द्रसूर्यावस्मत्प्रत्यक्षावुत्पादयामासेत्याह—

अथ सृष्ट्यां मनश्चक्रे ब्रह्माहंकारमूर्तिभृत् ॥
मनसश्चन्द्रमा जज्ञे सूर्योऽक्ष्णोस्तेजसां निधिः ॥ २२ ॥

अथाधिकारप्राप्त्यनन्तरम् । अहङ्कारतत्त्वमूर्त्तिधारको ब्रह्मा सृष्ट्यां मनोन्तःकरणं चक्रे करोति स्म । ब्रह्मणोऽहं सृष्टिं करोमीतीच्छा जातेत्यर्थः । अनन्तरं तस्य मनसः सकाशाच्चन्द्रमा जज्ञ उत्पन्नः । चन्द्रो भवत्विति मनसा चन्द्रो जात इत्यर्थः । अक्ष्णोर्नेत्राभ्यां सकाशात्तेजसां निधिराकरभूतः सूर्य उत्पन्नः । चक्षुरिन्द्रियस्य तैजसत्वात ॥ २२ ॥

भा० टी०—तिसके उपरान्त अहंकारमूर्तिधारी ब्रह्माने जब सृष्टिकरनेका मन किया तब मनसे चंद्रमा, और नेत्रोंके तेजसे तेज निधानरूप सूर्य उत्पन्न हुए ॥२२॥

अथ महाभूतोत्पत्तिमाह—

मनसः खं ततो वायुरग्निरापो धरा क्रमात् ॥
गुणैकवृद्ध्या पञ्चैव महाभूतानि जज्ञिरे ॥ २३ ॥

मनस आकाशो भवत्वितीच्छयात्मनः खमाकाशं तत आकाशात्क्रमाद्यथोत्तरं वायुरग्निर्जलं पृथिवी । "आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापोऽद्भ्यः पृथिवी" इति गुणैकवृद्ध्या गुणस्यैकोपचयेन महाभूतानि पञ्चसङ्ख्याकानि । एवकारान्न्यूनाधिकव्यवच्छेदः । जज्ञिरे उत्पन्नानि । शब्दगुणसहितमाकाशं शब्दस्पर्शगुणद्वयसमेतो वायुः शब्दस्पर्शरूपात्मकगुणत्रयसमेतोऽग्निः शब्दस्पर्शरूपरसात्मकगुणचतुष्टयसमेतं जलं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मकगुणपञ्चकसमेता पृथिवीति स्फुटार्थाः ॥ २३ ॥

भा० टी०—मनसे प्रथम शून्य, फिर वायु, अग्नि, जल और धरती, एकगुणकी वृद्धिके द्वारा पांच महाभूतको उत्पन्न करते हुए ॥ २३ ॥

अथ चन्द्रसूर्ययोः स्वरूपं वदन्पञ्चताराणामुत्पत्तिमाह—

अग्नीषोमौ भानुचन्द्रौ ततस्त्वङ्गारकादयः ॥
तेजोभूखाम्बुवातेभ्यः क्रमशः पञ्च जज्ञिरे ॥ २४ ॥

सूर्यचन्द्रौ प्रागुदितोत्पत्ती अग्निषोमौ सूर्योऽग्निस्वरूपस्तेजोगोलकश्चा-ग्रुपत्वात् । चन्द्रस्तु सोमस्वरूपः । मद्यस्य सामवाच्यत्वाज्जलगोलरूपः । अग्नीषोमाविति प्रयोगच्छान्दसिकः । ततोऽनन्तरमंगारकादयो भौमादयः पञ्चताराग्रहास्तेजोभूखाम्बुवातेभ्यः क्रमादुत्पन्नाः । तुकारादुक्तभूतस्य भागा-धिक्यमन्यभूतानां च भागसाम्यमित्यर्थः । मंगलस्तेजस उत्पन्नोऽत एवायम-ङ्गारक उच्यते । बुधो भूमितः । बृहस्पतिराकाशात् । शुक्रो जलात् । शनिर्वायोः ॥ २४ ॥

भा० टी०—अग्निसोमस्वरूप, रवि, चन्द्र, आदिमें तदोपरान्त मंगलादि ग्रहगण तेज, पृथ्वी आकाश जल वायुसे क्रमानुसार पांच उत्पन्न हुए ॥ २४ ॥

अथ राशीन्नक्षत्राणि चाह—

पुनर्द्वादशधात्मानं व्यभजद्राशिसञ्ज्ञकम् ॥
नक्षत्ररूपिणं भूयः सप्तविंशात्मकं वशी ॥ २५ ॥

पुनरनन्तरमात्मानं द्वादशधा द्वादशस्थानेषु राशिसञ्ज्ञकं व्यभजत् । मनः कल्पितं वृत्तं द्वादशविभागं राशिवृत्तमकरोदित्यर्थः । भूयो द्वितीयवार-मात्मानं नक्षत्ररूपिणं सप्तविंशात्मकं व्यभजत् । मनःकल्पितं तदेव वृत्तं सप्त-विंशतिविभागं चाकरोदित्यर्थः । ननु न्यूनाधिकविभागाः कथं न कृताः उक्तसङ्ख्यायां नियामकाभावादित्यत आह—वशीति । इच्छाविषयं वशं विद्यते यस्येति वशी स्वतन्त्रेच्छस्य नियोगानर्हत्वात् । स्वेच्छया सप्तसं-ङ्ख्याका विभागाः कृता इति भावः । सप्तविंशतिविभागव्यञ्जकानि नक्ष-त्राणि तारात्मकानि निर्मितानीत्यर्थसिद्धम् ॥ २५ ॥

भा० टी०—वशी ब्रह्माने फिर मनसे कल्पित वृत्तको १२ भागमें राशिरूपसे और फिर २७ भागमें नक्षत्ररूपसे विभाग किया ॥ २५ ॥

---

१ भूतान्यङ्गारकादयः इति वा पाठः ।

अथ चराचरं जगदकरोदित्याह—

ततश्चराचरं विश्वं निर्ममे देवपूर्वकम् ॥
ऊर्ध्वमध्याधरेभ्योऽथ स्रोतोभ्यः प्रकृतीः सृजन् ॥ २६ ॥

ततः स चक्रग्रहसर्जनानन्तरमूर्ध्वमध्याधरेभ्यः श्रेष्ठमध्याधमेभ्यः स्रोतोभ्यो व्यक्तिभ्यः प्रकृतीः सत्त्वरजस्तमोविभेदात्मकप्रकृतीः सृजन्निर्मायन् देवपूर्वकं देवमनुष्यासुरादिकं विश्वं जगच्चराचरं चेतनाचेतनात्मकं निर्ममे कृतवान् ॥ २६ ॥

भा० टी०—तदोपरान्त श्रेष्ठ, अधम, अनुयायी, प्रकृति सृजन करके देव मानवादि चराचर विश्वको निर्माण किया ॥ २६ ॥

अथ रचितपदार्थानामवस्थानं कृतवानित्याह—

गुणकर्मविभागेन सृष्ट्वा प्राग्वदनुक्रमात् ॥
विभागं कल्पयामास यथास्वं वेददर्शनात् ॥ २७ ॥

गुणाः सत्त्वरजस्तमोरूपाः कर्म पूर्वजन्मार्जितं सदसत्कर्म । अनयोर्विभागेनैकीकरणात्मकेन प्राग्वच्चन्द्रसूर्यादिग्रहयुक्तसृष्टिरित्यनुक्रमात्सृष्ट्वा देवमनुष्यासुरभूमिपर्वतादिकचराचरसर्जनं कृत्वा वेददर्शनाद्वेदोक्तप्रकाराद्यथास्वं यथादेशं यथाकालं विभागमवस्थानविभागं कल्पयामास कृतवान् ॥ २७ ॥

भा० टी०—गुण और कर्मके विभागसे पूर्वक्रमरूपसे सृष्टिकरके वेदमें कही रीतिके अनुसार विभागादि किये ॥ २७ ॥

केषामित्यत आह—

ग्रहनक्षत्रताराणां भूमेर्विश्वस्य वा विभुः ॥
देवासुरमनुष्याणां सिद्धानां च यथाक्रमम् २८ ॥

विभुर्नियोजनसमर्थो ब्रह्मा ग्रहनक्षत्रयोर्बिम्बानां पृथिव्यास्त्रैलोक्यस्य । वाकारः समुच्चये । आकाशेऽवस्थानं कृतवान् । तत्र ग्रहनक्षत्राणां यथाकालमनियतावस्थानम् । पृथिव्यास्तु नियतावस्थानम् । पृथिव्यां तु त्रैलोक्यस्य यथादेशमवस्थानम् । तत्र यथाक्रमं यथायोग्यं देवासुरमनुष्याणां सिद्धानाम । चः समुच्चये । अवस्थानं यथादेशं कृतवान् ॥ २८ ॥

भा० टी०-अणिमादिगुणसम्पन्न ब्रह्माजीने ग्रह नक्षत्र ताराओंको, पृथ्वीको और विश्वको तथा देवासुर सिद्धादिको तिन२के वियोजित क्रमसे स्थित कराया २८

ननु सर्वत्राकाशस्य सत्त्वाद्ब्रह्माण्डमध्यस्थेन ब्रह्मणा ग्रहनक्षत्राणां भूमेश्चावस्थानं ब्रह्माण्डबहिराकाशे कृतमथवा ब्रह्माण्डान्तराकाशे कृतमित्यत आह-

ब्रह्माण्डमेतत्सुषिरं तत्रेदं भूर्भुवादिकम् ॥
कटाहद्वितयस्यैव सम्पुटं गोलकाकृतिः ॥ २९ ॥

एतत्प्रागुक्तं ब्रह्मणाधिष्ठितं सुवर्णाण्डं सुषिरमवकाशात्मकं तत्रावकाशे इदं जगत् भूर्भुवःस्वर्गात्मकमवस्थितं न बहिः । नन्वण्डमगोलाकारत्वेनान्तरावकाशात्मकत्वमसम्भवतीत्यत आह-कटाहद्वितयस्येति । कटाहोऽर्धगोलाकारं सावकाशं पात्रं तस्य द्वितयं द्वयं समं तस्य । एवकारो न्यूनाधिकव्यवच्छेदकार्थः । सम्पुटमाभिमुख्येन मिलितं गोलकाकृतिर्गोलाकारः स्यात् । तथाच न क्षतिः ॥ २९ ॥

भा० टी०-अवकाशयुक्त ब्रह्मांडमें भूर्भुवादि स्थित हैं । दो कटाहके सम्पुट जातिकी समान गोलाकार है ॥ २९ ॥

अथ ब्रह्माण्डान्तःपरिधिं वदंस्तदन्तर्गग्रहादिकमाकाशे यथास्थानं परिभ्रमतीति श्लोकाभ्यामाह-

ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योमकक्षाभिधीयते ॥
तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोऽधः क्रमशस्तथा ॥ ३० ॥
मन्दामरेज्यभूपुत्रसूर्यशुक्रेन्दुजेन्दवः ॥
परिभ्रमन्त्यधोऽधस्थाः सिद्धविद्याधरा घनाः ॥ ३१ ॥

ब्रह्माण्डान्तः परिधिस्तुल्यवृत्तमानं व्योमकक्षा वक्ष्यमाणाकाशकक्षोच्यते । तन्मध्ये ब्रह्माण्डमध्य आकाशे भानां नक्षत्राणां सर्वेषां सर्वतस्तुल्योर्ध्वान्तरितानां भ्रमणं भवति । तथा तुल्योर्ध्वान्तरेणाधो नक्षत्रेभ्योऽधोऽधः क्रमाच्छनिबृहस्पतिभौमार्कशुक्रबुधचन्द्रा अधस्तात्परिभ्रमन्ति । सिद्धाविद्याधराश्चाधस्थाश्चन्द्रादधस्थिता अधोऽधःक्रमेणाकाशे स्थिताः । एषां प्रवहवायावस्थानाभावाच्चन्द्रवन्न परिभ्रमः ॥ ३० ॥ ३१ ॥

भा० टी०—ब्रह्माण्डमें परिधिका नाम व्योमकक्षा है तिसमें नक्षत्रोंका भ्रमण है तिनके नीचे क्रमानुसार शनि, बृहस्पति, मंगल, शुक्र, सूर्य, बुध चन्द्रमा; भ्रमण करते हैं। तिनके नीचे सिद्ध विद्याधर गण, और सबसे नीचे समस्त मेघ स्थित हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अथ भूम्यवस्थानमाह—

मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति ॥
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥ ३२ ॥

अण्डस्य ब्रह्माण्डस्य समन्तात्सर्वप्रदेशान्मध्ये मध्यस्थाने केन्द्ररूप आकाशे भूगोलस्तिष्ठति। नन्वाकाशे निराधारवस्तुनोऽवस्थानासम्भवात्कथमवस्थितो भूमिगोल इत्यतो भूगोलविशेषणमाह—बिभ्राण इति। ब्रह्मणः परमां शक्तिं धारणात्मिकां निराधारावस्थानरूपां बिभ्राणो धारयन्। तथा च न क्षतिः। एतेन भूः किमाकारा किमाश्रयेति प्रश्नद्वयमुत्तरितम् ॥ ३२ ॥

भा० टी०—ब्रह्माकी धारणात्मिका परमाशक्तिके बलसे अण्डके सर्व प्रदेशके मध्यदेशमें व्योमके बीच भूगोल स्थित है ॥ ३२ ॥

अथ कथंचात्र सप्तपातालभूमय इति प्रश्नस्योत्तरमाह—

तदन्तरपुटाः सप्त नागासुरसमाश्रयाः ॥
दिव्यौषधिरसोपेता रम्याः पातालभूमयः ॥ ३३ ॥

तस्य भूगोलस्यांतरपुटा मध्यस्थपुटा गुहारूपाः सप्तातलवितलसुतलादिकाः पातालभूमयः पातालप्रदेशा रम्या मनोहराः संति। ननु भूगोले मनुष्यादिकमस्ति तथा तत्र के संतीत्यतस्तद्विशेषणमाह—नागासुरसमाश्रया इति। वासुकिप्रमुखादयः सर्पा दैत्या एषामाश्रयभूताः। ननु तत्र सूर्यसञ्चाराभावात्तमोमयत्वेन तत्स्थितलोकानां व्यवहारः कथं भवतीत्यतो द्वितीयं विशेषणमाह—दिव्यौषधिरसोपेता इति। दिव्या या औषधयः स्वप्रकाशास्तासां रसैर्युक्ताः। तथा च तत्प्रकाशेन व्यवहारो भवति तद्रसेन तल्लोकानां जीवनं च भवतीति भावः ॥ ३३ ॥

भा० टी०—भूगोलके अन्तमें स्थित नागासुराश्रित पातालादि ७ भूमियें स्वप्रकाश औषधियोंसे युक्त और रमणीक हैं ॥ ३३ ॥

अथ भूगोलमुक्त्वा दक्षिणोत्तरभूव्यासाधिकप्रमाणमेरोरवस्थानमाह-

अनेकरत्ननिचयो जाम्बूनदमयो गिरिः ॥
भूगोलमध्यगो मेरुरुभयत्र विनिर्गतः ॥ ३४ ॥

भूगोलमध्यगतः पर्वतो मेर्वाख्योऽनेकरत्ननिचयोऽनेकानि नानाविधानि माणिक्यवज्रादीनि तेषां निचयः समूहो यत्रासौ । जाम्बूनदमयो जाम्बूनदं । "जम्बूफलामल गलद्रसतः प्रवृत्ता जम्बूनदी रतयुता मृतभूतसुवर्णम् । जांबूनदं हि तदतः सुरसिद्धसङ्घाः शश्वत्पिबन्त्यमृतपातरसानुभावाः ॥ " इति भास्कराचार्योक्तेश्च सुवर्णं तन्मयः स्वर्णघटित उभयत्र व्यासान्तरितभूपृष्ठप्रदेशाभ्यां विनिर्गतो बहिः स्थितदण्डाकारस्वर्णाद्रिमध्ये भूगोलः प्रोतोऽस्ति । अतएव भूभृदित्यन्वर्थसंज्ञ इति तात्पर्यार्थः ॥ ३४ ॥

भा० टी०-भूगोलके मध्यगत और उभय मेरुसे निकली हुई जम्बूनदीसे शोभित विविध रत्नोंका बनाहुआ मेरु है ॥ ३४ ॥

अथ मेरोरूर्ध्वाधःप्रदेशयोर्देवादयोऽसुराश्च वसन्तीत्याह-

उपरिष्टात्स्थितास्तस्य सेन्द्रा देवा महर्षयः ॥
अधस्तादसुरास्तद्वद्द्विषन्तोऽन्योन्यमाश्रिताः ॥ ३५ ॥

उपरिष्टात्स्थितास्तस्य सेन्द्रा इंद्रसहिता देवा इंद्रादयो देवा महर्षयः । चः समुच्चयार्थोऽनुसंधेयः । स्थिताः । अधस्तान्मेरोरधःप्रदेशे । असुरा दैत्याः । तद्वत् । यथोर्ध्वभागे देवास्तद्वदित्यर्थः । आश्रिताः । ननु देवासुराश्चैकत्र कथं न स्थिता इत्यत आह-द्विषन्त इति । अन्योन्यं परस्परं द्वेषं कुर्वन्तः । तथा च देवासुरयोः परस्परं द्वेषसद्भावादेकत्रावस्थानासंभवेनोत्तमा देवास्तदूर्ध्वभागे स्थिता महर्षयश्च दैत्यभीतास्तत्रैव स्थितास्तदधोभागे तन्निकृष्टा दैत्याः स्थिता इति भावः ॥ ३५ ॥

भा० टी०-ऊपर (उत्तरदिशा) में इन्द्रादि देवता और महर्षिगण स्थित हैं । नीचे (दक्षिणमें) असुरोंका वास है । परस्परमें विद्वेष होनेके कारण दूसरी दिशामें आश्रय लिया है ॥ ३५ ॥

अथ भूगोले समुद्रावस्थानमाह-

ततःसमन्तात्परिधिः क्रमेणायं महार्णवः ॥
मेखलेव स्थितो धात्र्या देवासुरविभागकृत् ॥ ३६ ॥

दण्डाकारमेरोः सकाशादभितोऽयं प्रत्यक्षो महार्णवो महासमुद्रः क्रमेण निरन्तरालक्रमेण परिधिरूपो भूम्या मेखलेव काञ्चीरूपो देवासुरविभागकृत् देवदैत्ययोर्भूमिगोले विभागयोरवधिरेखारूप इत्यर्थः । तेन समुद्रादुत्तरं भूगोलस्यार्धं जम्बूद्वीपं देवानां समुद्राद्दक्षिणं समुद्रातिरिक्तं भूमिगोलस्यार्धं षड्द्वीपषट्समुद्रोभयात्मकं दैत्यानामिति सिद्धम् । मेरुदण्डानुरुद्धभूगोलमध्ये परिधिरूपो लवणसमुद्रोऽस्ति । उत्तरगोलार्धं दक्षिणभूगोलार्धान्तर्गतसमुद्रस्य प्रांतपरिधिस्पृष्टामिति मखेलायाः कट्यधःस्थितत्वेन तात्पर्यार्थः ॥ ३६ ॥

भा०टी०-तिसमें महासमुद्र घेरेके आकारसे मेखलाकी समान स्थित है । समुद्रने भूगोल को देवासुरभूमिमें विभाग किया है ॥ ३६ ॥

अथ समुद्रोत्तरतटे परिधिरूपे जम्बूद्वीपारम्भे चतुर्विभागे चत्वारि नगराणि संतीत्याह-

समन्तान्मेरुमध्यात्तु तुल्यभागेषु तोयधेः ॥
द्वीपेषु दिक्षु पूर्वादि नगर्यो देवनिर्मिताः ॥ ३७ ॥

मेरुमध्याद्दण्डाकारमेरोर्मध्यप्रदेशाद्भूगोलगर्भात्मकादिति त्वर्थः । समंतादभितो भूगोलपृष्ठे तोयधेः परिधिरूपसमुद्रस्य तुल्यभागेषु समभागेषु द्वीपेषु जम्बूद्वीपारम्भेषु दिक्षु चतुर्विभागेषु चतुर्दिक्षु पूर्वादिनगर्यो मेरोःपूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरदिक्क्रमेण चतुःपुर्यो देवनिर्मिता देवैः कृताः संतीति शेषः । समुद्रोत्तरतटे जम्बूद्वीपस्यादिभागरूपे तुल्यांतरेण चत्वारि नगराणि भूगोलस्य कल्पितपूर्वादिदिशासु संतीति तात्पर्यार्थः ॥ ३७ ॥

भा० टी०-मेरुमध्यप्रदेशमें घेरारूप समुद्रकी पूर्वादि चारों दिशाओंमें देवताओंकी बनाई हुई चार पुरी हैं ॥ ३७ ॥

अथासां नामानि द्वीपोत्थितस्य जम्बूद्वीपादिभागस्थितवर्पाख्यपारिभाषिकविभागेष्वित्यर्थं च श्लोकत्रयेण विशदयति-

भूवृत्तपादे पूर्वस्यां यमकोटीति विश्रुता ॥

भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्राकारतोरणा ॥ ३८ ॥
याम्यायां भारते वर्षे लंका तद्वन्महापुरी ॥
पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता ॥ ३९ ॥
उदक्सिद्धपुरी नाम कुरुवर्षे प्रकीर्तिता ॥
तस्यां सिद्धा महात्मानो निवसन्ति गतव्यथाः ॥ ४० ॥

भूगोल उभयत्र दण्डाकारो मेरुर्यत्र निर्गतस्तत्स्थानाभ्याम् । वृत्ताकारसूत्रेणोर्ध्वाधरेण भूगोलस्य खण्डद्वयं पूर्वापरं तिर्यग्वृत्ताकारं सूत्रेणोर्ध्वाधोभूमेः खण्डद्वयं तेन भूगोलेच प्राकाराश्चत्वारो भूम्यंशास्तत्रोर्ध्वस्थपूर्वव्रप्रे भूम्यां यः समुद्रपरिधिस्तस्य चतुर्थांशे भद्राश्वसंज्ञकवर्षे पूर्वस्मिन्नूर्ध्वाधःशकलसन्धौ सुवर्णघटिताः प्रासादास्तोरणानि च यस्यामेतादृशी पुरी यमकोटीति संज्ञाया विश्रुता विख्याता याम्यायामूर्ध्वशकलद्वयसंधौ मेरुस्तस्य दक्षिणत्वाद्भरतसञ्ज्ञवर्षे लंकासञ्ज्ञा महानगरी तद्वत् स्वर्णप्राकारतोरणा विश्रुतेत्यर्थः । पश्चिमे पश्चिमशकलाधःस्थशकलसन्धौ केतुमालसंज्ञे वर्षे रोमकसंज्ञा नगरी उक्ता। उदक् । अधःशकलद्वयसन्धौ कुरुसञ्ज्ञकवर्षे सिद्धपुरीनाम नगरी प्रोक्ता । अस्याः पुर्याः सिद्धपुरीत्वमन्वर्थमित्याह–तस्यामिति । सिद्धपुर्यां सिद्धा योगाभ्यासका अस्मदादिभ्यो महानुत्कृष्ट आत्मा येषां ते गतव्यथा दुःखरहिता निरन्तरा वसन्ति ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

भा० टी०–भूवृत्तके चतुर्थांशसे पूर्वदेशमें भद्राश्व वर्ष है. तिसमें यमकोटि पुरी है कहते हैं कि यह सुवर्णकी भींत और तोरणोंसे वेष्टित है । दक्षिणदिशामें भारतवर्ष है; तिसके मध्यमें लंका महापुरी है पश्चिमके बीच केतुमालवर्षमें रोमक नगरी है । उत्तरमें कुरुवर्ष पुरीके बीच सिद्धपुरी स्थित है, तहां सिद्ध महात्मालोग सब कष्टोंसे छुटे हुए वास करते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अथोक्तानां चतुर्णां पुराणां परस्परमन्तरालमव्यवहितं मेरोरासामन्तरंचाह–

भूवृत्तपादविवरास्ताश्चान्योन्यं प्रतिष्ठिताः ॥
ताभ्यश्चोत्तरगो मेरुस्तावानेव सुराश्रयः ॥ ४१ ॥

१ ताभ्यश्चोत्तरतो मेरुरिति वा पाठः ।

ता उक्तनगर्योऽन्योन्यं परस्परं भूवृत्तपादविवरा भूगोलवृत्तपरिधिचतुर्थांशान्तरालाः प्रतिष्ठिताः सन्तीत्यर्थः । चकारः पूर्वोक्तेन समुच्चयार्थकः । ताभ्य उक्तपुरीभ्यः सकाशादुत्तरदिक्स्थो मेरुः पूर्वोक्तः सुराश्रयः देवैरधिष्ठितस्तावान्भूपरिधिचतुर्थांशान्तरेण स्थितः । एवकारो न्यूनाधिकव्यवच्छेदार्थः । चकारः श्लोकपूर्वार्धेन समुच्चयार्थः ॥ ४१ ॥

भा० टी०–नगरियें भूवृत्तके चतुर्थांशमें परस्परके अन्तरमें स्थित हैं । तिनसे तिनकी बराबर उत्तरदेशमें वह मेरुपर्वत है जिसपर देवतालोग रहते हैं ॥ ४१ ॥

अथ तेषां पुराणां निरक्षत्वमस्तीत्याह–

तासामुपरिगो याति विषुवस्थो दिवाकरः ॥
न तासु विषुवच्छाया नाक्षस्योन्नतिरिष्यते ॥ ४२ ॥

तासामुक्तनगरीणां विषुवस्थो विषुवद्वृत्तस्थो यद्दिने समरात्रिन्दिवं तद्दिने यन्मार्गे न भ्रमति तद्विषुवद्वृत्तं तत्रस्थ इत्यर्थः । सूर्य उपरिगः सन्याति भ्रमति । अतः कारणात्तासु नगरीषु विषुवच्छायाक्षभा न भवति तन्नगराणां विषुवद्वृत्ताभिन्नपूर्वापरवृत्तसद्भावात् । तत्रस्थसूर्यमध्याह्ने छायाभावोपलम्भात् । अतएव तेषु नगरेषु अक्षध्रुवस्योन्नतिमुच्चताक्षांशरूपाय नेष्यते नांगीक्रियते अक्षांशाभावान्निरक्षदेशत्वं तेषां सिद्धमिति भावः ॥ ४२ ॥

भा० टी०–विषुवत्स्थित सूर्य तिनसे ऊपरको गमन करते हैं । इस कारण तहांपर न विषुवच्छाया है न अक्षोन्नति है ॥ ४२ ॥

अथ मेरावुक्तपुरीषु च क्रमेण लम्बांशाक्षांशाभावावुपपत्त्या प्रतिपादयिषुस्तयोः प्रथमं ध्रुवस्थितिमाह–

मेरोरुभयतो मध्ये ध्रुवतारे नभःस्थिते ॥
निरक्षदेशसंस्थानामुभये क्षितिजाश्रये ॥ ४३ ॥

मेरोरुभयतो दक्षिणोत्तराग्रयोराकाशस्थिते ध्रुवतारे दक्षिणोत्तरे क्रमेण मध्य आकाशमध्ये भवतः । निरक्षदेशसंस्थानां प्रागुक्तनगरस्थितमनुष्याणामुभये दक्षिणोत्तरे ध्रुवतारे क्षितिजाश्रये तद्भूगर्भक्षितिजवृत्तस्थे भवत इत्यर्थः ॥ ४३ ॥

भा० टी०-दोनों मेरुके मध्य आकाशमें दक्षिण और उत्तरमें दो ध्रुवतारे स्थित हैं। निरक्षदेशमें स्थित होनेके कारण दोनों क्षितिज रेखामें स्थित हैं ॥ ४३ ॥

अथात एव तेष्वक्षांशाभावलम्बांशपरमत्वमिति वदन्मेरावक्षांशपरमत्वमित्याह-

अतो नाक्षोच्छ्रयस्तासु ध्रुवयोः क्षितिजस्थयोः ॥
नवतिर्लम्बकांशास्तु मेरावक्षांशकास्तथा ॥ ४४ ॥

तासूक्तनगरीषु अत उभये क्षितिजाश्रये इतिकारणात्। अक्षोच्छ्रयो ध्रुवौच्च्यं न। तथा च क्षितिजाद्ध्रुवौच्च्यमक्षांशा इति तदभावात्तदभाव इति भावः। तुकारात्तन्नगरीषु ध्रुवयोः क्षितिजस्थयोः। सतोर्लम्बांशा नवतिः शून्याक्षांशोननवतेर्लम्बांशत्वात्। खमध्याद्ध्रुवयोः क्षितिजस्य लम्बांशस्वरूपत्वाच्च मेरावक्षांशास्तथा नवतिः। ध्रुवस्य परमोच्चत्वात्। यथा निरक्षदेशेऽक्षांशाभावाल्लम्बांशाः परमास्तथा मेरावक्षांशपरमत्वाल्लम्बांशाभाव इत्यर्थसिद्धम्। एतेन "पुरान्तरं चेदिदमुत्तरं स्यात्तदक्षविश्लेषलवैस्तदा किम्। चक्रांशकैरित्यनुपातयुक्त्या युक्तं निरुक्तं परिधेः प्रमाणम् ॥" इति भास्कराचार्योक्तं प्रथमप्रश्नस्योत्तरं सूचितम्। स्पष्टपरिधिसाधनं च कल्पितैकमध्यस्थानानुरोधेनापचीयमानं मेरावभावात्मकं नानुपपन्नमिति च सूचितम् ॥ ४४ ॥

भा० टी०-तिसके लिये तहांपर ध्रौच्च्य नहीं है। दो ध्रुव क्षितिज गोलमें स्थित हैं इसकारण तहांके लम्बकांश ९० और मेरुके अक्षांश न०३ हैं ॥ ४४ ॥

अथाहोरात्रव्यवस्थां चेत्यादिप्रश्नोत्तरं विवक्षुर्देवासुरयोर्दिनारम्भं प्रथममाह-

मेषादौ देवभागस्थे देवानां याति दर्शनम् ॥
असुराणां तुलादौ तु सूर्यस्तद्भागसंचरः ॥ ४५ ॥

जम्बूद्वीपलक्षणसमुद्रसन्धौ परिधिवृत्तं भूगोलमध्ये तत्समसूत्रेणाकाशे वृत्तं विषुवद्वृत्तं तत्र क्रान्तिवृत्तं षड्भान्तरेण स्थानद्वये लग्नं तन्मेषतुलास्थानं प्रवहवायुना विषुवद्वृत्तमार्गे भ्रमति मेषस्थानात्कर्कादिस्थानं विषुवद्वृत्ताच्चतुर्विंशत्यंशान्त उत्तरतः। मकरादिस्थानं विषुवद्वृत्ताच्चतुर्विंशत्यंशान्तरे दक्षिणतः। तत्स्वस्थाने प्रवहवायुना भ्रमति। एवं क्रांतिवृत्तप्रदेशाः स्वस्वस्थाने प्रवहवायुना भवन्ति। तत्र मेषादौ देवभागस्थो जम्बूद्वीपं देवासुरवि-

भागकदिति पूर्वोक्तेः । तत्सम्बद्धा मेषादिकन्यांता राशय उत्तरगोलः । तत्रस्थः सूर्यो मेषादौ मेषादिप्रदेशे देवानां मेरोरुत्तराग्रवर्तिनां दर्शनं षण्मासानंतरप्रथमदर्शनं याति गच्छति । प्राप्नोतीत्यर्थः । विषुवद्वृत्तस्य तत्क्षितिजत्वात् । एवं दैत्यानां मेरोर्दक्षिणाग्रवर्त्तिनामित्यसुराणामित्युक्तेनैवोक्तम् । तद्भागसञ्चरो दैत्यभागे समुद्रादिदक्षिणविभागस्थास्तुलादिमीनान्ता राशयो दक्षिणगोलस्तत्र सञ्चरो गमनं यस्येत्येतादृशसूर्यस्तुलादिप्रदेशे तुकाराददर्शनानन्तरं प्रथमदर्शनं प्राप्नोतीत्यर्थः । तेषामपि विषुवद्वृत्तक्षितिजत्वात् ॥ ४५ ॥

भा० टी०--सूर्यमेषादि देवभागमें स्थित होनेपर देवताओंका दृश्य होता है। तुलादि असुर भागमें स्थितहो तो असुरोंका दृश्य होता है ॥ ४५ ॥

अथ प्रसङ्गाद्ग्रीष्मे तीव्रकर इत्याद्यर्धोक्तप्रश्नस्योत्तरमाह—

अत्यासन्नतया तेन ग्रीष्मे तीव्रकरा रवेः ॥
देवभागे सुराणां तु हेमन्ते मन्दतान्यथा ॥ ४६ ॥

तेन । उत्तरदक्षिणगोलयोः सूर्यस्योत्तरदक्षिणसंचाररूपकारणेनेत्यर्थः । देवभागे जम्बूद्वीपे । अत्यासन्नतया सूर्यस्यात्यन्तनिकटस्थत्वेन ग्रीष्मे ग्रीष्मर्तौ सूर्यस्य तेजोगोलकस्य किरणास्तीक्ष्णा अत्युष्णा असुराणां देवभाग इत्यस्यासन्नतया भाग इत्यस्यसमन्वयाद्दैत्यानां भागे समुद्रादिदक्षिणप्रदेशो हेमन्ते हेमन्तर्तौ तुकारात्सूर्यस्यात्युष्णाः किरणाः सूर्यस्यात्यासन्नत्वात् । अन्यथा सूर्यस्य दूरस्थत्वेन मन्दता किरणानामत्युष्णताभावः । देवभागे हेमन्तर्तौ कराणां मन्दता । अतएव तत्र शीताधिक्यं दैत्यभागे ग्रीष्मे कराणां मन्दता शीताधिक्यं च । तथाच । देवभागे दक्षिणगोले सूर्यस्य दूरस्थत्वमुत्तरगोले निकटस्थत्वं मध्याह्ननतांशानां क्रमेणाधिकाल्पत्वादिति भावः ॥ ४६ ॥

भा० टी०--इसीकारण अत्यासन्नके वशसे देवभागमें देवताओंके पक्षमें सूर्यकी किरण तीव्र होती हैं। अन्यथा हेमन्तमें मन्दताको प्राप्त करती हैं ॥ ४६ ॥

अथ मेषादौ देवभागस्य इत्युक्तं देवासुराहोरात्रकथनव्याजेन विशदयति·

देवासुरा विषुवति क्षितिजस्थं दिवाकरम् ॥
पश्यन्त्यन्योन्यमेतेषां वामसव्ये दिनक्षपे ॥ ४७ ॥

विषुवति काले देवदैत्याः सूर्यं क्षितिजस्थं पश्यन्ति । विषुवद्वृत्तस्य तयोः स्वस्थानाद्भूगोलमध्यस्थत्वेन क्षितिजत्वात् । एतेष देवदैत्यानामन्योन्यं परस्परं ये वामसव्ये अपसव्यसव्ये त क्रमेण दिनक्षपे दिवसरात्री भवतः । अयं भावः । देवानां भूमेरुत्तरभागः स्वकीयत्वात्सव्यमतो दैत्यानामपसव्यं स्वकीयत्वाभावात् । एवं दैत्यानां भूमेर्दक्षिणभागः स्वकीयत्वात्सव्यं देवानां स्वकीयत्वाभावादपसव्यमतो दैत्यानां वामसव्यभागावुत्तरदक्षिणगोलौ देवानां क्रमेण दिनरात्री । देवानां वामसव्यभागौ दक्षिणोत्तरगोलौ दैत्यानां दिनरात्री । अन्यथान्योन्यं वामसव्ये इत्यनयोः संगतार्थानुपपत्तेः । अतएव पूर्वं मेषादावित्याद्युक्तमिति ॥ ४७ ॥

भा० टी०–विषुवद्दिनमें सूर्यको देवता और असुर क्षितिजरेखामें देखते हैं । इस प्रकारसे उत्तर दक्षिण वशसे दिनरातका परस्पर उलटा फेर होता है ॥ ४७ ॥

अथ पूर्वश्लोकोत्तरार्धस्य सन्दिग्धत्वशङ्कया दिनपूर्वापरार्धकथनच्छलेन तदर्थश्लोकाभ्यां विशदयति–

मेषादावुदितः सूर्यस्त्रीन्राशीनुदगुत्तरम् ॥
सञ्चरन्प्रागहर्मध्यं पूरयेन्मेरुवासिनाम् ॥ ४८ ॥
कर्कादीन् सञ्चरंस्तद्वदह्नः पश्चार्धमेव सः ॥
तुलादींस्त्रीन्मृगादींश्च तद्वदेव सुरद्विषाम् ॥ ४९ ॥

मेषादौ विषुवद्वृत्तस्थक्रांतिवृत्तभागे रेवत्यासन्न उदितो दर्शनतां प्राप्तः सूर्य उत्तरं यथोत्तरं क्रमेणेति यावत् । त्रीन्राशीनुदगुत्तरभागस्थान्मेषवृषमिथुनान्सञ्चरन्नतिक्रामन्सन्मेरुस्थानां देवानां प्रागहर्मध्यं प्रथमं दिनस्यार्धं पूरयेत्पूर्णं करोतीत्यर्थः । मिथुनान्तेसूर्ये मेरुस्थानां मध्याह्नं स्यादिति फलितार्थः । कर्कादींस्त्रीन्राशीन्कर्कसिंहकन्यास्तद्वत्क्रमेणेत्यर्थः । अतिक्रामन्सन्स सूर्यो दिवसस्य पश्चार्द्धमपरदलम् । एवकारोऽन्ययोगव्यवच्छेदार्थः । पूरयेत् । कन्यान्ते सूर्यमेरुस्थानां सूर्यास्तो भवतीति फलितार्थः । अथ दैत्यनामाह । तुलादीनिति । सुरद्विषां मेरोर्दक्षिणाग्रवर्तिनां दैत्यानामित्यर्थः । तुलादींस्त्रीन्राशींस्तुलावृश्चिकधनु–

राख्यान् राशीन्मकरकुम्भमीनांस्तद्वत्क्रमेणातिक्रामन् सूर्यः । चकारस्तुला-मृगादिक्रमेण पूर्वापरार्धमित्यर्थकः । एवकार उक्तातिरिक्तव्यवच्छेदार्थः । दिनं पूरयतीत्यर्थः । धनुरन्ते सूर्ये दैत्यानां मध्याह्नं मीनान्ते सूर्ये सूर्यास्तो भवतीति फलितार्थः ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

भा० टी०—उत्तरमेरुवासियोंके पक्षमें मेषादिमें सूर्य होनेपर सूर्योदय ३ राशितक क्रमसेउत्तरको होताहै तब मेरुमें रहनेवाले देवोंके दिनका पूर्वार्द्ध होताहै कर्कट आदि उत्तरराशियोंमें होनेसे परार्द्ध दिन है । वैसेही तुलादि और मकरादिमें असुरोंकी पूर्व परार्द्ध दिवाहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

अथातो देवासुराणामिति प्रश्नस्योत्तरं सिद्धमित्याह—

अतो दिनक्षपे तेषामन्योन्यं हि विपर्ययात् ॥
अहोरात्रप्रमाणं च भानोर्भगणपूरणात् ॥ ५० ॥

अत उक्तकारणात्तेषां देवदैत्यानामन्योन्यं परस्परं हि निश्चयेन विपर्ययाद्व्यत्यासाद्दिनरात्री स्त इति फलितम् । एतत्फलितार्थस्तु पूर्वं बहुधोक्तः । अथ तत्कथं वा स्यात् । भानोर्भगणपूरणादिति प्रश्नस्याप्युत्तरं फलितमित्याह-अहोरात्रप्रमाणमिति । सूर्यस्य मेषादिद्वादशराशिभोगाद्देवदैत्यानामहोरात्रमानं भवति । चकारः पूर्वार्धेन समुच्चयार्थकस्तेन द्वयोः पूर्वोक्तमेकं कारणमिति स्पष्टम् ॥ ५० ॥

भा० टी०—इसलिये परस्पर उनके दिनरात अदलबदलसे हैं । सूर्यके भगणका पूरण कालही अहोरात्र है ॥ ५० ॥

अथ मेषादावुदित इत्यादिश्लोकद्वयस्य फलितार्थं तदुपपत्तिं चाह—

दिनक्षपार्धमेतेषामयनान्ते विपर्ययात् ॥
उपर्यात्मानमन्योन्यं कल्पयन्ति सुरासुराः ॥ ५१ ॥

एतेषां देवदैत्यानामयनान्तेऽयनसन्धौ विपर्ययाद्व्यत्यासाद्दिनक्षपार्धं दिनार्धं रात्र्यर्धं च भवति । यत्र देवानां मध्याह्नं रात्र्यर्धं तत्र दैत्यानां क्रमेण रात्र्यर्धमध्याह्ने यत्र च दैत्यानां मध्याह्नरात्र्यर्धे तत्र देवानां क्रमेण रात्र्यर्ध-मध्याह्ने इति फलितार्थः । अत्र हेतुमाह—उपरीति । देवदैत्या मेरोरुत्तरद-क्षिणाग्रवर्तिनोऽन्योन्यमात्मानं स्वमुपरिभागऊर्ध्वभागे कल्पयन्त्यंगीकुर्वन्ति ।

वस्तुतो भूमेर्गोलकत्वेन सर्वत्र तुल्यत्वान्निरपेक्षोर्ध्वाधोभागयोरनुपपत्तेः। तथाच देवादैत्यापेक्षयोर्ध्वस्थत्वं मन्यमाना दैत्यानधःस्थानङ्गीकुर्वन्ति। दैत्याश्च देवस्थानापेक्षयोर्ध्वस्थं मन्यमाना देवानधः कुर्वन्तीति तात्पर्यार्थः। एवं च देवदैत्ययोर्विपरीतावस्थानाद्दिनरात्र्योर्वैपरीत्यं युक्तमेवेति भावः॥५१॥

भा० टी०-दिवार्द्ध और रात्र्यर्द्ध याम्योत्तर अयनान्तर्मे होताहै। सुरासुरका विपरीत भावसे हुआ करताहै। और वे अपने २ स्थानको ऊपर समझते हैं॥ ५१॥

अथ देवदैत्ययोरूर्ध्वाधोरीतिमन्यत्रापि सदृष्टान्तमतिदिशति-

अन्येऽपि समसूत्रस्था मन्यन्तेऽधः परस्परम्॥
भद्राश्वकेतुमालस्था लङ्कासिद्धपुराश्रिताः॥ ५२॥

अन्ये देवदैत्यभिन्ना भूगोलस्थाः। अपिशब्दो देवदैत्ययोः समुच्चयार्थकः। समसूत्रस्था भूव्यासान्तरिता नराः परस्परमधो मन्यन्ते। तत्रोदाहरति। भद्राश्वकेतुमालस्था इति। भद्राश्वकेतुमालशब्दौ स्वस्यान्तर्गतयमकोटिरोमकनगरविशेषाभिधायकौ स्पष्टं भूव्यासान्तरस्थत्वमंगीकरोतु यथाश्रुतं परस्परमधो मन्यन्ते तुर्यचरणस्तु व्यक्त एव॥ ५२॥

भा० टी०-ऐसेही समसूत्रवाले गण परस्परको नीचे समझते हैं। जैसे भद्राश्व और केतुमाल अथवा लंका और सिद्धपुरवासी समसूत्रवाले हैं॥ ५२॥

अथोक्तं काल्पनिकमेवेति द्रढयन्नाह-

सर्वत्रैव महीगोले स्वस्थानमुपरि स्थितम्॥
मन्यन्ते खे यतो गोलस्तस्य क्वोर्ध्वं क्वाप्यधः॥ ५३॥

भूगोले सर्वत्र सर्वप्रदेशेषु मध्ये स्वस्थानं निजाधिष्ठितस्थानमूर्ध्वस्थितं तदधिष्ठिता मनुष्याः स्वाभिमानेनाङ्गीकुर्युः। अतः कारणाद्भूगोले सर्व एवोर्ध्वस्थाः। अधःस्थास्तु न भवन्त्येव। स्वापेक्षयोर्ध्वाधःस्थत्वं न वस्तुत इति तत्त्वम्। अन्यथाधःस्थत्वेन पतनशङ्कया भूगोले मनुष्याद्यवस्थानानुपपत्तेः। अत्र कारणमाह-ख इति। यतः कारणात् खे ब्रह्माण्डाकाशमध्यभागे भूगोलोऽस्ति। तथाच भूगोलादभितस्तुल्यत्वाद्भूगोले तत्त्वतयोर्ध्वाधोभागादेरसम्भव इति भावः। स्वाभिप्रायं स्पष्टयति-तस्येति। भूगोलस्याकाशमध्यस्थस्य समन्तादाकाशे क्व कस्मिन् भागे ऊर्ध्वमूर्ध्वत्वम्। कस्मिन् भागे। वा स-

सुच्चये । अधोऽधस्त्वम् । अपिरूर्ध्वत्वेन समुच्चयार्थकः । तथा च समन्तादाकाशस्य तुल्यत्वेन भूमेरूर्ध्वाधोभागौ निर्वचनीकर्तुमशक्यौ याभ्यामूर्ध्वाधोलोकानियताः स्युरिति भूमेरूर्ध्वाधोभागाद्यसम्भवादिति भावः ॥ ५३ ॥

भा० टी०—पृथ्वीके गोल होनेसे सर्वत्र अपने २ स्थानको ऊपर स्थितहुआ समझते हैं शून्य मध्यस्थित गोलमें नीचाही क्या है ? और उसमें ऊंचाईही कहां है ? ॥ ५३ ॥

नन्वियं भूः समादर्शाकारा प्रत्यक्षा कथं गोलाकारेत्यत आह—

अल्पकायतया लोकाः स्वात्स्थानात्सर्वतो मुखम् ॥
पश्यन्ति वृत्तामप्येतां चक्राकारां वसुन्धराम् ॥ ५४ ॥

जनाः स्वाधिष्ठितप्रदेशात् सर्वतः सर्वदिक्षु । अभिमुखं वृत्तां गोलाकारामेतां प्रत्यक्षां पृथ्वीं चक्राकारां मण्डलाकारां समां पश्यन्ति । एवकारार्थेऽपिशब्दः । तेन भूमेर्वस्तुतो गोलाकारत्वेऽपि तदाकारेणादर्शनं मुकुराकारतया दर्शनं च न विरुद्धम् । अत्र हेतुमाह-अल्पकायतयेति । ह्रस्वशरीरत्वेनेत्यर्थः । तथाच महतीभस्तत्पृष्ठस्थस्य मनुष्यस्यातिह्रस्वस्याल्पदृष्टिप्रचाराद्गोलाकारतया न भासते किन्तु सममण्डलतया भासते गोलवृत्तशतांशस्य समत्वेन भानात् । अन्यथा प्रथमज्याचापसमत्वानुपपत्तिरिति भावः ॥ ५४ ॥

भा० टी०—छोटे शरीरवाले होनेसे लोग चारोंओर इस पृथ्वीको गोलाकाररूपसे देखते हैं ॥ ५४ ॥

अथ निरक्षादिदेशेषु मेरुव्यतिरिक्तान्यदेशेषु दिनरात्र्योर्मानं विवक्षुर्मेरोरग्रभागयोर्निरक्षदेशेषु भचक्रभ्रमणमाह—

सव्यं भ्रमति देवानामपसव्यं सुरद्विषाम् ॥
उपरिष्टाद्भगोलोऽयं व्यक्षे पश्चान्मुखः सदा ॥५५॥

अयं प्रत्यक्षो भगोलो नक्षत्राधिष्ठिजमूर्तगोलो देवानां मेरोरुत्तराग्रवर्तिनां सव्यम् । पूर्वादिकक्रममार्गेणेत्यर्थः । भ्रमति भ्रमपरिवर्तं करोतीत्यर्थः । दैत्यानां मेरोर्दक्षिणाग्रवर्तिनामपसव्यं पूर्वादिदिग्व्युत्क्रममार्गेण । पूर्वोत्तरपश्चिमदक्षिणक्रमेणेत्यर्थः । नक्षत्राधिष्ठितगोले भ्रमति । व्यक्षे निरक्षदेशेषु ।

जात्यभिप्रायेणैकवचनम् । उपरिष्टान्मस्तकोर्ध्वमध्यभागो भगोलः पश्चान्मुखः पश्चिमदिगभिमुखः सदा नित्यं परिभ्रमति । भगोलस्य ध्रुवमध्यस्थत्वेन भ्रमणात् । तयोस्तत्र क्षितिजवृत्तस्थत्वाच्च ॥ ५५ ॥

भा० टी०–यह भूगोल देवताओंके निकट सव्यादिमें (दक्षिणसेवाममें) और असुरोंके निकट अपसव्यादिमें और निरक्षमनुष्योंके निकट मस्तकोर्ध्व मध्यभागमें पश्चिम दिशामें भ्रमण करता है ॥ ५५ ॥

अथ निरक्षे दिनरात्र्योर्मानं कथयन्नन्यत्रापि ततो न्यूनाधिकं मानं भवतीत्याह–

अतस्तत्र दिनं त्रिंशन्नाडिकं शर्वरी तथा ॥
हानिवृद्धी सदा वामं सुरासुरविभागयोः ॥ ५६ ॥

अतो निरक्षे मस्तकोर्ध्वंभगोलो भ्रमतीति कारणात् तत्र निरक्षदेशे त्रिंशन्नाडिकं त्रिंशद्घटीमितं दिनं स्यात् । शर्वरी रात्रिस्तथा त्रिंशद्घटीपरिमिता स्यात् । तत् क्षितिजवृत्तस्य ध्रुवद्वयसंलग्नतया गोलमध्यस्थत्वाद्दिनरात्र्योस्तुल्यत्वं युक्तमेवेति भावः । सुरासुरविभागयोर्जम्बूद्वीपसमुद्रादिदक्षिणदेशयोः सदा विषुवत्क्रमणातिरिक्तकाले क्षयवृद्धी दिनरात्र्योः प्रत्येकं वामं व्यस्तं यथा स्यात् तथा ज्ञेयम् । एतदुक्तं भवति । जम्बूद्वीपे दिनह्रासे रात्रिवृद्धिस्तदा दक्षिणदेशे दिनरात्र्योः क्रमेण वृद्धिहानी । जम्बूद्वीपे दिनवृद्धौ रात्रिहानिस्तदा दक्षिणदेशे दिनरात्र्योः क्रमेण हानिवृद्धी । एवं दक्षिणदेशे हानिवृद्ध्योर्जम्बूद्वीपे वृद्धिहानी दिने रात्रौ वा यथायोग्यमिति । अत्रोपपत्तिः । तत् क्षितिजवृत्तस्य ध्रुवसम्बन्धभावेन गोलमध्यस्थत्वाभावाद्दिनरात्र्योः सदा विषुवद्दिनव्यतिरिक्तेन तुल्यत्वं किन्तु न्यूनाधिकत्वमहोरात्रस्य षष्टिघटिकात्मकत्वादिति ॥ ५६ ॥

भा० टी०–निरक्षदेशमें सदा तीस घडीका दिन और ३० हीकी रात होती है । सुरासुरविभागमें दिनरातके विपरीतरूपसे हानि वृद्धि होती है ॥ ५६ ॥

अथै तत् श्लोकोत्तरार्द्धार्थं श्लोकाभ्यां विशदयति–

मेषादौ तु सदा[1] वृद्धिरुदगुत्तरतोऽधिका ॥

---

१ मेषादौ प्रत्यहम् इति वा पाठः ।

देवांशे च क्षपाहानिर्विपरीतं तथा सुरे ॥ ५७ ॥
तुलादौ द्युनिशोर्वामं क्षयवृद्धी तयोरुभे ॥
देशक्रान्तिवशान्नित्यं तद्विज्ञानं परोदितम् ॥ ५८ ॥

मेषादौ षड्भ उदगुत्तरगोले सूर्ये सति । उत्तरतो यथोत्तरं सदा यावदुत्तरगोले देवांशे जम्बूद्वीपेऽधिका यथोत्तरमधिका वृद्धिर्निरक्षदेशीयदिने तुकाराद्यथोत्तरं सूर्यस्योत्तरगमने यथोत्तरं दिने वृद्धिः परमोत्तरगमनात् परावर्तते । यथोत्तरं न्यूनावृद्धिरित्यर्थः । क्षपाहानी रात्रेरपचयः । चः समुच्चये। आसुरे समुद्रादिदक्षिणभागे तथा दिनरात्र्योः क्षयवृद्धी विपरीतं व्यस्तम् । दिने हानी रात्रौ वृद्धिरित्यर्थः । तुलादौ षड्भे दक्षिणगोले सूर्ये सति तयोर्जम्बूद्वीपससुद्रादिदक्षिणभागयोर्दिनरात्र्योरुभे द्वे क्षयवृद्धी उपचयापचयौ वामं व्यस्तम् । अयमर्थः । जम्बूद्वीपे दिनरात्र्योरुत्तरगोलस्थवृद्धिक्षयक्रमेण क्षयवृद्धी स्तः । समुद्रादिदक्षिणभागे दिनरात्र्योर्वृद्धिक्षयौ स्त इति । ननु क्षयवृद्धयोः कियन्मितत्वमित्यतः पूर्वोक्तं स्मारयति—देशक्रान्तिवशादिति । तद्विज्ञानं तयोः क्षयवृद्धयोर्ज्ञानं संख्याज्ञानं नित्यं प्रत्यहं देशक्रान्तिवशात् । देशपलभाक्रान्तिरेतदुभयानुरोधात्पुरा पूर्वखण्डस्पष्टाधिकारे "क्रांतिज्या विषुवद्भाघ्नी क्षितिज्या द्वादशोद्धृता । त्रिज्यागुणाहोरात्रार्धकर्णाप्ता चरजासवः । तत्कासुकम्" इत्यनेन दिनरात्र्योरर्धमुक्तम् । तद्द्विगुणं दिनरात्र्योरित्यर्थसिद्धम् । अत्रोपपत्तिः । निरक्षदेशे ध्रुवद्वयलग्नं क्षितिजवृत्तं तत उत्तरभागे स्वस्थानक्षितिजं स्वभूगोलमध्यस्थमुत्तरध्रुवादधो दक्षिणध्रुवाच्चोच्चमित्यत उत्तर गोले निरक्षक्षितिजादधो दक्षिणगोल ऊर्ध्वमिति पंचदशघटिका निरक्षदेशदिनार्धं क्षितिजान्तररूपचरेण गोलक्रमेण युतहीनं दिनार्धं रात्र्यर्धं च विपरीतम् । एवं दक्षिणभागेऽभीष्टदेशे क्षितिजमुत्तरध्रुवादुन्नतं दक्षिणध्रुवान्नतमिति निरक्षक्षितिजान्निरक्षक्षितिजं गोलक्रमेणोर्ध्वाध इत्युत्तरभागाद्व्यस्तम् ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

भा० टी०–सूर्यमेषादिमें (कर्कतक) संचरण करनेमे देवांशमें क्रमानुगत दिनमान वृद्धि और रात्रिमानकी हानि होती है, किन्तु असुरांशमें विपरीत होता है ।

तुलादिमें दिवानिशि मान और क्षय वृद्धि विपर्यय होता है। क्षय देशकी क्रान्तिके वशसे जैसा होता है वही सर्वोत्तम ज्ञान पूर्वमें (२ अध्यायमें) कह आयाहूं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अथोक्तस्यावधिदेशं विवक्षुः प्रथमं तदुपयुक्तानि क्रान्त्यंशयोजनान्याह—

भूवृत्तं क्रान्तिभागघ्नं भगणांशविभाजितम् ॥
अवाप्तयोजनैरर्को व्यक्षाद्यात्युपरि स्थितः ॥ ५९ ॥

भूवृत्तं भूपरिधियोजनमानं प्रागुक्तमभीष्टक्रान्त्यंशैर्गुणितं द्वादशराशिभागैः षष्ट्यधिकशतत्रमितैर्भक्तं लब्धयोजनैः कृत्वा सूर्य उपरि आकाशे स्थितो वर्तमानो दक्षिणेत उत्तरतो वा याति गच्छति। क्रान्त्यभावे तु निरक्षदेशोपर्येव परिभ्रमति। अत्रोपपत्तिः। निरक्षदेशान्मेरुत्तरदक्षिणाग्राभिमुखं सूर्यः क्रान्त्यंशैर्गच्छति तद्योजनज्ञानं तु भगणांशैर्मेवयद्वयनिरक्षदेशस्पृष्टभूपरिधियोजनानि तदा क्रान्त्यंशैः कानीत्यनुपातेनेत्युपपन्नम् ॥ ५९ ॥

भा० टी०—भूवृत्तको (प० ५९) सूर्यक्रांतिसे गुणकरके ३६० से भागकरनेपर जो योजन संख्या होगी निरक्ष देशसे तितने योजन दूर स्थित स्थानमें सूर्य मध्याह्नके समय मस्तकपर होगा ॥ ५९ ॥

अथ दिनमानानयनगणितस्यावधिदेशज्ञानं श्लोकाभ्यामाह—

परमापक्रमादेवं योजनानि विशोधयेत् ॥
भूवृत्तपादाच्छेषाणि यानि स्युर्योजनानि तैः ॥ ६० ॥
अयनान्ते विलोमेन देवासुरविभागयोः ॥
नाडीषष्ट्या सकृदहर्निशाप्यास्मिन् सकृत्तथा ॥ ६१ ॥

परमक्रांतिभागाच्चतुर्विंशन्मितात् एवं पूर्वोक्तरीत्या योजनानि जातानि भूपरिधेः पूर्वोक्तस्य चतुर्थांशात्परिवर्जयेत्। अवशिष्टानि यानि यत्संख्यामितानि योजनानि भवन्ति तैर्योजनैर्देवासुरविभागयोर्निरक्षदेशादुत्तरदक्षिणप्रदेशयोर्यो देशौ तयोरित्यर्थः। अयनान्त उत्तरदक्षिणायनसन्धौ कर्कादिस्थे सूर्ये दक्षिणोत्तरायणसन्धौ मकरादिस्थे सूर्ये विलोमेन व्यत्यासेन सकृदेकवारं नाडीषष्ट्या घटीषष्ट्याह दिनमानं भवति। अस्मिन्नेतादृशे देशे तस्मिन्नेवायनसन्ध्यासन्ने सकृदेकवारं तथा षष्टिघटीमिता विलोमेन रात्रिर्भवति। अपि-

शब्दो दिनेन समुच्चयार्थः । एतदुक्तं भवति । कर्कादिस्थे सूर्ये निरक्षदेशादुत्तरतद्योजनान्तरितदेशे षष्टिघटीमितदिनं तदैव निरक्षदेशाद्दक्षिणतद्योजनान्तरितदेशे षष्टिघटीमिता रात्रिः । मकरादिस्थे सूर्ये तादृशोत्तरभागे षष्टिघटीमितारात्रिर्दक्षिणभागे तादृशे षष्टिमितं दिनमिति । अत्रोपपत्तिः । परमक्रान्तियोजनानि भूवृत्तचतुर्थांशयोजनेभ्यो हीनानि । निरक्षदेशात्तन्मितयोजनान्तरारितो यो दक्षिणोत्तरदेशस्तस्मान्मेरोर्दक्षिणोत्तराग्रं क्रमेण परमक्रान्तियोजनान्तरितम् । अतस्तत्र लंबांशाश्चतुर्विंशतिः पलांशाश्च षट्षष्टिरिति । तद्देशे क्रांतिवृत्तानुकारं क्षितिजमित्ययनांते पंचदशघटीमितमहोरात्रवृत्तचतुर्भागखण्डं निरक्षतद्देशक्षितिजयोरन्तरालरूपं चरमत उक्तरीत्या दिनार्धं रात्र्यर्धं वोक्तरीत्या यथायोग्यं त्रिंशत्तद्द्विगुणं षष्टिघटीमिततन्मानं गणितरीत्योपपन्नम् । युक्तं चैतत् । अयनान्ताहोरात्रवृत्तस्यैकस्य तत्क्षितिजप्रदेश एकत्रैव संलग्नत्वाद्द्विधा संलग्नत्वाभावात्प्रवहभ्रमितसूर्यपरिवर्त्तपूर्तिः षष्टिघटीभिर्दर्शन मदर्शन यथायोग्यं तद्गोलस्थित्या प्रत्यक्षसिद्धमेवेति ॥ ६०-६१

भा० टी०—सूर्यके परमापक्रमके अनुसार योजन, भूवृत्त योजन पाद्से अलग करनेपर जो योजन रहते हैं निरक्ष देशसे तितने दूर अयनान्त दिनको देवासुर विभागमें विपरीतरूपसे दिनगत ६० घटीका होता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

अथोक्तदिनरात्रिमानगणितं तदवधिदेशपर्यंतं दक्षिणोत्तरभागयोर्नाग्र—इत्याह—

तदन्तरेऽपि षष्ट्यन्ते क्षयवृद्धी अहर्निशोः ॥
परतो विपरीतोऽयं भगोलः परिवर्तते ॥ ६२ ॥

तदन्तरे निरक्षदेशोक्तावधिदेशयोरन्तरालदक्षिणोत्तरविभागदेशे षष्ट्यन्ते षष्टिघटीमध्ये क्षयवृद्धी अपचयोपचयावुक्तरीत्या दिनरात्र्योर्यथायोग्यं भवतः । परतोऽवधिदेशादग्रिमदेशे दक्षिणोत्तरे दैत्यदेवस्थाननिकटेऽयं प्रत्यक्षो भगोलो नक्षत्राद्यधिष्ठितो मूर्तो गोलो विपरीतोऽवधिदेशांतर्गतदेशसम्बंधी गणितविरुद्धः परिवर्त्तते भ्रमति तत्रोक्तरीत्या दिनरात्र्योर्वृद्धिक्षयौ न भवत इत्यर्थः । त्रिज्याधिकाराच्चरानयनानुपपत्तेः । चरस्वरूपासम्भवाच्च ॥ ६२ ॥

भा०टी०-दोनों दिशामें उस दूरताके मध्य ६० दण्डके मध्यमें दिन या रात घटता बढता है। तिससे ऊपर दोनों स्थानमें विपरीत भावसे भूगोल परिभ्रमण करता है ॥ ६२ ॥

अथ विपरीतगोलस्थितिं श्लोकाभ्यां प्रदर्शयति-

ऊने भूवृत्तपादे तु द्विज्यापक्रमयोजनैः ॥
धनुर्मृगस्थः सविता देवभागे न दृश्यते ॥ ६३ ॥
तथा च सुरभागे तु मिथुने कर्कटे स्थितः ॥
नष्टच्छाया महीवृत्तपादे दर्शनमादिशेत् ॥ ६४ ॥

द्विराशिज्याया ये क्रांत्यंशास्तेषां योजनैः पूर्वावगतैर्भूपरिधिचतुर्थांशे हीने कृते सति। तुकारान्निरक्षदेशात्तद्योजनांतरिते देशे देवभागे उत्तरभागे धनुर्मकरराशिस्थोऽर्कस्तद्देशवासिभिर्न दृश्यते। धनुर्मकरस्थेऽर्के तेषां रात्रिः सदा स्यादित्यर्थः। असुर भागे निरक्षदेशाद्दक्षिणप्रदेशे। चः समुच्चयार्थः। तुकारात्तद्योजनान्तरितप्रदेशे मिथुने कर्के कर्कराशौ स्थितोऽर्कस्तथा तद्देशवासिभिर्न दृश्यते। नष्टच्छाया महीवृत्तपादे। अभावं प्राप्ता छाया भूच्छाया यत्र तादृशे भूपरिधिचतुर्थांशे सूर्यस्य दर्शनं सदा कथयेत्। यत्र भूच्छायात्मिकरात्रिर्नास्ति तत्र दिनमित्यर्थः। तथा च निरक्षदेशात्तद्योजनान्तरितोत्तरप्रदेशे कर्कमिथुनस्थोऽर्को दृश्यते तद्योजनान्तरितदक्षिणप्रदेशे धनुर्मकरस्थोऽर्को दृश्यत इति फलितार्थः। अत एव "व्यंशयुङ्नवरसाः पलांशका यत्र तत्र विषये कदाचन। दृश्यते न मकरो न कार्मुकं किञ्च कर्किमिथुनौ सदोदितौ ॥" इति भास्कराचार्योक्तं संगच्छते ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

भा० टी०-द्विराशिके अपक्रमागत योजन भूवृत्तपादमें वियोग करनेपर जो योजन होता है, तिनात दूर देवभागमें धनु वा मृगस्थित सूर्य कभी दिखाई नहीं देता। असुरभागमें वैसेही दूरस्थानसे मिथुनकर्क स्थित सूर्य कभी दिखता नहीं। जिस स्थानमें पृथ्वीकी छाया नहीं है तहां पर सूर्यका दर्शन होता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

अथान्यत्रापि विपरीतस्थितिं श्लोकाभ्यां दर्शयति-

एकज्यापक्रमानीतैर्योजनैः परिवर्जितैः ॥
भूमिकक्षाचतुर्थांशे व्यक्षाच्छेषैस्तु योजनैः ॥ ६५ ॥

धनुर्मृगालिकुम्भेषु संस्थितोऽर्को न दृश्यते ॥
देवभागेऽसुराणां तु वृषाद्ये भचतुष्टये ॥ ६६ ॥

एकराशिज्यायाः क्रान्त्यंशेभ्यो भूपरिधिचतुर्थांशे हीने कृते सति निरक्षदेशादवशिष्टैर्योजनैः । तुकारादन्तरिते देशे देवभाग उत्तरभागे धनुर्मकरवृश्चिककुंभराशिषु स्थितः सूर्यस्तद्देशवासिभिर्न दृश्ते । असुराणां दैत्यानां निरक्षदेशात्तद्योजनान्तरितदक्षिणभागे वृषादिके राशिचतुष्टये स्थितोऽर्कस्तद्देशवासिभिर्न दृश्यते। तुकारादुत्तरभागे वृषादिचतुष्टयस्थितोऽर्कस्तद्देशवासिभिर्दृश्यते वृश्चिकादिचतुष्टयस्थितोर्को दक्षिणभागे तद्देशवासिभिर्दृश्यत इत्यर्थः । अतएव " यत्र साङ्घ्रिगजवाजिसम्मितास्यत्र वृश्चिकचतुष्टयं न च । दृश्यते च वृषभाचतुष्टयं सर्वदा समुदितं हि लक्ष्यते ॥ " इति भास्कराचर्योक्तं च संगच्छते ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

भा० टी०—एक राशिके अपक्रमगत योजन भूवृत्तपादसे घटालेनेपर जो योजन होता है तिस दूरके स्थानसे देवभागमें वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भके स्थित सूर्य नहीं दीखते तावत् स्थित असुरभागमें वृषादि चार राशिके सूर्य नहीं देखे जाते ॥ ६५॥६६॥

अथ शून्यराशिक्रान्त्यानीतयोजनेभ्योऽवगतमेर्वग्रभागयोरपि स्थितिवैलक्षण्यमाह—

मरौ मेषादिचक्रार्धे देवाः पश्यन्ति भास्करम् ॥
सकृदेवोदितं तद्वदसुराश्च तुलादिगन् ॥ ६७ ॥

मेरावुत्तराग्रावस्थिता देवा मेषादिचक्रार्धे मेषादिराशिषट्केऽवस्थितमर्कं सकृदेकवारम् । एवकारादनेकवारनिरासनिश्चयः । उदितमदर्शनानन्तरं प्रथमदर्शनविषयं निरन्तरं पश्यन्ति। असुरा मेरुदक्षिणाग्रस्था दैत्याः । चः देवैः समुच्चयार्थः। तुलादिराशिषट्कस्थं तद्वत् सकृदुदितं निरंतरं पश्यन्ति ॥ ६७॥

भा० टी०—मेरुस्थितदेवतालोग मेषादिचक्रार्द्धगत सूर्यको सदा देखते हैं और असुरलोग तुलादिगत सूर्यको तैसाही देखते हैं ॥ ६७ ॥

अथ निरक्षदेशादयनसन्धौ कियद्भिर्योजनैरूर्ध्वमर्को भवति तदाह—

भूमण्डलात्पञ्चदशे भागे देवेऽथवासुरे ॥
उपरिष्टाद्व्रजत्यर्कः सौम्ययाम्यायनान्तगः ॥ ६८ ॥

देव उत्तरभागे । अथवासुरे दक्षिणभागे । निरक्षदेशाद्भूपरिधेः पंचदशे भागे तत्फलयोजनांतरिते देशे क्रमेण सौम्ययाम्यायनान्तगउत्तरायणांतदक्षिणायनांतस्थितोऽर्क उपरिष्टादूर्ध्वं व्रजति परिभ्रमति । यथा गोलसंधौ निरक्षदेशे तथात्र भागद्वय इति फलितार्थः । अत्रोपपत्तिः । अयनांतस्थ परमक्रांतिश्चतुर्विंशत्यंशास्तद्योजनानि । 'भूवृत्तं क्रांतिभागघ्नं भगणांशविभाजितम्' इत्यत्र चतुर्विंशतिमितगुणभगणांशमितहरौ गुणेनापवर्त्य हारस्थाने पंचदशेति भूमंडलात्पंचदशे भाग इत्युक्तमुपपन्नम् ॥ ६८ ॥

भा० टी०–भूवृत्तके पंचदश भाग दूर उत्तर अयनमें देवभागमें और दक्षिणायनमें असुरभागमें सूर्य मस्तकके ऊपर होकर भ्रमण करते हैं ॥ ६८ ॥

अथ निरक्षदेशाद्भूपरिधिपञ्चदशभागपर्यन्तं सूर्यस्य दक्षिणोत्तरतो गमनमुक्त्वा तच्छायागमनं प्रतिपादयति–

तदन्तरालयोश्छाया याम्योदक्सम्भवत्यपि ॥
मेरोरभिमुखं याति परतः स्वविभागयोः ॥ ६९ ॥

तदन्तरालयोर्निरक्षदेशात्पञ्चदशभागमध्यस्थितदक्षिणोत्तरदेशयोश्छाया द्वादशांगुलशंकोर्मध्याह्नच्छायाभीष्टकालिकच्छायाग्रं वा दक्षिणाग्रमुत्तराग्रं वा संभवति । एतदुक्तं भवति । निरक्षदेशात्पंचदशभागान्तरालोत्तरदेशे मध्याह्ननतांशानां दक्षिणत्वे छायाग्रमुत्तरम् । नतांशामुत्तरत्वे छायाग्रं दक्षिणम् । एवं निरक्षदेशात्पञ्चदशभागान्तरालस्थितदक्षिणदेशे सूर्यस्योत्तरस्थत्वे छायाग्रं दक्षिणं दक्षिणस्थत्वे छायाग्रमुत्तरमिति । परतः पञ्चदशभागान्तरालदेशे स्वविभागयोर्दक्षिणोत्तरविभागयोर्मेरोरभिमुखं मेर्वर्कयोः सम्मुखं क्रमेण दक्षिणाग्रमुत्तराग्रं यथा स्यात्तथेत्यर्थः । छाया याति गच्छति । भवतीत्यर्थः । अपिशब्दः पूर्वार्धार्थेन समुच्चायर्थकः ॥ ६९ ॥

भा० टी०–इन दोनोंके मध्यस्थित स्थानमें छाया दक्षिण या उत्तरमें स्थित हो सकती इतने ऊपर अपने २ भागमें छाया मेरुके सामने पतित होती है ॥ ६९ ॥

अथ कथं पर्येति भुवनानि विभावयन्निति प्रश्नस्योत्तरं श्लोकाभ्यामाह–

भद्राश्वोपरिगः कुर्याद्भारते तूदयं रविः ॥
रात्र्यर्धं केतुमाले तु कुरावस्तमयं तदा ॥ ७० ॥

भारतादिषु वर्षेषु तद्वदेव परिभ्रमन् ॥
मध्योदयार्धरात्र्यस्तकालात्कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ ७१ ॥

भद्राश्ववर्षोपरिगतः सूर्यो भरतवर्षे स्वोदयं कुर्यात् । तुकारात् भद्राश्ववर्षे मध्याह्नं कुर्यात् । तदा तस्मिन्काले केतुमालवर्षेऽर्धरात्रं कुरौ कुरुवर्षेऽस्तमयं स्वास्तं कुर्यात् । तुकारादुक्तवर्षयोरन्तराले दिनस्य गतं शेषं वा रात्रेश्च तद्यथायोग्यं कुर्यादित्यर्थः । अतिस्थूलदेशग्रहणे यथाश्रुतमिदं भव्यं किञ्चित्सूक्ष्मदेशग्रहणे तु यमकोटिलङ्कारोमकसिद्धपुराण्यन्तर्गतानि तच्छब्दवाच्यानि ज्ञेयानि । "लङ्कापुरेऽर्कस्य यदोदयः स्यात्तदा दिनार्धं यमकोटिपुर्याम् । अधस्तदा सिद्धपुरेऽस्तकालः स्याद्रोमके रात्रिदलं तदैव ॥" इतिभास्कराचार्योक्तभूगोल उक्तनगराणां भूपरिधिचतुर्थांशान्तरत्वात्संगच्छते । अथ भारतादिषु त्रिषु वर्षसञ्ज्ञेषु भारतकेतुमालकुरुवर्षेषु तद्वद्भद्राश्ववर्षोपरिगवत् । एवकारात्तन्न्यूनाधिक्यव्यवच्छेदः । परिभ्रम-परिभ्रमेण स्वस्वाभिमतस्थानोपरि स्थितिं कुर्वन् सूर्यः प्रदक्षिणं यथा स्यात्तथा सव्यक्रमेण स्वस्थानादिक्रमेणेति यावत् । उक्तचतुर्वर्षेषु मध्योदयार्धरात्र्यस्तकालान्मध्याह्नोदयार्धरात्र्यस्तसञ्ज्ञान्कालान्कुर्यात् । एतदुक्तं भवति । भारतवर्षोपरिगतेऽर्के भारतकेतुमालकुरुभद्राश्ववर्षेषु क्रमेण मध्याह्नसूर्योदयार्धरात्रास्ताःस्युः । केतुमालवर्षोपरिगतेऽर्के केतुमालकुरुभद्राश्वभारतवर्षेषु क्रमेण मध्याह्नसूर्योदयार्धरात्रास्ताः । कुरुवर्षोपरि गतेऽर्के कुरुभद्राश्वभारतकेतुमालवर्षेषु क्रमेण मध्याह्नसूर्योदयार्धरात्रास्ता भवन्तीति ॥ ७० ॥ ७१ ॥

भा० टी०-जिस समय भद्राश्वमें मस्तकपर सूर्य होता है, तब भारतमें लंकोदयगत होता है, केतुमालमें रात्र्यर्द्ध (आधीरात) और कुरुवर्षमें अस्त प्राप्त होता है। भारतादिवर्षमें वैसेही सूर्य भ्रमणके द्वारा मध्य, उदय, आधीरात, अस्तकाल आदि करके प्रदक्षिण करते हैं ॥ ७० ॥ ७१ ॥

ननु ग्रहाणां गतिसद्भावात्प्रतिदेशं याम्योत्तरयोर्ग्रहगमनं प्रतिक्षणं च विलक्षणं भासताम् । परंतु नक्षत्राणां गत्यभावात्प्रतिक्षणभ्रमणेनक्षत्रावस्थानाभावेऽपि प्रतिदेशमेकरूपावस्थानं कुतो न । एवं ध्रुवयोः परिभ्रमस्यात्यन्ताभावात्सदा सर्वत्रैकरूपावस्थानदर्शनापत्तिश्चेत्यत आह-

ध्रुवोन्नतिर्भचक्रस्य नतिर्मेरुं प्रयास्यतः ॥
निरक्षाभिमुखं यातुर्विपरीते नतोन्नते ॥ ७२ ॥

मेरुं मेरोरुत्तराग्रं दक्षिणाग्रं वा तदभिमुखं प्रयास्यतो गच्छतः पुरुषस्य ध्रुवोन्नतिः क्रमेणोत्तरदक्षिणयोर्ध्रुवयोरौच्च्यं भवति । भचक्रस्य नक्षत्राधिष्ठितगोलमध्यभागवृत्तस्य नतिः क्रमेण दक्षिणोत्तरयोर्नतत्वं भवति। निरक्षदेशाभिमुखं गच्छतः पुरुषस्य नतोन्नते पूर्वोक्ते व्यस्ते भवतः । उत्तरभागस्थपुरुषस्य निरक्षाभिमुखं गच्छतः पूर्वोक्तस्थानापेक्षयोत्तरध्रुवस्य नतत्वं पूर्वस्थानापेक्षया भचक्रस्योन्नतत्वम् । एवं दक्षिणभागस्थपुरुषस्य निरक्षाभिमुखं गच्छतः पूर्वस्थानापेक्षया दक्षिणध्रुवस्य नतत्वं भचक्रस्योन्नतत्वमिति ॥७२॥

भा० टी०-मेरुके सामने गमन करनेसे क्रमानुसार ध्रुवकी उन्नति और भचक्रकी नति दिखाई देती है और निरक्षके सामने गमन करनेसे विपरीत दिखाई देता है अर्थात् ध्रुवकी नति और भचक्रकी उन्नति दिखाई देती है ॥ ७२ ॥

अथ कुत एवमित्यतः 'कथं पर्येति भगणः सग्रहोऽयं किमाश्रयः' इति प्रश्नस्योत्तरं भचक्रभ्रमणवस्तुस्थितिमाह-

भचक्रं ध्रुवयोर्बद्धमाक्षिप्तं प्रवहानिलैः ॥
पर्येत्यजस्रं तन्नद्धा ग्रहकक्षा यथाक्रमम् ॥ ७३ ॥

भचक्रं नक्षत्राधिष्ठितमूर्तगोलरूपं ध्रुवयोर्दक्षिणोत्तरस्थिरतारयोर्बद्धं ब्रह्मणा निबद्धं नियतवायुगतिना गोलाकारेण प्रतिबद्धं प्रवहानिलैः प्रवाहवाय्वंशैः स्वस्वस्थानस्थैराक्षिप्तं स्वस्वस्थानाभिघातं प्राप्तं सदजस्रं निरन्तरं पर्येति । पश्चिमाभिमुखं भ्रमतीत्यर्थः । ननु नक्षत्रचक्रं वायुना भ्रमति । ग्रहास्त्वधोऽधः स्थाः सम्बन्धाभावात्कथं भ्रमन्तीत्यत आह-तन्नद्धा इति । ग्रहाणां शन्यादीनां कक्षा मार्गा वाय्वंशरूपा भचक्रान्तर्गताकाशस्था यथाक्रममधोऽधस्तन्नद्धा महाप्रवहवायुगोलस्थापितभचक्रे वायुसूत्रेण निबद्धाः अतो भचक्रेण सह भ्रमन्ति । तत्रस्था ग्रहा अपि भ्रमन्तीति किं चित्रम् । तथा च प्रवहवायुगोलमध्यस्थविषुवद्वृत्तपूर्वापरनिरक्षदेशे ध्रुवयोः क्षितिजस्थत्वाद्भचक्रस्य मस्तकोपरि भ्रमणाच्च मेर्वग्राभिमुखं प्रयातुर्ध्रुव उच्चो भवति । तत

आसन्नत्वाद्भचक्रं नतं भवति । ततो दूरत्वादिति सर्वं युक्तम् ॥ ७३ ॥

भा० टी०—दो ध्रुवमें बँधाहुआ भचक्र प्रवहवायुसे आक्षिप्त होकर सदा घूमता है और क्रमानुसार तिसमें बद्ध ग्रहकक्षा, भचक्रके साथ चलती रहती है ॥ ७३ ॥

अथ पित्र्यं मासेन भवतीति प्रश्नयोरुत्तरमाह—

सकृदुद्गतमब्दार्धं पश्यन्त्यर्कं सुरासुराः ॥
पितरः शशिगाः पक्षं स्वदिनं च नरा भुवि ॥ ७४ ॥

यथा देवदैत्या एकवारमुदितं सूर्यं सौरवर्षार्धपर्यन्तं पश्यन्ति । तथा पितरश्चन्द्रबिम्बगोलोर्ध्वस्थिताः । पक्षं पंचदशतिथिपर्यन्तं पश्यन्ति । नरा भूमौ स्वदिनपर्यन्तमर्कं पश्यन्त्यतः 'पित्र्यं मासेन भवति नाडीषष्ट्या तु मानुषम्' इति सर्वं युक्तमतएव "विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति । पश्यन्ति तेऽर्कं निजमस्तकोर्ध्वे दर्शे यतोऽस्माद्द्युदलं तदैषाम् । भार्धान्तरत्वान्न विधोरधःस्थं तस्मान्निशीथः खलु पौर्णमास्याम् । कृष्णे रविः पक्षदलेऽभ्युदेति शुक्लेऽस्तमेत्यर्थत एव सिद्धम् ॥" इतिभास्कराचार्येण विस्तार्योक्तं संगच्छते ॥ ७४ ॥

भा० टी०—देवता और असुरलोग जैसे एकवार उदय हुए सूर्यको ६ मासपर्यन्त देखते हैं । पितृगण चन्द्रस्थित होनेका कारण पक्षभरतक और पृथ्वीके आदमी सारे दिन सूर्यको देखते हैं ॥ ७४ ॥

अथ प्रसंगादूर्ध्वस्थस्याल्पभगणानामधः स्थस्याधिकभगणानां युक्त्या प्रतिपादनार्थं प्रथमं कक्षाया ऊर्ध्वाधःक्रमेण महदल्पत्वं तत्रस्थभागानां महदल्पप्रदेशत्वं चाह—

उपरिस्थस्य महती कक्षाल्पाधः स्थितस्य च ॥
महत्या कक्षया भागा महान्तोऽल्पास्तथाल्पया ॥ ७५ ॥

ऊर्ध्वस्थग्रहस्य कक्षा वायुवृत्तमार्गरूपा महती महापरिधिप्रमाणा । अधःस्थस्य ग्रहस्य कक्षाल्पाल्पपरिधिप्रमाणा । चो निश्चयार्थे । लघुकक्षाणां महाकक्षान्तर्गतत्वेन महाकक्षाणां चान्तर्गतलघुकक्षात्वेनोर्ध्वाधःस्थयोर्महदल्पपरिधिके कक्षे । अन्यथोक्तस्वरूपानुपपत्तेः । एवं महति वृत्तपरिध्यो द्वादशराशिभागानां समत्वेनाङ्कने भागा एकैकभागप्रदेशा महत्या कक्षया

कृत्वा महान्तो बहुस्थलात्मका लघुनि वृत्ते तदङ्कने तथा भागा अल्पया कक्षया कृत्वाल्पा अल्पस्थलात्मकाः क्रमेणैकैकभागप्रमाणमधिकाल्पं न समं चक्रांशपूर्त्यनुपपत्तेरिति तात्पर्यम् ॥ ७५ ॥

भा० टी०–ऊपर स्थितहुई कक्षा बडी है नीचे स्थित हुई कक्षा अल्प है, तिस-कारणसे कक्षागत अंश बृहत् और अल्प होते हैं ॥ ७५ ॥

अथोर्ध्वाधः क्रमेण ग्रहभगणभोगकालयोर्महदल्पत्वमाह–

कालेनाल्पेन भगणं भुङ्क्तेऽल्पभ्रमणाश्रितः ॥
ग्रहः कालेन महता मण्डले महति भ्रमन् ॥ ७६ ॥

अल्पभ्रमणाश्रितः । अल्पभ्रमणं परिधिमानं यस्याः साल्पभ्रमणाधःस्थ कक्षा तत्स्थो ग्रहोऽल्पेन समयेन भगणं द्वादशराश्यात्मकं भुङ्क्तेऽतिक्रमते । महति मण्डले । ऊर्ध्वस्थकक्षायामित्यर्थः । भ्रमन्गच्छन्महता बहुना समयेन द्वादशराशीन्भुंक्ते । वक्ष्यमाणयोजनगतेरभिन्नत्वात् ॥ ७६ ॥

भा० टी०–अल्पकक्षाश्रित ग्रह अल्पकालमें भगणको भोग करता है । और महत्कक्षास्थित ग्रह दीर्घकालमें भोग करता है ॥ ७६ ॥

अथात एवोर्ध्वाधः क्रमेण ग्रहयोर्भगणास्तुल्यकालेल्पा बहवो भवन्तीति सोदाहरणमाह–

स्वल्पयातो बहून्भुक्ते भगणाञ्छीतदीधितिः ॥
महत्या कक्षया गच्छंस्ततः स्वल्पं शनैश्चरः ॥ ७७ ॥

स्वल्पप्रमाणया कक्षया । तुकारादतिक्रामंश्चंद्रो बहुप्रमाणान्भगणान्बहु-वारं द्वादशराशिनित्यर्थः । भुंक्ते । महाप्रमाणया कक्षया गच्छञ्छनिस्तत-श्चन्द्रात्स्वल्पं भगणमल्पप्रमाणान्भगणान् । जात्यभिप्रायेणैकवचनम् । अल्प-वारं द्वादशराशीन्भुंक्ते । अतएव शनैश्चर इति ॥ ७७ ॥

भा० टी०–एक समयके मध्यमें स्वल्प कक्षागत चंद्रमा बहुतसे भगण भोगता है; परंतु शनिकी कक्षाके महत्त्ववशसे भगण अल्प होते हैं ॥ ७७ ॥

अथ 'दिनाब्दमासहोराणामधिपा न समाः कुतः' इति प्रश्नस्योत्तरं श्लोकाभ्यामाह–

मंदादधः क्रमेण स्युश्चतुर्था दिवसाधिपाः ॥

वर्षाधिपतयस्तद्वत्तृतीयाश्च प्रकीर्त्तिताः ॥ ७८ ॥
ऊर्ध्वक्रमेण शशिनो मासानामधिपाः स्मृताः ॥
होरेशाः सूर्यतनयादधोऽधः क्रमतस्तथा ॥ ७९ ॥

शनेः सकाशादधः कक्षाक्रमेण चतुर्थसङ्ख्याका ग्रहा दिनाधिपतयो वारेश्वरा भवन्ति । यथा शनिरविचन्द्रभौमबुधगुरुशुक्रा इति तत्क्रमः । वर्षस्य षष्ट्यधिकशतत्रयदिनात्मकस्य स्वामिनस्तद्वन्मन्दादधःक्रमेण तृतीयसंख्याका ग्रहा उक्ताः । चः समुच्चयार्थे । तत्क्रमश्च यथा शनिभौमशुक्रचन्द्रगुरुसूर्यबुधा इति । चन्द्रात्सकाशादूर्ध्वकक्षाक्रमेण ग्रहा मासानां त्रिंशद्दिनात्मकानां स्वामिनः कथिताः । तत्क्रमश्च चन्द्रबुधशुक्ररवि भौमगुरुशनय इति । शनेः सकाशादधः क्रमशः । अधः क्रमेण होरेशाः 'होरेति लग्नं भगणस्य चार्धम्' इति पञ्चदशभागात्मकहोराणां दिने द्वादशरात्रौ द्वादशेत्यहोरात्रे चतुर्विंशतिहोराणामित्यर्थः । 'होरा सार्धा द्विनाडिका' इति षष्टिघटिकात्मकेऽहोरात्रे । चतुर्विंशतिहोराणामित्यन्ये । स्वामिनस्तथा मासेश्वरवदव्यवहिताः कथिताः । यथा तत्क्रमः शनिगुरुभौमरविशुक्रबुधचन्द्रा इति । अत्र शनेः सर्वोर्ध्वस्थत्वाच्चन्द्रस्य सर्वाधः स्थत्वात्ताभ्यामध ऊर्ध्वक्रमः क्रमेणोक्तः । अन्यग्रहस्यावधित्वाभ्युपगमे विनिगमनाविरहापत्तेः । नतु शनेराद्यावधित्वेन सृष्ट्यादौ दिनवर्षहोराणां स्वामित्वं नवा चन्द्रस्याद्यावधित्वेन सृष्ट्यादौ मासेशत्वं पूर्वखण्डोक्तानीततदीशैर्विरोधापत्तेः । अत्रोपपत्तिः । होराख्यलग्नानां क्रान्तिवृत्तेऽधःक्रमेण मेषादीनां सम्भवादूर्ध्वकक्षातोऽधःक्रमेण होरेशत्वं युक्तम् । एवमहोरात्रे चतुर्विंशतिहोराः । सप्ततष्टास्त्रयोहोरेशा गताः । चतुर्थो होरेशो द्वितीयदिनप्रारम्भे स एव प्रथमहोरेशत्वाद्द्वितीयदिनेशः । एवमुत्तरत्रापि । एवमेतद्वारक्रमेण सावनवर्षे त्रयो वारा इति पूर्ववर्षेशादग्रिमवर्षेशोऽधः कक्षाक्रमेण तृतीय उत्तरोत्तरम् । एवं सावनमासे द्वौ वारौ वारक्रमेण मासेश्वरस्याधिकाविति कक्षोर्ध्वक्रमे वारक्रमेणैकांतरितत्वात्कक्षोर्ध्वक्रमेण मासेश्वर उत्तरोत्तरमित्युपपन्नं मन्दादित्यादिश्लोकद्वयम् ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

भा० टी०-शनिसे नीचेके वृत्तमें गयाहुआ क्रमशः चौथा ग्रह दिनका स्वामी और तीसरा ग्रह वर्षाधिपती है ॥ ७८ ॥ चंद्रमासे क्रमानुसार ऊपर गयेहुए मासके स्वामी हैं । शनिसे क्रमानुसार नीचेको गयेहुए ग्रह होराधिपति हैं॥(होरा=२दंड)७९॥

अथ 'ग्रहर्क्षकक्षाः किंमात्राः' इति प्रश्नस्योत्तरं विवक्षुः प्रथमं नक्षत्राणां कक्षामानमाह-

भवेद्भकक्षा तिग्मांशोर्भ्रमणं षष्टिताडितम् ॥
सर्वोपरिष्टाद्भ्रमति योजनैस्तैर्भमण्डलम् ॥ ८० ॥

सूर्यस्य भ्रमणं कक्षापरिधिमानं योजनात्मकम् 'खखार्थैकसुरार्णवाः' इति वक्ष्यमाणं षष्ट्या गुणितं सन्नक्षत्राणां कक्षा नक्षत्राधिष्ठितगोलस्य मध्यवृत्तं स्यात् । तैर्नक्षत्रकक्षानितैर्योजनैर्भमण्डलं नक्षत्राधिष्ठितगोलमध्यवृत्तं सर्वोपरिष्टाच्चन्द्रादिसप्तग्रहेभ्यः उपरि दूरं भ्रमति भूगोलादभितः परिभ्रमति । अत्रोपपत्तिः । नक्षत्राणां गत्यभावाच्छनेरप्यत्यूर्ध्वं नक्षत्रमण्डलं तत्र सूर्यगत्या सूर्यकक्षा तदा नक्षत्रगत्यभावेऽप्येककलागतिकल्पनयानुपातान्यथानुपपत्तितया'कल्प्यो हरो रूपमहारराशेः' इतीच्छाह्रासे फलवृद्ध्यपेक्षितत्वाद्व्यस्तानुपातो लाघवात्सूर्यगतिः षष्टिकलानिता च भगवता कृता । नक्षत्रगतेरभावाच्चेति षष्टिताडितमित्युपपन्नम् ॥ ८० ॥

भा० टी०--सूर्यकी कक्षाको ६० से गुणा करनेपर भकक्षा होती है । वह सबके ऊपर भ्रमण करती है ॥ ८० ॥

अथ ग्रहकक्षाणां मानज्ञानार्थमाकाशकक्षामानम् । 'कियती तत्करप्राप्तिः ''इति प्रश्नस्योत्तरमाह-

कल्पोक्तचन्द्रभगणा गुणिताः शशिकक्षया ॥
आकाशकक्षा सा ज्ञेया करव्याप्तितया रवेः ॥ ८१ ॥

अल्पोक्तचन्द्रभगणाः। ''एवे सहस्रगुणिताः कल्पे स्युर्भगणादयः'' इत्युक्त्या युगचन्द्रभगणाः सहस्रगुणिताः कल्पचन्द्रभगणा इत्यर्थः । चन्द्रकक्षया 'खत्रयाब्धिद्विदहना' इति वक्ष्यमाणया गुणिता सा तन्मिताकाशकक्षा परिधिरूपा ज्ञेया । धीमतेतिशेषः । नन्वनन्ताकाशस्य कथं परिधिरित्यत आह-करव्याप्तिरिति । सूर्यस्य किरणप्रचारस्तथाकाशकक्षापरिमित

इत्यर्थः । तथाच यद्देशावच्छेदेन सूर्यकिरणप्रचारस्तद्देशावच्छिन्नाकाशगोलस्य ब्रह्माण्डकटाहान्तर्गतस्य परिधिमानं सम्भवत्येवेति भावः । अत्रोपपत्तिः । समनंतरमेव यद्भगणभक्ता खकक्षा तस्य कक्षा स्यादित्युक्ते भगणकक्षाघात खकक्षा सिद्धा । अतश्चन्द्रभगणकक्षयोर्घातः खकक्षातुल्य एवेति दिक् ॥८१॥

भा० टी० -एक कल्पमें चन्द्रमाके भगण चंद्रकक्षासे गुणा किये जांय तो आकाशकक्षा होती है, तितनी दूरतक सूर्यकी किरणें व्याप्त हैं ॥ ८१ ॥

अथ ग्रहाणां कक्षानयनं योजनगत्यानयनं चाह-

सैव यत्कल्पभगणैर्भक्ता तद्भ्रमणं भवेत् ॥
कुवासरैर्विभज्याह्नः सर्वेषां प्राग्गतिः स्मृता ॥ ८२ ॥

सार्ककरव्याप्तिरूपाकाशकक्षा यत्कल्पभगणैर्यस्य कल्पभगणैर्भक्ता फलं तस्य कक्षा भवेत् । एवकारो निश्चयार्थे । खकक्षाल्परविसावनैर्भक्ताप्राप्तं फलं सर्वेषामुक्तभगणसम्बन्धिनां ग्रहादीनामह्नो दिवसस्य दिनसंम्बन्धिनीत्यर्थः । प्राग्गतिर्योजनात्मिका कथिता । अत्रोपपत्तिः । कल्पभगणकक्षाघातरूपाकाशकक्षा कल्पभगणभक्ता कक्षा स्यादेव । कल्पे खकक्षामितयोजनानि ग्रहः क्रामतीति कल्परविसावनदिनैराकाशकक्षामितयोजनानि तदैकरविसावनदिनेन कानीत्यनुपातेन पूर्वगतिर्योजनात्मिका प्रत्यहं तुल्येत्युपपन्नम् ८२

भा० टी०-उस कक्षाको ग्रहोंके कल्प भगणसे भाग कियाजाय तो स्वकक्षा होगी । कक्षाको कुदिनसे भाग कियाजाय तो सबकी प्रात्यहिक प्राक्गति होगी ॥८२

अथ योजनात्मकगतेः कलात्मकगतिं स्वीयामाह-

भुक्तियोजनजा सङ्ख्या सेन्दोर्भ्रमणसङ्गुणा ॥
स्वकक्षाप्ता तु सा तस्य तिथ्याप्ता गतिलिप्तिकाः ॥ ८३ ॥

गतियोजनोत्पन्ना या संख्या सा संख्या चन्द्रस्य भ्रमणसङ्गुणा कक्षया गुणिता स्वकक्षयाप्ताभिमतग्रहस्य कक्षया भक्ता सा फलरूपा तिथ्याप्ता पञ्चदशभक्ता । तुकारात् फलं तस्याभिमतग्रहस्य गतिकला भवन्ति । अत्रोपपत्तिः । कक्षायोजनैश्चक्रकलास्तदा गतियोजनैः का इत्यनुपातेन गतिकलाः । तत्रापि 'चन्द्रकक्षा पंचदशभक्ताश्चक्रकलाः' इति चक्रकलास्वरूपं धृतमित्युपपन्नम् ॥ ८३ ॥

भा० टी०-भुक्ति योजन चन्द्र कक्षासे गुणकरके स्वकक्षासे भागकरने पर गतिकला होगी ॥ ८३ ॥

अथ किमुत्सेधा इति प्रश्नस्योत्तरमाह-

कक्षा भूकर्णगुणिता महीमण्डलभाजिता ॥
तत्कर्णा भूमिकर्णोना ग्रहौच्च्यं स्वं दलीकृताः ॥ ८४ ॥

ग्रहाणां योजनात्मिका कक्षा भूकर्णे प्रयोजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानीत्युक्तभूव्यासेन षोडशशतेन गुणिता भूपरिधिना तदवगतेन भक्ता फलं तस्याः कक्षायाः कर्णाव्यासा भवन्ति । एते भूव्यासेन हीना अर्धिताः सन्तः स्वगृहीतव्याससम्बन्धिग्रहौच्च्यं ग्रहस्योच्चता भूमेः सकाशाद्भवति । अत्रोपपत्तिः । भूपरिधिना भूव्यासस्तदाकक्षायोजनैः क इत्यनुपातेन कक्षाव्यासास्तेऽर्धिताः कक्षाव्या सार्द्धं भूगर्भकक्षापरिधिप्रदेशान्तरालरूपं भूपृष्ठात् तदन्तरज्ञानार्थं भूव्यासार्धेन हीनं भूपृष्ठात् कक्षौच्च्यं तत्र कक्षाव्यासाभव्यासोना अर्धिताः कृताः । उभयथा समत्वात् । कक्षौच्च्यमेव ग्रहौच्च्यं ग्रहस्य तत्राधिष्ठानादिति । एतेन सिद्धग्रहौच्च्येभ्यः परस्परान्तरगतज्ञानं सुगममिति । किमंतरा इति प्रश्नस्योत्तरं स्वतःसिद्धमेवेति दिक् ॥ ८४ ॥

भा० टी०-स्वकक्षाको भूकर्णसे गुणकरके भूवृत्तद्वारा भागकरनेपर स्वकक्षाकर्ण होगा तिससे भूकर्णको वियोग करके दोसे भाग करनेपर पृथ्वीसे दूरताका निर्णय हो जायगा ॥ ८४ ॥

अथोर्ध्वक्रमेण सिद्धाः कक्षा विवक्षुः प्रथमं चन्द्रस्य कक्षां बुधशीघ्रोच्चकक्षां चाह-

खत्रयाब्धिद्विदहनाः कक्षा तु हिमदीधितेः ॥
ज्ञशीघ्रस्याङ्कखद्वित्रिकृतशून्येन्दवस्ततः ॥ ८५ ॥

चन्द्रस्य कक्षा सहस्रगुणितसिद्धरामाः । तुकारादागमप्रामाण्येनांगीकार्या । अन्यथान्योन्याश्रयापत्तेस्ततश्चंद्रादूर्ध्वं बुधशीघ्रोच्चस्य कक्षा नवखदंतवेदादिशः । यद्यपि बुधशीघ्रोच्चमाकाशे प्रत्यक्षं नेति तत्कक्षोक्तिरयुक्ता तथापि बुधशीघ्रोच्चभगणानीतकक्षायां गत्यनुरोधेन चन्द्रोर्ध्वगायां बुधो भ्रमति 'पूर्वं सूर्यशुक्रेन्दुजेन्दवः' इति क्रमोक्तेः । अन्यथा भगणैक्यादेकक-

क्षायां रविबुधशुक्राणामवस्थितौ मण्डलभंगापत्तेरिति सूचनार्थमुक्ता ॥८५॥

भा० टी०—चं० ३२४०००, बु० शी० चन्द्रमे १०४३२०९, ॥ ८५ ॥

अथ शुक्रशीघ्रोच्चस्य कक्षां सूर्यबुधशुक्राणामभिन्नां कक्षां चाह-

शुक्रशीघ्रस्य सप्ताग्निरसाब्धिरसषड्यमाः ॥
ततोऽर्कबुधशुक्राणां खखार्थैकसुरार्णवाः ॥ ८६ ॥

तदूर्ध्वं शुक्रशीघ्रोच्चस्य कक्षाद्रित्र्यंगवेदषड्रसपक्षाः शुक्रावस्थानसूचनार्थमुक्ताः । ततस्तदूर्ध्वं सूर्यबुधशुक्राणां भगणैक्यादभिन्ना कक्षा खखपञ्चभूदेवाब्धयः । यद्यपि बुधशुक्रयोः सूर्याधःस्थत्वात्केवलं सूर्यकक्षैव वक्तुमुचिता तथापि कक्षयैको भगणस्तदा कल्परविसावनदिनैः खकक्षामितयोजनानि तदाहर्गणेन कानीत्यनुपातागतयोजनैः कइत्यनुपातेन सूर्यबुधशुक्राणामभिन्नत्वसिद्ध्यर्थं बुधशुक्रयोरप्युक्ता । अन्यथा समत्वा नुपपत्तेरिति ॥ ८६ ॥

भा० टी०—शु०शी०बु०शा० से २६६४६३७, । सूर्य,बु,शु, मध्य ४३३१५००॥८६

अथ भौमस्य कक्षां चन्द्रमंदोच्चस्य कक्षां चाह-

कुजस्याप्यंकशून्याङ्कषड्वदैकभुजंगमाः ॥
चन्द्रोच्चस्य कृताष्टाब्धिवसुद्वित्र्यष्टवह्नयः ॥ ८७ ॥

भौमस्य । अपिशब्दात्सूर्यादूर्ध्वकक्षा नवखनवषडिन्द्रसर्पाः । चंद्रमंदोच्चस्य कक्षा वेदाहिवेदसर्पपक्षरामनागरामाः । इयमप्याकाशे न दृश्या तथापि गतयोजनैश्चन्द्रोच्चज्ञानायोक्ता ॥ ८७ ॥

भा० टी०—मं ८=१४६९०९ । चन्द्रोच्च ३८=३२८= ४८४ ॥ ८७ ॥

अथ गुरुराह्वोः कक्षे आह-

कृतर्तुमुनिपञ्चाद्रिगुणेन्दुविषया गुरोः ॥
स्वर्भानोर्वेदतर्काष्टद्विशैलार्थखकुञ्जराः ॥ ८८ ॥

बृहस्पतेर्भौमाच्चंद्रोच्चाद्वोर्ध्वं कक्षा वेदाङ्गमुनिपञ्चस्वररामचन्द्रशराः । राहोः । कक्षा वेदाङ्गगजयमसप्तपञ्चाशीतयःाइयमदृश्यापि राहोर्गतियोजनैर्ज्ञानार्थमुक्ता । अत्रापि पातस्य चक्रशुद्धत्वमवधेयम् ॥ ८८ ॥

भा० टी०—बृह० ५१=, ३७५=,७६४ । राहु ८०, ५७२=, ८६४ ॥ ८८ ॥

अथ शनेः कक्षां नक्षत्राधिष्ठितमूर्तगोलमध्यकक्षां चाह–

पञ्चबाणाक्षिनागर्तुरसाद्र्यर्काः शनेस्ततः ॥
भानां रविखशून्यांकवसुरन्ध्रशराश्विनः ॥ ८९ ॥

ततो बृहस्पते राहोर्वोर्ध्वं शनेः कक्षा पञ्चपञ्चद्व्यष्टषड्रससप्तार्काः । नक्षत्राणां गोलमध्ये कक्षा शनेरूर्ध्वं द्वादशनवशताष्टनवतितत्त्वानि । यद्यपि 'भवेद्भकक्षा तीक्ष्णांशोर्भ्रमणं षष्टिताडितम्' इत्यनेन भकक्षाया द्वादशांतरितत्वादयुक्तत्वं तथापि सैव यत्कल्प भगणैरित्यनेन सूर्यकक्षाया उक्त्या द्वादशाधोऽवयवस्य निबन्धने त्यागेऽपि भकक्षार्थं भगवता गृहीतत्वाददोषः । एतेनाधोऽवयवस्यार्धन्यूनत्वेन त्यागोऽर्धाभ्यधिकत्वेनोर्ध्वमेकाधिकग्रहणं कक्षानिबन्धेन कृतमिति सूचितम् ॥ ८९ ॥

भा० टी०–शनि १२७ ६६८ २२५ । भकक्षा २५९ ८९० ०१२ ॥ ८९ ॥

ननु चन्द्रकक्षाया आगमनप्रामाण्येनांगीकारे सर्वकक्षाणामागमप्रामाण्यापत्त्या 'सैव यत्कल्पभगणैर्भक्ता तद्भ्रमणं भवेत्' इति कक्षानयनं व्यर्थम् । अन्यथाकाशकक्षाज्ञानासम्भवापत्तेरित्यत आकाशकक्षैवागमप्रामाण्येनांगीकार्येति वसन्ततिलकयाह–

खव्योमखत्रयखसागरषट्कनागव्योमाष्टशून्ययमरूपनगाष्टचन्द्राः ॥
ब्रह्माण्डसम्पुटपरिभ्रमणं समन्तादभ्यन्तरे दिनकरस्य कर[1]प्रसारः ९०

वेदाङ्गाष्टाशीतिनखभूसप्तधृतयः प्रयुतगुणितायोजनानि पूर्वार्धोक्तानि । ब्रह्माण्डसम्पुटपरिभ्रमणं ब्रह्माण्डगोलस्य परिधिः । कल्पभगणकक्षाहतित्वेनाकाशकक्षायाः पूर्वं स्वरूपोक्तेरिति न पौनरुक्त्यम् । अभ्यन्तरे ब्रह्मांडगोलान्तः सूर्यस्याभितः किरणानां प्रसारः सूर्यकिरणप्रचारदेशस्य परिधिस्तत्तुल्यः । एतेन ब्रह्मांडगोलान्तः परिधिर्न बाह्यइति सूचितम् ॥ ९० ॥

भा० टी०–ब्रह्माण्डकी कक्षा १८७१२०८०८६४०००००० योजन इसके मध्यमें सूर्यकी किरणोंका विस्तार है ॥ ९० ॥

अथाग्रिमग्रन्थस्यासङ्गतित्वपरिहारार्थमध्यायसमाप्तिं फक्किकयाह–

इति सूर्यसिद्धान्ते भूगोलाध्यायः ॥ १२ ॥

---

१ करप्रचारः इति वाः पाठः ।

इति भिन्नच्छन्दसा प्रारब्धप्रसंगः समाप्त इत्यर्थः। पूर्वखंडे ग्रन्थैकदेशस्याधिकारसञ्ज्ञा कृता। उत्तरखंडे ग्रन्थैकदेशस्याध्यायसंज्ञा भिन्नप्रसंगवशात्कृतेति ध्येयम्।

रंगनाथेन रचितो सूर्यसिद्धांतटिप्पणे ॥
उत्तरार्धे समाप्तोऽयं भूगोलाध्यायसंज्ञकः ॥

इति श्रीसकलगणकसार्वभौमबल्लालदैवज्ञात्मजरंगनाथविरचिते गूढार्थप्रकाशके उत्तरखंडे भूगोलाध्यायः पूर्णः ॥ १२ ॥

द्वादश अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः।

अथ पुनर्मुनीन् श्रोतॄन्प्रति श्लोकाभ्यामाह-

अथ गुप्ते शुचौ देशे स्नातः शुचिरलंकृतः ॥
सम्पूज्य भास्करं भक्त्या ग्रहान् भान्यथ गुह्यकान् ॥ १ ॥
पारम्पर्योपदेशेन यथाज्ञानं गुरोर्मुखात् ॥
आचार्यः शिष्यबोधार्थं सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥ २ ॥

अथशब्दो मङ्गलार्थः। द्वितीयोथशब्दः पूर्वोक्तानान्तर्यार्थकः। गुप्ते रहसि शुचौपवित्रे देशे स्थान आचार्यः सूर्यांशपुरुषो मयासुराध्यापकः। स्नातः कृतस्नानः शुचिः शुद्धमनाः। अलङ्कृतो हस्तकर्णकण्ठादिभूषितः। निश्चिन्तत्वद्योतकमिदं विशेषणम्। अन्यथा ग्रहा दिव्यवहारा दिव्याकुलतया मनस्थैर्यानुपपत्तेः। भास्करं श्रीसूर्यं स्वोपजीव्यं भक्त्याराध्यत्वेन ज्ञानरूपया सम्पूज्य नमस्कारस्तुतिविषयं कृत्वा ग्रहान् चन्द्रादिग्रहान्। सूर्यस्य पृथगुद्देशः प्राधान्यज्ञानार्थम्। भानि नक्षत्राणि राशीश्च गुह्यकान्यक्षादीन्क्षुद्रदेवताः सम्पूज्य। समुच्चयार्थकश्चात्रानुसन्धेयः। गुरोः सूर्यस्य मुखाद्वदनारविन्दात्। पारम्पर्योपदेशेन सूर्येण मुनीन्प्रत्युक्तं मुनिभिः सूर्यांशपुरुषं प्रत्युक्तमिति परम्परया कथनेन। वस्तुतस्तु शिष्यस्याग्रहोत्पादनार्थं ज्ञानेतिगोप्य-

त्वसूचनमेतदुक्त्या कृतम्। कथमन्यथा सूर्याज्ञतांशपुरुषो मयासुरं प्रत्यव-दद्दूरस्थमुनीन् प्रति कथन उद्यतोऽर्कः स्वांशपुरुषं प्रति कथनेऽनुद्यतः कुतः कारणाभावाच्च। यथा स्वशक्त्या यादृशं ज्ञानं पूर्वोक्तमवगतं शिष्यबोधार्थं मयासुरस्याभ्रमज्ञानोत्पादनार्थं सर्वं प्रागध्यायोक्तं प्रत्यक्षदर्शिवान् प्रत्यक्षं दर्शितवानित्यर्थः॥ १॥ २॥

भा० टी०-गुप्त, पवित्रतायुक्त स्थानमें सजकर बैठा हुआ प्रत्यक्षदर्शी आचार्य रवि, ग्रह, नक्षत्र और गुह्यक लोगोंका पूजन करनेके पीछे शिष्यपरम्पराकरके जो गुरुमुखसे सुनाया वह सब शिष्यको समझानेके लिये॥ १॥ २॥

कथं दर्शितवानिति मयासुरं प्रत्युक्तसूर्यांशपुरुषवचनस्यानुवादे सूर्यांश-पुरुषो मयासुरं प्रति गोलबन्धोद्देशं तदुपक्रमं च श्लोकाभ्यामाह–

भूभगोलस्य रचनां कुर्यादाश्चर्यकारिणीम्॥
अभीष्टं पृथिवीगोलं कारयित्वा तु दारवम्॥ ३॥
दण्डं तन्मध्यगं मेरोरुभयत्र विनिर्गतम्॥
आधारकक्षाद्वितयं कक्षा वैषुवती तथा॥ ४॥

भगोलस्य भूगोलादभितः संस्थितस्य नक्षत्राधिष्ठितगोलस्य प्रागध्यायो-र्थस्य रचनां स्थितिज्ञानार्थं दृष्टान्तात्मकगोलस्य निर्मितं सुधीर्गणको लशिल्पज्ञः कुर्यात्। ननु त्वदुक्तेन सर्वं भवतीति दृष्टान्तगोलनिबन्धनं र्थमेवेत्यत आह। आश्चर्यकारिणीमिति। उक्तप्रतीत्युद्भूताद्भुतबुद्धिजन-त्रीं तथाचोक्तेन स्वाधस्तिर्यग्भागयोर्लोकावस्थानस्य तद्भागस्थभगोलप्रदे-स्य च भूमेर्निराधारत्वादेश्च ज्ञानं मनसि सप्रतीतिकं न भवत्यतो दृष्टान्त-ले निश्चयसम्भवात्तन्निबन्धनमावश्यकमिति भावः। कथं रचनां कुर्या-त्यत आह-अभीष्टमिति। भुवो गोलमभीष्टं स्वेच्छाकल्पितपरिधिप्रमाणकं दारवं काष्ठघटितं सच्छिद्रं कारयित्वा काष्ठशिल्पज्ञद्वारा कृत्वेत्यर्थः। मेरोर-नुकल्परूपं दण्डकाष्ठं तन्मध्यगं तस्य काष्ठघटितभगोलस्य मध्ये छिद्रमध्ये शिथिलतया स्थितम्। उभयत्र भूगोलस्यव्यासप्रमाणच्छिद्रस्याग्राभ्यां बहिरित्यर्थः। विनिर्गतमेकाग्रादन्यतराग्रावशिष्टदण्डप्रदेशतुल्यं निःसृतम्।

उभयाग्राभ्यां तुल्यौ दण्डदिशौ यथा स्यातां कुर्यादित्यर्थः । भगोलनिबन्धनार्थमाधारवृत्तद्वयमाह—आधारकक्षाद्वितयमिति । भगोलनिबन्धनार्थमादावाश्रयार्थं वृत्तयोर्द्वितयमूर्द्धाधस्तिर्यगवस्थानक्रमेणैकमेकमेवं द्वयमित्यर्थः । भूगोलादुभयतस्तुल्यान्तरेण दण्डप्रदेशयोः प्रोतमेकं वृत्तं कुर्यात् । तत्तुल्यं वृत्तमपरं तदर्धच्छेदेन दण्डप्रोतं कुर्यादिति सिद्धोऽर्थः । एतद्वृत्तद्वयव्यतिरेकेण भूगोलादभितो भगोलनिबन्धनानुपपत्तेः । भगोलनिबन्धनारंभमाह—कक्षेति । वैषुवती विषुवत्संबन्धिनी कक्षा वृत्तपरिधिर्विषुवद्वृत्तमित्यर्थः । तथाधारवृत्तद्वयस्यार्धच्छेदेन भगोलमध्यवृत्तानुकल्पेन गणकेन निबद्धमित्यर्थः ॥ ३ ॥ ४ ॥

भा० टी०—काठका बना अभीष्ट (इच्छित) पृथ्वीगोल आगे करके आश्चर्यकारी भूगोल बनावे । उस गोलेके दोनों ओर निकला हुआ मेरुदण्ड, आधारकी दो कक्षा और विषुवकी कक्षा बनावे ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ मेषादिद्वादशराशीनामहोरात्रवृत्तनिबन्धनमन्यदपि श्लोकपंचकेनाह—

भगणांशाङ्गुलैः कार्या दलितैस्तिस्र एव ताः ॥
स्वाहोरात्रार्धकर्णैश्च तत्प्रमाणानुमानतः ॥ ५ ॥
क्रान्तिविक्षेपभागैश्च दलितैर्दक्षिणोत्तरैः ॥
स्वैः स्वैरपक्रमैस्तिस्रो मेषादीनामपक्रमात् ॥ ६ ॥
कक्षाः प्रकल्पयेत्ताश्च कर्कादीनां विपर्ययात् ॥
तद्वत्तिस्रस्तुलादीनां मृगादीनां विलोमतः ॥ ७ ॥
याम्यगोलाश्रिताः कार्याः कक्षाधारा द्वयोरपि ॥
याम्योदग्गोलसंस्थानां भानामभिजितस्तथा ॥ ८ ॥
सप्तर्षीणामगस्त्यस्य ब्रह्मादीनां च कल्पयेत् ॥
मध्ये वैषुवती कक्षा सर्वेषामेव संस्थिता ॥ ९ ॥

भगणांशांगुलैः द्वादशराशिभागैः षष्ट्यधिकशतत्रयपरिमितांगुलैः दलितैः समविभागेन खण्डितैरङ्कितैरित्यर्थः । ताः कक्षाः वंशशलाकावृत्तात्मिकास्तिस्रः त्रिसङ्ख्याकाः । एवकारात्तदङ्किते वृत्ते च न्यूनाधिकव्यवच्छेदः ।

शिल्पज्ञेन गोलगणितज्ञेन कार्याः । एताः पूर्वं वृत्तप्रमाणेन न कार्या इत्यभिप्रायेणाह—स्वाहोरात्रार्धकर्णैरिति । स्वशब्देन मेषादित्रिकं तस्य प्रतिराश्यहोरात्रवृत्तस्याकर्णो व्यासार्धं द्युजाताभिरित्यर्थः । चकारात्कार्याः । स्वस्वद्युज्यामितेन व्यासार्धेन मेषादित्रयाणां वृत्तत्रयं कुर्यादित्यर्थः । ननु स्पष्टाधिकारोक्ताहोरात्रार्धकर्णानयने युक्त्यभावात्तैर्वृत्तिनिर्माणं कुतः कार्यमित्यत आह-तत्प्रमाणानुमानत इति । विषुवत्कक्षाप्रमाणानुमानाद्वृत्तत्रयं कार्यम् । यथा विषुवद्वृत्तं पूर्ववृत्तसमम् । तथा तदनुरोधेन मेषान्तवृत्तमल्पं तदनुरोधेन वृषान्तवृत्तमल्पं तदनुरोधेन मिथुनान्तमल्पमित्युत्तरोत्तरमल्पव्यासार्धवृत्तम् । तत्त्वहोरात्रवृत्तमिति द्युज्याव्यासार्द्धेन वृत्तनिर्माणं युक्तियुक्तं क्रान्तिज्यावर्गोनात्रिज्यावर्गान्मूलस्वाहोरात्रवृत्तव्यासार्धत्वादिति भावः। वृत्तत्रयं सिद्धं कृत्वा दृष्टान्तगोले निबध्नाति—क्रांतिविक्षेपभागैरिति । क्रान्तिवृत्तस्य विषुवद्वृत्तप्रदेशाद्विक्षिप्तप्रदेशा यैरंशैः चकाराद्आधारवृत्तस्थैर्दलितैः समविभागेन खण्डितैरङ्कितैः दक्षिणोत्तरैर्विषुवद्वृत्तक्रान्तिवृत्तप्रदेशयोर्दक्षिणोत्तरान्तरात्मकैरुक्तलक्षणैः स्वकीयैः स्वकीयैः स्वराशितम्बद्धरपक्रमैः स्पष्टाधिकारानीतक्रान्त्यंशैर्मेषादीनां मेषादिराशित्रयान्तानां मेषान्तवृषान्तमिथुनान्तानामित्यर्थः । तिस्रस्त्रिसंख्याकाः प्राग्निर्मितावृत्तरूपाः कक्षाः । अपक्रमात् अपशब्दस्योपसर्गत्वात्क्रमादित्यर्थः । प्रकल्पयेत् शिल्पज्ञगणको विषुवद्वृत्तानुरोधेनाधारवृत्तद्वये उत्तरतो निबन्धयेदित्यर्थः । कर्कादीनामाहता- इति । मेषादिकक्षानिबद्धाः कर्कादीनां कर्कसिंहकन्यानामाद्रिप्रदेशानां विपर्ययाद्व्यत्यासात् । चकारः समुच्चये । तत्र प्रकल्पयेदित्यर्थः । मिथुनान्तवृत्तं कर्कादेर्वृषान्तवृत्तं सिंहादेर्मेषान्तवृत्तं कन्यादेरिति फलितम् । तुलादीनामाह—तद्वदिति । तुलादीनां तुलावृश्चिकधन्विनां तिस्रः । अन्यास्त्रिसंख्याकाः कक्षास्तद्वदेकद्वित्रिराशिक्रान्त्यंशैस्तुलान्तवृश्चिकान्तधनुरन्तानां याम्यगोलाश्रिताः । विषुवद्वृत्ताद्दक्षिणभाग आधारवृत्तद्वये निबद्धाः कार्याः । गणकेनेति शेषः । मकरादीनामाह—मृगादीनामिति । विलोमत उत्क्रमात्तुलादिसम्बद्धाः कक्षा मकरादीनां भवन्ति । धनुरन्तवृत्तं मकरादेर्वृश्चिकान्तवृत्तं

कुम्भादेस्तुलान्तवृत्तं मीनादेरिति फलितम् । ताराणां कक्षानिबन्धनमाह—कक्षाधारादिति । भानामश्विन्यादिसप्तविंशतिनक्षत्रबिम्बानां याम्योदग्गोलसंस्थानां विषुवद्वृत्ताद्दक्षिणोत्तरभागयोर्यथायोग्यमवस्थितानां यन्नक्षत्रध्रुवकस्पष्टक्रान्तिरुत्तरा तन्नक्षत्राणामुत्तरभागावस्थितानां येषां स्पष्टक्रान्तिदक्षिणा तेषां दक्षिणभागावस्थितानामित्यर्थः । द्वयोर्दक्षिणोत्तरभागयोः । अपिशब्दो याम्योत्तरनक्षत्रक्रमेण व्यवस्थार्थकः । कक्षाधारात्कक्षाणामाधारवृत्तद्वयात्तयोरित्यर्थः । सप्तम्यर्थे पञ्चमी । कक्षाः स्वस्पष्टक्रान्तिज्योत्पन्नद्युज्याव्यासार्धप्रमाणेन वृत्ताकाराः प्रकल्पयेत् । शिल्पज्ञो निबन्धयेत् । अन्येषामप्याह—अभिजित इति । अभिजिन्नक्षत्रबिम्बस्य सप्तर्षिबिम्बानामगस्त्यनक्षत्रबिम्बस्य ब्रह्मसंज्ञकताराद्युक्तलुब्धकापांवत्सादिनक्षत्रबिम्बानां चकारोऽनुसन्धेयः । तथा कक्षा यथायोग्यं प्रकल्पयेदित्यर्थः । निबन्धनप्रकारमुपसंहरति—मध्य इति । सर्वासामुक्तकक्षाणां मध्ये तुल्यभागेऽनाधारवृत्तमध्यप्रदेशे । एवकारादन्ययोगव्यच्छेदः । वैषुवती कक्षा विषुवसम्बन्धिनी वृत्तरूपा संस्थितावस्थिता भवति । तथा शिल्पज्ञः कक्षां निबन्धयेदित्यर्थः । विषुवद्वृत्तात्स्वस्पष्टक्रान्त्यन्तरेण स्वद्युज्याव्यासार्धप्रमाणेनाहोरात्रवृत्त माधारवृत्त योर्निबन्धयेदिति निष्कृष्टोऽर्थः ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

भा० टी०—स्वाहोरात्रार्द्धकर्णके परिमाणसे व्यासयुक्त तीन वृत्तोंको बनाकर प्रत्येकमें ३६० भाग अंकित करे । क्रांतिविक्षेपांश अंकित दक्षिण उत्तरेखामें मेषादिके अपक्रमके अनुसार, अपक्रमांशमें कहे हुए तीन वृत्तसंयोग करे । वही विपरीतभावसे कर्कादिकी कक्षा है वैसेही दक्षिणदिशामें तुलादिकी तीन कक्षा संयुक्त करे । वही विलोमके अनुसार मकरादिकी कक्षा होगी उत्तर दक्षिणमें साभिजित् (अभिजित्के सहित) नक्षत्रोंकी कक्षाएँ आधार कक्षाके ऊपर संयुक्त करे । इसी प्रकारसे सप्तर्षि, अगस्त्य, ब्रह्महृदयादिकी कक्षा करे । सबके मध्य भागमें वैषुवती कक्षा स्थित रहेगी ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ गोले मेषादिराशिसन्निवेशं सार्धश्लोकेनाह—

तदाधारयुतेरूर्ध्वमयने विषुवद्द्वयम् ॥
विषुवत्स्थानतो भागैः स्पष्टैर्भगणसञ्चरात् ॥

क्षेत्राण्येवमजादीनां तिर्यग्ज्याभिः प्रकल्पयेत् ॥ १० ॥

तदाधारयुतेस्तद्विषुवद्वृत्तमाधारमाधारवृत्तं तयोर्युतेः सम्पातादूर्ध्वमुपरि। अन्तिमाहोरात्राधारवृत्तयोः सम्पातेऽयने दक्षिणोत्तरायणसंधिस्थाने भवतः। अत्रोर्ध्वपदसञ्चारादाधारवृत्तमूर्ध्वाधरं ग्राह्यं न तिर्यगुन्मण्डलाकारम्। तेनैतत्फलितम्। विषुवद्वृत्तस्योर्ध्वाधराधारवृत्तऊर्ध्वमधश्च सम्पातस्तत्रोर्ध्व-सम्पातान्मकराद्यहोरात्रवृत्तं चतुर्विंशत्यंशैस्तदाधारवृत्ते दक्षिणतो यत्र लग्नं तत्रोत्तरायणसन्धिस्थानम्। एवमधः सम्पातात्कर्काद्यहोरात्रवृत्तं चतुर्विंशत्यंशै-स्तदाधारवृत्त उत्तरतो यत्र लग्नंतत्र दक्षिणायनसन्धिस्थानमिति। अयनाद्विषुव-स्य विपरीतस्थितत्त्वादूर्ध्वशब्दद्योतितविपरीताधः शब्दसम्बन्धाद्विषुवद्वयं भवति। तात्पर्यार्थस्तु तिर्यगुन्मण्डलाकाराधारवृत्तविषुवद्वृत्तसम्पातौ पूर्वापरौ क्रमेण मेषादितुलादिरूपौ विषुवत्स्थाने भवत इति। अथ राशिसाकल्यसन्निवे-शमाह—विषुवत्स्थानत इति। विषुवत्प्रदेशात्स्फुटे राशिसम्बन्धिभिस्त्रिंशन्मितै-रंशैर्भगणसञ्चरात् राशिसाकल्यसन्निवेशात्तिर्यग्ज्याभिरुक्तवृत्तानुकारातिरि-क्तानुकारसूत्रवृत्तप्रदेशैः। अजादीनां मेषादीनाम्। एवमयनविषुवत्कल्पनरीत्या तदन्तराले क्षेत्राणि स्थानानि सुधागणकःप्रकल्पयेदङ्कयेत् यद्यथा। पूर्वदिक्स्थ-विषुवत्थानाद्गोलवृत्तद्वा दशांशखण्डप्रदेशेन मेषान्ताहोरात्रवृत्ते पूर्वभागे यत्र स्थानं तत्र मेषान्तस्थानं तस्मात्तदन्तरेण वृषान्ताहोरात्रवृत्ते तदन्तरेण वृषान्त-स्थानमस्मादयनसन्धिस्थानं तत्प्रदेशान्तरेण मिथुनान्तस्थानमस्मात्पश्चिभागे कर्कान्ताहोरात्रवृत्ते तदन्तरेण कर्कान्तस्थानमस्मादपि सिंहान्ताहोरात्रवृत्ते-तदन्तरेण सिंहान्तस्थानमस्मादपि तदन्तरेण पश्चिमविषुवत्स्थानं कन्यान्त-स्थानमस्मादपि पूर्वभागे तुलान्ताहोरात्रवृत्ते तदन्तरेण तुलान्तस्थानमस्मा-दपि वृश्चिकान्ताहोरात्रवृत्ते तदन्तरेण वृश्चिकान्तस्थानमस्मादपि तदन्तरेणा-यनसन्धिस्थानं धनुरन्तस्थानमस्मात्कुम्भाद्यहोरात्रवृत्ते तदन्तरेण मकरान्त-स्थानमस्मादपि मीनाद्यहोरात्रवृत्ते तदन्तरेण कुम्भान्तस्थानं मीनादिस्थानं च। अस्मादपि पूर्वविषुवे मीनान्तस्थानं मेषादिस्थानं च तदन्तरेणेति व्यक्तम् ॥ १० ॥

भा० टी०—विषुवती और आधारकक्षाके संयुत स्थानसे ऊपरकी ओर दो विषुव अंकितकरे । तदुपरान्त विषुवतीसे राशिअन्तरमें मेषादि १२ क्षेत्र तिरछे भावसे निर्णय करे ॥ १० ॥

ननु गोले वृत्ते द्वादशराशीनां सत्त्वादन्यथा चक्रकलानुपपत्तेरित्यत्रैक वृत्ताभावात् कथं राश्यङ्कनं राशिविभागानुपपत्तिश्च । अन्तरालभागस्याकाशात्मकत्वादित्यतो वृत्तकथनच्छलेन पूर्वोक्तं स्पष्टयन्सूर्यस्तद्वृत्ते भगणभोगं करोतीत्याह—

अयनादयनं चैव कक्षा तिर्यक्तथापरा ॥
क्रान्तिसंज्ञा तया सूर्यः सदा पर्यैति भासयन् ॥ ११ ॥

अयनस्थानमारभ्य परिवर्तनतदयनस्थानपर्यन्तम् । चकार आरम्भसमाप्त्योर्भिन्नायन स्थाननिरासार्थकः । अपरा गोले आधारवृत्तसमा वृत्तरूपा कक्षा तथा राश्यङ्कमार्गेण । एवकारोऽन्यमार्गव्यवच्छेदार्थकः । तिर्यक् उक्तवृत्तानुकारविलक्षणानुकारा क्रान्तिसंज्ञाक्रमणं क्रान्तिः। ग्रहगमनभोगज्ञानार्थं वृत्तं तत्संज्ञमुपकल्पितम् । अयनविषुवद्द्वयसंसक्तं क्रान्तिवृत्ते द्वादशराश्यङ्कितं गोले निबंधयेदिति तात्पर्यार्थः । भासयन् । भुवनानि प्रकाशयन् सन् स सूर्यः । एतेन चन्द्रादीनां निरासः । सदा निरन्तरं तया क्रान्तिसंज्ञया कक्षया पर्यैत्ति स्वशक्त्या गच्छन् भगणपरिपूर्तिभागं करोति । सूर्यगत्यनुरोधेन नियतं क्रान्तिवृत्तं कल्पितमिति भावः ॥ ११ ॥

भा० टी०—एक अयनसे दूसरे अयनमें गयीहुई तिरछी कक्षाको क्रांतिकक्षा कहते है तिसके ऊपर सूर्य प्रकाशकरके भ्रमण करते हैं ॥ ११ ॥

ननु चन्द्राद्याः क्रान्तिवृत्ते कुतो न गच्छन्तीत्यत आह—

चन्द्राद्याश्च स्वकैः पातैरपमण्डलमाश्रितैः ॥
ततोऽपकृष्टा दृश्यन्ते विक्षेपान्तेष्वपक्रमात् ॥ १२ ॥

चन्द्रादयोऽर्कव्यतिरिक्ता ग्रहाः स्वकैः स्वीयैः पातैः पाताख्यदेवतैरपमण्डलं क्रान्तिवृत्तमाश्रितैः स्वस्वभोगस्थानेधिष्ठितैस्ततः क्रान्तिवृत्तान्तर्गतग्रहभोगस्थानादित्यर्थः । चकाराद्विक्षेपान्तरेणापकृष्टा दक्षिण उत्तरतो वा कर्षिता भवन्ति । अतः कारणादपक्रमात्क्रान्तिवृत्तान्तर्गतस्वभोगस्थानादित्यर्थः ।

दक्षिण उत्तरतो वा विक्षेपान्तेषु गणितागतविक्षेपकलाग्रस्थानेषु भूस्थजनैर्दृश्यन्ते । तथाच क्रांतिवृत्तं यथा विषुवन्मण्डलेऽवस्थितं तथा क्रांतिवृत्ते पातस्थाने तत्षड्भान्तरस्थाने च लग्नमुक्तं परमविक्षेपकलाभिस्तत्त्रिभान्तरस्थानादूर्ध्वाधःक्रमेण दक्षिणोत्तरतो लग्नं च वृत्तं विक्षेपवृत्तं चंद्रादिगत्यनुरोधेन स्वं स्वं भिन्नं कल्पितं तत्र गच्छतीति भावः ॥ १२ ॥

भा० टी०-चन्द्रादि अपने पातसे खिंचकर और वृत्तको आश्रित करते हैं। वैसेही आकृष्टहोकर अपने अपक्रमसे विक्षेपान्तमें दिखाई देते हैं ॥ १२ ॥

अथ त्रिप्रश्नाधिकारोक्तलग्नमध्यलग्नयोः स्वरूपमाह-

उदयक्षितिजे लग्नमस्तं गच्छच्च तद्वशात् ॥
लंकोदयैर्यथासिद्धं खमध्योपरि मध्यमम् ॥ १३ ॥

उदयक्षितिजे क्षितिजवृत्तस्य पूर्वदिग्देश इत्यर्थः। लग्नं क्रांतिवृत्तं यत्प्रदेशे प्रवहवायुना संसक्तं तत्प्रदेशो मेषाद्यवधिभोगेनोदयलग्नमुच्यत इत्यर्थः। प्रसंगादस्तलग्नस्व रूपमाह-अस्तमिति । तद्वशादुयलग्नानुरोधादस्तमस्तक्षितिजं क्षितिजवृत्तस्यपश्चिमदिक्प्रदेशमित्यर्थः। क्रान्तिवृत्तं गच्छत् यत्प्रदेशेन प्रवहवायुना सँल्लग्नं तत्प्रदेशो मेषाद्यवधिभोगेनास्तलग्नं समुच्यत इत्यर्थः । तथा च क्षितिजोर्ध्वं सदा क्रान्तिवृत्तस्य सद्भावादुदयास्तलग्नयोः षड्राश्यन्तरं सिद्धंलङ्कोदयैर्निरक्षदेशीयराश्युदयासुभिः । यथात्रिप्रश्नाधिकारोक्तकारेण तत्संख्यामितं सिद्धं निष्पन्नम् । मध्यमं मध्यलग्नं तत्खमध्योपरि खस्य दृश्याकाशविभागस्य मध्यं मध्यगतदक्षिणोत्तरसूत्रवृत्तानुकारप्रदेशरूपं नतु खमध्यं भास्कराचार्याभिमतं स्वस्वस्तिकं तल्लग्नस्य कदाचित्कत्वेन सदानुत्पत्तेः। तस्योपरिस्थितं क्रान्तिवृत्तं याम्योत्तरवृत्ते तत्प्रदेशेन लग्नं तत्प्रदेशो मेषाद्यवधिभोगेन मध्यलग्नमुच्यत इति तात्पर्यार्थः ॥ १३ ॥

भा०टी०-उदयक्षितिज वृत्तमें उसका अंशही लग्न है अस्तमें अस्त (सातवां) होता है। लंकोदयसे जो मध्यम सिद्ध होता है, वह अपनी मध्यरेखाके ऊपर है॥१३

अथ त्रिप्रश्नाधिकारोक्तान्त्यायाः स्वरूपं स्पष्टाधिकारोक्तचरज्यायाः स्वरूपं चाह-

मध्यक्षितिजयोर्मध्ये या ज्या सान्त्याभिधीयते ॥

ज्ञेया चरदलज्या च विषुवत्क्षितिजान्तरम् ॥ १४ ॥

या उत्तरगोले त्रिज्याचरज्यायुतिरूपा दक्षिणगोले चरज्योनत्रिज्यारूपा त्रिप्रश्याधिकारोक्ता । अन्त्या सा मध्यं याम्योत्तरवृत्तं क्षितिजं स्वाभिमतदेशाक्षितिजवृत्तं तयोर्मध्येऽन्तरालेऽहोरात्रवृत्तस्यैकदेशे ज्या । उदयास्तसूत्रयाम्योत्तरसूत्रसम्पातादहोरात्रयाम्योत्तरवृत्तसम्पातावधि सूत्ररूपा ज्या: सूत्रानुकारा नतु ज्या । अहोरात्राक्षितिजवृत्तसम्पातद्वयबद्धोदयास्तसूत्रस्याहोरात्रवृत्तव्याससूत्रत्वाभावात् । अतएवोत्तरगोलेऽन्त्या त्रिज्याधिका संगच्छते अभिधीयते गोलज्ञैः कथ्यते । नन्वन्त्योपजीव्यचरज्यैव किंस्वरूपा यया तत्सिद्धिरित्यत आह—ज्ञेयेति । 'उन्मण्डलं च विषुवन्मण्डलं परिकीर्त्यते' इति त्रिप्रश्नाधिकारोक्तेन द्वयोः शब्दयोरेकार्यवाचकत्वात्तिर्यगाधारवृत्तानुकारं स्थिरं निरक्षक्षितिजं वृत्तमुन्मण्डलं क्षितिजं स्वाभिमतदेशक्षितिजवृत्तमनयोरन्तरम् । चकारो विशेषार्थकस्तुकारपरस्तेन तदन्तरालस्थिताहोरात्रवृत्तैकदेशस्यार्धज्यारूपमृजुसूत्रमन्तरविशेषात्मकम् । तथा च स्वनिरक्षदेशस्वदेशयोरुदयास्तसूत्रयोरन्तरमूर्ध्वाधरमिति फलितार्थः । चरदलज्या तदन्तरालस्थिताहोरात्रवृत्तैकदेशरूपराख्यखण्डकस्य । नतु दलमर्धम् । ज्या चरज्येत्यर्थः । गोलज्ञैर्ज्ञातव्या ॥ १४ ॥

भा० टी०—मध्य और क्षितिजके मध्यमें जो ज्या है वही अन्त्य है । विषुवत् और क्षितिजके अन्तरको चरदल ज्या कहते हैं ॥ १४ ॥

ननु पूर्वश्लोकद्वयोक्त क्षितिजस्याज्ञानादुर्बोधमित्यतः श्लोकार्धेन क्षितिजस्वरूपमाह—

कृत्वोपरि स्वकं स्थानं मध्ये क्षितिजमण्डलम् ॥ १५ ॥

भूगोले स्वकं स्वीयं स्थानं भूप्रदेशैकदेशरूपमुपरि सर्वप्रदेशोभ्य ऊर्ध्वं कृत्वा प्रकल्प्य मध्ये तादृशगोल ऊर्ध्वाधःखण्डसन्धौ यद्वृत्तं तत्क्षितिजवृत्तं तदनुरोधेन दृष्टान्तगोले क्षितिवृत्तं स्थिरं संयुक्तं कार्यमिति भावः ॥ १५ ॥

भा० टी०—अपने स्थानको सबसे ऊपर करके मध्यमें क्षितिजमण्डल स्थिर करे ॥ १५ ॥

अथैनं दृष्टान्तगोलं सिद्धं कृत्वास्य स्वत एव पश्चिमभ्रमो यथा भवति तथा प्रकारमाह—

वस्त्रच्छन्नं बहिश्चापि लोकालोकेन वेष्टितम् ॥
अमृतस्रावयोगेन कालभ्रमणसाधनम् ॥ १६ ॥

वहिः। गोलोपरीत्यर्थः। गोलाकारेण वस्त्रेणच्छन्नं छादितं दृष्टान्तगोलम्। चकाराद्वस्त्रोपरि तत्तद्वृत्तानाङ्कनं कार्यम्। लोकालोकेन वेष्टितं दृश्यादृश्यसन्धिस्थवृत्तेन क्षितिजाख्येन संसक्तम्। अपिः समुच्चये। एतेन क्षितिजं वस्त्रच्छन्नं न कार्यं किंतु वस्त्रोपरि क्षितिजं गोलसंसक्तं केनापि प्रकारेण स्थिरं यथा भवति तथा कार्यमिति तात्पर्यम्। अमृतस्रावयोगेनैतादृशं गोलं कृत्वा जलप्रवाहाधोघातेन कालभ्रमणसाधनं षष्टिनाक्षत्रघटीभिर्दृष्टान्तगोलस्य भ्रमणं यथा भवति तथा साधनं कारणं कार्यं स्वयंवहगोलयन्त्रं कार्यमित्यर्थः। एतदुक्तं भवति। दृष्टान्तगोलं वस्त्रच्छन्नं कृत्वा तदाधारयष्टयग्रे दक्षिणोत्तरभित्तिक्षिप्तनलिकयोः क्षेप्य। तथा यष्टयग्रं ध्रुवाभिमुखं स्यात्। ततो यष्टयग्रर्जुमार्गगतजलप्रवाहेण पूर्वाभिमुखेन तस्याधः पश्चाद्भागे घातोऽपि यथा स्यात्तथा स्यादर्शनार्थमेव वस्त्रच्छन्नमुक्तम्। अन्यथा गोलवृत्तान्तरवकाशमार्गेण जलाघातदर्शनभ्रमेण चमत्कारानुत्पत्तेः। आकाशाकारतासम्पादनार्थमपि वस्त्रच्छन्नमुक्तम्। इदं वस्त्रमार्द्रं यथा भवति तथा चिक्कणवस्तुना मदनादिना लिप्तं कार्यम्। क्षितिजवृत्ताकारेणाधोगोलो दृश्यो यथा स्यात्तथा परिखारूपा भित्तिः कार्या। परन्तु दक्षिणयष्टिभागस्तत्र शिथिलो तथा भवति। अन्यथा भ्रमणानुपपत्तेः। पूर्वदिक्स्थपरिखाविभागाद्बहिर्जलप्रवाहोऽदृश्यः कार्य इत्यादिस्वबुद्ध्यैव ज्ञेयमिति ॥ १६ ॥

भा०टी०—क्षितिजके बाहिर वस्त्रसे ढककर वारिसंघातसे कालभ्रमण साधन करे १६

अथ यदि जलप्रवाहस्तत्र न सम्भवति तदा कथं स्वयंवहो दृष्टान्तगोलो भवतीत्यतरयत्स्वयं वहार्थमुक्तं च गोप्यं कार्यमित्याह—

तुङ्गबीजसमायुक्तं गोलयन्त्रं प्रसाधयेत् ॥
गोप्यमेतत्प्रकाशोक्तं सर्वगम्यं भवेदिह ॥ १७ ॥

दृष्टान्तगोलरूपं यन्त्रं तुंगबीजसमायुक्तं तुङ्गो महादेवस्तस्य बीजं वीर्यम् पारद इत्यर्थः। तेन योजितं सत्प्रसाधयेत्। गणकः शिल्पज्ञः। प्रकर्षेण

यथा नाक्षत्रयष्टिघटीभिर्गोलभ्रमस्तथा पारदप्रयोगेण सिद्धं कुर्यादित्यर्थः। एतदुक्तं भवति । निबद्धगोलबहिर्भूतयष्टिप्रान्तयोर्यथेच्छया स्थानद्वये स्थानत्रये वा नेमिं परिधिरूपामुत्कीर्यतां तालपत्रादिना चिक्कणवस्तुलेपेनाच्छाद्य तत्र छिद्रं कृत्वा तन्मार्गेण पारदोऽर्धपरिधौ पूर्णो देयः इतरार्द्धपारिधौ जलं च देयं ततो मुद्रितच्छिद्रं कृत्वा यष्ट्यग्रे भित्तिस्थनलिकयोः क्षेप्ये यथा गोलोऽन्तरिक्षोभवति । ततः पारदजलाकर्षितयष्टिः स्वयं भ्रमति । तदाश्रितो गोलश्च एतत्पक्षे वस्त्रच्छन्नमाकाशाकारतासम्पादनार्थमेव चेत् क्रियते इति । नवियं स्वयंवहक्रिया व्यक्ता नोक्तेत्यत आह—गोप्यमिति । एतत्स्वयंवहकरणं गोप्यमप्रकाश्यम् कुत इत्यत आह—प्रकाशोक्तमिति । अतिव्यक्ततयोक्तं स्वयंवहकरणमिह भूलोके सर्वजनगम्यं भवेत् । तथाच सर्वज्ञेये वस्तुनि चमत्कारनुत्पत्तेश्चमत्कृत्यर्थं सर्वत्र न प्रकाश्यमित्याशयेन तत्करणं व्यक्तं तोक्तमिति भावः॥ १७॥

भा० टी०—पारेके साथ गोलयंत्रको सिद्ध करे; यह अतिगोपनीय प्रकाश करके कहनेसे जाना जायगा ॥ १७ ॥

ननु त्वया गोप्यत्वेनोक्तं मया कथमवन्तव्यं मादृशैरन्यैश्च कथमवगन्तव्यमित्यतः सार्धश्लोकेनाह—

तस्माद्गुरूपदेशेन रचयेद्गोलमुत्तमम् ॥
युगेयुगे समुच्छिन्ना रचनेयं विवस्वतः ॥
प्रसादात्कस्यचिद्भूयः प्रादुर्भवति कामतः ॥ १८ ॥

तस्मात्स्वयंवहकरणस्य गोप्यत्वाद्गुरूपदेशेन परम्पराप्राप्तगुरोर्निर्व्याजकथनेन गोलं दृष्टांतगोलमुत्तमं स्वयंवहात्मकं गणकः कुर्यात् । तथाच मया तुभ्यमुक्ता ग्रन्थे गोप्यत्वेनातिव्यक्ता नोक्तेति भावः । अन्यैः कथं ज्ञेयमिदमित्यत आह—युग इत्यादि । विवस्वतः सूर्यमण्डलाधिष्ठातुर्जगीवविशेषस्येयं स्वयंवहरूपा रचना क्रिया युगेयुगे बहुकाले इत्यर्थः । समुच्छिन्ना लोके लुप्ता कस्यचिन्मादृशस्य प्रसादादनुग्रहाद्भूयः वारंवारमिच्छया प्रादुर्भवति व्यक्ता भवतीत्यर्थः । तथाच तथा मत्तस्त्वयागतं तथान्यस्मा-

न्माद्दशादन्यैरवगन्तव्यम् कालस्य निरवधित्वात्सृष्टेरनादित्वाच्चेति भावः॥ १८

भा० टी०- तिसके लिये गुरुके उपदेशसे उत्तम गोलको बनावै। यह युग २ में उच्छिन्न होता है, परन्तु सूर्यके प्रसादसे किसीके लियेही फिर प्रगट होता है॥ १८॥

अथोक्तस्वयंवहक्रियारीत्या स्वयंवहगोलातिरिक्तान्यस्वयंवहयंत्राणि कालज्ञानार्थं साध्यानि तत्साधनं रहसि कार्यमिति चाह--

कालसंसाधनार्थाय तथा यन्त्राणि साधयेत्॥
एकाकी योजयेद्बीजं यन्त्रे विस्मयकारिणि॥ १९॥

तथा यथा स्वयंवहगोलयन्त्रं साधितं तद्वदित्यर्थः। कालसंसाधनार्थाय कालस्य दिनगतादेः सूक्ष्मज्ञाननिमित्तं यन्त्राणि स्वयंवहगोलारिक्तानि स्वयंवहतंत्राणि साधयेत्। गणकः शिल्पादिस्वकौशल्येन कारयेत्। यंत्रे कालसाधके विस्मयकारीणि स्वयंवहरूपतया लोकानामुत्पन्नाश्चर्यस्य कारणभूते बीजं स्वयंवहतासम्पादकं कारणमेकाकी एकव्यक्तिकोऽद्वितीयः सन्योजयेत्। शिल्पज्ञतया स्वयमेव निष्पादयेदित्यर्थः। अन्यथा द्वितीयस्य तज्ज्ञानेन तन्मुखात्तद्यन्त्रहार्दस्य लोकश्रवणगोचरतायां कदाचित्सम्भावितायां विस्मयानुत्पत्तेः॥ १९॥

भा० टी०--कालसाधनके लिये यन्त्रोंको बनावै; विस्मयकारी बीज अकेलाही यन्त्रमें मिलावै॥ १९॥

अथैषां स्वयंवहयन्त्राणां दुर्घटत्वाच्छंक्वादियन्त्रैः कालज्ञानं ज्ञेयमित्याह-

शंकुयष्टिधनुश्चक्रैश्छायायन्त्रैरनेकधा॥
गुरूपदेशाद्विज्ञेयं कालज्ञानमतंद्रितैः॥ २०॥

शंकुयष्टिधनुश्चक्रैः प्रसिद्धैश्छायायन्त्रैश्छायासाधकयंत्रैरनेकधा नानाविधगणितप्रकारैर्गुरूपदेशात्स्वाध्यापकस्य निर्व्याजकथनादतन्द्रितैरभ्रमैः पुरुषैः कालज्ञानं दिनगतादिज्ञानं विज्ञेयं सूक्ष्मत्वेनावगम्यम्। एतत्सर्वं सिद्धान्तशिरोमणौ भास्कराचार्यैः स्पष्टीकृतम्। तत्र शंकुस्वरूपम्--"समतलमस्तकपरिधिर्भ्रमसिद्धो दंतिदन्तजः शंकुः। तच्छायातः प्रोक्तं ज्ञानं दिग्देशकालानाम्॥" इति। यष्टियंत्रं च--"त्रिज्याविष्कम्भार्धं वृत्तं कृत्वा दिगंकितं

-त्र । दत्त्वाग्रां प्राक्पश्चाद्द्युज्यावृत्तं च तन्मध्ये । तत्परिधौ षष्ट्यंक यष्टिर्नष्टद्युतिस्ततः केंद्रे । त्रिज्यांगुला निधेया यष्ट्यग्राग्रान्तरं यावत् ॥ यावत्या मौर्व्या यद्द्वितीयवृत्ते धनुर्भवेत्तत्र । दिनगतशेषा नाड्यः प्राक्पश्चात्स्युः क्रमेणैवम् ॥ " इति । चक्रयन्त्रन्तु—"चक्रं चक्रांशांक परिधौ श्लथशृंखलादिकाधारम् । धात्रीत्रिभ आधारात्कल्प्याभार्धेऽत्र खार्धं च ॥ तन्मध्ये सूक्ष्माक्षं क्षित्वार्काभिमुखनेमिकं धायम् । भूमेरुन्नतभागास्तत्राक्षच्छायया भुक्ताः ॥ तत्खार्धान्तश्चरता उन्नतलवसंगुणं द्युदलम् । द्युदलोन्नतांशभक्तं नाड्याः स्थूलाः परैः प्रोक्ताः ॥ " इति । धनुर्यन्त्रं तु—'दलीकृतं चक्रमुशंति चापम् ' इति । अथ ग्रन्थविस्तरभययादेतेषां निरूपणनिस्तरो गणितादिविचारश्चोपेक्षित इति मन्तव्यम् ॥ २० ॥

भा० टी०—विना भ्रमवाला पुरुष गुरुके उपदेशसे शंकु, यष्टि, धनु, चक्र, अनेक प्रकारके छायायन्त्रसे कालको जाने ॥ २० ॥

अथ घटीयंत्रादिभिश्चमत्कारियन्त्रैर्वा सर्वोपजीव्यं कालं सूक्ष्मं साधयेदिति कालसाधनमुपसंहरति—

तोययंत्रकपालाद्यैर्मयूरनरवानरैः ॥
ससूत्ररेणुगर्भैश्च सम्यक्कालं प्रसाधयेत् ॥ २१ ॥

जलयन्त्रं च तत्कपालं च कपालाख्यं जलयंत्रं वक्ष्यमाणं तदाद्यं प्रथमं येषां तैर्यंत्रैर्वालुकायंत्रप्रभृतिभिः सापेक्षघटीयंत्रैर्यूरनवानरैः। मयूराख्यं स्वयंवहयन्त्रं निरपेक्षं नरयन्त्रं शंक्वाख्यं छायायन्त्रं पूर्वोद्दिष्टवानरयंत्रं स्वयंवहं निरपेक्षमेतैः ससूत्ररेणुगर्भैः सूत्रसहिता रेणवो धूलयो गर्भे मध्ये येषां तैः सूत्रप्रोता षष्टिसंख्याका मृदुघटिकामयूरोदरस्थानमुखाद्घटिकान्तरेण स्वतएव निःसरन्तीति लोकप्रसिद्ध्या तादृशैर्यन्त्रैरित्यर्थः । यद्वा सूत्राकारेण रेणवः सिक्तांशा गर्भे उदरे यस्यैतादृशं यन्त्रं वालुकायन्त्रं प्रसिद्धम् । तेन सहितैर्मयूरादियन्त्रैर्वालुकायन्त्रेण चेति सिद्धोर्थः । चकारस्तोययन्त्रकपालाद्यैरित्यनेकसमुच्चयार्थकः । कालं दिनगतादिरूपं सम्यक् सूक्ष्मं प्रसाधयेत् । प्रकर्षेण सूक्ष्मत्वेनातिसूक्ष्मत्वेनेत्यर्थः । जानीयादित्यर्थः ॥ २१ ॥

भा० टी०- कपालादि जलयंत्र, मयूर, नर, वानराकार सूत्रयुत आदि रेणु गर्भसे भलीभाँति करके साधन करे ॥ २१ ॥

ननु मयूरादिस्वयंवहयन्त्राणि कथं साध्यानीत्यतस्तत्साधनप्रकारा बहवो दुर्गमाश्च सन्तीत्याह-

पारदाराम्बुसूत्राणि शुल्बतैलचलानि च ॥
बीजानि पांसवस्तेषु प्रयोगास्तेपि दुर्लभाः ॥ २२ ॥

तेषु मयूरादियन्त्रेषु स्वयंवहार्थमेते प्रयोगाः प्रकर्षेण योज्याः । प्रकर्षस्तु यावदभिमतसिद्धेः । एते क इत्यत आह-पारदाराम्बुसूत्राणीति । पारदयुक्ता आराः । यथा च सिद्धान्तशिरोमणौ "लघुकाष्ठजसमचक्रे समसुषिराराः समान्तरा नेम्याम् । किंचिद्वक्रा योज्या सुषिरस्यार्धे पृथक्तासाम् ॥ रसपूर्णे तच्चक्रं द्व्याधारादाक्षस्थितं स्वयं भ्रमति ॥" इति । अम्बु जलस्य प्रयोगः । सूत्राणि सूत्रसाधनप्रयोगः । शुल्बं शिल्पनैपुण्यम् । तैलजलानि तैलयुक्तजलस्य प्रयोगः । चकारात् तयोः पृथक्प्रयोगोऽपि । यथा च सिद्धान्तशिरोमणौ "उत्कीर्य नेमिमथवा परितो मदनेन संलग्नम् । तदुपरि तालदलाद्यं कृत्वा सुषिरे रसं क्षिपेत्तावत् ॥ यावद्रसैकपार्श्वे क्षितजलं नान्यतो याति । पिहितच्छिद्रं तदतश्चक्रं भ्रमति स्वयं जलाकृष्टम् ॥ ताम्रादिमयस्यांकुशरूपनलस्याम्बुपूर्णस्य । एकं कुण्डजलान्तर्द्वितीयमग्रं त्वधोमुखं च बहिः ॥ युगपन्मुक्तं चेत्कं नलेन कुण्डाद्बहिः पतति । नेम्यबद्धा घटिकाश्चक्रं जलयन्त्रवृत्तथा धार्यम् नलकप्रच्युतसलिलं पपति यथा तद्घटीमध्ये । भ्रमति ततस्तत्सततं पूर्णघटीभिः समाकृष्टम् ॥ चक्रच्युतं स्वमुदकं कुण्डे याति प्रणालिकया ॥" इति । बीजानि केवलं तुङ्गबीजप्रयोगः । पांसवो धूलिप्रयोगास्तैर्युक्ताः प्रयोगाः । अपिशब्दात्प्रयोगेषु सुगमतरा इत्यर्थः । दुर्लभाः साधारणत्वेन मनुष्यैः कर्तुमशक्या इत्यर्थः । अन्यथा प्रतिगृहं स्वयंवहानां प्राचुर्यापत्तेः । इयं स्वयंवहविद्यासमुद्रान्तर्निवासिजनैः फिरंग्याख्यैः सम्यगभ्यस्तेति कुहकविद्यात्वादत्र विस्तारानुद्योग इति संक्षेपः ॥ २२ ॥

भा० टी०-और सब पारेसे युक्त, जल, सूत्र, शिल्पकी निपुणता, तेलयुक्त जल, पारा, बालू सब यंत्रोंका प्रयोग करना अत्यन्त दुर्लभ है ॥ २२ ॥

अथ कपालाख्यं जलयन्त्रमाह-

ताम्रपात्रमधश्छिद्रं न्यस्तं कुण्डेऽमलाम्भसि ॥
षष्टिर्मज्जत्यहोरात्रे स्फुटं यन्त्रं कपालकम् ॥ २३ ॥

यत्ताम्रघटितं पात्रमधश्छिद्रमधोभागे छिद्रं यस्य तत् । अमलाम्भसि निर्मलं जलं विद्यते यस्मिंस्तादृशे कुण्डे बृहद्भाण्डे न्यस्तं धारितं सदहोरात्रे नाक्षत्राहोरात्रे षष्टिः षष्टिवारमेव न न्यूनाधिकं मज्जति । अधश्छिद्रमार्गेण जलागमनेन जलपूर्णतया निमग्नं भवति । तत्कपालकं कपालमेव कपालकं घटखण्डानां कपालपदवाच्यत्वाद्घटाधस्तनार्धाकारं यन्त्रं घटीयन्त्रं स्फुटं सूक्ष्मं तद्घटनं तु "शुल्बस्य दिग्भिर्विहितं पलैर्यत्षडंगुलोच्चं द्विगुणायतास्यम् । तदम्भसा षष्टिपलैः प्रपूर्यं पात्रं घटार्धप्रतिमं घटी स्यात् ॥ सत्र्यंशमाषत्रयनिर्मिताया हेम्नः शलाका चतुरङ्गुला स्यात् । विद्धं तया प्राक्तनमत्र पात्रं प्रपूर्यते नाडिकयाम्बुभिस्तत ॥" इति व्यक्तम् । भगवता तु सूक्ष्ममुक्तम् ॥ २३ ॥

भा० टी०-निर्मल जलभरे हुए कुम्भमें (नाद) नीचे जिसमें छेद है ऐसा तांबेका पात्र रक्खे, (कटोरा) यह कपाल यंत्र दिनरातमें साठवार जलमें डूबैगा ॥ २३ ॥

अथ शंकुयन्त्रं दिवैव कालज्ञानार्थं नान्यदेत्याह-

नरयन्त्रं तथा साधु दिवा च विमले रवौ ॥
छायासंसाधनैः प्रोक्तं कालसाधनमुत्तमम् ॥ २४ ॥

विमले मेघादिव्यवधानरूपमलेन रहिते सूर्य एतद्रूपे दिने। चकार एवकारार्थस्तेन साभ्रदिनव्यवच्छेदः । नरयन्त्रं द्वादशांगुलशंकुयन्त्रं तथा घटीयन्त्रवत्कालसाधकं साधु सूक्ष्मं रात्रौ नेत्यर्थसिद्धम् । ननु शङ्कोश्छायासाधकत्वं न कालसाधकत्वं तेन तस्य कथं यन्त्रत्वं कालसाधकवस्तुनो यन्त्रत्वप्रतिपादनादित्यत आह-छायासंसाधनैरिति । इदं शंकुरूपनरयन्त्रं छायायाः सम्यक्सूक्ष्मत्वेन साधनैरवगमैः कृत्वा कालसाधनं दिनगतादिकालस्य कारणमुत्तमम् । अन्ययन्त्रेभ्योऽस्मान्निरन्तरयातिश्रेष्ठम् । तथा च च्छायासाधकत्वेन

च्छायाद्वाराशङ्कोः कालसाधकत्वमिति न यन्त्रत्वव्याघातः । अतएव साभ्रदिने रात्रौ चानुपयुक्तः । नरस्य च्छायायन्त्रोपलक्षणत्वात् यष्टिधनुश्चक्राण्यपि तथेति ध्येयम् ॥ २४ ॥

भा० टी०-दिनके समय जब निर्मल सूर्य हों तब छायासंशोधनके लिये अत्युत्तम नरयंत्र (१२ अंगुल) समयको साधनेके लिये कहा है ॥ २४ ॥

अथादित एतदन्तग्रन्थज्ञानस्यैकफलकथनेन विभक्तमपि खण्डद्वयं क्रोडयति-

ग्रहनक्षत्रचरितं ज्ञात्वा गोलं च तत्त्वतः ॥
ग्रहलोकमवाप्नोति पर्यायेणात्मवान्नरः ॥ २५ ॥

ग्रहनक्षत्राणां चरितं गणितविषयकं ज्ञानं ग्रन्थपूर्वखण्डरूपं गोलं भूगोलभगोलस्वरूपप्रतिपादकग्रन्थं ग्रन्थोत्तरार्धान्तर्गतम् । चकारः समुच्चये । तत्त्वतः वस्तुस्थितिसद्भावेन सार्वविभक्तिकस्तसिरित्येके । ज्ञात्वावगम्य नरः पुरुषः । ग्रहलोकं चन्द्रादिग्रहाणां लोकं तल्लोकाधिष्ठितस्थानं ग्रहोपलक्षणान्नक्षत्राधिष्ठितस्थानमपीति ध्येयम् । प्राप्नोति । ननु ग्रहलोकप्राप्त्या कः पुरुपार्थ इत्यतो मोक्षरूपं पुरुषार्थफलमाह । पर्यायेणेति । जन्मान्तरेण पुरुष आत्मवानात्मज्ञानी भवति । तथा चात्मज्ञानान्मोक्षप्राप्तिरेवेति भावः ॥ २५ ॥

भा० टी०-ग्रहनक्षत्रचरित और गोल इनको भलीभांतिसे जानकर मनुष्य ग्रहलोकको प्राप्त होकर अंतमें आत्मवान् होता है ॥ २५ ॥

अथाग्रिमग्रन्थस्यासङ्गतिपरिहारायारब्धाध्यायसमाप्तिं फक्किकयाह-

इति ज्योतिषोपनिषदध्यायः ॥ १३ ॥

इति यथा वेदे आत्मस्वरूपनिरूपणान्नारायणोपनिषदुच्यते तथा ज्योतिःशास्त्रे प्रदिपादितानां ग्रहनक्षत्राणामेतद्ग्रन्थैकदेशे स्वरूपादिनिरूपणाज्ज्योतिःशास्त्रसारं ज्योतिषो पनिषदुच्यते । तत्संज्ञोऽध्यायो ग्रन्थैकदेशसम्पूर्ण इत्यर्थः ।

रङ्गनाथेन रचिते सूर्यसिद्धान्तटिप्पणे ।
ज्योतिषोपनिषत्सञ्ज्ञोऽध्यायः पूर्णोपरार्धके ॥

इति श्रीसकलगणकसार्वभौमबल्लालदैवज्ञात्मजरंगनाथगणकविरचिते गूढार्थप्रकाशके उत्तरखण्डे ज्योतिषोपनिषदध्यायः पूर्णः ॥ १३ ॥

तेरहवां अध्याय समाप्त ।

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथ मानानि कति किञ्च तैरित्यवशिष्टप्रश्नस्योत्तरभूत आरब्धमानाध्यायो व्याख्यायते । तत्र प्रथमं मानानि कतीति प्रथमप्रश्नस्योत्तरमाह—

ब्राह्मं दिव्यं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं गुरोस्तथा ॥
सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नव ॥ १ ॥

वै निश्चयेन । नवसंख्याकानि कालमानानि । तत्र प्रथमं ब्राह्ममानम् । 'कल्पं ब्राह्ममहः प्रोक्तम्' इत्यादि । 'परमायुः शतं तस्य तयाहोरात्रसंख्यया' इत्यन्तं मध्यमाधिकारे प्रतिपादितम् । द्वितीयं दिव्यं देवमानम् 'दिव्यं तदह उच्यते' इत्यादि 'तत्षष्टिः सङ्गुणादिव्य वर्षम्' इत्यन्तं तत्रैव प्रतिपादितम् । तथा तृतीयमानं पित्र्यं पितॄणां मानं वक्ष्यमाणम् । प्राजापत्यं मानं वक्ष्यमाणं चतुर्थम् । बृहस्पतेस्तथामानं पञ्चमं समुदीरितम् । सौरं चकारात्षष्ठं मानम् । सावनं सप्तमं मानम् । चन्द्रमानमष्टमम् । नाक्षत्रं मानं नवमम् । एतान्यपि तत्रैवोक्तानि ॥ १ ॥

भा० टी०—ब्राह्म, दैव, पित्र्य, प्राजापत्य, बार्हस्पत्य, सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र यह नौ मान हैं ॥ १ ॥

अथ किंचित्तैरिति द्वितीयप्रश्नस्योत्तरं विवक्षुः प्रथमं व्यवहारोपयुक्तमानानि दर्शयति—

चतुर्भिर्व्यवहारोऽत्र सौरचान्द्रर्क्षसावनैः ॥
बार्हस्पत्येन षष्ट्यब्दं ज्ञेयं नान्यैस्तु नित्यशः ॥ २ ॥

अत्र मनुष्यलोके सौरचान्द्रनाक्षत्रसावनैश्चतुर्भिर्मानैर्व्यवहारः कर्मघटना । षष्ट्यब्दं प्रभवादिषष्टिवर्षं जात्यभिप्रायेणैकवचनम् । बार्हस्पत्येन बृहस्पतिमानेन बृहस्पतिमध्यमराशिभोगात्मककालेन प्रत्येकं ज्ञेयम् । अन्यैरवशिष्टैर्ब्राह्मदिव्यपित्र्यप्राजापत्यैः । नित्यशः सदेत्यर्थः । व्यवहारो नास्ति । तुकारात्कदाचित्कस्वेन तैर्व्यवहारः ॥ २ ॥

भा०टी—इनमें चारका व्यवहार हुआ है । सौर, चान्द्र, नाक्षात्रिक और सावन, षष्ट्यब्दजाननेके लिये बार्हस्पत्यमानको जानना चहिये । शेष मानोंका नित्य प्रयोजन नहीं होता ॥ २ ॥

अथ सौरेण व्यवहारं प्रदर्शयति-

सौरेण द्युनिशोर्मानं षडशीतिमुखानि च ॥
अयनं विषुवच्चैव संक्रान्तेः पुण्यकालता ॥ ३ ॥

अहोरात्रयोर्मानं सौरेण ज्ञेयम् । प्रात्यहिकसूर्यगतिभोगादहोरात्रं भवतीत्यर्थः । षडशीतिमुखानि वक्ष्यमाणानि । चः समुच्चये । तेन सौरमानेन ज्ञेयानि । अयनं विषुवत् । चः समुच्चये । संक्रान्तेः पुण्यकालता सूर्यबिम्बकलासम्बद्धा सौरमानेन ॥ ३ ॥

भा० टी०-दिनरात्रिका परिमाण षडशीति आदि अयन, विषुवत संक्रान्ति आदि पुण्यकाल, यह सब सौरमानमें निर्णीत होते हैं ॥ ३ ॥

अथ षडशीतिमुखमाह-

तुलादिषडशीत्यह्नां षडशीतिमुखं क्रमात् ॥
तच्चतुष्टयमेव स्याद्द्विस्वभावेषु राशिषु ॥ ४ ॥

तुलारम्भात्षडशीतिदिवसानां सौराणां षडशीतिमुखं भवति । तच्चतुष्टयं षडशीति मुखस्य चतुःसंख्याद्विस्वभावेषु राशिषु चतुर्षु क्रमादेवं वक्ष्यमाणा भवति ॥ ४ ॥

भा० टी०-तुलाके आरम्भसे परस्पर सौर ८६ दिनमें षडशीति होता है । यह चार द्विस्वभाव राशिमें स्थित हैं ॥ ४ ॥

तदेवाह-

षड्विंशे धनुषो भागे द्वाविंशे निमिषस्य च ॥
मिथुनाष्टादशे भागे कन्यायास्तु चतुर्दश ॥ ५ ॥

धनूराशेः षड्विंशतितमेंशे षडशीतिमुखं मीनराशेर्द्वाविंशतितमेंऽशे षडशीतिमुखम् । चकारः समुच्चयार्थकः प्रत्येकमन्वेति । मिथुनराशेरष्टादशेंऽशे षडशीतिमुखं कन्यायाश्चतुर्दशे भागे षडशीतिमुखम् । अतएव तुलादितः षडशीत्यंशो गणनया येषु राशिषु भवति ते राशयो द्विस्वभावाः षडशीतिमुखसञ्ज्ञा संक्रांतिप्रकरणे सांहितिकैरुक्ताः ॥ ५ ॥

भा० टी०-प्रथम षडशीतिमुख धनुके २६ अंशमें । दूसरा मीनके २२ अंशमें, तीसरा मिथुनके १८ अंशमें, चौथा कन्याके १४ अंशमें है ॥ ५ ॥

अथ षडशीत्यंशगणनया चत्वारिषडशीतिमुखान्युक्त्वा भगणांशपूर्त्यर्थमवशिष्टांशा षोडशातिपुण्या इत्याह—

ततः शेषाणि कन्याया यान्यहानि तु षोडश ॥
क्रतुभिस्तानि तुल्यानि पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ ६ ॥

ततः कन्यादिचतुर्दशभागानन्तरं शेषाणि भगणभागेऽवशिष्टानि कन्याया यान्यहानि सौरभागसमानि षोडश तानि । तुकारात्पूर्वदिनासमानि क्रतुभिर्यज्ञैः समानि । अति पुण्यानीत्यर्थः । तत्र पितॄणां दत्तं श्राद्धादिकृतमक्षयमनन्तफलदं भवति ॥ ६ ॥

भा० टी०—कन्याके पिछले १६ अंश यज्ञकार्यके लिये पुण्यदायी हैं । इस समयमें पितृलोगोंके लिये कियाहुआ दान अक्षय होता है ॥ ६ ॥

अथ राश्यधिष्ठितक्रान्तिवृत्ते चत्वारिस्थानानि पदसन्धिस्थाने विषुवायनाभ्यां प्रसिद्धानीत्याह—

भचक्रनाभौ विषुवद्द्वितयं समसूत्रगम् ॥
अयनद्वितयं चैव चतस्रः प्रथितास्तु ताः ॥ ७ ॥

भचक्रनाभौ भगोलस्य ध्रुवद्वयाभ्यां तुल्यान्तरेण मध्यभागे विषुवद्वितीयं विषुवद्द्वयं समसूत्रगं परस्परं व्याससूत्रान्तरितं ध्रुवमध्ये विषुवद्वृत्तस्थानात्तद्वृत्ते क्रान्तिवृत्तभागौ यौ लग्नौ तौ क्रमेणपूर्वापरौ विषुवत्संज्ञौ मेषतुलाख्यौचेत्यर्थः। अयनद्वितयमयनद्वयं कर्कमकरादिरूपम् । चः समुच्चये । तेन समसूत्रगंता विषुवायनाख्याः क्रान्तिवृत्तप्रदेशरूपा भूमयश्चतस्रतुः संख्याकाः प्रथिता गणितादौ पदादित्वेन प्रसिद्धाः। एवकारादन्यराशीनां निरासः। तुकारात्तासां समसूत्रस्थत्वेऽपि विषुवायनत्वाभावात्पदादित्वेनाप्रसिद्धिरित्यर्थः ॥ ७ ॥

भा० टी०—नक्षत्रचक्रमें दो विषुवत् बिन्दु समसूत्रग हैं और दो अयनभी तैसे ही हैं । यह चारबिन्दु सदा कहे जाते हैं ॥ ७ ॥

अथावशिष्टनामादिस्वरूपमन्यदप्याह—

तदन्तरेषु संक्रान्तिद्वितयं द्वितयं पुनः ॥
नैरन्तर्यात्तु संक्रान्तेर्ज्ञेयं विष्णुपदीद्वयम् ॥ ८ ॥

तदन्तरेषु विषुवायनान्तरालेषु । अत्रान्तरालानां चतुःस्थाने सद्भावा-द्बहुवचनम् । संक्रान्तिद्वितय पुनाराश्यादिभागे ग्रहाणामाक्रमणं वारद्वयं भवति तदन्तराले राश्यादिभागौ द्वौ भवत इत्यर्थः । यथाहि मेषाख्यविषु-वकर्काख्यानयोरन्तराले वृषमिथुनयोरादी । कर्कतुलयोरन्तराले सिंहकन्य-योरादी । तुलामकरयोरन्तराले वृश्चिकधनुषोरादी । मकरमेषयोरन्तराले कुंभमीनयोरादी इति एवं विषुवानन्तरं संक्रमणद्वयमन्तरमयनं तदनन्तरं संक्रा-न्तिद्वयं तदनन्तरं विषुवमनन्तरं संक्रांतिद्वयमनन्तरमयनमित्यादिपौनः—पुन्येन ज्ञेयमित्यर्थः । संक्रांतिद्वयमध्येन प्रथमसंक्रान्तौ विशेषमाह—नैरन्तर्यादिति । निरन्तरतया सम्भूतायाः संक्रान्तेः सकाशाद्विष्णुपदीद्वयं दन्तराल इति त्वर्थः । अवगम्यं प्रथमसंक्रान्तिर्विष्णुपदसञ्ज्ञा तयोर्द्वयं तदभ्यन्तरे प्रत्येकं भवतीत तात्पयार्थः । षडशीतिसञ्ज्ञं द्वितीयसंक्रमणं पूर्वसूचितं तयोरपि द्वयं तद-न्तराले भवतीति ध्येयम् ॥ ८ ॥

भा० टी०—कहेहुए दो बिन्दुओंके मध्यमें २ संक्रान्ति होती है जो ४ संक्रान्ति तिनके पीछे होती हैं तिनको विष्णुपदी कहते हैं । (औरका नाम षडशीति) है॥८॥

अथायनद्वयमाह—

भानोर्मकरसंक्रान्ते षण्मासा उत्तरायणम् ॥
कर्कादेस्तु तथैव स्यात्षण्मासा दक्षिणायनम् ॥ ९ ॥

सूर्यस्य मकरसंक्रान्तेः सकाशात् षट्सौरमासा उत्तरायणं भवति । कर्कादेः कर्क संक्रांतेः सकाशात्तथा सूर्यभोगात् एवकारादन्यग्रहनिरासः । षण्मासाः । तुकारात्सौराः । दक्षिणायनं भवति ॥ ९ ॥

भा० टी०--सूर्यके मकरसंक्रमणके पीछे ६ मास उत्तरायण हैं । कर्कटसंक्रमणके पीछे ६ मास दक्षिणायन हैं ॥ ९ ॥

अथर्तुमासवर्षाण्याह—

द्विराशिनाथा ऋतवस्ततोऽपि शिशिरादयः ॥
मेषादयो द्वादशैते मासास्तैरेव वत्सरः ॥ १० ॥

ततो मकरसंक्रांतेः सकाशात् । अपिशब्द उत्तरायणावधिना समुच्चया-र्थकः । द्विराशिनाथा राशिद्वयस्वामिका राशिद्वयार्कभोगात्मका इत्यर्थः ।

शिशिरादयः शिशिरवसंतग्रीष्मवर्षाशरद्धेमन्ता ऋतवः कालविभागविशेषा भवन्ति । एते सूर्यभोगविषयका मेषादयो राशयो द्वादशमासास्तैर्द्वादशभिर्मासैः । एवकारान्न्यूनाधिकव्यवच्छेदः । वत्सरः सौरवर्षं भवति ॥ १० ॥

भा० टी०—वह समय (मकरसंक्रमण) से शिशिरादि सब ऋतुमें द्विराशि करके भोग करता है । मेषादि १२ मासमें एकवर्ष होता है ॥ १० ॥

अथ प्रसङ्गात्संक्रान्तौ पुण्यकालानयनमाह—

अर्कमानकलाः षष्ट्या गुणिता भुक्तिभाजिताः ॥
तदर्धनाड्यः संक्रांतेरर्वाक् पुण्यं तथापरे ॥ ११ ॥

सूर्यस्य विम्बप्रमाणकलाः षष्ट्या गुणिताः सूर्यगत्या भक्तास्तस्य फलस्यार्द्धं तत्संख्याका घटिका इत्यर्थः । संक्रांतेः सूर्यस्य राशिप्रवेशकालादित्यर्थः । अर्वाक् पूर्वं पुण्यं स्नानादिधर्मकृत्ये पुण्यघटिकाः पुण्यवृद्धिकारिकाः । अपरे संक्रांत्युत्तरकाले तथा स्नानादिधर्मकृत्ये पुण्यवृद्धिदा इत्यर्थः । अत्रोपपत्तिः । सूर्यविम्बकेंद्रस्य राश्यादौ सञ्चरणकालः सक्रमणकालस्तस्य सूक्ष्मत्वेन दुर्ज्ञेयत्वात्स्थूलकालः कोप्यभ्युपेयः स तु राश्यादौ विम्बसञ्चरणरूपोऽङ्गीकृतो विम्बसम्बन्धात् । अतः सूर्यगत्या षष्टिसावनघटिकास्तदा सूर्ये विम्बकलाभिः का इत्यनुपातानीता विम्बघटिकाः संक्रांतिकालः स्थूलः प्राङ्नेमिसञ्चरणकालात्पश्चिमनेमिसञ्चरणकालपर्यंतं तदर्धघटिकाव्यासार्धघटिका इति संक्रांतिकालात्ताभिः पूर्वमपरत्रकाले प्रागपरनेम्योः क्रमेण संचरणात्पूर्वोत्तरकाले पुण्या इति ॥ ११ ॥

भा०टी–सूर्यमानकला ६० से गुण करके भुक्तिसे भाग करनेपर जो हो, तिसका आधा संक्रमणकालमें वियोग और योग करनेसे जो दो समय होते हैं तिनका अंतर अतिपुण्यदाई होता है ॥ ११ ॥

अथ सौरमुक्त्वाक्रमप्राप्तं चान्द्रमानमाह--

अर्काद्विनिसृतः प्राचीं यद्यात्यहरहः शशी ॥
तच्चान्द्रमानमंशैस्तु ज्ञेया द्वादशभिस्तिथिः ॥ १२ ॥

सूर्यात्समागमं त्यक्त्वा विनिर्गतः पृथग्भूतः संश्चन्द्रोऽहरहः प्रतिदिनं यावत् तत्संख्यामितं प्राचीं पूर्वां दिशं गच्छति तत्प्रतिदिने चान्द्रमानं तत्तु

गत्यन्तरांशासमेतम् । ननु सौरदिनं सूर्यांशेन यथा भवति तथैतद्रूपैर्भागैः कियाद्भिः पूर्णं चान्द्रं दिनं भवतीत्यत आह । अंशैरिति । भागैस्तुकारात्सूर्यचन्द्रान्तरोत्पन्नैस्तस्य तद्रूपत्वात् । द्वादशभिर्द्वादशसंख्याकैस्तिथिर्ज्ञेया । एकं चान्द्रदिनं ज्ञेयमित्यर्थः । एतदुक्तं भवति । सूर्यचन्द्रयोगाच्चान्द्रदिनप्रवृत्तेः पुनर्योगे माससमाप्तेर्भगणान्तरेण चान्द्रो मासस्त्रिंशच्चान्द्रदिनात्मकः । अतस्त्रिंशद्दिनैर्भगणांशान्तरं तदेकेन किमिति । द्वादशभागैरेकं चान्द्रदिनम् । 'दर्शः सूर्येन्दुसङ्गमः' इत्यभिधानाद्दर्शावधिकमासस्य त्रिंशत्तिथ्यात्मकत्वात्तिथिश्चान्द्रदिनरूपेति ॥ १२ ॥

भा० टी०-सूर्यसे निकलकर अहाह चन्द्रमा पूर्वदिशामें जाता है; तिसके लिये सूर्यसे १२ अंशमें जानेको जितना समय लगता है, वह तिथि है ॥ १२ ॥

अथ चान्द्रव्यवहारमाह-

तिथिः करणमुद्वाहः क्षौरं सर्वक्रियास्तथा ॥
व्रतोपवासयात्राणां क्रियाचान्द्रेण गृह्यते ॥ १३ ॥

तिथिः प्रतिपदाद्या करणं ववादिकमुद्वाहो विवाहः क्षौरं चौलकर्म । एतदाद्याः सर्वं क्रिया व्रतबन्धाद्युत्सवरूपा व्रतोपवासयात्राणां नियमोपवासगमनानां क्रिया करणम् । तथा समुच्चयार्थकः । चान्द्रमानेन गृह्यते । अङ्गीक्रियते ॥ १३ ॥

भा० टी०-तिथि, करण, विवाह क्षौरादि समस्तकर्म, व्रत, उपवास, यात्रा, संवही चान्द्र मानमें ग्रहण किये जाते हैं ॥ १३ ॥

अथ चान्द्रमासं प्रसङ्गात्पितृमानं चाह-

त्रिंशता तिथिभिर्मासश्चान्द्रः पित्र्यमहः स्मृतम् ॥
निशा च मासपक्षान्तौ तयोर्मध्ये विभागतः ॥ १४ ॥

त्रिंशता त्रिंशन्मितैस्तिथिभिश्चान्द्रो मासः पित्र्यं पितृसंबंधि । अहर्दिनम् । निशा रात्रिः पितृसंबद्धा । चकारो व्यवस्थार्थकः । तेनोभयं नैकः प्रत्येकं किंतु मिलितं स्मृतमिति लिंगानुरोधेनोभयत्रान्वेति । तथा च चांद्रो मासः । पित्र्याहोरात्रमित्यर्थः । फलितः । मासपक्षान्तौ मासान्तौ दर्शान्तः पक्षान्तः पूर्णिमान्तः । एतावित्यर्थः । विभागतः क्रमेणेत्यर्थः तयो पित्र्या-

होरात्रयोर्मध्येऽर्धे भवतः । दर्शान्तः पितॄणां मध्याह्नः । पूर्णिमान्तः पितॄणां मध्यरात्र इत्यर्थः । अर्थात्कृष्णाष्टम्यर्धे दिनप्रारंभः । शुक्लाष्टम्यर्धे दिनान्त इति सिद्धम् ॥ १४ ॥

भा० टी०-३० तिथिमें चान्द्रमास वा पितृदिन और पक्षान्तरमें निशा है इस प्रकार विभागमें एक मासका दिनरात होता है ॥ १४ ॥

अथ क्रमप्राप्तं नक्षत्रमानं प्रसंगान्माससंज्ञां चाह-

भचक्रभ्रमणं नित्यं नाक्षत्रं दिनमुच्यते ॥
नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः ॥ १५ ॥

नित्यं प्रत्यहं भचक्रभ्रमणं नक्षत्रसमूहस्य प्रवहवायुकृतपरिभ्रमः । नाक्षत्र नक्षत्रसम्बन्धि दिनं मानज्ञैः कथ्यते । नित्यमित्यनेन चन्द्रभोगनक्षत्रभोगो नाक्षत्रमित्यस्य निरासः । भचक्रभ्रमणानुपपत्तेः । माससंज्ञाः महानक्षत्रनाम्नेति । पर्वान्तयोगतः पर्वान्तपूर्णिमान्तः । तस्य योगात्तत्सम्बन्धात् । नक्षत्रसंज्ञया मासाः । तुकाराच्चान्द्रावगम्याः पूर्णिमान्तस्थितचन्द्रनक्षत्रसंज्ञो मासो ज्ञेय इति तात्पर्यार्थः । यथाहि यद्दर्शान्तावधिकश्चान्द्रो मासस्तदभ्यंतर स्थितपूर्णिमान्तस्थितचन्द्रनक्षत्रसंज्ञः । चित्रासम्बन्धाच्चैत्रः । विशाखासम्बन्धाद्वैशाखः । ज्येष्ठासम्बन्धाज्ज्येष्ठः । आषाढासम्बन्धादाषाढः । श्रवणसम्बन्धाच्छ्रावणः । भाद्रपदासम्बन्धाद्भाद्रपदः । अश्विनीसम्बन्धादाश्विनः । कृत्तिकासम्बन्धात्कार्तिकः । मृगशीर्षसम्बन्धान्मार्गशीर्षः । पुष्यसम्बन्धात्पौषः । मघासबन्धान्माघः । फाल्गुनीसम्बन्धात्फाल्गुन इति ॥ १५ ॥

भा० टी०-दैनिकभचक्रका भ्रमण करनाही नाक्षत्रिकदिन है । पूर्णिमान्ताधिष्ठित नक्षत्रके नामसे मासका नाम जानना चाहिये ॥ १५ ॥

ननु पूर्णिमान्ते तत्तन्नक्षत्राभावे कथं सत्संज्ञा मासानुचिते आह-

कार्तिक्यादिषु संयोगे कृत्तिकापि द्वयं द्वयम् ॥
अन्त्योपान्त्यो पञ्चमश्च त्रिधा मासत्रयं स्मृतम् ॥ १६ ॥

नक्षत्रसंयोगार्थमिति निमित्तसप्तमी । कार्तिक्यादिषु कार्तिकमासादीनां पौर्णमासीष्वित्यर्थः । कृत्तिकादि द्वयंद्वयं नक्षत्रं कथितं कृत्तिकारोहिणीभ्यां कार्त्तिकः मृगार्द्राभ्यां मार्गशीर्षः । पुनर्वसुपुष्याभ्यां पौषः । आश्लेषा मघाभ्यां माघः । चित्रास्वातीभ्यां चैत्रः । विशाखानुराधाभ्यां वैशाखः ।

ज्येष्ठामूलाभ्यां ज्येष्ठः। पूर्वोत्तरापाढाभ्यामाषाढः । श्रवणधनिष्ठाभ्यां श्रावण इति फलितम्। अवशिष्टमासानाह—अन्त्योपान्त्याविति। अत्र कार्तिकस्यादित्वेन ग्रहादन्त्य आश्विनः । उपान्त्यो भाद्रपदः । एतौ मासौ । पंचमः फाल्गुनः । चकारः समुच्चय इति । मासत्रयं त्रिधा स्थानत्रय उक्तम् । रेवत्यश्विनीभरणीति नक्षत्रत्रयसम्बन्धादाश्विनः । शततारापूर्वोत्तराभाद्रपदेति नक्षत्रत्रयसम्बन्धाद्भाद्रपदः । पूर्वोत्तराफाल्गुनीहस्तेति नक्षत्रत्रयसंबंधात्फाल्गुन इति सिद्धम् ॥ १६ ॥

भा० टी०—कार्तिकमासकी पूर्णिमासे दो दो नक्षत्रमें एक एक मासका नाम केवल आश्विन, भाद्र, और फाल्गुन मासका नाम तीन नक्षत्रोंमें सिद्ध है ॥ १६ ॥

अथ प्रसंगात्कार्तिकादिबृहस्पतिवर्षाण्याह—

वैशाखादिषु कृष्णे च योगः पञ्चदशे तिथौ ॥
कार्तिकादीनि वर्षाणि गुरोरस्तोदयात्तथा ॥ १७ ॥

यथा पौर्णमास्यां नक्षत्रसम्बन्धेन तत्संज्ञो मासो भवति । तथेति समुच्चयार्थकम् । बृहस्पतेः सूर्यसान्निध्यदूरत्वाभ्यामस्तादुदयाद्वा वैशाखादिषु द्वादशसु मासेषु कृष्णपक्षे पञ्चदशे तिथौ । अमायामित्यर्थः । चकारः पौर्णमासीसम्बन्धात्समुच्चयार्थकः । योगो दिननक्षत्रसम्बन्धः । कार्तिकादीनि द्वादशवर्षाणि भवन्ति । वैशाखकृष्णपक्षपञ्चदश्याममारूपायां बृहस्पतेरस्त उदये वा जाते सति तदापि बृहस्पतिवर्षं कृत्तिकादिनक्षत्रसम्बन्धात्कार्तिकसञ्ज्ञम् । एवं ज्येष्ठाषाढश्रावणभाद्रपदाश्विनकार्तिकमार्गशीर्षपौषमाघफाल्गुनचैत्रामासु मृगपुण्यमघापूर्वा फाल्गुनीचित्राविशाखाज्येष्ठापूर्वाषाढश्रवणपूर्वाभाद्रपदाअश्विनीदिननक्षत्रसम्बन्धान्मार्गशीर्षादीनि भवन्ति । अत्रापिप्रोक्तनक्षत्रद्वयसम्बन्धः प्रागुक्तो बोध्यः । अनेनेत्युपलक्षणम् तेन यद्दिने बृहस्पतेरुदयोऽस्तो वा तद्दिने यच्चन्द्राधिष्ठितनक्षत्रं तत्सञ्ज्ञं बार्हस्पत्यं वर्षं भवतीति तात्पर्यम् । संहिताग्रन्थेऽस्तोदयवशाद्वर्षोक्तिः परमिदानीमुदयवर्षव्यवहारो गणकैर्गण्यते येनोदितेज्य इत्युक्तेरिति ॥ १७ ॥

भा० टी०—जैसे वैशाखादिमें पूर्णिमाकी तिथिके नक्षत्रसे मासका नाम होता है वैसेही बृहस्पतिके अस्तोदयसमय कृष्णापंचदशी तिथिके नक्षत्रानुसार वर्षका नाम होता है ॥ १७ ॥

अथ क्रमप्राप्तं सावनमाह—

उदयादुदयं भानोः सावनं तत्प्रकीर्तितम् ॥
सावनानि स्युरेतेन यज्ञकालविधिस्तुतैः ॥ १८ ॥

सूर्यस्योदयादुदयकालमारभ्याव्यवहितोदयकालपर्यन्तं यत्कालात्मकं तत्सावनं मानज्ञैरुक्तम् । एतेनोदयान्तरात्मककालस्य गणनया सावनानि वसुद्व्यष्टाद्रीत्यादिना मध्याधिकारोक्तानि भवन्ति । तद्व्यवहारमाह—यज्ञकालविधिरिति । यज्ञस्य यः कालस्तस्य गणना तैः सावनैः । तुकारोऽन्यमाननिरासार्थकैवकारपरः ॥ १८ ॥

भा० टी०—एक सूर्योदयसे लेकर दूसरे सूर्योदयतक कालका नाम सावन है। इससे ही यज्ञकालकी विधिका निर्णय होता है ॥ १८ ॥

अथ व्यवहारान्तरमाह—

सूतकादिपरिच्छेदो दिनमासाब्दपास्तथा ॥
मध्यमा ग्रहभुक्तिस्तु सावनेनैव गृह्यते ॥ १९ ॥

सूतकं जन्ममरणसम्बन्धि । आदिपदग्राह्यं चिकित्सितचान्द्रायणादि तस्य परिच्छेदो निर्णयः । दिनाधिपमासेश्वरवर्षेश्वराः । तथा समुच्चये ग्रहाणां गतिर्मध्यमा । तुकारात्स्पष्टगतेर्निरासः तस्याः प्रतिक्षणं वैलक्षण्याद्दिनसम्बन्धस्याभावात् । एतेन स्पष्टगत्या स्पष्टग्रहस्य चालनं निरस्तं स्थूलत्वादिति सूचितम् । सावनमानेन एवकारादन्यमाननिरासः । गृह्यते सुधीभिरंगीक्रियते । अत्र बहुवचनानुरोधेन गृह्यत इत्यत्र बहुवचनं ज्ञेयम् ॥ १९ ॥

भा० टी०—सूतकादि आशौच दिन, मास और अब्दपति ग्रहकी मध्यभुक्ति सावनके अनुसार ग्रहण की जाती है ॥ १९ ॥

अथ दिव्यमानमाह—

सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात् ॥
यत्प्रोक्तं तद्भवेद्दिव्यं भानोर्भगणपूरणात् ॥ २० ॥

पूर्वार्धं पूर्वं व्याख्यातम् । यदहोरात्रं पूर्वार्धोक्तं सूर्यस्य भगणभोगपूर्तेः प्रोक्तं पूर्वमनेकधा निर्णीतं तदहोरात्रं दिव्यमानं स्यात् ॥ २० ॥

भा०-टी०-सुर असुरोंके परस्पर विपरीतभावसे दिनरात होता है सूर्यके भगण-पूरणक कालही दिव्य दिन है ॥ २० ॥

अथावशिष्टे प्राजापत्यब्राह्ममाने आह-

मन्वन्तरव्यवस्था च प्राजापत्यमुदाहृतम् ॥
न तत्र द्युनिशोर्भेदो ब्राह्मः कल्पः प्रकीर्तितम् ॥ २१ ॥

मन्वन्तरव्यवस्था मन्वन्तरावस्थितिः । 'युतानां सप्ततिः सैका' इत्यादिना मध्याधिकारोक्तेति चार्थः। प्राजापत्यं मानं मानज्ञैरुदाहृतमुक्तं मनूनां प्रजापतिपुत्रत्वात् । ननु देवपितृमानयोर्दिनरात्रिभेदो यथोक्तस्तथास्मिन्माने दिनरात्रिभेदप्रतिपादनं कथं नोक्तमित्यत आह-नेति । तत्र प्राजापत्यमाने द्युनिशोर्दिनरात्र्योर्भेदे विवेको गुरुसौरचन्द्र मानवन्नास्ति । ब्रह्ममानमाह-ब्राह्म इति । कल्पो युगसहस्रात्मकः प्रागुक्तः । ब्रह्ममानं मानज्ञैरुक्तम् । यद्यपि पूर्वं पित्र्यबार्हस्पत्यमानयोरनुक्तेरत्र तयोरेव निरूपणमुक्तमन्येषां निरूपणं तु पूर्वोक्त्या पुनरुक्तं तथापि पूर्वगणितानुपजीव्य परिभाषाकथनावश्यकतया गणितप्रवृत्त्यर्थं तेषाममानत्वेन निरूपणादत्र तुविशेषकथनार्थं मानत्वेन पुनस्तेषां निरूपणं प्रश्नोत्तरत्वेनाक्षतिकरमन्यथा प्रश्नानुपपत्तेरिति दिक् ॥ २१ ॥

भा० टी०-प्रजापति आदि मन्वन्तरकी व्यवस्था पहले कही है । इसमें दिनरातका भेद नहीं कल्पही ब्रह्ममान है ॥ २१ ॥

अथ स्वोक्तमुपसंहरति-

एतत्ते परमाख्यातं रहस्यं परमाद्भुतम् ॥
ब्रह्मैतत्परमं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २२ ॥

हे परम दैत्यश्रेष्ठ सूर्यभक्तत्वात् । ते तुभ्यमेतदधुनोक्तं परं द्वितीयकथनमाख्यातं निराकांक्षतया सम्पूर्णं कथितम् । पूर्वं सावशेषमुक्तं स्थितमिति त्वया प्रश्नाः कृतास्तदुत्तररूपद्वितीयकथनमिदं निःसंदिग्धमस्तीति तव संशया नोद्भवन्तीति भावः । ननु मत्प्रश्नं विना पूर्वमेवेदं कथं नोक्तमित्यत आह-रहस्यमिति । कुत इत्यत आह-अद्भुतमिति । आकाशस्थग्रहनक्षत्रादिस्थितिज्ञानसम्पादकत्वादाश्चर्यकरमित्यर्थः । तथा च मत्पूर्वोक्तं येन साव

धानतया श्रुतं तेनैव त्वदुक्ताः प्रश्नाः कर्तुं शक्यास्तदुत्तरत्वेन द्वितीयं मदुक्तमिति त्वां परीक्ष्य त्वा प्रत्युक्तं रहस्यमिति भावः। नन्वन्यशास्त्राणां ज्ञानाद्ब्रह्मानन्दावाप्तिरस्मान्नेत्यत आह—ब्रह्मेति। एतन्मदुक्तं ब्रह्म ब्रह्मसमं तथा चान्यशास्त्राणां ब्रह्मसमत्वाभावेऽपि तज्ज्ञानाद्ब्रह्मानन्दावाप्तिरस्माद्ब्रह्मस्वरूपाद्ब्रह्मानन्दावाप्तौ किंचित्रमिति भावः। कुत इदं ब्रह्मसममित्यत आह—परमिति। उत्कृष्टम्। अत्र हेतुभूतं विशेषणद्वयमाह। पुण्यं सर्वपापप्रणाशनमिति। पुण्यजनकं सर्वपापनाशकम् ॥ २२ ॥

भा० टी०--हे श्रेष्ठ! यह परम अद्भुत रहस्य कहा। यह सर्वपापका नाश करनेवाला अति पवित्र है, वरन् ब्रह्मस्वरूप है ॥ २२ ॥

नन्वस्माद्ब्रह्मानन्दप्राप्तिरुक्ता पूर्वं ग्रहलोकप्राप्तिश्चोक्ता तत्रानयोः किं फलं भवतीत्य आह—

दिव्यं चार्क्षं ग्रहाणां च दर्शितं ज्ञानमुत्तमम् ॥
विज्ञेयार्कादिलोकेषु स्थानं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥ २३ ॥

आर्क्षं नक्षत्रसंबन्धि ज्ञानं ग्रहाणां ज्ञानम्। चः समुच्चये। उत्तमं सर्वशास्त्रेभ्य उत्कृष्टम्। अत्र हेतुभूतं विशेषणं दिव्यं स्वर्गलोकोत्पन्नं दर्शितं मया तुभ्यमुपदिष्टं विज्ञाय ज्ञात्वार्कादिलोकेषु सूर्यादिग्रहलोकेषु स्थानमधिष्ठानं प्राप्नोति शाश्वतं नित्यं ब्रह्मसायुज्यरूपं स्थानम्। पूर्वार्धस्थद्वितीयचकारः समुच्चयार्थकोऽत्रान्वेति। तथाचोभयं फलं क्रमेण भवतीति भावः। यत्तु एतत्ते परमाख्यातमित्यादिश्लोकः क्वचित्पुस्तकेऽस्मात् श्लोकात्पूर्वं नास्ति किन्तु माननिरूपणान्तस्थदिव्यं चार्क्षमित्यादिश्लोकान्ते मानाध्यायसमाप्तिं कृत्वाग्रे "यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा। तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ॥ १ ॥ न देयं तत्कृतघ्नाय वेदविप्लावकाय च। अर्थलुब्धाय मूर्खाय साहङ्काराय पापिने ॥ २ ॥ एवंविधाय पुत्रायाप्यदेयं सहजाय च। दत्तेन वेदमार्गस्य समुच्छेदः कृतो भवेत् ॥ ३ ॥ व्रजेतामन्धतामिस्रं गुरुशिष्यौ सुदारुणम्। ततः शान्ताय शुचये ब्राह्मणायैव दापयेत् ॥ ४ ॥ चक्रानुपातजो मध्यो

मध्यवृत्तांशजः स्फुटः । कालेन दृक्समो न स्यात्ततो बीजक्रियोच्यते ॥ ५ ॥ राश्यादिरिन्दुरङ्कघ्नो भक्तो नक्षत्रकक्षया । शेषं नक्षत्रकक्षायास्त्यजेच्छेषकयोस्तयोः ॥ ६ ॥ यदल्पं तद्भजेद्भानां कक्षया तिथिनिघ्नया । बीजं भागादिकं तत्स्याकारयेत्तद्धनं रवौ ॥ ७ ॥ त्रिगुणं शोधयेदिन्दौ जिनघ्नं भूमिजे क्षिपेत् । दृग्यमघ्नमृणं ज्ञोच्चे खरामघ्नं गुरावृणम् ॥ ८ ॥ ऋणं व्योमनवाघ्नं स्याद्दानवेज्यचलोच्चके ॥ धनं सप्ताहतं मन्दे परिधीनामथोच्यते ॥ ९ ॥ युग्मान्तोक्ताः परिधयो ये ते नित्यं परिस्फुटाः ॥ ओजास्तोक्तास्तु ते ज्ञेयाः परबीजेन संस्कृताः ॥ १० ॥ वच्मि निर्बीजकानोजजपदान्ते वृत्तमांगकान् ॥ सूर्येन्द्वोर्मनवो दन्ता धृतितत्त्वकलोनिताः ॥ ११ ॥ बाणतर्का महीजस्य सौम्यस्याचलबाहवः ॥ वाक्पतरष्टनेत्राणि व्योमशीतांशवो भृगोः ॥ १२ ॥ सूर्यर्तवोऽर्कपुत्रस्या बीजमेतेन कारयेत् ॥ बीजं खाग्न्युद्धृतं शोध्यं परिध्यंशेषु भास्वतः ॥ १३ ॥ इनाप्तं योजयेदिन्दोः कुजस्याश्वहतं क्षिपेत् । विदश्चन्द्रहतं योज्यं सूरेरिन्द्रहतं धनम् ॥ १४ ॥ धनं भृगोर्भुवाप्तिघ्नं रविघ्नं शोधयेच्छनेः ॥ एवं मान्दाः परिध्यंशाः स्फुटाः स्युर्वच्मि शीघ्रकान् ॥ १५ ॥ भौमस्याग्नगुणाक्षीणि बुधस्याब्धिगुणेन्दवः ॥ बाणाक्षा देवपूज्यस्य भार्गवस्येन्दुषड्यमाः ॥ १६ ॥ शनैश्चन्द्राब्धयः शीघ्राः ओजान्ते बीजवर्जिताः ॥ द्विघ्नं स्वं कुजभागेषु बीजं द्विघ्नमृणं विदः ॥ १७ ॥ अन्त्यष्टिघ्नं वनं सूरेरिन्दुघ्नं शोधयेत्कवेः ॥ चन्द्रघ्नमृणमार्कस्य स्युरेभिर्दृक्समा ग्रहाः ॥ १८ ॥ एतद्बीजं मयाख्यातं प्रीत्या परमया तव ॥ गोपनीयमिदं नित्यं नोपदेश्यं यतस्ततः ॥ १९ ॥ परीक्षिताय शिष्याय गुरुभक्ताय साधवे ॥ देयं विप्राय नान्यस्मै प्रतिकंचुककारिणे ॥ २० ॥ बीजं निःशेषसिद्धान्तरहस्यं परमं स्फुटम् । यात्रापाणिग्रहादीनां कार्याणां शुभसिद्धिदम् ॥ २१ ॥ "इत्यस्य क्वचित्पुस्तके लिखितस्य बीजोपनयनाध्यायस्यान्ते लिखितो दृश्यते तत्त न समञ्जसम् । उत्तरखण्डे ग्रहगणितनिरूपणाभावात्तन्निरूपणप्रसङ्गानिरूपणीयस्याध्यायस्यालेखनानौचित्यात्स्पष्टाधिकारे तदन्ते वास्य लेखनस्य युक्तत्वाच्च । किञ्च 'मानानि कति किञ्च तैः' इति

प्रश्नाग्रे प्रश्नानामभावात्प्रश्नोत्तरभूतोत्तरखण्डेऽस्य लेखनमसंगतम् । अपिच उपदेशकाले बीजाभावादग्रेऽन्तरदर्शनमनियतं कथमुपदिष्टमन्यथान्तर्भूतत्वेनै-वोक्तः स्यादित्यादि विचारेण केनचिद्धूर्तेन बीजस्यार्षमूलकत्वज्ञापनायान्तेऽत्र बीजोपनयनाध्यायः प्रक्षिप्त इत्यवगम्य न व्याख्यात इति मन्तव्यत् ॥२३॥

भा० टी०—ग्रह और नक्षत्र सम्बन्धीय दिव्य उत्तम ज्ञान जो मैंने कहा तिसके प्राप्त करनेसे सूर्यादि लोकमें नित्यस्थान मिलता है ॥ २३ ॥

अथ मुनीन्प्रति कथितसम्वादस्योपसंहारमाह—

इत्युक्त्वा मयमामन्त्र्य सम्यक्तेनाभिपूजितः ॥
दिवमाचक्रमेऽर्कांशः प्रविवेश स्वमण्डलम् ॥ २४ ॥

सूर्यांशपुरुषो मयासुरमामन्त्र्य सम्यक्तत्त्वतो ग्रहादिचरितमुपादिश्य । इति । एतत्ते इत्यादिश्लोकद्वयमुक्त्वा कथयित्वा । समुच्चयार्थकश्चोऽनुस-न्धेयः । दिवं स्वर्गमाचक्रमे । आक्रमणविषयं चक्रे । ननु सूर्यांशपुरुषस्य तदुपदेशे को वा पुरुषार्थ इत्यत आह—तेनेति । मयासुरेणाभिपूजितः । गन्धधूपादिनैवेद्यवस्त्रालंकरणादिभिः पूजाविषयीकृतः । मयद्वारा मर्त्यलोके सिद्धिं सूर्यतुल्यत्वेन प्राप्त इति भावः ननु स्वर्गेऽपि किं स्थानं गत इत्यत आह—प्रविवेशेति । स्वमण्डलं सूर्यबिम्बं विशति स्माधिष्ठितवान् । अत्रापि समुच्चयार्थोऽनुसन्धेयश्चकारः ॥ २४ ॥

भा० टी०—इस प्रकार मयको भली भांति उपदेश देनेके पीछे तिससे पूजित होकर सूर्यांश पुरुष स्वर्गमें चढकर सूर्यमण्डलमें प्रवेश करते हुए ॥ २४ ॥

अथ मयासुरावस्थां तात्कालिकीमाह—

मयोऽथदिव्यं तज्ज्ञानं ज्ञात्वा साक्षाद्विवस्वतः ॥
कृतकृत्यमिवात्मानं मेने निर्धूतकल्मषम् ॥ २५ ॥

अथ सूर्यांशपुरुषाऽन्तर्धानानान्तरं मयासुरस्तज्ज्ञानं ग्रहर्क्षस्थित्यादि-ज्ञानं पूर्वोक्तं दिव्यं स्वर्गस्थं सूर्यात्साक्षादनन्यद्वारेत्यर्थः । सूर्यांशपुरुपस्य सूर्याभिन्नत्वं तदुत्पन्नत्वादत एव भेदेऽपि साक्षादुक्तं युक्तम् । ज्ञात्वात्मानं स्वंनिर्धूतकल्मषं निवारितपापं कृतकृत्यं सम्पादितकार्यं मेने मन्यतेऽस्म ॥२५॥

भा०टी०-मयभी साक्षात् सूर्यनारायणसे दिव्यज्ञान प्राप्त करके कृतार्थ हो कल्मषशून्य हुआ और ऐसाही मनमें समझने लगा ॥ २५ ॥

अथ त्वमिदं ज्ञानं कथं प्राप्तवानिति श्रोतृमुनिभिः पृष्टो मुनिस्तान्प्रति तत्रत्या अस्मत्प्रभृतय ऋषयो मयं प्रत्येतज्ज्ञानं पृष्टवन्त इत्याह-

ज्ञात्वा तमृषयश्चाथ सूर्यलब्धवरं मयम् ॥
परिवव्रुरुपेत्याथो ज्ञानं पप्रच्छुरादरात् ॥ २६ ॥

अथ मयासुरस्य ज्ञानप्राप्त्यनन्तरमृषयः सूर्यांशपुरुषमयासुरसम्वादाश्रितभूमिप्रदेशासन्नभूमिप्रदेशस्था अस्मत्प्रभृतयो मुनयस्तं कृतकृत्यं मयासुरं सूर्यलब्धवरं सूर्यात्प्राप्तो वरो ज्ञानप्रसादो येनैतादृशं ज्ञात्वा । उप समीप एत्यागत्य । चः समुच्चये । परिवव्रुः वेष्टितवन्तः । अथो अनन्तरमादरादत्यन्तं साभिलाषितया तं ज्ञानं ग्रहादिचरितं पप्रच्छुः पृष्टवन्तः ॥ २६ ॥

भा० टी०-मयने सूर्यभगवानसे वर पाया है. ऐसा जानकर मुनियोंने तिसके निकट आय आदरसहित पूछा था ॥ २६ ॥

अथ मयासुरः स्वज्ञानं तत्प्रश्नकारकानस्मत्प्रभृतीन्मुनीन्प्रति कथयामासेत्याह-

स तेभ्यः प्रददौ प्रीतो ग्रहाणां चरितं महत् ॥
अत्यद्भुततमं लोके रहस्यं ब्रह्मसम्मितम् ॥ २७ ॥

मयासुरः प्रीतः संतुष्ट सन् तेभ्योऽस्मत्प्रभृतिभ्य ऋषिभ्यो ग्रहाणांस्थित्यादिज्ञानं महदपरिमेयमत एव ब्रह्मसंमितं ब्रह्मतुल्यं लोके भूलोकेऽत्यद्भुततममत्यंतमाश्चर्यकारकं श्रेष्ठमत एव प्रददौ प्रकर्षेण निर्व्याजतया दत्तवान् कथयामासेत्यर्थः ॥ २७ ॥

भा० टी०-ग्रहोंको चरित्ररूप अत्यन्त अद्भुत ब्रह्मसंमित रहस्य मैंने प्रसन्न होकर ऋषियोंको दियाथा ॥ २७ ॥

अथ मानाध्यायसमाप्त्या सूर्यसिद्धांतसमाप्तिं कस्यचित्प्रक्षिप्ताध्ययस्य निवारिकां फक्किकयाह-

सूर्यसिद्धान्ते मानाध्यायः ॥ १४ ॥

रंगनाथेन रचिते सूर्यसिद्धांतटिप्पणे । मानाध्यायोत्तरदले पूर्णो गूढप्रकाशके ॥ भागीरथीतीरसंस्थे शंभोर्वाराणसीपुरे । बल्लालगणको रुद्रजपासक्तोऽभवद्बुधः ॥ १ ॥ तस्यात्मजाः पञ्च गुणाभिरामा ज्येष्ठः स रामः सकलागमज्ञः । येनोपपत्तिः स्वधिया नितांतं प्रकाशितानन्तसुधाकरस्य ॥ २ ॥ ततः स कृष्णो जहंगीरसार्वभौमस्य सर्वाधिगतप्रतिष्ठितः ॥ श्रीभास्करीयं निवृत्तं तु येन बीजं तथा श्रीपतिपद्धतिः सा ॥ ३ ॥ गोविंदसञ्ज्ञस्तु ततस्तृतीयस्तस्यानुजोऽहं गुरुलब्धविद्यः ॥ विश्वेशपत्पद्मनिविष्टचेताः काशीनिवासी सकलाभिमान्यः ॥ ४ ॥ श्रीरंगनाथोर्कमुखोत्थशास्त्रे गूढप्रकाशाभिधटिप्पणं सः ॥ कृत्वा महादेवबुधाग्रजोथ विश्वेश्वरायार्पितवान्सुवृद्ध्यै ॥ ५ ॥ शके तत्त्वतिथ्युन्मिते चैत्रमासे सिते शम्भुतिथ्यां बुधेऽर्कोदयान्मे । दलाढ्यद्विना राचनाडीषु जातौ मुनीशार्कसिद्धान्तगूढप्रकाशौ ॥ ६ ॥ गूढप्रकाशकं दृष्ट्वा रंगनाथभवं भुवि ॥ मुनीश्वरस्य सहजं लभन्तां गणकाः सुखम् ॥ ७ ॥

इति श्रीसकलगणकसार्वभौमबल्लालदैवज्ञात्मजरंगनाथविरचितः सूर्यसिद्धान्तगूढार्थ प्रकाशकः सम्पूर्णः ॥ समाप्तश्च सूर्यसिद्धांतः ॥ चतुर्दशअध्याय समाप्तः ॥

इति उत्तरार्द्धखण्ड सम्पूर्णः ।

---

१ सिद्धान्तरहस्यमते । कल्यब्दापिण्डात्त्रिसहस्रलब्धं भागादिबीजं धनमिन्दुकेंद्रे । त्रिघ्नं शनौ वेदहते बुधोच्चे द्वित्रिघ्नमिज्यास्फुजितोर्विशोध्यम् ॥ जातकार्णवे—खबाणागिरिभिर्बुधे धनमृणं खखोष्विन्दुभिर्गुरावथऋणं सिते रविसुते धनं दिक्छतैः । विधुस्तदविधूच्चये शतहताभ्रवैश्वानरै ऋणं कलियुगाब्दतो नयनगोचराः खेचराः ॥

सूर्यसिद्धान्तः समाप्तः ।

उदाहरणम् ।

अहर्गणानयन (१ अ० ५१ श्लो०) । शाके १८१७ के प्रथमदिनका अहर्गण कृतयुगके शेषतक १९५३७२०००० त्रेता और द्वापरमान २१६०००० और कलियुगके बीतेहुए ४९९६ मिलानेसे १९५५८८४९९६ कल्पगताब्दवर्ष हुआ। इसको १२ से गुणा करनेपर २३४७०६१९९५२ मास हुए। इस संख्याका अधि· मास संख्या १५९३३३६ से गुणाकरनेपर ३७३९६५८३७११८३९८७२ हुए। इनको सौरमासकी संख्या ५१८४०००० से भाग करनेपर ७२१३८४७१६ हुए भागावशेष छोडे गये। यह संख्या माससंख्यामें मिलाकर २४१९२००४६६८ इस माससंख्याको ३० तीससे गुणाकरके मधुशुक्लादि तिथिसंख्या १८ मिलानेसे ७२५· ७६०१४००५८ दिन हुए। इस दिन संख्याको तिथि क्षय २५०८२२५२ से गुणा करनेपर १८२०३६९८७२४४९००५०६१६ हुए। इसको चान्द्र दिन १६०३००· ००८० से भाग करके भागावशेषको छोड देनेसे ११३५६०१८६०० ये लब्ध हुए यह संख्या दिनसंख्यासे घटानेपर ७१४४०४१२१४५८ शेष रही। शनिवार होनेसे ७१४४०४१२१४५९ अहर्गण हुआ॥

मध्यानयन। (१ अ० ५३ श्लोक) अहर्गणको सूर्यभगण ४३२०००० से गुणा करनेपर ३०८६२२५८०४७०२८८०००० ये हुए। इस संख्याको सौरदिन १५७ ७९१७८२८ से भाग करनेपर लब्ध १९५५८८४९९५ भगण हुए। शेष १५७४· ६८९१४० को १२ से गुणकरके सौरदिनसे भाग करनेपर ११ राशि हुई और अवशेषको ३० से गुण करके सौरदिनसे भाग करनेपर २९ अंश हुए। बाकीकी कला विकलादि करके १५ कला ४८ विकला और ९ अनुकला हुई। शेष छोड दिये गऐ भगण संख्याको छोड देनेसे रविमध्य ११। २९। १५। ४८। ९ हुआ।

देशान्तरानयन (१ अ० ६० श्लो०)। भूकर्ण १६०० योजनके वर्गको १० से गुणाकरनेपर २५६०००००० हुए (इसका मूल निकालनेसे ५०६० योजन हुए। ५ अंगुल छायाके वर्ग करनेसे २५ और शंकुवर्ग १४४ मिलाकर मूल निकालनेसे १३ हुए। यह छायाकर्ण है विषुवदिनके शंकु १२ से त्रिज्या (३४३८) को गुणाकरनेसे ४१२५६ हुए। इस संख्याको छायाकर्ण १३ से भाग करनेपर ३१७३ भाग फल लम्बज्या हुई इसको योजन संख्या ५०६० से गुणाकरनेपर १६०५५३८० हुए। इसको त्रिज्या ३४३८ से भाग करनेपर स्फुट भूपरिधि ४६६९ योजन हुई किसी देशकी योजनसंख्या १५० है। सूर्यकी दैनिक भुक्ति कलासे गुणा करनेपर ८८७० हुए। इसको स्फुट भूपरिधिसे भाग करनेपर १। ५३ कलाविकला हुई।

यह रविमध्यमें स्वदेशकी पूर्वदिशामें होनेसे वियोग करनेसे ११ । २९ । १३ । ५५ । ९ ये हुए ।

मन्दोच्चानयन । (१ अ० ५४ श्लो०) कृतयुगके शेषमें शनिका मन्दोच्चनिरूपण करना । १९५३७२०००० वर्ष संख्याको, शनिके मन्दोच्च कल्पभगण ३९ से गुणा करनेपर ७६१९५०८०००० हुए । इसको कल्पमान ४३२०००००००० से भाग करनेपर १७ भगण राश्यादि ७ । १९ । ३५ । २४ हुई । गतिकी अल्पताके वशसे देशान्तरका संस्कार मध्यसाधन और चन्द्रमाके मन्दोच्च साधन विना निष्प्रयोजन है ।

पातमध्यानयन । शाके १८१७ के आरम्भमें शनिका पातानयन है । १९५५८८४९९६ वर्षको भगण ६६२ से गुणाकरके ४३२०००००००० से भाग करनेपर २९९ । २१ । ३८ । १६ भगणादि शनिके पातमध्य हुए ।

रविस्फुटानयन । (२ अ० ४६ श्लो०) रविमन्दोच्च २ । १७ । १७ । २८ से रविमध्य ११ । २९ । १५ । ४८ अलग करनेसे २ । १८ । १ । ४० मन्द केन्द्र हुआ । केन्द्रविषमपादमें स्थित (२ अ० ३४ श्लो०) हुआ । अत एव गतकेन्द्रही भुज है । केन्द्रको कलाकरके २२५ से भाग करके २० भागफलके अनुसार ज्या करनेसे ३३२१ हुए । भागावशिष्टसे ज्यान्तर ५१ को गुणाकरके २२५ से भाग करनेपर लब्ध ४१ कला हुआ । यह ज्या ३३२१ के साथ मिलनेसे ३३६२ मन्दभुजज्या हुई । सूर्यकी दो मन्दपरिधि अंतर २० कला है । इसको ज्या ३३६२ से गुणाकरके त्रिज्या ३४३८ से भाग करनेपर १९ कला ३४ विकला हुआ । युग्मअंतमें मंदपरिधि १४ । ० से १९ कला ३४ विकला अलग करदेनेसे १३।४०।२६ स्फुट परिधि हुई । इसको ज्यासे गुणाकरके ३६० से भाग करनेपर २ । ७ । ३६ अंशादि हुए । यही मन्दभुजज्याफल है । इसके धनुकरनेसे अंश २ । ७ । ३६ वही हुए मन्दकेंद्र मेषादिकेंद्र होनेके कारण रविमध्यमें मिलानेसे ० । १ । २३ । २४ । राश्यादि रवि स्फुट हुआ रविभुजमांद्यफल १२८ कला रविस्पष्ट भुक्तिसे गुणाकरके २१६०० से भाग करनेपर २ विकला हुई । सो रविस्फुटमें मांद्यफलका योग होनेसे योग करनेपर ० । १ । २३ । २६ मध्यरात्रिक भुज संस्कृत रवि स्फुट हुआ ।

शनिस्फुटसाधन । शनिमध्य ५।२९ । ७ । ८ शनिशीघ्र ११ । २९ । १५ ।४२ से वियोग करनेपर शेष ६ । ०।८ । ३४ शीघ्रकेंद्र हुआ । केंद्रविषमपादमें स्थित है । गतकला ८ । ३४ इसकी ज्या और कलादि ८ । ३४ । गम्यकला कोटिकला तिसको २२५ से भाग करके भागफलके अनुसार ज्यानिर्देश करके शेष ज्यांतरसे गुणाकरके २२५ से भाग करनेपर लब्धज्यामें संस्कार करनेसे ३४३७ । ४९ ।

कोटिज्या हुई । भुजज्याको त्रिज्यासे भागकरनेपर ९ विकला हुई । स्फुट शीघ्र परिधिमें संस्कार करनेसे ३९ । ० । ९ अंशादि हुई । भुजज्याको शुद्ध स्फुट परिधिसे गुणा करके ३६० से भागकरनेपर ५६ विकला शीघ्रभुजफल हुआ । कोटीज्याको स्फुटपरिधिसे गुणा करके ३६० से भाग करनेपर कला विकला ३७२ । २२ । हुई । शीघ्रकेन्द्र कर्कादिमें होनेसे त्रिज्या ३४३८ से फल ३७२ । २२ । अलग करनेपर ३०६५ । ३८ शीघ्रकोटीफल हुआ । शीघ्रकोटीफलको विकला करके वर्ग करनेपर ३३८३२१८७८४४ हुए । भुजज्याविकलाको वर्ग करनेसे ३१३६ हुए शीघ्रकोटीफलवर्गके साथ भुजज्यावर्ग मिलाकर मूल निकालनेसे १८३९१८ विकला शीघ्रकर्ण हुआ । भुजफल ५६ विकलाको त्रिज्या ३४३८ से गुणाकरके शीघ्रकर्णद्वारा भाग करनेपर ६३ विकला हुई । कला १ । ३ शनिका प्रथम शीघ्रफल हुआ (यही प्रथमसंस्कार है) इसका अर्द्ध शनिमध्यमें शीघ्रकेन्द्र तुलादि होनेसे वियोग करनेपर ५ । २९ । ६ । ३७ । शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतमध्यशनि हुआ । शनि मन्दोच्च ७ । २६ । ३७ । २४ से शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतमध्य वियोग करने पर १ । २७ ३० । ४७ प्रथममन्दकेन्द्र हुआ । कलाकरके २२५ से भाग करने पर १९ संख्या तुल्य ज्याग्रहण करके ज्यान्तर ११९ से भागशेष ७९ को गुणाकरके २२५ से भागकरके कला ४० । ४ हुई । यह ज्या २८५९ इसमें मिलानेसे २८९९ । ४ प्रथममन्द भुजज्या हुई । इस भुजज्याको युग्मायुग्म मन्दपरिधिके अन्तर १ अंशसे गुणकरके ३४३८ त्रिज्यासे भाग करनेपर कला ५० । ३६ हुई युग्मपरिधिके हीन करनेपर ४८ । ९ । २४ शुद्ध स्फुटपरिधि हुई भुजज्याको शुद्धस्फुट मन्दपरिधिसे गुणाकरके ३६० से भाग करनेपर कला ३८७ । ४९ हुई इनके धनुकरनेसे ३८८ । २८ मन्दफल हुआ (यह दूसरा संस्कार है) यह प्रथममन्दफलार्द्ध शीघ्रफलार्द्ध संस्कृत मध्यशनिमें मेषादिकेन्द्रमें मिलानेसे ६ । २ । २० । ५१ शीघ्रार्द्ध मन्दार्द्ध संस्कृत-मध्य शनि हुआ ।

फिर शनिमन्दोच्च ७ । २६ । ३७ । २४ से प्रथम मन्दफल संस्कृत मध्य ६ । २ । २० । ५१ वियोग करनेपर १ । २४ । १६ । ३३ ये हुए इसकी कला करके २२५ से भाग करने पर भागफल १४ के अनुसार ज्या २७२८ और ज्यान्तर १३१ को अवशिष्ट १०६ से गुणाकरके २२५ से भाग करके लब्ध ६१ । ४४ को ज्या २७२८ इसमें मिलानेसे २७८९ । ४४ द्वितीय मन्दभुजज्या हुई इसको ३४३८ त्रिज्यासे भाग करनेपर फल ४८ । ४१ होताहै । सो ४९ अंशसे हीन कर-

नेसे ४८ । ११ । १९ द्वितीय शुद्ध मन्द परिधि हुई । द्वितीय मन्दभुजज्या २७८९ । ४४ को इससे गुणाकरके ३६० से भाग करनेपर कला ३७३ । २६ इसके धनु करनेसे ३७४ । ९ दूसरा मन्दफल हुआ । (यही तीसरा संस्कार है) यह शनिमध्यमें ५ । २० । ७ । ८ में मेषादि केन्द्रहेतु योग करनेसे ६ । ९ । २१ । १३ यह द्वितीय मन्दस्पष्ट शनि हुआ । शनिशीघ्र ११ । २९ । १९। ४२ । से मन्द स्पष्ट शनि ६ । ९ । २१ । १३ हीन करनेसे शेष ५ । २३ । ९४ । २९ शीघ्रकेंद्र हुआ । इससे ३ राशिहीन करके कला बनाय २२५ से भाग करके भागफल २२ के अनुसार ज्या ३४०९ और ज्यान्तर २२ से अवशिष्ट ८४ । २९ का अनुपातद्वारा लब्ध ८ । १९ ग्रहणकरके ज्या ३४०९में युक्त करनेसे ३४१७ । १९ हुए । युग्म पात होनेसे गत ज्या कोटिज्या हुई । गम्य ३ । ६ । ५ । २५ । भुजकी ज्या बनानेसे २६० । २३ भुजज्या हुई । इसको त्रिज्यासे भाग करने पर कला ६ । २१ हुई । शीघ्रपरिधिमें संस्कार करनेसे ३९ । ६ । २१ शुद्ध परिधि हुई । चतुर्थ शीघ्रभुजज्याको शुद्ध परिधिसे गुणकरके ३६० से भाग करनेपर लब्ध ३९ । ३९ कला विकला चतुर्थ शीघ्रभुजफल हुआ । कोटीज्याको शुद्ध परिधिसे गुणकरके ३६० से भाग करनेपर ३७१ । १३ हुए । कर्कादि केन्द्र होनेसे त्रिज्या ३४३८ से वियोग करनेपर ३०६६ । ४७ चतुर्थ शीघ्रकोटी फल हुआ । शीघ्रभुजफल वर्ग और शीघ्रकोटी फल वर्गके योग फलका मूल निकालनेसे ३०६८ कला शीघ्रकर्ण हुआ । शीघ्रभुज फलको त्रिज्यासे गुणकरके इस शीघ्रकर्णसे भाग करनेपर कलादि ४४ । २२ हुए, इसके धनु और कला ४४ । २२ शीघ्रफल हुआ (यही चौथा संस्कार है) शनिमन्दस्पष्टमें मेषादि केन्द्र होनेसे युक्त करने पर ६ । ६ । ९ । ३९ शनिस्फुट हुआ ।

ग्रहगति । (२ अ० ४७-५३ श्लो.) सूर्यके मन्दसंस्कारमें ९१ कला दोर्ज्यांतर है । उसको रविभुक्ति मध्य ५९ । ८ से गुणाकरके २२५ से भाग करने पर कला १३ । २४ विकला हुई । इसको शुद्ध स्फुट परिधि १३ । ४० । २६ से गुणाकरके ३६० से भाग करने पर ३० विकला हुई । यह मकरादि केन्द्रके वशसे मध्यभुक्ति ५९ । ८ से भाग करने पर ५८ । ३८ सूर्यकी स्पष्ट गति हुई । चन्द्रग्रहण । (४ अ० १७ आदिश्लो०) सूर्यव्यासयोजन ६५०० सूर्यकी स्पष्ट गति ६० कलासे गुणा करके सूर्यकी मध्य भुक्ति ५९ । ८ से भाग करनेपर ६५९९ योजन रविस्पष्ट व्यास हुआ । चन्द्र व्यास योजन ४८० को चन्द्र स्पष्टगति ८६० कलासे गुणाकरके चन्द्र-मध्य भुक्ति ७९० । ३८ से भाग करनेपर ५२२ योजन चन्द्रव्यास और १५ से भाग

करनेपर ३९ कला चन्द्र स्पष्ट व्यास हुआ। मही व्यास १६०० को चन्द्र स्पष्टगति ८६० से गुणा करके चंद्र मध्य भुक्तिसे भाग करनेपर लब्ध १७४० सूची हुई। रवि स्पष्ट व्यास ६५९९ से मही व्यास १६०० अलग करके चन्द्रमध्य व्यास ४८० से गुणा० करके सूर्यमध्यव्यास ६५०० से भाग करने पर ३६९ हुआ। इसको सूचीसे वियोग करनेपर १३७१ छायाव्यास और १९ से भाग करनेपर ९१ छायाव्यासकला हुआ। चन्द्रस्पष्ट ० । २० । ९ से राहुस्फुट ० । १९ । ६ अलग करनेपर ० । ९ । ३ हुआ। इसकी भुजज्या ३०४ को परमविक्षेप २७० से गुणाकरके त्रिज्या ३४३८ से भाग करनेपर २४ चन्द्र स्पष्ट विक्षेप हुआ। छाया व्यासकला ९१ और चंद्र व्यासकला ३९ एकत्र करके आधे करनेसे ६३ हुए। इसके वर्ग ३९६९ से चन्द्र विक्षेपवर्ग ५७६ अलग करके मूल निकालनेसे ५८ हुए। इसको ६० से गुणाकरके सूर्यचन्द्रमाके गत्यन्तर ८०० से भाग करनेपर दण्ड ४ । २२ हुई। यही मध्यस्थित्यर्द्ध है। इस समयके चन्द्रस्फुट ० । १९ । ८ से राहुस्फुट अलग करदेनेपर ० । ४ । २ हुआ इसकी भुजज्या २४२ है। इसको परमविक्षेप २७० से गुणाकरके ३४३८ त्रिज्यासे भाग करनेपर १९ यह हुआ सो वर्ग मान योगार्द्ध वर्गसे अलग करनेपर ३६०६ हुआ। इसके मूल ६० को ६० से गुणकरके गत्यंतरसे भाग करनेपर ४ । ३० स्फुट स्थित्यर्द्ध हुआ। पूर्णिमाके अन्त० में वियोग और योग करनेसे स्पर्श और मोक्ष स्थिर हुआ।

चरानयन। वृषका चर निरूपण करना। (२ अ० ६१ श्लो०) राशि अर्थात् ३६०० कलाकी ज्या २९७८ है। इसको परम अपक्रम १३९७ से गुणा करके त्रिज्या ३४३८ से भाग करनेपर १२१९ क्रान्तिज्या हुई। १२१९ क्रान्तिज्याके अनुसार उत्क्रमज्याको ग्रहण करनेसे २२१ ये हुए। त्रिज्या ३४३८ से उत्क्रमज्या २२१ को अलग करनेपर ३२१७ दिन व्यास हुआ। क्रान्तिज्या १२१९ को विषुवच्छाया ९ से गुणकरके गुणन फलको १२ से भाग दे भागफलको त्रिज्या ३४३८ से गुणा करके ३२१७ दिन व्यास० से भाग करनेपर ५३७ प्राण चर नियत हुआ। इससे मेषका चर प्राण अलग करनेपर वृषकी चर खण्डा होगी।

लम्बन (९ अ० ८ श्लो०) ९ । १२ दशम लग्न । ३ । ८ । रविस्पष्ट । दशम लग्नकी क्रान्तिज्या ४३० और धनु ४३० कला हुआ। अक्षांश (अ २२ । ३०) से वियोगकरनेपर ९२० कला नत हुई। इसकी भुजज्या ९१० और कोटीज्या ३३१२ हुई। एक राशिके ज्या वर्ग २९२४९६१ कोटिज्यासे भाग करनेपर ८९२

छेद हुए। दशम लग्न और रविस्पष्टान्तरित ज्या ३०९० को छेदसे भाग करने पर दण्ड १।२८ लम्बन होताहै। ९१० भुजज्याको ७० से भागकरने पर १३ नति होती है।

भुजज्याखण्ड।

अंश	० राशिज्या	१ राशिज्या	२ राशिज्या
१	०१७४५	५१५०४	८७४६२
२	०३४९०	५२९९२	८८२९५
३	०५२३४	५४४६४	०९१०१
४	०५९७६	५५९१९	८९८७९
५	०८७१६	८७३५८	९०६३१
६	१०४५३	५८७७९	९१३५५
७	११२८७	६०१८१	९२०५०
८	१३९१७	६१५६६	९२७१८
९	१५६४३	६१९३२	९३३५८
१०	१७३६५	६४२७९	९३९६९
११	१९०८१	६५६०६	९४५५२
१२	२०७९१	६६९१३	९५१०६
१३	२२४९५	६८२००	९५६३०
१४	२४१९२	६९४६३	९६१२६
१५	२५८८२	७०७११	९६५९३
१६	२७५६४	७१९३४	९७०३०
१७	२९२३७	७३१३५	९७४३७
१८	३०९०२	७४११४	९७८१५
१९	३२५५७	७५४७१	९८१६३
२०	३४२०२	७६६०४	९८४८१
२१	३५८३७	७७७१५	९८७६९

अंश	० राशिज्या	१ राशिज्या	२ राशिज्या
२२	३७४६१	७८८०१	९९०२७
२३	७९०७३	७९.८६४	९९२५५
२४	४०६७४	८०९०२	९९४५२
२५	४२२६५	८१९१५	९९६१९
२६	४३८३७	८२९०४	९९७९६
२७	४५३९९	८३८६७	९९०६३
२८	४६९४७	८४८०५	९९९३९
२९	४१४८१	८५७१७	९९९०५
३०	५००००	०६६०२	१०००००

उपरोक्त ज्याको २४३७७४६७७ से गुणा करनेपर सिद्धान्तानुयायी ज्या होगी पृथ्वी व्यासार्द्ध माइल विषुवस्थ है । वेसेल

प्रश्नावली ।

१ सिद्धान्तरहस्यके बनानेवालेने लिखाहै, कि कलिके आदिमें ७१४४०२२९६६ २७ अहर्गणथे । उन्होंने १५११ शाकेकी आदिमें रविवारमध्यरात्रमें र० म० ११। १७।५६।४१ चं० मं ५।१६।५३।५२, चं० के ११।१९।४०।२६, मं० म ७। १०। १३।९ बु० शी० ७।११।५५।५३ बृ० ६।२९।५०।४८, शु० शी० २५।४०।२९ श० २८।१।६ रा० ८।२६।३०।४१ स्थिर करे हैं ।

२ मथुरानाथ दैवज्ञने लिखा है कि कलिके आदिमें चन्द्रोच्च २।१७।७।४८ मं० ४। ९।५८, बु० ७।१०।१९, बु० ५।२१ शु० २।१९। ३९ श० ७।२६।३७।

३ चंद्रगतिको १७ से गुण करके ४२० से भाग करनेपर चन्द्रमान होताहै । इस मानको १० से गुण करके ३ से भाग करनेपर तिससे ६० गुणित रविगतिसे ८७३ घटाकर १११ भागलब्ध अंकहीन करनेसे राहुमान होगा ।

४ शुक्रके १० अंश शीघ्रकेन्द्रमें अंशादि २ । १२ फल हुआ ।

५ दिनचंद्रिकाके मतसे १५२१ शाकेमें मध्यरेखामें वारादि ४ । ४४ । ८ । १३ समयके मध्य विषुवरेखामें सूर्यसंक्रमण है ।

६ वाराहमिहिरने जातकार्णवमें ९।७।२६।३४ । आदि २४ रविका खण्डाकी है । और केन्द्रानुपातमें खण्डा लेकर फलनिर्णय करनेको कहाहै ।

इति ।

. बाबूलाल जानकीलाल शर्मा "सुमन"
मंत्र शास्त्र विशारद, ज्योतिष रत्न
हि. सा. सुधाकर. हिन्दू धर्म विशारद
सं. कोविद. जैन सि. भूषण.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
कल्याण-बंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस
खेतवाडी-बंबई ४.